स्कन्द पुराण

[प्रथम खण्ड]

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

•

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, २० स्मृतियों व १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार।

•

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर) बरेली–२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० : ४७४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली—२४३००३ (उ० प्र०)
फोन : ४७४२४२

●

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

●

●

संशोधित संस्करण

सन् १९९८

●

मुद्रक :

नव ज्योति प्रेस
भीकचन्द मार्ग, मथुरा (उ०प्र०)
फोन : ४०३८९५

●

मूल्य :

पैंतीस रुपये मात्र ।

भूमिका
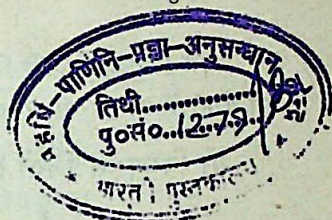
'स्कन्द पुराण' अठारहों पुराणों में सबसे बड़ा है और छह बड़े-बड़े खण्डों में बँटा है—(१) महेश्वर खण्ड (२) वैष्णव खण्ड (३) ब्रह्म खण्ड (४) काशी खण्ड (५) अवन्तिका खण्ड (६) रेवा खण्ड। ये खण्ड भी अनेक विभागों में बँटे हुए हैं। कुछ अन्य विद्वानों ने इस पुराण के सात खण्ड माने हैं। उन्होंने अवन्तिका खण्ड को न रख कर 'तापी खण्ड' और 'प्रभास खण्ड' दो पृथक् नाम सम्मिलित किये हैं। एक और स्कन्द पुराण' भी पाया जाता है जो 'सनत्कुमार संहिता' 'सूत संहिता' आदि छह संहिताओं में बँटा है। उसका विषय महत्वपूर्ण और इतना ही विस्तार युक्त होने पर भी इस 'स्कन्द पुराण' से भिन्न है और खोज करने वालों ने उसे एक 'उप पुराण' माना है।

इस महापुराण का मुख्य विषय भारत के प्रमुख शैव और वैष्णव तीर्थों का वर्णन करना है। उन्हीं तीर्थों का माहात्म्य वर्णन करते हुए अनेक प्रसिद्ध पौराणिक कथाएँ भी प्रसंगवश दे दी गई है। बीच-बीच में कुछ अध्याय सृष्टि प्रकरण के भी आ गये हैं। यद्यपि मूल रूप में यह एक शैव पुराण है, पर इसमें विष्णु की महिमा और प्रशंसा कम नहीं है। 'वैष्णव खण्ड' में तो वेंकटाचल, जगन्नाथ पुरी, बद्री नारायण आदि वर्णन में विष्णु की पूजा, उपासना, स्तव आदि का ही परिचय और विधि-विधान दिया गया है। अन्य खण्डों में भी विष्णु की चर्चा बराबर आई है और उनको शिव की समानता का ही दर्जा दिया गया है।

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः।
अन्तरं शिवविष्णोश्च मनागपि न विद्यते ॥

'जैसे शिव है वैसे ही विष्णु है और जैसे विष्णु हैं वैसे ही शिव है इन दोनों में तनिक भी अन्तर नहीं हैं।''

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयः यः शिवो विष्णुरेव सः।

(महेश्वर-खण्ड)

'जो विष्णु हैं उन्हीं को शिव जानना चाहिए और जो शिव हैं उन को विष्णु मानना चाहिए।''

इस सद्भावना का परिणाम यह हुआ है कि इस प्रमुख शैव-पुराण में कहीं कटुता अथवा निन्दा-कुत्सा की झलक दिखाई नहीं पड़ती है। इसमें हजारों छोटे-बड़े तीर्थों का परिचय दिया गया है और उन्हीं से जोड़कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गन्धर्व, ऋषि-मुनि, दानव-दैत्य, राक्षस आदि की अगणित कथाओं के समान रूप से महिमा वर्णन की गई है। 'महेश्वर खण्ड' के अन्तर्गत कौमारिका खण्ड' में तो एक ऐसी कथा दी गई है, जिससे सम्प्रदायों के नाम पर संकीर्णता के भाव रखने वालों का पूरी तरह खण्डन और भर्त्सना हो जाती हैं। राजा करन्धम ने भेदभाव करने वाले उपदेशकों की बातों से भ्रमित होकर महाकाल से प्रश्न किया था—

केचिच्छिवं समाश्रित्य विष्णुमाश्रित्य वेधसम्।
वर्णयन्ति परेमोक्ष त्वन्तु कस्मात्तु मन्यसे॥

'हे भगवन्? मोक्ष की प्राप्ति के लिए कोई शिव का, कोई विष्णु भगवान का और कोई ब्रह्माजी का आश्रय ग्रहण करने पर बल देते हैं। इस विषय में आपकी क्या सम्मत्ति है?'' इस पर महाकाल ने बतलाया—

पुराकिलैवं मुनयो नैमिषारण्य वातिनः।
सन्दिह्याऽतः श्रेष्ठतायां ब्रह्मलोकमुपागमन॥

तस्मिन्क्षणे विरञ्चोऽपि श्लोक प्रह्वोऽब्रवीत्किल ।
अनन्ताय नमस्तस्मै यस्याऽन्तो नोपलभ्यते ।
महेशाय च भक्तं द्वौ कृपायेतां सदा मयि ।
ततः श्रेष्ठं च तं मत्वाक्षीरोद मुनयोययुः ।।
तत्र योगेश्वरः श्लोक प्रबुध्यन्नमुमब्रवीत ।
ब्राह्मणं सर्वभूतेयु परम ब्रह्मरूपिणम् ।।
सत्राशिवं च वन्दे तौ भवेतां मंगलाय मे ।
ततस्ते विस्मिता विप्रा अपसृत्यययुः पुनः ।।
कैलासे ददृशुः स्थाणुं वदतं गिरिजां प्रति ।
एकादश्यां प्रनृत्यानिजागरे विष्णु सद्मनि ।।
सदा तपस्या चरामि प्रीत्यर्थं हरिवेधसोः ।
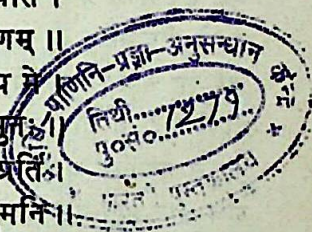
"प्राचीन काल में एक समय नैमिषारण्य में निवास करने वाले ऋषि-मुनियों को यह जानने की जिज्ञासा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं में सर्वश्रेष्ठ कौन है ? वे इसका निर्णय करने के विचार से ब्रह्मलोक को गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्माजी को यह कहते सुना अनन्त भगवान (विष्णु) को नमस्कार है, जिनका कहीं अन्य नहीं मिल सकता और महादेव जी को भी नमस्कार है। ये दोनों मुझ भक्त पर कृपा दृष्टि रखें।" तब वे ऋषि विष्णु को महान समझ कर क्षीर सागर पहुँचे तो उस समय विष्णु भगवान स्वयं ही कह रहे थे—'मैं परमब्रह्म स्वरूप, सर्वव्यापक ब्रह्मा और भगवान सदाशिव की वन्दना करता हूँ। वे दोनों मेरे लिए मङ्गलकारी हों।' यह सुनकर ऋषिगण बड़ा आश्चर्य करने लगे और चुपचाप क्षीर सागर से चले आकर कैलास पर गये। वहाँ शङ्करजी पार्वती से कह रहे थे—मैं भगवान विष्णु और ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिए एकादशी की रात्रि को विष्णु-मन्दिर में जागरण करके नृत्य क्रिया करता हूँ और इसी हेतु तपस्या भी करता हूँ।"

यह सुनकर ऋषियों का समस्त संशय स्वयं दूर हो गया और वे परस्पर कहने लगे कि हम लोग अभी तक कैसी मूढ़ता में पड़े हुए थे ? जब ये तीनों प्रमुख देव ही यह नहीं जानते कि उनमें से कौन बड़ा है-- सभी दूसरों को अपने से बड़ा समझ रहे हैं, तब हम लोग इसका निर्णय कैसे कर सकते हैं ? वास्तव में ये तीनों एक ही परम शक्ति के तीन रूप हैं जो तीन प्रकार के कार्यों की दृष्टि से विभाजित किये जाते हैं और जब वह कार्य समाप्त हो जाता है, तब तीनों फिर एक रूप में समाविष्ट हो जाते हैं, वे लोग अज्ञानी हैं जो इनके छोटे-बड़े होने का प्रश्न उठा कर सम्प्रदायिक झगड़े और भेद-भाव उत्पन्न करते हैं। अपनी प्रकृति, रुचि और ज्ञान-सामर्थ्य के अनुसार उपासना-विधि में कुछ अन्तर हो सकता है, पर उसके कारण पारस्परिक मतभेद अथवा वैमनस्य की वृद्धि करना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ?

वास्तव में पुराणकार में इस कथा द्वारा जो सद्भावना व्यक्त की है वह स्तुत्य है। यद्यपि सिद्धान्त रूप से इस तथ्य को सभी पुराणों ने स्वीकार किया है, पर अपने इष्टदेव की महिमा-वर्णन करते हुए अनेक स्थानों पर वे बहक गये हैं, और उत्साह के अतिरेक अथवा मनोवृत्ति सङ्कीर्णता के कारण दूसरी देव-शक्तियों को हीन बतलाने लगे हैं। 'स्कन्द पुराण' ने यहाँ उदार-भावना से काम लिया है और तीनों देवों की समता को इतने बलपूर्वक प्रकट किया है कि किसी तरह के सन्देह को गुंजायश रह ही नहीं जाती। इतना ही नहीं इसी प्रकरण में उन्होंने कलियुग-वर्णन करते हुए बुद्ध-अवतार के विषय में जो भाव प्रकट किये हैं वे भी उनकी निष्पक्ष मनोवृत्ति के परिचायक हैं। उसके 'कौमारिका खण्ड' (अध्याय ४०) के करन्धम महाकाल सम्वादे चतुर्युग व्यवस्था वर्णनम् प्रकरण में लिखा है—

ततस्त्रि सहस्त्रेषु षट् शतरधिकेषु च।
मागधे हेमसदनोदञ्जन्यां प्रभविष्यति ।२५६

विष्णोरंशो धर्मपाता बुधः साक्षात्स्वयं प्रभुः ।
तस्य कर्माणि भूरीणि भविष्यन्ती महात्मनः ।२५७
भक्तेभ्यः स्वयशो मुक्त्वादिवं पश्चाद्‌गमिष्यति ।
सर्वेषाँचावताराणाँ गुणैः समधिकोयतः ।२५८
ततोवक्ष्यन्ति तं भक्त्या सर्वपापहरं बुधम् ।२५९

"कलियुग में तीन हजार छह सौ वर्ष बीतते पर मगध देश के हेम-सदन में अंजनी के गर्भ से भगवान बुद्ध प्रकट होंगे जो साक्षात् विष्णु के अंशावतार होंगे । वे धर्म का पालन करने वाले होंगे । उनके बहुत से उत्तम गुण और चरित्र स्मरणीय होंगे । अपने भक्तों के लिए अपनी यशगाथा छोड़कर वे मुक्त हो जायेंगे और लोग उनको सर्वपापहारी बुद्ध कहेंगे ।

अधिकांश पुराणों ने बुद्ध अवतार का नाम देने के अतिरिक्त उनकी कुछ भी चर्चा नहीं की है । पुराणकारों ने उनका 'माया-मोह' के नाम से वर्णन किया है । भागवतकार ने अवश्य इतना कहा है कि जब हिंसा की अनुचित रूपसे बहुत अधिक प्रबलता हो गई तो भगवान् बुद्ध रूप में प्रकट हुए । पर 'स्कन्द पुराण' ने उनकी चर्चा जैसे उत्कृष्ट रूप में की है वह उसकी न्याय-बुद्धि को प्रमाणित करता है । कर्मकांड के दोषयुक्त हो जाने पर उन्होंने जनता को अहिंसा और सेवा का मार्ग दिखलाया उसकी प्रशंसा आज तक समस्त संसार करता है, और उनके कारण भारत की बृद्धि हुई है इससे कोई इनकार नहीं कर सकता । इस प्रकार का युग-परिवर्तनकारी कार्य भगवत्-शक्ति से सम्पन्न महामानवों के अतिरिक्त कोई नहीं करता ।

भगवान् के सच्चे भक्तों के लक्षण—

रामानुज एक वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य थे । यह भी कहा जा

सकता है कि वे वर्तमान वैष्णव धर्म के प्रथम संस्थापक हैं, क्योंकि अन्य तीनों वैष्णव सम्प्रदाय उनके पश्चात् के हैं। रामानुज के पहले भी विष्णु स्वामी आदि ने इन सिद्धान्तों का प्रचार किया था, पर इसको एक स्थायी और देशव्यापी रूप देने का श्रेय श्री रामानुजाचार्य को ही प्राप्त है। उनके इस महत्व को समझ कर स्कन्द पुराणकार ने उनका उल्लेख बड़ी प्रशंसा के साथ किया है। यद्यपि उनका जो चरित्र इसमें दिया गया है वह पुराणों की शैली के अनुसार चमत्कार पूर्ण बना दिया गया है, पर उनके तथा विष्णु भगवान् के कथोपकथन में भगवान के सच्चे भक्तों के जो लक्षण दिये गये हैं, वे अवश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। जिन लोगों ने भगवान् की उपासना और भक्ति का लक्षण एकान्त बैठ कर भजन करना पूजा-भोग आदि ही समझ रखा है वे कुछ भ्रम में है। यद्यपि भगवान्-भक्ति में इनका भी स्थान है, पर इसका जिक्र बहुत बाद में किया गया है जबकि सबसे पहला स्थान कष्ट पीड़ितों की सेवा और परोपकार को ही मिला है। श्री रामानुजाचार्य ने जब भगवान से भक्तों के लक्षण पूछे तो उन्होंने कहा—

"जो समस्त प्राणियों की भलाई करने वाले तथा हित-चिन्तक होते हैं, जिनके हृदय में ईर्ष्या-द्वेष का लेश भी नहीं होता तो मात्सर्य से सर्वथा रहित होते हैं, पूर्णतया निस्पृह होते हैं, जो ज्ञानी और परम शान्त हैं, वे ही उत्तम कोटि के भक्त हुआ करते हैं। भगवत् भक्त मन, कर्म, वचन द्वारा किसी प्रकार से दूसरों को पीड़ा नहीं दिया करते हैं। वे परिग्रह के स्वभाव वाले नहीं होते। जो अपने गुरुजनों, श्रेष्ठ पुरुषों और सच्चे साधुजनों की सेवा में तत्पर होते हैं वे सच्चे भक्त हैं। जो सज्जन पुरुष सभी के हित की बात कहते हैं और दूसरों के गुणों की प्रशंसा करते हैं वे उत्तम भक्त हुआ करते हैं। जो सबको अपने ही समान देखते हैं, जो शत्रु और मित्र में समान भाव रखते हैं वे भगवान् के भक्त होने के अधिकारी माने जा सकते हैं। जो दूसरों का अभ्युदय
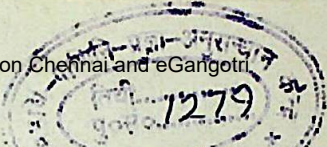
देखकर हार्दिक प्रसन्नता अनुभव करते रहते हैं, वे भक्त कहे जाने योग्य होते हैं जो दूसरों के लाभ के लिये बाग-बगीचा लगाते हैं, तालाब, कुआ, बावड़ी बनवा कर तृषार्तों की रक्षा करते हैं और ऐसे ही अन्य लोकोपकारी कार्यों में लगे रहते हैं वे भगवत् भक्त होते हैं। जो अपने-जाने हुए शास्त्रों (ज्ञान) को उन लोगों को प्रदान करते रहते हैं, और उत्तम गुणों के प्रसार में सचेष्ट रहते हैं, वे उत्तम भागवत् पुरुष हुआ करते हैं। जो अपने समस्त कर्मों को मुझे (भगवान्) को ही अर्पण करके निष्काम भावना रखते हैं, भगवान के ध्यान के अतिरिक्त अन्य सब सांसारिक विषयों में अलोलुप रहते हैं, वे ही सच्चे भक्त हैं।"

वर्तमान समय में भक्ति मार्ग को किस प्रकार बिगाड़ रखा है, और कितने ही तो उसके नाम पर जिस प्रकार दुराचार और भ्रष्टाचार में भी संकोच नहीं करते, उसे देखते हुए, उपर्युक्त, उपदेश एक कल्पना की तरह ही जान पड़ता है। पर इसमें दोष भक्ति-सिद्धान्त अथवा 'भागवत्-धर्म' का नहीं है, यह तो निम्न स्वार्थी लोगों की करतूत है, जो अपनी दुरभि सन्धियों में कारण अच्छे-से-अच्छे मार्ग को भी पतित बना देते हैं, जैसा स्कन्द पुराणकार ने कहा है उसी सिद्धान्त की घोषणा अभी तक महात्मा गाँधी के आश्रम में नित्य प्रति की जाती थी।

वैष्णवजन तो तने कहिए जे पीर पराई जान रे।
पर दु:खे उपकार करे तोए मन अभिमान न छाने रे॥

ज्ञान योग और निष्काम कर्म

निश्चय ही धर्म का मुख्य लक्षण दूसरों की पीड़ा, कष्ट को समझ कर उसे यथा शक्ति कम करने का प्रयत्न करना ही है। अगर कोई इस सेवा-धर्म को त्याग कर केवल बाह्य कर्मकाण्ड अथवा जप-तप आदि के द्वारा ही आत्म-कल्याण की आशा करता है—निकम्मे लोगों को दान देकर या माल पुऐ खिलाकर बैकुण्ठ में 'सीट रिजर्व' ही

जाने की बात सोचता है, तो वह ब्रह्म से पतित अथवा ढोंगी ही है। मनुष्य की भावनाएँ दया-धर्म और परोपकार से ही उदात्त होती हैं और उन्हीं के बल पर मनुष्य परमात्मा के निकट पहुँच सकता है। बिना इस प्रकार के सत्कर्म के मनुष्य त्रिकाल में भी सद्गति और उच्च पदवी का अधिकारी नहीं बन सकता। समस्त ज्ञान का सार यही हैं कि मनुष्य इस प्रकार के सेवा-धर्म का पालन कर्तव्य समझ कर करे और उनमें किसी प्रकार की कामना न रखते हुए उसके फल को ईश्वरार्पण कर दे। ऐसा करने पर ही वह स्वयमेव उस परम फल को प्राप्त होता है, जिसके लिए समस्त योग, ध्यान, उपासना और कर्मकाण्ड किये जाते हैं। जैसा, भगवत् गीता' में कहा गया है, जो कर्म पुण्य और सद्गति की कामना रखकर किये जाते हैं, उनसे कुछ समय के लिए स्वर्ग आदि का सुख प्राप्त हो सकता है, पर फिर इसी संसार-चक्र में पड़ना और उसके भले बुरे परिणामों को सहन करना पड़ता है। पर जो व्यक्ति इस संसार की—समस्त प्राणियों को विष्णु या शिव (परमात्म सत्ता) का व्यापक रूप समझकर उनका हित-साधन करता है। वह निर्माण अथवा जीवन-मुक्त अवस्था को प्राप्त करता है, जिसमें पुनः भव-बन्धन की आशंका नहीं रहती। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए 'स्कान-पुराण में कहा है—

"जब मनुष्य ममता का त्याग कर देता है और उसका चित्त अत्यन्त निर्मल हो जाता है, जब भगवान् के चरणों में भक्तियोग दृढ़ हो जाता है, तब कर्म का बन्धन नहीं होता। जब कर्म करते हुए भी मनुष्य का मन सदा शान्त रहे तो समझना चाहिए कि योग की सच्ची सिद्धि प्राप्त हो गई। भगवान् को सबका स्वामी मान कर और उनको ही समस्त कर्मों का समर्पण करके मनुष्य संसार-बन्धन से छूट जाता है। वही उत्तम ज्ञान है, यही उत्तम तप हैं, और उत्तम श्रेय है। इसी को 'निर्मल योग' कहते हैं। इसी को निर्गुण-मार्ग कहा गया है। संसार

में वही ज्ञानवान है, वही योगियों में अग्रगण्य हूँ और वही महायज्ञों का अनुष्ठान करने वाला है, जो भगवान् के चरणों में भक्ति रखता है। भगवान् विष्णु के निरंजन स्वरूप को जान कर जिसने मनोमय, कर्ममय और वाणीमय दण्ड को धारण कर लिया है—अर्थात् इनको स्ववश कर लिया है, वही 'त्रिदण्डी' कहा जाने योग्य है।"

"यह मोक्ष" मानो एक नगर है, जिसके चार दरवाजे हैं। उन दरवाजों पर शम, दम आदि चार द्वारपाल सदा विद्यमान रहते हैं। वे ही 'मोक्ष-नगर' में प्रवेश कराने वाले हैं। अतः मनुष्यों को पहले उन्हीं का सेवन करना चाहिए। इनके नाम इस प्रकार हैं—शम, सद्-विचार, सन्तोष और सत्संग—ये चारों जिसके हाथ में हों उसको सिद्धि दूर नहीं है। इनकी प्राप्ति भगवान् की भक्ति और धर्म के आचरण से ही होती है। मनुष्य ज्ञान के लिए विद्यालयों में भटकता फिरता है। पर जब सद्गुरु मिल जाते हैं तो उनसे तत्काल दीप शिखा की भाँति यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हो जाती हैं। राग द्वेष छोड़ कर जो क्रोध और लोभ से दूर रहता है जिसकी सर्वत्र समान दृष्टि होती है, जिसके हृदय में सब जीवों के प्रति दया का भाव स्थिर है, तथा जो शौच और सदाचार से युक्त है, यही 'योगी' है और वह कभी दुःख नहीं पाता।'

संसार से अधिकांश दुःखों का कारण माया-ममता ही होती हैं। जो व्यक्ति यहाँ की मिथ्या वस्तुओं से विरक्त रहता है, कुसंग से बचा रहता है वही 'योग सिद्धि' है। बुद्धि दो प्रकार की होती हैं—एक सांसारिक और दूसरी पारमार्थिक बुद्धि को ग्रहण करता है और सांसारिक कार्यों को भी परमार्थ-भावना से करता रहता है, वह अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है। इस जीवन तत्व को शिवजी के पुत्र-स्कन्द कुमार ने अच्छी तरह समझा था। इसलिये जब माता-पिता ने उनके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने निवेदन किया—

"भगवन् ! संसार के दृश्य और अदृश्य पदार्थों में से मैं किसको ग्रहण और किसको त्याग करूँ ? जगत् में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब मेरे लिए माता पार्वती के समान हैं, जितने भी पुरुष हैं, उन सबको मैं आपके (शिवजी के) रूप में देखता हूँ। यह विवेक मैंने आपके ही प्रसाद से प्राप्त किया है, इसलिए आप मुझे नरक में डूबने से बचाइये ! भयंकर संसार-सागर में फिर न गिर जाय आप इसी की चेष्टा करें। जैसे दीपक हाथ में लेकर किसी वस्तु को खोजने वाला उस वस्तु को पाकर अन्य साधनों की तरफ ध्यान नहीं देता उसी प्रकार योगी को यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वह सांसारिक माया-मोह का त्याग देता है। सर्वव्यापी ब्रह्म को जान कर जिसके सब बन्धनात्मक कर्म निवृत्त हो जाते हैं उसी को विद्वान् पुरुष योगी कहते हैं। मानवों के लिए ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। ज्ञानीजन प्राप्त हुए ज्ञान को किसी प्रकार खो देना नहीं चाहते। में संसार-बन्धन से छूटने की इच्छा रखता हूँ, इसलिए मुझसे ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए जिनसे इन बन्धनों के दृढ़ होने की आशंका हो।"

इस प्रकार स्कन्द सदा 'कुमार' ही बने रहे और इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने साधना-काल में आने वाली अणिमा आदि सिद्धियों को दूर भगा दिया और केवल निर्मूल समदृष्टि को ही स्वीकार किया। इसलिए वे सदा केवल शत्रुओं पर ही विजयी नहीं रहे, पर काम, क्रोध, मोह, आदि षड्रिपुओं का भी उनके ऊपर कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ सका।

सत्य की प्रतिष्ठा

'दारुवन' का उपाख्यान सभी शैव पुराणों तथा अन्यों में भी वर्णित है। पर 'स्कन्द पुराण' में उसे जिस रूप में दिया गया है उससे वह असत्य पर सत्य की विजय का दृष्टान्त बन गया है। उससे जिस

"शिव लिंग" का वर्णन किया गया वह वास्तव में इस विश्व ब्रह्मांड की रचने वाली विराट् परमात्म-शक्ति का ही स्वरूप है। वह शक्ति अनन्त है, उसका आदि-अन्त होना सम्भव ही नहीं है। पर जब परमात्मा के प्रतीक उस लिंग के आदि-अन्त का पता लगाने के लिए ब्रह्मा और विष्णु से कहा गया, तो वे सामूहिक आदेश को शिरोधार्य करके इसका निर्णय करने के लिए आकाश और पाताल की तरफ रवाना हो गये। ब्रह्माजी को स्वभाव से कुछ 'चतुर' माना गया है, क्योंकि उनकी 'सृष्टि' रचना में सभी तरह का टेढ़ा—सीधा कार्य सम्पन्न करना पड़ता है। इसलिये जब उनको ऊपर के सातों लोक पार कर लेने पर भी लिंग के अन्तिम छोर का पता न लगा तो उन्होंने विचार किया कि यहाँ तक जाँच करने तो कोई आयेगा नहीं क्यों न मैं झूठ-मूँठ लिंग का मस्तक देखने की बात कहकर सबकी 'बाहवाही' हासिल कर लूँ! पर ऐसी बात को समस्त दर्शक बिना प्रमाण वे कैसे मान सकेंगे, इस आशंका से उन्होंने मार्ग से ही दो गवाह संग ले लिये। वे थे—सुरभी गाय और केतकी का पेड़। इन दोनों ने देव और ऋषियों के समूह के पास आकर ब्रह्माजी के इस दावे का समर्थन कर दिया कि ब्रह्माजी लिंग का आदि देख आये हैं। इसी बीच विष्णु जी भी वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने एक सत्यानुयायी की तरह कह दिया कि मैंने सातों पातालों से आगे बढ़कर शून्य में भी लिंग के छोर की खोज की पर वह तो सर्वत्र इसी रूप में व्याप्त दिखाई दिया।

इस पर ब्रह्माजी की चढ़ वनी और वे बड़ी शान के साथ उच्चासन पर विराजमान हो गये। उसी समय आकाश वाणी हुई—'सुरभी तथा केतकी ने जो कुछ कहा है, वह सब मिथ्या है, आप इनकी बातों पर तनिक भी विश्वास मत कीजिये।'' इस पर समस्त देवों ने शाप दिया कि 'आज से गाय का मुख पवित्र के बजाय अपवित्र हो जायगा और केतकी के फूल कभी शिवजी पर नहीं चढ़ाया जायगा।'' इसके

पश्चात् पुनः आकाश वाणी हुई—'हे ब्रह्मा ! आपने मूर्खतावश जो मिथ्या वचन कहे हैं, इसलिए अब तुम्हारी पूजा नहीं होगी। जिन ऋषियों और भृगु आदि पुरोहितों ने तुम्हारा समर्थन किया है, वे भी अपूज्य और तत्व के जानने वाले, मत्सरतायुक्त, याचक, आत्म प्रशंसा करने वाले बन जायेंगे। ये एक-दूसरे को निन्दा करते हुए क्लेश युक्त जीवन व्यतीत करने वाले होंगे।"

यह उपाख्यान सत्य के प्रभाव को सर्वोपरि बतलाता है। असत्य भाषण ब्रह्मा जैसे महान् आत्मा के लिए भी कलंक और पतन का कारण होता है। मनुष्य समझते हैं कि अपनी झूँठी प्रशंसा करके हम लोगों की दृष्टि में बड़े बन जायेंगे, तरह-तरह का लाभ उठा सकेंगे, धन और पदवी प्राप्त कर सकेंगे। पर परिणाम प्रायः उल्टा ही होता है। झूँठा आदमी दो-बार व्यक्तियों को बहका सकता है, पर वह सबकी आँखों में धूल नहीं झोंक सकता। समझदार लोन निष्पक्ष मनोवृत्ति के लोग इस की चालाकी को उसी समय समझ लेते हैं, और भण्डा-फोड़ कर देते हैं। इस कारण जो उसके पक्ष में होते हैं, वे भी कुछ समय पश्चात् वास्तविक स्थिति को समझ जाते हैं और झूँठे की सर्वत्र निन्दा और भर्त्संना ही प्राप्त होती है। सत्य को चाहे कुछ समय तक असफल और पश्चात् पद स्थिति में रहना पड़े, पर अन्त में उसी की विजय होती है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि सत्य हमेशा के लिये दब जाय अथवा नष्ट हो जाय। अगर ऐसा कभी देखने में आवे तो समझ लेना चाहिए कि उस 'सत्य' में कुछ दोष है अथवा उस व्यक्ति में कुछ त्रुटियाँ ऐसी हैं जो उसके गुण को उभारने नहीं देनी।

भारत के तीर्थ

जैसा हम आरम्भ में ही कह चुके हैं कि 'स्कन्द पुराण' का एक विशिष्ट लक्षण भारत के तीर्थों का वर्णन करना है। इसमें इतने अधिक

तीर्थों का वर्णन है कि उस सबको सहज में ध्यान में भी नहीं लाया जा सकता। हमारा अनुमान है कि इनमें से बहुसंख्यक तीर्थ तो अब काल प्रभाव से टूट-फूट कर नष्ट ही हो चुके होंगे। हम अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि प्रयाग और मथुरा में पुराने समय में अनेक कुण्ड थे, पर आज उनका नाम ही शेष है। प्रयाग में सूरज कुण्ड के स्थान पर आज-कल बिजली घर बना है। मथुरा में अधिकांश कुण्ड टूट-फूट कर केवल गड्ढे रह गये हैं और कुछ तो बिल्कुल टीले के रूप में परिवर्तित हो गये हैं। फिर स्कन्द पुराणकार ने जिन प्रमुख तीर्थों का वर्णन किया है और उनका माहात्म्य, पुनविधि, स्तुतियाँ आदि लिखी हैं। उनसे कितनी ही बातों की जानकारी होती हैं। "वदरिकाश्रम का सब तीर्थों से अधिक महत्व' शीर्षक अध्याय में भूमिका स्वरूप भारत के अधिकांश प्रमुख तीर्थों का उल्लेख किया गया है। उस में शिवजी द्वारा स्कन्द से कहा गया है—

"हे षडानन ! परमार्थ पथ के अधिक मनुष्यों को भगवान् के बैकुण्ठ धाम का निवास प्रदान करने वाले बहुत-से तीर्थ और क्षेत्र है। उनमें से कोई कामना के अनुसार फल देने वाले हैं और कोई मोक्षदायक हैं। गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, ताप्ती, शिप्रा, गोमती, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपणी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, वेत्रवती सरयू, शतद्रु, पयस्विनी, गण्डकी, बाहुदा, सिन्धु, सरस्वती—ये सब पवित्र नदियाँ हैं और वार-बार सेवन करने पर भोग और मोक्ष का प्रदान करने वाली हैं। अयोध्या, द्वारका काशी, मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन) कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, कांची, पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ), पुष्कर क्षेत्र, दर्दुर क्षेत्र, वारह क्षेत्र, तथा बदरी नामक महापुण्यमय क्षेत्र सब मनोरथों के साधक उत्तम तीर्थ हैं। एक अयोध्यापुरी के दर्शन से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करते हैं।'

'द्वारका में साक्षात् श्रीहरि विराजमान हैं और वे अपने स्थान

को कभी नहीं छोड़ते। गोमती में स्नान करके भगवान् कृष्ण का दर्शन करने से बिना ज्ञान के भी मुक्ति हो जाती हैं। वाराणसी क्षेत्र में मणिकर्णिका, ज्ञान वापी, विष्णु पादोदक, पच गङ्गा में स्नान करके मनुष्य को पुन: माता के स्तनों का दूध नहीं पीना पड़ता। मथुरा में भगवान कृष्ण के जन्म स्थान पर जाकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। उज्जैन में वैशाख आने पर कोटि तीर्थ में गोता लगाने और महाकालेश्वर शिव का दर्शन करने से समस्त पाप नष्ट होजाते हैं। कुरुक्षेत्र तथा राम तीर्थ में सूर्य ग्रहण पर यथाशक्ति दान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। हरिक्षेत्र में पादोदक तीर्थ का स्नान मुक्तिपापा हैं। विष्णुकांची में साक्षात् विष्णु और शिवकांची में भगवान् शिव निवास करते हैं। पुरुषोत्तम क्षेत्र के मार्कण्डेय-सरोवर में स्नान करके जगन्नाथ देव का दर्शन करने से मनुष्ये पुन: इस नश्वर जगत् में नहीं आता। कार्तिक पूर्णिमा को पुषूर क्षेत्र में स्नान करने से मृत्यु उपरान्त ब्रह्मलोक स्थान मिलता है। मणि मास में भक्तिपूर्वक प्रयोग के त्रिवेणी सङ्गम का स्नान अनन्त पुण्यफल का प्रदाता होता है।'

"भगवान् विष्णु के वदरी क्षेत्र की महिमा समस्त तीर्थों से अधिक हैं। यज्ञ योग समाधि तथा सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, वह बदरी क्षेत्र में भली-भाँति दर्शन करने से ही प्राप्त हो जाता है।

हमें यह स्वीकार करने में कोई विरोध नहीं कि हमारे पूर्वजों ने अनेक तीर्थों की स्थापना जन-कल्याण की भावना तथा सामान्य बनता से आध्यात्मिक रुचि की वृद्धि के उद्देश्य से की थी। सैकड़ों वर्ष तक ये तीर्थ वास्तव में सद्विचारों तथा पुण्य-परम्पराओं का बीज वपन करने के स्रोत बने रहे। इनसे एक ओर जहाँ मनुष्य को घर के संकीर्ण दायरे से निकल कर विस्तृत क्षेत्र में देश और समागत को स्थिति को समझने का अवसर मिलता था, वहाँ उनमें त्याग और परमार्थ की प्रवृत्तियों को

प्रस्फुटित होने की सम्भावना भी बढ़ती थी। पर आज स्थिति उल्टी ही होती जा रही है। हमारे तीर्थ सत्प्रेरणा के बजाय दोषों और दुर्गुणों के गढ़ बनते जाते हैं। जहाँ किसी समय तीर्थों-यात्रियोंके सम्मुख स्वार्थ त्यागी और परोपकार व्रतधारी ऋषि-मुनि पुण्य परमार्थ का आदर्श उपस्थित करते रहते थे, वहाँ आज पण्डे, पुरोहित तथा साधु वेशधारी धूर्त लोग वचकता और ठगोंका नमूना दिखलाते रहते हैं। परिणाम यह हुआ कि सर्वसाधारण की श्रद्धा तीर्थों पर से क्रमशः हटती जाती है और समझदार तथा शिक्षित लोग तो उनके नाम से नाक-भी सिकोड़ने लगते हैं। वास्तव में यह हिन्दू समाज का बड़ा दुर्भाग्य है कि उसकी एक उपयोगी संस्था का स्वरूप ऐसा विकृत हो गया और वह कल्याण के बजाय अकल्याण का साधन बन गई।

ऋषियों की नामावली—

'अरुणाचल रहस्य स्थान वर्णन' शीर्षक अध्याय (पृष्ठ २४६) में मार्कण्डेय ऋषि द्वारा नन्दि से प्रश्न किया गया कि 'भगवान् शिव की उपासना की दृष्टि से ऐसा स्थान कौन-सा है जहाँ पर सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति हो सके। उन्होंने कहा कि यह जिज्ञासा केवल मेरी ही नहीं है वरन् सभी ऋषि-मुनियों की है। इसके बाद उन्होंने सब ऋषियों के नाम गिनाए हैं, जो लगभग १४० होंगे। इनमें सृष्टि के आदिमें प्रकट होने वाले ब्रह्माके मानस पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार मरीचि, पुलह, पुलस्त्य, वसिष्ठ भृगु, आदि से लेकर पाराशर, व्यास, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, चरक, सुश्रुत आदि तक के नाम दिए गए। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि समस्त पुराणों की विविध कथाओं में जितने नाम ऋषियों के आये हैं वे सभी एक जगह इकट्ठे कर दिए गए हैं। इनमें से सनक-सनन्दन मरीचि आदि नाम सृष्टि प्रारम्भ होने के समय के हैं, पराशर, ब्यास आदि द्वापर के अंतिम भाग

के हैं और चरक, सुश्रुत आदि दो-चार हजार वर्ष पुराने आयुर्वेद शास्त्र के आचार्यों के हैं ।

इस उदाहरण से प्रतीत होता है कि लेखक को सभी प्रसिद्ध ऋषियों की नामावली देनी थी, इसलिए जितने नाम उसे मिल सके बेसभी लिख डाले, यद्यपि पुराणों का ही वर्ण-संख्या के हिसाव से इसके समय में लाखों वर्ष का अन्तर है । यह उदाहरण हमने इस उद्देश्य से दिया है कि जो लोग प्राचीन ग्रन्थों में लिखे प्रत्येक श्लोक को एक अकाट्य तथ्य मान लेते हैं, वास्तविक स्थिति को समझ सकें । जैसा हम अनेक बार बतला चुके हैं पुराणों की कथाएँ 'उपाख्यान' के रूप में लिखी गई हैं, जिसका आशय यह होता है कि उनके मूल में कुछ सचाई है पर कथा का पूरा ढांचा रचयिता ने अपनी कल्पना और कवितत्वशक्ति से तैयार किया है । ऐसे कवि इस बात की चिन्ता नहीं करते कि वे दो विभिन्न कालों की घटनाओं या व्यक्तियों का वर्णन एक साथ मिलाते रहे हैं । अथवा अलग-अलग दूरवर्ती स्थानों में होने वाली कई घटनाओं को किसी एक नये स्थान से सम्बन्ध किये दे रहे हैं । उनका ध्यान तो मुख्यतः काव्य के रस का परिपाक होने तथा छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन करने में लगा रहता है, जिससे उनकी रचना प्रभावशाली और आकर्षक बन सके । यदि हम इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लें और तदनुसार ही उनका स्वाध्याय करें तो उन व्यर्थ की शङ्काओं से बच सकते हैं, जो प्रायः ऐसे प्राचीन कथा-ग्रन्थों के सम्बन्ध में पैदा हुआ करती है ।

अहिंसा-धर्म की महत्ता-

आपस्तम्ब नामके महर्षि एक समय साधना करने के निमित्त नर्मदा और मत्स्या नदियों के संगम पर जल के भीतर जाकर बैठ गये । वहाँ कितने ही मल्लाह मछली पकड़ रहे थे, संयोगवश वे मुनि भी मछलियों

के साथ उनके जाल में फँस कर बाहर निकल आये। उनको इस प्रकार निकला देखकर मल्लाह बहुत डरे और क्षमा-प्रार्थना करने लगे। पर मुनि उस समय मछलियों का संहार होता देखकर कुछ और ही सोच रहे थे। उन्होंने मल्लाहों से कहा—

"भेद-दृष्टि रखने वाले जीवों द्वारा दुःखमें डाले हुए प्राणियों की ओर जो लोग ध्यान नहीं देते उनसे बढ़ कर क्रूर संसार में और कौन होगा ? अहो ! जीते जागते प्राणियोंके प्रति यह निर्दयतापूर्ण तथा स्वार्थ के लिए उनका व्यर्थ में बलिदान—यह कैसा आश्चर्य का विषय है ? ज्ञानियों में भी जो केवल अपने ही हित में तत्पर्य है, वह श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि यदि ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वार्थ को दृष्टिगोचर रखकर ज्ञान-ध्यान में लगे रहते हैं, तो इस जगत् के दुःखी प्राणी किसकी शरण जायेंगे ? जो मनुष्य अकेला ही सुख भोगना चाहता है उसे मुमुक्ष पुरुष महापापी बतलाते हैं। मेरे लिए वह कौन-सा उपाय है जिससे में दुःखित चित्त वाले सम्पूर्ण जीवों के भीतर प्रवेश करके अकेला ही सब के कष्टों को भोगता रहूँ। मेरे पास जो कुछ भी पुण्य है, वह सभी दीन-दुःखित के पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया है वह मेरे पास आ जाय। इन दरिद्र, विकलांग तथा रोगी प्राणियों के कष्ट को देखकर जिसके हृदय में दया उत्पन्न नहीं होती वह मेरे विचार से मनुष्य नहीं राक्षस है। जो समर्थ होकर भी प्राण-सङ्कट में पड़े हुए, भय विह्वल प्राणियों की रक्षा नहीं करता, वह उनके पापों को ही भोगता है। अतः मैं इन दीन-दुःखी मछलियों को दुःखसे मुक्त करनेका कार्य छोड़कर मुक्ति को भी वरण नहीं करना चाहता, फिर स्वर्ग-लोक की तो बात ही क्या है।"

मल्लाहों ने आपस्तम्ब ऋषिकी सब बातें जाकर महाराज नाभाग को बतलायी। जब वे घटनास्थल पर आये तो ऋषि ने कहा कि "इन

मल्लाहों ने मुझे जल से निकालने में बड़ा परिश्रम किया है। इस लिये मेरा जो कुछ मूल्य तुम उचित समझो वह इनको दे दो।"

राजा नाभाग आपस्तम्ब मूल्य के रूपमें मल्लाहों को एक लाख से लगाकर अपना राज्य तक देने को तैयार हो गये, पर आपस्तम्ब ने उसे पर्याप्त न समझा। इस पर राजा बहुत चिन्तित हुआ। उसी समय लोमश ऋषि आये और उन्होंने कहा कि महान् ज्ञानी द्विजका मूल्य रुपया और राज्य नहीं हो सकता, वरन् उसका मूल्य तो गौयें हैं जो उसी की तरह जगत को हितकारिणी होती हैं। गौओं की महिमा में सत्य ही कहा गया है—

गावः प्रदक्षिण कार्या वन्दनीया हि नित्यशः।
मङ्गला यतनाः दिव्याः सृष्टास्त्वेताः स्वयम्भुवा।
अप्यागाराणि विप्राणी देवतायतनानि च।
यद्गोमयेन शुद्धयन्ति कि ब्रूमो ह्यधिकं ततः।
गोमूत्रं गोमयं क्षीर दधि सर्पिस्तथैव च।
गवां पञ्च पवित्राणि पुनन्ति सकल जगत्॥

"ब्रह्माजी ने गौओं को दिव्य गुणों से युक्त बनाया है। वे अत्यन्त मङ्गलकारिणी हैं। अतः सदैव उनकी परिक्रमा और वन्दना करनी चाहिए। जिन गौओं के गोबर से ब्राह्मणों के घर तथा देव-मन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं, उनसे बढ़ कर और किसे कहा जा सकता है? गौओं के मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी—ये पाँचों वस्तुयें पवित्र मानी गई हैं और ये सम्पूर्ण जगन् को पवित्र करने वाली हैं।"

इस प्रकार आपस्तम्ब ऋषि ने प्राणियों की उपयोगिता और उनकी रक्षा तथा पालन करने का प्रतिपादन किया। निस्सन्देह किसी भी दुःखी प्राणी पर दया करके उसकी सहायता करना परम धर्म है। इससे उसके दुःखों का चाहे पूर्णतया अन्त न होता हो, पर इस प्रकार की भावना से

मनुष्य का अपना हृदय अवश्य उच्च और अधिक पवित्र बनता है। इस प्रकार जीव-दया और अहिंसा का व्यवहार ही मनुष्य को साधारण सांसारिक धरातल से उठाकर देवत्व की भूमिका में पहुँचा देता है। अपने लिये तो सभी जीते, परिश्रम और कष्ट सहन करते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की अथवा वहुत वड़े महत्व की बात नहीं हैं। आत्म-विकास प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक कर्तव्य है, जिसे वह अपने स्वार्थ की दृष्टि से करना ही रहता है। प्रशंसा तो उसी की है जो अपने स्वार्थ का ख्याल न करके दूसरे के दुःखो को अनुभव करता और उन्हें दूर करने के लिए प्रयोग करता है।

सदाचार महिमा—

यद्यपि पौराणिक धर्म तीर्थ व्रत, देव-दर्शन आदि की महिमा ही विशेष कही गई हैं और इन्हीं को पापों से छुटकारा दिलाने कां साधन बतलाया गया है, तो भी बीच-बीच में यह संकेत पाया जाता है कि इन सव धर्म कार्यों में सदाचार का आधार अवश्य होना चाहिए। दुराचार से मनुष्य निरन्तर पाप-पङ्क में डूबता जाता है और सदाचार के-सहारे वह उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित होता है। इसलिये धर्म की कामना रखने वालों को सदाचार का पालन अवश्य करणीय है। इसके प्रतिपादन में 'ब्रह्म खंड' का निम्न ऊद्धारण महत्वपूर्ण हैं—

"आचार ही एक महान् वस्तु है। आचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्ति किया करता है और उसी से सुफल प्राप्त करता है, आचार से श्री (लक्ष्मी) की प्राप्ति होती है। इसका विवेचन करते हुए, व्यासदेव ने कहा है कि स्थावर, कृषि, अब्ध, पक्षी, पशु और मानव—ये क्रम से 'धार्मिक' होते हैं। इनसे विशेष धार्मिक सुर हुआ करते हैं। जो वाणी पापसे छुटकारा पाने का पालन करते हैं वे सब 'महाभाग' कहे जाते हैं। उनसे श्रेष्ठ वे हैं जो बुद्धिपूर्वक आचरण करते हैं। समस्त बुद्धि वाले

प्राणियों में मानव श्रेष्ठ होता है। मनुष्यों में विप्र श्रेष्ठ होते हैं, विप्रों से विद्वान् श्रेष्ठ हैं, उनसे श्रेष्ठ 'कृत-बुद्धि' होते हैं। 'कृत बुद्धि' से श्रेष्ठ 'कर्ता और कर्ताओं से श्रेष्ठ 'ब्रह्म तत्पर' होते हैं। तप और विद्या की दृष्टि से वे एक दूसरे के पूजनीय माने जाते हैं। ब्रह्माके द्वारा ही ब्राह्मण की सृष्टि की गयी हैं, इसलिये वह सब प्राणियों में श्रेष्ठ और पूज्य है। पर समस्त श्रेष्ठताओं का आधार सदाचार ही है। जो आचार से रहित है वह तो कुछ भी नहीं हैं। इसलिये ब्राह्मण को सदा आचारवान् होना चाहिये। वह राग-द्वेष से भी परे होता है और तभी बुद्धिमान उसका सम्मान करते हैं। उनके मतानुसार ऐसा सदाचार ही धर्म का मूल है। जो व्यक्ति अन्य प्रकार से श्रेष्ठताओं के लक्षणों से युक्त न जान पड़े पर जो पूर्ण सदाचारी हो और किसी से ईर्ष्या-द्वेष न रखता हो, वही संसार में सौ वर्ष जीवित रहने योग्य है, जिससे उसके द्वारा प्राणियों का हित साधन होता रहे।"

"इसलिए मनुष्यों को सदैव सावधान होकर सदाचार-धर्म का पालन करना चाहिये। जिसका झुकाव दुराचार की ओर होता है, वह लोक में महान् निन्दा का पात्र होता है। दुराचारी व्यक्ति अनेक प्रकार की व्याधियों—रोगों से घिरा रहता है और इस कारण उसका जीवन भी अल्प हो जाता है और वह हमेशा दुःखही भोगा करता है। इसलिये मनुष्य को वही कर्म करना चाहिये जिसके करनेसे अन्तरात्मा प्रसन्न हो इसके विपरीत कर्म नहीं करना चाहिये।"

'परलोक में तो एकमात्र धर्म ही सङ्गी होता है। इसलिये सर्वदा इस बात को ध्यान में रखें कि अपने से पर-पीड़ा रूप पाप कर्म कभी न हो। पिता, माता, पुत्र, भ्राता, स्त्री और बन्धु-बान्धव तो केवल थोड़े समय तक अपने जान पड़ते हैं, अन्यथा यह जीव अकेला ही आया है और अकेला हो जायगा। अपने शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल भी उसका स्वयं भोगना पड़ता है। इसके लिये अपनी भलाई बुराई समझने

वाले व्यक्ति को सदैव उत्तम पुरुषों की ही सङ्गति करनी चाहिये, जिससे श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा मिलती रहे। जिन लोगों के विचार अधमता के हों, उनका सदैव परित्याग करना चाहिए। इसी मार्ग पर चलने से 'ब्राह्मण' सच्ची श्रेष्ठता और पूज्य पद प्राप्त किया करता है और इसके विपरीत चलने से वह नीचता को प्राप्त हो जाता है।"

राम नाम की महिमा—

यद्यपि तीनों देवों— ब्रह्मा, विष्णु, महेश की एकता का प्रतिपादन पुराणों में किया गया है और हम इस भूमिका के आरम्भ में ही उस कथा को उद्धृत कर चुके है, जिससे प्रकट होता है कि ये महान् देवगण परस्पर एक दूसरे को बढ़कर मानते हैं। पर आगे चल कर 'ब्रह्म खण्ड' में राम नाम की महिमा का जिस रूप में वर्णन किया गया है, वह तो अभूतपूर्व है। तुलसी दासजी की 'रामायण' वर्तमान समय में 'राम' की महिमा से सबसे अधिक प्रचार करने वाला ग्रन्थ माना जाता है। उससे आरम्भ में ही शिव-पार्वती में सम्वाद के रूप में राम नाम की महिमा का वर्णन किया गया है। 'स्कन्द पुराण' के अवलोकन करने पर पता चलता है कि गोस्वामीजी ने उसका भाव इस पुराण से ही ग्रहण किया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। 'रामायण' में पार्वतीजी ने शिवजी से कहा है—

जो मोपर प्रसन्न सुखरासी
जानिअ सत्य मोहि निज दासीं।
तो प्रभु हरहु मोर अग्याना
कहि रघुनाथ कथा विधि नाना।
सेस सारदा वेद पुराना
सकल करहिं रघुपति गुन गाना।

तुम्ह पुनि राम-राम दिन राती
सादर जपहुँ अनङ्ग आराती ।
जदपि जोषिता नहि अधिकारी
दासी मन क्रम वचन तुम्हारी ।

'स्कन्द-पुराण' में भी कहा गया है कि जब शिव-पार्वती एकान्त स्थल में बैठे थे तो पार्वती जी ने उनसे कहा—

ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् ।
इयं ते करगा निष्यमक्षमाला महेश्वर ।।
त्वया किं जप्यते देवं सन्देहयति मे मनः ।
त्वमेकः सर्वभूतानाम् कृत्सकलेश्वरः ।।
त्वत्तः परमतप किंचिद्यत्वं ध्यायसिचेतसः ।
तन्मे कथय देवेश यद्यह दयिता तव ।।

"उस अवसर पर जगत् जननी पार्वतीजी ने शङ्कर भगवान् से कहा कि आप जो सदैव अपने हाथ में माला लेकर जप करते रहते हैं, वह क्या बात है ? मेरे मन में यही सन्देह बारम्बार उठता रहता है । आप तो समस्त प्राणियों के एकमात्र ईश्वर हैं । क्या आपके ऊपर भी कोई अन्य तत्व हैं, जिसका आप चित्त लगाकर ध्यान करते रहते हैं ? इसका जो कुछ रहस्य हो वह आप मुझे अवश्य बतायें क्योंकि मैं आपकी प्राण प्रिया हूँ ।"

श्री शिवजी ने उत्तर दिया—'मैं जिस नाम का जप और ध्यान करता हूँ वह भगवान् के समस्त नामों का सार रूप है । 'मैं 'राम' नाम वाले सर्वश्रेष्ठ अवतार का ध्यान करता हूँ । जिन भगवान् के अभी तक २४ अवतार हो चुके हैं, मैं उन्हीं का जप करता रहता हूँ । इन सबका सार का भी सार है वह 'प्रणव' नाम वाला है और वह सनातन द्वादश

अक्षरों से संयुक्त ब्रह्म का ही रूप हैं। इस ओंकार के सहित जो द्वादश अक्षरों का बीजक हैं, उसका जाप करने वाले के लिए तो बस इतना प्रभावशाली सिद्ध होता है कि समस्त पापोंको दावाग्नि के समान तनिक देर में भस्म कर देता है। यह सबसे अधिक महान् और तेजस्वी है। यह.इस लोकमें अत्यन्त दुर्लभ है और तीनों लोकों का यह भूषण है यह शुभाशुभ का विनाश करने वाला करोड़ों जन्मों में प्राप्त होता है। द्वादश अक्षर का चिन्तन करना ही परम ज्ञान है।"

पर विधि-विधानों के कारण सब लोगों के लिए पूरा द्वादश अक्षर मन्त्र का जप भी आवश्यक नहीं है। 'केवल 'राम' का नाम लेकर ही वे अपना उद्धार कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में शिवजी ने बतलाया—

रामेति द्वय्क्षर जपः सर्व पापपनोदकः।
गच्छँस्तिष्ठञ्चयानो वा मनुजो राम कीर्तनात् ॥
इहनिवृतिमायाति प्रान्तेसरिगणो भवेत् ॥
रामेति द्वय्क्षरो मन्त्रो मन्त्र कोटिशताधिकः।
न रामादधिकं किंचित्पठनं जगती तले।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यम यातना।
ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहश्चये।
रामनाम्नैव विलयं यान्ति नात्र विचारणा ॥

रममे सर्व भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्म स्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥
रामेति मन्त्र राजोऽयं भय व्याधि विषूदकः।
रणे बिजयदश्चापि सर्व कायार्थं साधक ॥

सर्वतीर्थ फल प्रोक्तो विप्राणामपि कामदः।
रामचन्द्रेति रामेति समुदाहृतः।

तस्मात् त्वमपि देवेशि राम नाम सदा वद ।
राम नाम जपेद्यो वैं मुच्यते सर्व किल्विषैः ।

"राम" इन दो अक्षरों का जप समस्त पापों को नष्ट करने वाला है । चलते-फिरते, बैठे हुए, लेटे हुए राम का जप करते रहने से मनुष्य निश्चय ही सब-बन्धनों से छुटकारा पाकर भगवान् का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है । यह दो अक्षरो का 'राम' नाम मन्त्र करोड़ों मन्त्रों की अपेक्षा शक्तिशाली है यह सभी प्रकृति वालों के लिये पाप नाशक कहा गया है । इस संसार में राम-नाम से बढकर पढ़ने लायक और कोई वस्तु नहीं है । जो केवल इस नाम का अवलम्बन लेता है उसको यम-यातना कदापि सहन नहीं करनी पड़ती । सभी प्रकार के दोष, विघ्न विग्रह, विनाश करने वाले कारण राम-नामके प्रभाव से दूरहो जाते हैं । समस्त प्राणियों में चाहे वे स्थावर हों या जगम श्री राम ही अन्तरात्मा के रूप में उपस्थित रहते हैं ' श्रीराम' का नाम तो मन्त्रराज है, जिससे संसार का प्रत्येक भय और व्याथि नष्ट हो सकती है । यह मन्त्र राज सब तरह के संघर्षों में विजय प्राप्त कराने वाला और समस्त कार्यों में सिद्धि प्रदान कराने वाला है । इसे समस्त तीर्थों का फल प्रदान करने वाला कहा गया है । यह विप्रों के लिये भी समस्त कामनाओं का पूरा करने वाला होता है । जिस समय मुख से 'श्रीरामचन्द्र' श्रीराम' इन शब्दों का उच्चारण किया जाता है, तो तत्काल सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं । इसलिए हे देवी (पार्वतीजी) आप भी 'श्रीराम' के शुभ नाम का उच्चारण किया करो, इससे समस्त पाप, दोष निश्चय दूर हो जाते हैं ।

'शिव, नाम की महिमा—

राम-नाम-की महिमा सुन कर नैमिषारण्य के मुनियों ने शिव नाम की महिमा वर्णन करने की प्रार्थना की तो सूतजी कहने लगे—

"ओं शिवाय नमः—मन्त्र का जप करने का फल महान् कल्याणकारी होता है यह पञ्चाक्षरी मन्त्र अपने उपासक को निश्चय ही मुक्ति प्रदान करने वाला है। इसलिये मुक्ति की आकांक्षा रखने वाले सभी मुनि ऋषियों द्वारा इसका सेवन किया जाता है। इस मन्त्रका माहात्म्य चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा भी नहीं कहा जा सकता। समस्त श्रुतियों, उपनिषदों तथा धर्म-शास्त्रों का सार इस शिव-मन्त्रमें समझना चाहिए। सहे चित्त और आनन्दके लक्षण वाले भगवान शिव स्वयं इसमें रमण किया करते हैं इसी मन्त्रराज का आश्रय लेकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने परम ब्रह्म को प्राप्त किया था। भगवान् शिव को इस प्रकार नमस्कार करने से जीव, ब्रह्म-ऐक्य प्राप्त कर लेता है।"

"भव-वन्धनों में ग्रस्त प्राणियों के उद्धार के लिये ही भगवान् शिव ने स्वयं इस 'ओं नमः शिवाय' मन्त्रको कहा था। यह मन्त्र जिस मनुष्य के हृदय बस जाता है, फिर उसे वहुत से अन्य जप-तप, कष्ट सहन से क्या प्रयोजन है? ये देहधारी तभी तक अनेक दुःखों को भोगते हुए इस दारुण जगत में भ्रमण किया करते हैं, जब तक इस महामन्त्र का उच्चारण नहीं करते। यह पञ्चाक्षरी मन्त्र अनेक मन्त्रराजों का भी राजा है। यह सम्पूर्ण वेदान्तों में शिरोमणि है, सम्पूर्ण ज्ञान का निधान है, मोक्षमार्ग का दीपक है और अविद्या-समुद्र का बड़वानल है। यह महान् पातकों को नष्ट करने के लिये दावाग्निके तुल्य है। मुक्ति की इच्छा रखने वाला व्यक्ति, चाहे वह शूद्र, स्त्री अथवा निम्न समझी जाने वाली जाति का क्यों न हो, इसको बिना बाधा के कर सकता है। इस मन्त्रराज में न कोई दीक्षा होती है, न होम होता है, न कोई संस्कार न तर्पण आदि करना पड़ता है। इस मन्त्र का कोई विशेष काल भी नहीं है, न कोई विशेष उपदेश होता है यह मन्त्र तो सदा ही शुचि रहा करता है। इसलिए कहा गया है—

महापातक विच्छत्वं शिवइत्यक्षर द्वयम्।

अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ॥
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्यः क्षेत्रेच पावने ।
सद्योयथेप्सितासिद्धि ददातीतिकिमद्भुतम् ।

"महापातकों को दूर करने के लिए 'शिव' में दो अक्षर ही पर्याप्त होते हैं। जब इन दो अक्षरों में 'नमः' क्रिया वाचक जोड़ दिया जाता है तो वह 'नमः 'शिवाय' महामन्त्र मुक्ति प्रदाता बन जाता है। यदि इसका उपदेश किसी सद्गुरु से लेकर किसी पुण्य क्षेत्र में इसका जप किया जाय तो वह तुरन्त ही इच्छित मनोरथ की पूर्ति करने वाला होता है, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।"

इसी प्रकार 'कृष्ण नाम' की महिमा की उन्मुक्त भाव से कथन की गई है। भगवान् विष्णु ने स्वयं ब्रह्माजी को बतलाया कि जो प्रतिदिन 'कृष्ण-कृष्ण' का उच्चारण किया करता है वह कभी नरकगामी नहीं हो सकता—

कृष्ण कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥

पाठक कदाचित् एक ही साथ राम, कृष्ण, शिव तीनों का एक-सा माहात्म्य और एक-सा प्रभाव सुनकर इस असमंजस में पढ़ जायें कि इन तीनों में से कौन ज्यादा ठीक है, अथवा विशेष फल देने वाला है ? अनेक तर्क वितर्कवादी इस प्रकार भिन्नता युक्त कथनों को देखकर ही पुराणों की विपरीत आलोचना करने लगते हैं कि इसमें तो तरह-तरह की परस्पर विरोधी बातें भरी हुई हैं। उनको जानना चाहिए कि इस प्रकार की भ्रान्ति रखने वालों को समझाने के लिये ही इन तीनों का वर्णन एक साथ किया गया है। हम ऐसे संशय ग्रस्त या सम्प्रदायवादी सज्जनों को बतलाना चाहते हैं कि सभी मन्त्र, जप, अनुष्ठान उचित हैं,

यदि उनको शुद्ध मन और सच्चे भावसे किया जाय। समस्त शक्ति और सिद्धियाँ आपके हृदय के भीतर हैं। हमको तो इसमें कोई बुराई नहीं जान पड़ती कि यदि एक व्यक्ति राम का नाम लेता है, दूसरा शिव का जप करता है और तीसरा देवीकी उपासना करता है। करोड़ों के जन-समूह में यदि सस्कार-भेद, देशभेद आदि के कारण दो-चार तरह की उपासना पद्धतियाँ—साधना काम में लाये जायें तो इसमें कोई हानि-कारक बात नहीं जान पड़ती।

राम शिव अथवा कृष्ण आदि नाम केवल एक सामान्य साधन मात्र है। आप दृढ़ श्रद्धा और सच्चे हृदय से जिसे अपना लेंगे और नियम-संयम पूर्वक उसका ध्यान करेंगे तो श्रेष्ठ फल प्राप्त होना निश्चित है। इसमें किसी प्रकारके प्रमाण, तर्क या विवाद की गुंजायश नहीं। हमारे मन की शक्ति और दृढ़ धारणा इतनी अधिक प्रभावशाली है कि यदि उसको समझ लिया जाय और उचित रीति से प्रयोग किया जाय, तो उसके लिये कोई कार्य असाध्य अथवा असम्भव नहीं है। विभिन्न इष्ट देवों अथवा विशिष्ट विधि विधानों की शंकाएँ अथवा प्रश्न ही लोग उठाया करते हैं, जिनकी अन्तरात्मा सभी सोयी पड़ी हैं और जिन्होंने उसे पहिचाना नहीं है। अन्यथा यदि उसे जागृत कर लें तो दो क्या एक ही अक्षर का मन्त्र हमारा बेड़ा पार कर सकता है।

पर इस विवरण से जो मुख्य बात प्रकट होती है, वह स्कन्दपुराण-कार की निष्पक्ष साम्प्रदायिक भावना है। किसी एक इष्टदेवकी मान्यता में कोई बुराई की बात नहीं है, पर यदि अपने इष्ट की प्रशंसा के लिये दूसरे की निन्दा-कुत्सा की जाय तो यह निश्चय ही एक गर्हित आचरण है।

'स्कन्द पुराण' को एक प्रकार से तीर्थों की मार्ग दर्शिका (गाइड) कहें तो अनुचित न होगा। इसमें सेतुबन्ध रामेश्वर से बद्रीनारायण तक

और जगन्नाथ पुरी से लेकर उज्जैन तक के हजारों तीर्थों का वर्णन है, और उन्हीं के सन्दर्भ में हजारों कथाएँ भी दी गई हैं। दक्षिण भारत (मद्रास) के अरुणाचल और वेंकटाचल, उड़ीसा के पुरी, उत्तर प्रदेश के काशी और मालवा के उज्जैन से सम्बन्धित समस्त छोटे-बड़े मन्दिरों, देवालयों, शिवालयों का तो इसमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अयोध्या का भी वर्णन बहुत अधिक है और व्रज का भी परिचय ठीक तरह से दिया गया है। द्वारका-वर्णन उसमें नहीं पाया जाता, जिसका कारण सम्भवतः यह हो कि उसका महत्व तीन-चार सौ वर्ष से ही बढ़ने लगा है।

जैसा हम लिख चुके हैं समस्त पुराणों में 'स्कन्द पुराण' अधिक श्लोक संख्या वाला है। यह ग्रन्थ पचास वर्ष पहले जब छपा था तब १००-१५० रु० में मिलता था और अब तो अगर एकाध प्रति मिल भी सकती है तो कीमत दसगुनी माँगी जाती है। यही कारण है कि जनता-धारण सत्यनारायणकी कथा' में इसका नाम ' इति श्रीस्कन्द पुराणे रेवा खण्डे' सुन लेने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते। हमने इनके छहों खण्डों की उपयोगी सामग्री को बड़े परिश्रम से सग्रहीत किया है। हमें आशा है कि हमारा यह सुलभ और संशोधित संस्करण पाठकों को अवश्य लाभकारी प्रतीत होगा।

विषय सूची

महेश्वर खंड

वैष्णव खण्ड

ब्रह्म खण्ड

स्कन्द पुराण

माहेश्वर खण्ड

१—दक्ष वृत्तान्त वर्णन

ॐ नारायणं नमस्कृत्यं नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरतेत् ।१
यस्याज्ञयाजगत्स्रष्टाविरिञ्चिः पालकोहरिः ।
संहर्त्ता कालरुद्राख्योनमस्तस्मैपिनाकिने ।२
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणाँक्षेत्रमुत्तमम् ।
तत्रैव नैमिषारण्येशौनकाद्यास्तपोधनाः ।
दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तः सत्रिणः कर्मचेतसः ।३
तेषांसन्दर्शनौत्सुक्यादागतो हि महातपाः ।
व्यासशिष्योमहाप्राज्ञोलोमशोनामनामतः ।४
तत्रागतं ते दद्दशमुंनयो दीर्घसत्रिणः ।
उत्तस्थुयुंगपत्सर्वे साध्यंहस्ताः समुत्सुकाः ।५
दत्वाऽर्घ्यंपाद्य सत्कृत्व मुनयोवीतकल्मषाः ।
तं पप्रच्छुर्महाभागाः शिवधर्मसविस्तरम् ।६

भगवान् श्री नारायण की सेवा में नमस्कार समर्पित करके नरों में उत्तम नर को प्रणाम करके तथा देवी सरस्वती की वन्दना करके इसके पश्चात् जब शब्द का उच्चारण करना चाहिए ।१। जिसकी

आज्ञा से विरञ्चि इस जगत् का सृजन करने वाला है-हरि(श्री विष्णु) इस जगत् के पालक हैं और काल रुद्र संहार किया करते हैं उन भगवान पिनाकी के लिए नमस्कार है ।२। वहीं पर नैमिषारण्य में जो समस्त तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ उत्तम तीर्थं है तथा सम्पूर्ण क्षेत्रों में सर्वोत्तम क्षेत्र है शौनक आदि तपोधन जो कर्म करने में चित्त वाले थे तथा सत्र करने वाले थे दीर्घ सत्र कर रहे थे ।३। उन समस्त तपस्वियों के दर्शन करने की उत्सुकता से महान् तपस्वी, महान् मनीषी, व्यासजी के शिष्य लोमश आ गये थे ।४। उन दीर्घ सत्र करने वाले महामुनियों ने वहाँ पर उसका दर्शन किया था । ज्यों ही उन्होंने लोमश मुनि को देखा था वे सबके सब बड़े ही समुत्सुक होते हुए अर्घ्य पात्र हाथों में ग्रहण करके एक साथ उठकर खड़े हो गये थे उन मुनियों ने लोमश महर्षि का अर्घ्यं-पाद्य समर्पित करके तथा सत्कार करके अपने समस्त कल्मषों को नष्ट करते हुए महान् भाग वाले उन मुनियों ने लोमश ऋषिसे भगवान शिव के धर्म को विस्तार के सहित पूछा था ।५।६।

कथयस्व महाप्राज्ञ ? देवदेवस्य शूलिनः ।
महिमानं महाभागध्यानर्चनसमन्वितम् ।७
सम्मार्जने किं फलं स्यात्तथारङ्गाबलीषु च ।
प्रदाने दर्पणस्याऽथतथा वै चामरस्य च ।८
प्रदाने च वितानस्यतथाधारागृहस्य च ।
दीपदाने किं फलस्यात्पूजायांकिफलंभवेत् ।९
कानि कानि च पुण्यानि कथ्यतां शिवपूजने ।
इतिहासपुराणानि वेदाध्ययनमेव च ।१०
शिवस्याग्रे प्रकुर्वन्तिकारयन्त्थवानराः ।
किं फलं च नृणातेषां कथ्यतांविस्तरेण हि ।११
इति श्रुत्वा वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
उवाच व्यासशिष्योऽसौ शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।१२

ऋषिगण ने कहा-हे महाप्राज्ञ ! अब आप कृपा कर देवों के देव शिव की महाभाग ध्यान और अर्चन से संयुक्त महिमा का वर्णन कीजिये ।७। सम्मार्जन करने में क्या पुण्य फल होता है-तथा रङ्गावली आदि करने में क्या फल होता है और दर्पण के प्रदान में एवं चामर के प्रदान में क्या पुण्य-फल हुआ करता है ? वितान तथा धारा गृह के समर्पण करने में क्या पुण्य होता है और दीपदान एवं पूजा करने में क्या पुण्य फल हुआ करता है। हे भगवन् ! यह बताइये कि भगवान शिव के पूजन में कौन-कौन से पुण्य हुआ करते हैं। जो कोई मनुष्य भगवान शिव के आगे इतिहास पुराणों का पाठ-जाप तथा वेदों का अध्ययन किया करते हैं अथवा विप्रों से कराते हैं उन मनुष्यों को क्या पुण्य-फल होता है-इस सम्पूर्ण विषयों का आप हमारे सामने अति विस्तार के सहित वर्णन कीजिए ।८-१०। हे मुनिवर ! लोक में भगवान् शिव के आख्यान करने में आपके सिवाय अन्य कोई भी महापुरुष समर्थ नहीं है ।११। उन भावित आत्माओं वाले मुनियों के इस वचन का श्रवण करके व्यासजी के शिष्य लोमश महामुनि ने उत्तम शिव के माहात्म्य को कहा था ।१२।

अष्टादशपुराणेषुगीयते वै परः शिवः ।
तस्माच्छिवस्यमाहात्म्यवक्तु कोऽपि न पायते ।१३
शिवेयि द्व्यक्षरं नामव्नाहरिष्यन्तिषेजनाः ।
तेषांस्वर्गश्चमोक्षश्च भविष्यति न चान्यथा ।१४
उदारो हि महादेवो देवानां पतिरीश्वरः ।
ये सर्वं प्रदत्त हि तस्मात्सर्वं इतिस्मृतः ।१५
ते धन्यास्ते महात्मानो ये भजन्ति सदाशिवम् ।१६
विनासदाशिवं यो हि संसारं कतु मिच्छति ।
स मूढो हि महापाप शिवद्वेषी न संशयः ।१७
भक्षितं हि गरं येन दक्षयज्ञो विनाशितः ।
कालस्य दहनं येन कृतं राज्ञः प्रमोचनम् ।१८

यथागरं भक्षितं च यथायज्ञो विनाशितः ।
दक्षस्य च तथा ब्रूहि परं कौतुहल हि ना ।१९
दाक्षायणी पुरादत्ता शङ्कराय महात्मने ।
वचनाद्ब्रह्मणो विप्र दक्षेण परमेष्ठिना ।२०

महर्षि लोमश ने कहा-अठारह पुराणों में भगवान शिव को श्रेष्ठ बताया जाता है। इस कारण भगवान शिव के माहात्म्य को बतलाने में कोई भी समर्थ नहीं है। 'शिव'- इस दो अक्षरों वाले नाम को जो मनुष्य कहेंगे उनको निश्चय ही स्वर्ग लोक और मोक्ष होगा-इसमें तनिक भी अन्यथा अर्थात् असत्य नहीं है।१३-१४। समस्त देवगण का स्वामी ईश्वर महादेव परम उदार है जिसने सभी कुछ दे दिया है इस-लिए तो वे 'सर्व' इस नाम से कहे गये हैं। वे महान् आत्मा वाले पुरुष परम धन्य एवं भाग्यशाली हैं जो भगवान सदाशिव का भजन किया करते हैं।१५-१६। जो कोई भी पुरुष सदाशिव प्रभु की कृपा के विना ही इस घोर संसार से पार होना चाहता है अर्थात् शिव की आराधना न करके ही साँसारिक बन्धन से छुटकारा पाकर परमगति को प्राप्त होना चाहता है वह महान् मूर्ख हैं, महान पापी है और भगवान शिव का द्वेषी हैं-इसमें कुछ भी संशय नहीं है जिसने गरल का भक्षण किया था और दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विनाश किया था। जिसने काल का दहन किया था और राजा का प्रमोचन किया था।१७-१८। ऋषिगण ने कहा-हे भगवन् ! जिस प्रकार से गरल का भक्षण किया था और जिस तरह यज्ञ का विनाश किया था जो कि प्रजापति दक्ष ने आरम्भ किया यह सभी आप हमको बतलाइये। हमारे हृदय में पड़ा कौतूहल हो रहा है।१९। सूतजी ने कहा-हे विप्रगण ! पहले ब्रह्माजी के वचन से परमेष्ठी दक्ष ने महात्मा शङ्कर के लिए दाक्षायणी को प्रदान किया था।२०।

एकदा हि स दक्षो वै नैमिषारण्यमागतः ।
यदृच्छावशमापन्न ऋषिभिः परिपूजितः ।२१

स्तुतिभिः प्रणिपातैश्चतथासर्वैः सुरासुरैः ।
तत्र स्थितोमहादेवोनाभ्युत्थानाभिवादने ।
चकाराऽस्य ततः क्रुद्धो दक्षो वचनमब्रवीत् ।२२
सर्वत्र सर्वे हि सुरासुरा भृशंनमन्ति मां विप्रवराःसमुत्सुकाः।
कथं ह्यसौ दुर्जनवन्महात्मा भूतादिभिः प्रेतपिशाचयुक्तः ।
श्मशानवासो निरपत्रपो ह्ययं कथ प्रणामं न करोतिमेऽधुना
।२३
पाखण्डिनो दुर्जनाःपापशीला विप्रं दृष्ट्वा चोद्धता उन्मश्च।
वध्यास्त्याज्याः सद्भिपर्वविधा हि तस्मादेनं शापितुं चोद्य
योऽस्मि ।२४
इत्येवमुक्त्वा स महातपा स्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदबभावे२५
श्रृण्वन्त्वमी विप्रतमा ! इदानीं वचो हि ने कर्तुमिहार्हथै-
तत् ।
रुद्रो ह्ययं यज्ञबाह्यो वृतो मे वर्णातीतो पर्णपरो यतश्च ।२६
नन्दीनिशम्यतद्वाक्यं शलादोहरुषान्वितः ।
अब्रवीत्वरितोदक्षं शापदतंमहाप्रभुम् ।२७

यदृच्छा से वशीभूत होकर एक वार वही प्रजापति यज्ञ नैमित्र अरण्य में आ गया था और वहाँ पर ऋषियों के द्वारा पूजा की गई थी सभी ने जिनमें सुर एवं असुर भी वे उनको स्तुति की थी एवं भली-भाँति दृष्टिपात भी किया था। वहीं पर महादेव भी सस्थित थे किन्तु उन्होंने दक्ष को न तो गात्रोत्थान ही किया और अभिवादन किया था। इसे देखकर प्रजापति दक्ष वहुत ही क्रुद्ध हुए थे और यह वचन बोले थे--।२१-२२। मुझको सभी जगह पर सभी सुर-असुर और विप्रवर वड़े ही उत्सुक होकर अत्यधिक नमन किया करते हैं फिर यह महान् आत्मा वाला भूत आदि से युक्त और प्रेत तथा पिशाचों के सहित रहने वाला एक दुर्जन की भाँति मुझे देखकर भी बैठा रहा है। यह

श्मशान में निवास करने वाला निर्लज्ज मुझे इस समय प्रणाम क्यों नहीं करता है ? ।२२। जो पाखण्डी है, दुर्जन हैं, पापों के करने के स्वभाव वाले हैं, विप्र को देखकर उद्धत रहते हैं तथा उन्मद हैं उन्हें सत्पुरुषों को त्याग देना चाहिए और वे तो वध करने के योग्य है। इसलिए मैं तो अब इसको शाप देने को उद्यत हो रहा हूँ ।२४। इस प्रकार से इतना कहकर यह महान् तपधारी उस समय क्रोध से संयुक्त होकर भगवान् रुद्र से बोले--।२५। हे प्रियतमो ! आप जो यहाँ है ये सब सुन लेवे। इस समय में जो भी मेरा वचन है उसे आप सब उसी भाँति करने के योग्य होते हैं। यह रुद्र यज्ञों से बहिष्कृत किया गया है ऐसा मुझे सम्मत हैं क्योंकि यह वर्णातीत और वर्ण पर एवं यत है ।२६। नन्दी ने दक्ष के इस वाक्य का श्रवण करके वह शैलाद बहु ही कोधित हुआ और बड़ी शीघ्रता के वश होकर उस शाप देने वाले महा प्रभा सम्पन्न दक्ष से बोला ।२७।

यज्ञबाह्यो हि मे स्वामीमहेशोऽयंकृत: कथम् ।
यस्य स्मरणमात्रेणयज्ञाश्चसफलाह्ययो ।२८
यज्ञो दानं तपश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
यस्य नाम्ना पवित्राणि सोऽयं शप्तोऽधृता कथम् ।२९
वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयं दक्ष दुर्मते ।
येनेद पालितं विश्वं सर्वेण च महात्मना ।
शप्तोऽयं स कथं पाप ! रुद्रोऽयं ब्राह्मणाधम ! ।३०
एवं निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः ।
नन्दिनञ्चशशापाथ दक्षोरोषसमन्वितः ।३१
यूयं सर्वेरुद्रवरा वेदबाह्याश्च वै भृशम् ।
शप्ता हि वेदमार्गेश्च तथात्यक्ता महर्षिभिः ।३२
पाखंडवादसंयुक्ताः शिष्टाचारवहिष्कृताः ।
कपालिनः पानरतास्तथा कालमुखाह्यमी ।३३

इनिशप्तास्तदातेन दक्षेण शिवकिंकराः ।
तदा प्रकुपितो नन्दी दक्षं शप्तु प्रचक्रमे ।३४

नन्दी ने कहा--मेरे स्वामी भगवान् महेश को यज्ञों से बहिष्कृत कैसे या क्यों किया है ? जिस महात्मा शर्व ने इस सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है । महेश का तो वह प्रभाव है कि जिसके केवल स्मरण भर कर लेने से ही ये समस्त यज्ञ सफल हुआ करते हैं ।२८। यज्ञ, दान, तप, तीर्थ जो कि अनेक है ये सभी जिनके नाम से ही पवित्र हुआ करते हैं उसी महाप्रभु को इस समय में क्यों शाप दिया गया है ?।२९। हे दुष्ट बुद्धि वाले दक्ष ! आपने ब्रह्म की चपलता से वृथा ही इनको शाप दे दिया है । जिसने इन सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है । हे ब्राह्मणों में नीच ! हे महापापी ! यह भगवान् रुद्र हैं उनको क्यों शाप दिया गया है ? ।३०। उस नन्दी ने इस प्रकार से उस प्रजापति फटकारा और रोष में भरकर दक्ष ने नन्दी को शाप दिया था ।३१। तुम संभी रुद्र वर अत्यन्त ही वेद वाह्य हों और वेदी के मार्ग वाले महर्षियों के द्वारा परित्यक्त एवं शप्त हैं । आप सभी पाखण्डवाद में रति रखने वाले, शिष्टों के आचार से उहिष्कृद्र, कपालधारों, पाप करने में निरत तथा काल मुख है । इसी कारण उस समय उस दक्ष ने शिव के सब किंकरों को शाप दिया था उसी समय प्रकुपित होते हुए नन्दी ने ने दक्ष को शाप देने की तैयारी की थी ।३२-३४।

शप्ता वयं त्वया विप्र साधवः शिवकिंकराः ।
वृथैव ब्रह्मचापल्यादहं शापं ददामिते ।३५
वेदवादरता यूयं नान्यदस्तीति वादिनः ।
कामात्मनः स्वर्गपरा लोभमोहसमन्विताः ।३६
वैदिकश्च पुरस्कृत्य ब्रह्मणाः शूद्रजायकाः ।
दरिद्रिर्णो भविष्यन्ति प्रतिगृह्रताः सदा ।३७
दक्ष ? केचिद् भविष्यन्ति ब्राह्मणाः ब्राह्मणाः ब्रह्मराक्षसाः ।
विप्रास्ते शापितास्तेन नन्दिना कोपिना भृशम् ।३८

अथाकर्ण्येश्वरो वाक्यं नन्दिनः प्रहसन्निव ।
उवाच वाक्यं मधुरं बोधयुक्तं सदाशिवः ।३९
कोपं नार्हसि वै कर्त्तुं ब्राह्मणान्प्रति वै सदा ।
ब्राह्मणाः गुरुवोह्य ते वेदवादरताः सदा ।४०
वेदोमन्त्रमयः साक्षात्तथासूक्तमयो भृशम् ।
सूक्ते प्रदिष्टितोह्यात्मासर्वेषामपिदेहिनाम् ।४१
तस्मान्नात्मविदो निंद्या आत्मैवाहं नचेतर ।
कोऽयं कस्त्वं क्व चाहं वै कस्माच्छप्ता हि वै द्विजाः ।४२

हे विप्र ! इस परम साधु स्वभाव वाले शिव के सेवकों को आपने शाप दे दिया है। यह बृथा ही ब्रह्म चापाल्य के होने के कारण से ही दिया है। अच्छा अब मैं तुमको भी शाप देता हूँ ।३५। आप लोग वेदों के बाद करने में रति रखने वाले हैं और दूसरा कोई नहीं है--ऐसा कहने वाले हैं। आप लोग कामात्मा और स्वर्ग परायण हैं तथा लोभ और मोह से समन्वित रहते हैं। ब्राह्मण लोग किसी एक वैदिक को आगे करके शूद्रों को यजन कराने वाले तथा सदा प्रतिग्रह ग्रहण करने में ही रति रखने वाले दरिद्री हो जायेंगे ।६३। हे दक्ष ! कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्म राक्षस होंगे। लोमश मुनि ने कहा-इस प्रकार से कोप करने वाले नन्दी ने अत्यन्त ही अधिक उन ब्राह्मणों को शाप दे दिया था। इसके अनन्तर सदाशिव ने जो ईश्वर है इस नन्दी के वाक्य को सुनकर हँसते हुए बोध से युक्त नरम मधुर वाक्य कहा-।३७-३९। श्री महादेव ने कहा-हे नन्दी ! इन ब्राह्मणों के प्रति कोप करने के योग्य तुम नहीं ये ब्राह्मण तो सदा ही गुरु हैं और वेदवाद में अनुरत रहा करते हैं। वेद साक्षात् मन्त्रमय है और अत्यन्त अधिक सूक्तमद होता है। सूक्त आत्मा प्रतिष्ठित हैं जो कि सभी देहधारियों का होता है। इसलिए आत्मा के प्राताओं के ज्ञातागण निन्दा करने के योग्य नहीं होते हैं क्यों कि मैं आत्मा ही हूँ अन्य नहीं हूँ। यह कौन है, कौन उसको और कहाँ

मैं हूँ। कैसे ब्राह्मणों को शाप दिया है ।४०-४२।

प्रपञ्चरनाँ हित्वा बुद्धो भव महामते !
तत्वज्ञानेन निर्वर्त्यस्वस्थः क्रोधादि वर्जितः ।४३

एवं प्रवोधितस्तेन शम्भुना परमेष्ठिना ।
विवेकपरमो भूत्वा शैलादो हि महातपाः ।
शिवेन सह संगम्य परमानन्दसम्प्लुतः ।४४
दक्षोऽपि हि रुषाविष्टः ऋषिभिः परिवारितः ।
ययौस्थानंस्वक तत्र प्रविवेशरुषान्वितः ।४५
श्रद्धां विहाय परमां शिवपूजकानां ।
निंदापरः स हि वभूव नराधतञ्च ।
सर्वे महर्षिभिरुपेत्य स तत्र शर्वम् देवं ।
निर्निदि न बभूव कदापि शांतः ।४६

इस प्रपञ्च की रचना का त्याग करके हे महामति ! तुमको प्रवृद्ध हो जाना चाहिए। तत्वज्ञान से निवृ त्ति प्राप्त कर स्वस्थ एवं क्रोधादि से रहित हो जाइये। इस प्रकार से उन परमेष्ठी शम्भु के द्वारा प्रबोध दिये गये शैलाद जो कि महान् तपस्वी थे विवेक परम होकर भगवान शिव के साथ जाकर परमानन्द से सम्प्लुत हो गये थे।४३-४४। प्रजापति दक्ष भी रोष के आवेश में भरे हुए महर्षियों से चारों ओर घिरे हुए अपने स्थान को चले गये थे और वहाँ पर क्रोध से युक्त रहते हुए ही उनने प्रवेश किया था।४५। उस प्रजापति दक्ष ने अपनी श्रद्धा का एकदम त्याग कर दिया था और वह मनुष्यों में महान् अधम शिव की पूजा करने वाले को निरन्तर निन्दा में ही तत्पर हो गया था। सब महर्षियों के साथ यह उपस्थित होकर भगवान् शर्वदेव की निन्दा किया करता था और उसे कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं हुई थी।४६-४७।

२–दक्ष यज्ञ वर्णन

एकदा तु सदा तेनयज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
यत्राऽऽहूतास्तद्वा सर्वे दीक्षितेनतपस्विना ।१
ऋषयोविविधास्तत्रवशिष्ठाद्याः समागताः ।
अगस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्चवामदेवस्तणाभृगुः ।२
दधीचो भगवान्व्यासो भरद्वाजो ऽथगौतमः ।
एते चान्ये च वहवः समाजग्मुर्महर्षयः ।३
तथा सर्वे सुरगणाःलोकपालातथाऽपरे ।
विद्याधराश्चगन्धर्वाः किनराप्सरसांगणाः ।४
सप्तलोकात्समानीतो ब्रह्मलोकपितामहः ।
बैकुण्ठाश्च तथाविष्णुः समानीतोमखसम्प्रति ।५
देवेन्द्रो हि समानीतइन्द्राण्या सह सुप्रभः ।
तथा चन्द्रो हि रोहिण्यावरुणः प्रियया सह ।६
कुबेरः पुष्पकारूढो मृगारूढोऽथ मारुतः ।
वस्तारूढः पावकश्च प्रेतारूढोऽथ निर्ऋतिः ।७

महर्षि लोमश जी ने कहा--एक समय उस महान् तपस्वी दक्ष ने एक महान् यज्ञ का आरम्भ किया, उस समय उस दक्ष ने सभी को समाहूत किया था। उस यज्ञ में अनेक ऋषिगण वसिष्ठ आदि समागत हुए थे। उन समागत हुए ऋषियों में अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव तथा भृगु थे। दधीचि भगवान् व्यास, भरद्वाज, गौतम ये सब और अन्य भी बहुत महर्षिगण वहाँ पर आये थे।१-३। समस्त सुरगण, सभी लोकपाल, विद्याधरगण, किन्नर, अप्सरागण वहाँ पर समागत हुए थे।४। सप्तलोक से ब्रह्मलोक के पितामह ब्रह्माजी को लाया गया था-बैकुण्ठ से भगवान विष्णु को उस महायज्ञ में बुलाया गया था और उस महान् मख में उनको सम्मिलित किया था। देवों के इन्द्र को भी इन्द्राणी के साथ वहाँ पर लाया गया था। रोहिणी सहित सुन्दर प्रभा

से सम्पन्न इन्द्रदेव तथा अपनी प्रिया के साथ वरुणदेव वहाँ पर बुलाये गये थे ।५-६। पुष्पक विमान पर समारोहण करने वाले कुबेर, मृग पर आरूढ़ मारुत देव, वस्तारूढ अग्नि, और प्रेत पर सवारी करने वाले निर्ऋति देव वहाँ उस महान यज्ञ में समागत एवं समाहूत हुए थे ।७।

एते सर्वे समायातायज्ञवाटे द्विजन्मनः ।
ते सर्वे सत्कृतास्तेन दक्षेण च दुरात्मना ।८
भवनानिमहार्हाणि सुप्रभाणिमहान्ति च ।
त्वष्ट्राकृतानिदिव्यानिकौ शल्येन महात्मना ।९
तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथाजोषं समास्थिताः ।।१०
वर्त्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तथा ।
ऋत्विजश्च कृतास्तेनभृग्वाद्याश्चतपोधनाः ।११
दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः ।
भार्ययासहितोविप्रैः कृतस्वस्त्ययनोभृषम् ।१२
रेजे महत्वेन तदा सुहृद्भिः परितः सदा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ।१३

ये सब द्विजन्मा उस यज्ञ बार में आये थे । उस दुरात्मा दक्ष ने उन सब समागत महानुभावों को संस्कृत किया था । वहाँ पर सुन्दर प्रभा से सुसम्पन्न, परम विशाल और बहुमूल्य वाले भवन थे जिनको अपने बड़े ही कोशलसे त्वष्टाने निर्मित किया था और जो अन्यत्त दिव्य एवं उत्तम थे । उन सबमें जो वहुत ही उत्तम थे उन सबको बहुत ही शांति पूर्वक समास्थित किया था ।८-१०। उन कनखल तीर्थ में जो वर्तमान यज्ञ हो रहा था, उसमें भृगु आदि तपोधनों की उन प्रजापति दक्ष ने ऋत्विज नियुक्त किया था ।११। उस समय में दक्ष ने उस यज्ञ का सम्पादन करने के लिए दीक्षा ली थी और कौतुक मङ्गल किया था । विप्रों के सहित उसने अपनी भार्या को साथ में लेकर बहुत ही अधिक स्यस्त्वयकन किया था ।१२। उस अवसर पर वह सदा सुहृदों

के द्वारा परिवारित होकर बहुत ही महत्व के साथ शोभित हुआ था । इसी बीच महर्षि दधीचि ने यह वाक्य कहा था ।१३।

एते सुरेशा ऋषयो महत्तराः सलोकपालाश्च समागताइह ।
तथाऽपि यज्ञस्तु न शोभते भृश पिनाकिना तेन महात्मना विना ।१४
यंनेव सर्वाण्यपि मङ्गलानि जातीनि शंसन्ति महाविपश्चितः
सोऽसौ न दृष्टोऽत्र पुमान्पुराणो वृषध्वजो नीलकण्ठःकपर्दी।१५
अमङ्गलान्येव च मङ्गलानि भवति येनाधिकृतानि दक्ष ! ।
त्रियक्ष्वकेनाऽथ सुमङ्गलानि भवन्ति सद्योह्यपमङ्गलानि।१६
यस्मात्वयैंव व्यमाह्वानं परमेष्ठिना ।
त्वरितंचैवशस्त्रोण विष्णुना प्रभविष्णुना ।१७
सर्वेरेव हि वन्तव्यं यत्र देवो महेश्वरः ।१८
दक्षायण्यासमेतं तमानयवंत्वरान्विताः ।
तेनसर्वंपवित्रंस्याच्छम्भुनायोगिनाभृशम् ।१९
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्यासमग्रं सुकृतं भवेत् ।
तस्मात्सर्वंप्रयत्नेनसमानेयो वृषध्वजः ।२०
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रहसंनोहि दुष्टधीः ।
मूलंविष्णुर्हि देवानां यत्रधर्मः सनातनः ।२१

दधीचि ने कहा था-ये सब परम महान् सुरगण एवं ऋषि वृन्द तथा लोकपाल आपके इस महायज्ञ में समागत हुए हैं तो भी आपका यह यज्ञ शोभा नहीं देता है क्योंकि इनमें वह महान आत्मा वाले प्रभु पिनाकी विद्यमान नहीं है ।१४। महान् विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं कि जिसके द्वारा यह समस्त मङ्गल कृत्य समुत्पन्न हुए हैं वही महान् पुराण पुरुष वृषध्वज भगवान् नीलकण्ठ कपर्दी इस महान् यज्ञ में दिखाई नहीं दे रहे हैं ।१५। हे दक्ष! जिसके द्वारा अधिकृत होने पर अमङ्गल तुरन्त सुमङ्गल हो जाया करते हैं और उसी त्र्यम्बक के द्वारा परम से मंगल

तुरन्त ही अमङ्गल के स्वरूप में परिणत हो जाया करते हैं ।१६। इस-लिए उनका आह्वान ही करना चाहिए । भगवान परमेष्ठी प्रभु विष्णु और इन्द्रदेव के द्वारा बहुत ही शीघ्र उनको यहाँ लाना चाहिए । जहाँ पर वह देव महेश्वर विराजमान हैं वहाँ पर सभी को उनको यहाँ लाने के लिए जाना चाहिए ।१७-१८। दाक्षायणी के सहित शीघ्रता पूर्वक ही उनको यहाँ पर ले आओ । उनसे ही यह सब पवित्र हो जायगा क्योंकि भगवान शम्भु परम योगी हैं । जिनके स्मरण से तथा केवल नाम का उच्चारण करने से सम्पूर्ण सुकृत हो जाया करते हैं इसीलिए सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा भगवान वृषध्वज को यहाँ पर अवश्य लिवाकर लाना चाहिए ।१९-२०। इस वचन का श्रवण करके वह दुष्ट बुद्धि वाला दक्ष प्रजापति हँसते हुए बोला–जहाँ पर सनातन धर्म है वह समस्त देव के मूल भगवान विष्णु हैं ।२१।

तस्मिन्वेदाश्चयज्ञाश्च कर्माणिविविधानि च ।
प्रतिष्ठितानिसर्वाणिसोऽसोविष्णुरिहागतः ।२२
सत्यवौकात्समायातोब्रह्मलोकपितामहः ।
वेदौश्चोदामिषद्भिश्चआगमैर्विविधैः सह ।२३
तथा सुरगणेः साकातगतः सुरराट्स्वयम् ।
तथा यूयं समायाता ऋषयोवीमकल्मषाः ।२४
येयेयज्ञोचिता शांतास्तेतेसर्वे समागताः ।
वेदवेदार्थतत्वज्ञाः सर्वेयूय दृढ़व्रताः ।२५
अत्रैव च किमस्माकं रुद्रेणाऽपिप्रयोजनम् ।
कन्यादत्त मयाविप्रा ब्रह्मणानोदितेनहि ।२६
अकुलीमो ह्यसौ विप्रानष्टोनष्टप्रियः सदा ।
भूतप्रेतपिशाचानां पतिरेको दुरत्ययः ।२७

जिसमें समस्त वेद, सम्पूर्ण यज्ञ और अनेक प्रकार के कर्म सभी प्रतिष्ठित हैं वह साक्षात् भगवान् विष्णु यहाँ पर समागत हुए

विराजमान हैं। लोकों के पितामह ब्रह्माजी सत्यलोक से यहाँ आये हैं जिनके साथ सब वेद, उपनिषद् और आगम भी आये हुए हैं।२२। २३। उसी समस्त सुरों के समुदाय के साथ सुरों के राजा भी स्वयं यहाँ आये हुए हैं और आप कल्मषों से रहित ऋषिगण भी यहाँ पधार हुए हैं। जो भी यज्ञ में आने के लिए समुचित पात्र है, तथा परम शांत हैं वे-वे सभी समागत हो गए हैं। आप लोग सभी वेद और वेदार्थ के के तथ्यों के ज्ञाता और दृढ़ व्रत वाले हैं।२४-२५। यहाँ पर हमको रुद्र से भी क्या प्रयोजन रह गया है ? हे विप्रगण ! ब्रह्मा के कथन से ही मैंने उसको अपनी कन्या का प्रदान किया है। हे विप्रगण ! यह सदा प्रियों को मष्ट करने वाला, नष्ट और अकुलीन हैं तथा भूत, प्रेत और पिशाचों के पति हैं एक दुरत्यय हैं।२६-२७।

आत्मसम्भावितो मूढ़ास्तब्धो मौनी समत्सरः ।
कर्मण्यस्मिन्नयाऽसौ नानीतो हि ममाऽधुना ।२८
यस्मात्वया न वक्तव्यं पुनरेवंवचोद्विज ? ।
सर्वैर्वद्भिः कर्तव्यो यज्ञोमे सफलोमहान् ।२९
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ।३०
सर्वेषामृषिवर्याणांसुराणांभावितात्मनाम् ।
अनयोऽयंमहाजातोविनातेनमहात्मना: ।३१
विनाशोऽपिमहान्सद्योह्यत्रत्यानाभविष्यति ।
एवमुक्त्वादधीचोऽसावेकएवविनिर्गतः ।३२
यज्ञवाटाश्च दक्षस्यत्वरितः स्वाश्रमययो ।
मुनौ विनिर्गते दक्षः प्रहसनदमब्रवीत् ।३३
गतः शिवप्रियोवीरोदधीचिर्नामिनातः ।
आविष्टचित्तामंदाश्च मिथ्यन्वादरताः खला ।३४
वेदवाह्या दुराचारास्त्याज्यास्तेहृत्रकमणि ।
वेदवादरता ययं सर्वेविष्णु पुरोगमाः ।३५

यज्ञं मे सफलं विप्राः कुर्वन्तु ह्यचिरादिव ।
तदा ते देवयजनं चक्रुः सर्वे महर्षयः ।३६

यह रुद्र आत्म सम्भावित, मूढ़, स्तब्ध मौनी और मात्सर्य से संयुत हैं ऐसा यह हमारे कर्म में अयोग्य हैं इसीलिए मैंने उसे यहाँ पर यहीं बुलाया है ।२८। हे द्विज ! इस कारण फिर इस प्रकार से आपको नहीं बोलना चाहिए आप सबके द्वारा ही मेरे इस महान् यज्ञ को सफल बनाना चाहिए ।२६। इस दक्ष के द्वारा कहे वचनको सुनकर महर्षि दधीचि ने यह वाक्य कहा था--।३०। समस्त ऋषियों को और भावितात्मा सुरों का एक उस महात्मा के बिना महान अनय (अन्यान्य) उत्पन्न हो गया है । दधीचि ने कहा कि यहाँ पर रहने वालों का तुरन्त ही महान् विनाश भी हो जायेगा । ऐसा कहकर वह दधीचि अकेला ही वहाँ से निकल गये थे । उस मुनि के विनिर्गत हो जाने पर प्रजापति दक्ष हँसते हुए यह बोले-।३१-३३। शिव का प्यारा वीर दधीचि नाम वाला चला गया। जो भी आवेश से भरे हुए चित्त वाले मन्द मिथ्या-वाद में अनुराग रखने वाले हैं,खल हैं वेद से बहिष्कृत और बुरे आचार वाले हैं वे सब इस कर्म में त्याज्य ही हैं । आप लोग सब वेदवाद में रत विष्णु पुरोनामी है । हे विप्रगण ! शीघ्र ही मेरे इस यज्ञ को सफल बनायें । उसी समय में उन सब महर्षियों देवों का यजन किया था ।३४-३६।

एतस्मिन्नन्तरे यत्र पर्वतेगंधमादने ।
धारागृहे विमानेन सखीभिः पारिवारिता ।३७
दाक्षायणीमहादेवीचकारविविधास्तथा ।
क्रीडाविमानमध्यस्थाकंदुकाद्या सहस्रशः ।३८
क्रीडासक्ता तदा देवीददर्शांऽथमहासती ।
यज्ञ प्रयान्तं सोमञ्च रोहिण्यासहितं प्रभुम ।३६

कूगमिष्यतिचंद्रोऽयंविजये वृच्छसत्वरम् ।
तयोक्ताविजयादेवीतंपप्रच्चयथोचितम् ।४०
कथितं तेनतत्सर्वंदक्षस्यवमखादिकम् ।
तच्छ्रुत्वा त्वारिता देवीविजया जातसम्भ्रमा ।
कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना भृशम् ।४१
विमृश्य कारणं देवी किमाह्वानं करोति न ।
दक्षः पिता मे माता च विस्मृता मां कुतोऽधुना ।४२

इसी बीच वहाँ गन्धमादन पर्वत पर धारा गृह में विमान के द्वारा सखियों से परिवारित होती हुई उस समय में महादेवी दाक्षायणी विमान के मध्य में स्थित होकर कन्दुक आदि सहस्रों क्रीड़ायें कर रही थीं । उस समय में वह क्रीड़ा में समासक्त रहने वाली देवी महासती ने देखा कि सोम देव प्रभु अपनी रोहिणी के साथ यज्ञ में प्रयाण कर रहे थे । यह चन्द्रदेव कहाँ जायेगा । हे विजये ! यह शीघ्र पूछो ऐसा महासती ने विजया से कहा था । इस तरह कहने पर विजयादेवी ने उससे यथोचित पूछा था । उसने दक्ष के यज्ञ आदि के विषय में से भी कुछ कह दिया था । यह सुनकर वह विजया देवी सम्भ्रम उत्पन्न हो जाने वाली होकर बहुत ही शीघ्रता से वापिस आई थी और उसने वह सभी कुछ कह सुनाया था जो चन्द्रदेव ने बारम्बार कहा था । उस समय देवी ने कारण को विचार कर सोचा था क्या हमारा आह्वान नहीं किया गया है ? दक्ष तो मेरे पिता हैं-मेरी माता ने भी मुझे इस समय क्यों भुला दिया है ।३७-४२।

पृच्छामि शङ्करं चाऽद्य कारणं कृतनिश्चया ।
स्थापयिऽवा सखीस्तत्र आगता शङ्करम्प्रति ।४३
ददर्श तं समाध्येत्रिलोचनमवस्थितम् ।
गणैः परिवृतं सर्वैश्चण्डमुण्डादिभिस्तदा ।४४

गणीभृङ्गिस्तथानन्दी शैलादोहिमहातपाः ।
महाकालो महाचण्डोमहामुण्डो महाशिराः ।४५
धूम्राक्षो धूम्रकेतुश्च धूम्रपादस्तथै वच ।
एतेचान्ये च बहवो गणा रुद्रानुवर्त्तिनः ।४६
केचिद् भयानका रौद्राः कवन्धाश्च तथा परे ।
विलोचनाश्च केचिच्च वक्षोहीनास्तथा परे ।४७
एवं भूताश्च शतशः सर्वे ते कृत्तिवाससः ।
जटाकलापसम्भूताः सर्वे रुद्राक्ष भूषणाः ।४८
जितेन्द्रिया वीतरागाः सर्वे विसबैरिणः ।
एभिः सर्वैः परिपूतः शङ्करी लोकशङ्करः ।
हृष्टस्तया उपाविष्ट आसते परमाद्‌भुते ।४६

निश्चय करने वाली होती हुई आज भगवान शङ्कर से इसका कारण पूँछूँ–यह विचार कर अपनी सखियों को वहीं पर स्थापित करके वह सती देवी शङ्कर के समीप में आ गई थीं ।४३। उस समय उसने भगवान् त्रिलोचन को सभा के मध्य में समस्त चंड मुंड आदि गणों से परिवृत्र होकर समवस्थित हुए देखा था । वहाँ उस समय में रुद्रदेव के अनुवर्ती वहुत से गुण उपस्थत थे । उसके नाम ये हैं- भृङ्गि-गण महान् तपस्वी शैलाद नन्दी, महाकाल, महाचण्ड, महामुण्ड, महा-शिरा, धूम्राक्ष, धूम्रकेतु, धूम्रपाद थे सब अन्य भी अनेक गण थे ।४४-४६। उन गणों में कुछ तो बहुत ही भयानक थे। मुख वड़े रौद्र रूप वाले थे, कुछ केवल कबन्ध के स्व रूप वाले थे, कुछ तीन नेत्रों वाले और वक्षः स्थल वे रहित थे ।४७। इस प्रकार ये सब सैंकड़ों वे जो कि श्रुतिका वसन धारण करने वाले थे । सभा जटा कपाल से युक्त और रुद्राक्ष के भूषणों वाले थे सब इन्द्रियों को जीतने वाले, राग को त्याग देने वाले और विषयों से बंर रखने वाले थे । इन सबसे लोक के कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर घिरे हुए थे। इस भाँति से

परम अद्भुत् आसन पर विराजमान भगवान शङ्कर को देखा था ।४८-४६।

आक्षिप्तचित्ता सहसा जगाम शिवसन्निधिम् ।
शिवेन स्थापिता स्वाके प्रीतियुक्तेन बल्लभा ।५०
प्रेम्णोदिता वचोभिः सा बहुमानपुरः सरम् ।
किमागमनकार्यं मे वद शीघ्रं सुमध्यमे ।५१
एवमुक्ता तदा तेन उवाचासितलोचना ।५२
पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते ।
गमनं देवदेवेश ! तत्सर्वं कथय प्रभो ।५३
सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सह सङ्गतिम् ।
कुर्वन्ति यन्महादेवसुहृदां प्रीतिवर्धिनीम् ।५४
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन अनाहूतोऽपि गच्छ भोः ।
यज्ञवाटं पितुर्मेऽद्य वचनान्मे सदाशिव ।५५
तस्यास्वद्वचनं श्रुत्वा बभाषे सूनृतं वचः ।
त्वया भद्रे न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं प्रति ।५६

महासती उस समय समाक्षिप्त चित वाली होती हुई सहसा शिवके समीप में चली गई थी । प्रीति से समन्वित भगवान शिवने अपनी प्रिया को अपनी गोद में स्थापित कर लिया था । शिव ने सती से बहुमान पूर्वक प्रेम के साथ वचनों के द्वारा पूछा--हे सुमध्यमे ! इस समय यहाँ पर आपके आगमन का क्या कारण है ? मुझे शीघ्र बतलाओ । जब इस प्रकार सती से कहा गया था तो वह अमित लोचनों वाली बोली ।५०-५२। सती ने कहा--हे प्रभो ! आप तो देवों के देव हैं । मेरे पिता के इस महायज्ञ में किस कारण से आपको अच्छा नहीं लगता है । वह सभी मुझे आप बतलाइये ।५३। सुहृदों का धर्म है कि सुहृदों के साथ सङ्गति की जावे । जो महादेव सुहृदों की प्रति के बढ़ाने वाली संगति को किया करते हैं । इसलिए हे प्रभो ! सभी

प्रयत्नों के द्वारा विना बुलाये हुए भी आप वहाँ पर जाइये। हे सदा-शिव ! आज तो मेरे पिता के यज्ञ गृह में अवश्य ही जाइये। उन सती के इस वचन का श्रवण करके भगवान् शिव परम सूनृत वचन बोले-हे भद्रे ! तुमको इस दक्ष के यज्ञ की ओर नहीं जाना चाहिए ।५४-५५-५६।

तस्य ये मानिनः सर्वे ससुरासुरकिन्नराः।
ते सर्वे यजनं प्राप्ताः पितुस्तव न संशयः ।५७
अनाहूताश्च ये सुभ्रु गच्छन्ति परमन्दिरम्।
अपमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं ततः ।५८
परेषां मन्दिरं प्राप्त इन्द्रोऽपिलघुतां ब्रजेत्।
तस्मात्वया न गन्तव्यं दक्षस्य यजनंमुभे ।५९
एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना।
उवाच रोषसंयुक्तं वाक्यं वाक्यविदांवरा ।६०
यज्ञो हि सत्यलोकेत्वं सत्वं देववरेश्वर ! ।
अनाहूतौंऽसितेनाऽद्य पित्रामेदुष्टचारिणा ।
तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि तस्य भावं दुरात्मनः ।६१
तस्माच्चाऽद्यैव गच्छामियज्ञवाटं पितुर्म्मम।
अनुज्ञां देहि मे नाथ देवदेव ! जगत्पते ! ।६२
इत्युक्तोभगवान्नुद्रस्तया देव्याशिवः स्वयम्।
विज्ञाताखिलइन्द्रष्टा भगवान्भूतभावनः ।६३

उस को जो भी मानी गण है वे सब सुर-असुर और किन्नर उस यज्ञ में पहुँच गए हैं जो कि तेरे पिता ने यज्ञ का समारम्भ किया है--इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। हे सुभ्रु ! किन्तु जो लोग विना बुलाये के पराये मन्दिर में चले जाया करते हैं वे मृत्यु से भी अधिक अपमान की प्राप्ति करते हैं। दूसरों के मन्दिर में विना बुलाये हुए चले जाने वाला इन्द्र भी लघुता को प्राप्त हो जाया

करता है अन्य की तो बात ही क्या है। हे शुभे ! इसलिए दक्ष के यज्ञ में तुमको नहीं जाना चाहिए। इस प्रकार से उन महान् आत्मा वाले महेश के द्वारा कही गयी सती ने रोष से भरा हुआ बचन कहा क्योंकि वचनों के ज्ञान रखने वालों में वह परम श्रेष्ठ थी। यज्ञ सत्य स्वरूप हैं और आप वही हैं जो कि लोक में देवों में श्रेष्ठों के भी स्वामी हैं। इस समय दुष्ट आचरण वाले मेरे पिता ने आपको नहीं बुलाया है तो उस दुष्ट आत्मा वाले की समस्त इस दुर्भावना को जानना चाहती हूँ।५७-६१। इसी से मैं आज ही पिता के उस यज्ञ वाट जाने की इच्छा रखती हूँ। हे देवों के भी देव ! हे नाथ ! हे जगद् के स्वामिन् ! आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कर दीजिए। इस प्रकार से उस देवी सती के द्वारा कहे गये क्षुद्र शिव स्वय विज्ञात थे क्योंकि सम्पूर्ण होने वाली बात के देखने वाले एवं ज्ञाता थे। भूतों पर दया करने वाले भगवान् शिव परम दयालु हैं।६२-६३।

स तामुवाच देवेशो महेशः सर्वसिद्धिदः।
गच्छ देवि ! त्वरायुक्तावचनान्ममसुव्रते।६४
एवंनन्दिनमारुह्य नानाविधगणान्विता।
गणाः षष्टिसहस्राणिजग्मू रौद्राः शिवाज्ञया।६५
तैर्गणैः संवृता देवी जगाम पितृमन्दिरम्।
निरीक्ष्यतद्बलंसर्वंमहादेवीऽतिविस्मितः।६६
भूषणानि महार्हाणि तेभ्यो देव्यै परन्तपः।
प्रेषयामास चाव्यग्रो महादेव्योऽनुपृष्ठतः।६७

देव्या गतेन स्वपितुर्गृहं तदा विस्मृश्य सर्वं भगवान् महेशः
दाक्षायणी पितृवमानिता सती न यास्यतीति स्वपुरं पुनर्जगौ।६८

सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदान करने वाले देवों के ईश महेश उस सती से बोले--हे देवि ! सुव्रते ! मेरी आज्ञा है अब आप बहुत ही शीघ्रता से युक्त होकर जाइये। इस तरह से नन्दी पर समारोहण करके अनेक

गणों से समन्वित होकर जाइये। शिव की आज्ञा है। उससे साठ सहस्र रौद्र गण जायें। उन समस्त गणों से संवृत्त हुई देवी अपने पिताके मंदिर में चली गई थी। उसके बल को देखकर महादेव ने पीछे से अव्यग्र होकर उन सबके लिए और देवी के लिए महा मूल्य वाले भूषण भेजे थे ।६४-६७। उस समय में देवी ने अपने पिता के घर में गमन किया था। उसी समय में भगवान् महेश ने सब कुछ होने वाली घटना का विचार करके पिता के द्वारा अहमानित हुई दाक्षायणी सती पुनः अपने पुर में नहीं जायेगी--यह ज्ञान दिया था ।६८।

३--सती का दक्ष-यज्ञशाला में प्रवेश

दाक्षायणी गतातत्र यत्र यज्ञो महानभूत् ।
तत्पितुः सदनं गत्वा नानाश्चर्यसमन्वितम् ।१
द्वारिस्थितातदादेवीअवर्तीथ निजसनात् ।
नन्दिनोहि महाभागा देवलोक निरीक्ष्य च ।२
मातरं पितरं दृष्ट्वा सुहृष्ट्वाग्धिवान् ।
अभिवाद्यैव पितरं मातरं च मुदान्विता ।३
वभाषे वचनं देवी प्रस्तावसदृश तदा ।
अनाहृतस्त्वया कस्माच्छम्भुः परमशोभनः ।४
येन पूज्यमिदं सर्वं समग्रं सचराचरम् ।
यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः ।५
द्रव्यं मन्त्रादिकं सर्वं हव्यं कव्यं च यन्मयम् ।
विना तेन कृतं सर्वंपवित्रं भविष्यति ।६
शंभुना हि विना तात कथं यज्ञः प्रवर्तते ।
एते कथं समायाता ब्रह्मणा सहिताः पितः ।७

हे भृगो ! त्वं न जानासि हे कश्यप महामते ।
अत्रेवशिष्ठ एकस्त्वं शक्र किं कृतमद्यते ।८
हे विष्णो त्वं महादेवं जानासि परमेश्वरम् ।
ब्रह्मन् किं त्वन्न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ।९

महर्षि लोमश ने कहा--दाक्षायणी वहाँ पर पहुँच गयी थी जहाँ पर यह महान् यज्ञ हो रहा था । फिर वह अपने पिता के घर में गयी थी जो अनेक आश्चर्य से युक्त वस्तुओं से समन्वित था । उस समय में देवी ने द्वार पर स्थित होकर अपने आसन से अवतरण किया था जो कि नन्दी पर समारूढ़ हो रही । फिर उस महान् भाग वाली ने सम्पूर्ण देव लोक का निरीक्षण किया था । सती ने अपने माता-पितासुहृत्-सम्बन्धी और सम्पूर्ण बन्धुओं को देखा था । फिर बहुत ही आनन्द से संयुक्त होकर उसने अपने माता और पिता का अभिवादन किया था । प्रणाम करने के ही अनन्तर उस देवी ने उसी समय में प्रस्ताव के अनुरूप वचन बोला था--तुमने परम शोभा सम्पन्न भगवान् शम्भु का क्यों अनादर किया है । वे तो स्वयं तो यज्ञ स्वरूप हैं, यज्ञों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं, यज्ञ के अंग हैं और यज्ञ की दक्षिणा वाले हैं । यह सम्पूर्ण द्रव्य-मंत्रादिक और सभी हव्य-कव्य शिवमय है । उसके विना किया हुआ यह सभी अपवित्र हो जायेगा ।१-६। हे तात ! भगवान् शम्भु के विना यह यज्ञ आपने कैसे प्रवृत्त कर दिया है ? हे पिताजी ! ब्रह्माजी के साथ सभी लोग कैसे यहाँपर समागत हो गये हैं ? हे भृगो! क्या आप नहीं जानते हैं ? हे महान् मति वाले कश्यप ! हे अत्रे ! हे वसिष्ठ ! क्या आप यह नहीं जानते हैं ? हे शक्र ! आप अकेले ही इस यज्ञ के भाग को ग्रहण कर रहे हैं । हे विष्णो! आप तो स्वयं परमेश्वर महादेव की भली-भाँति जानते हैं हे ब्रह्मन् ! क्या आप महादेव के विक्रम को नहीं समझते हैं ।७-९।

पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गर्वितोऽसिसदाशिवम् ।
कृतश्चतुर्मुखस्तेनविस्मृमोऽसितदद्भुतम् ।१०

भिक्षाटनंकृतयेन पुरा दारुवने विभुः ।
शप्तोऽयं भिक्षुको रुद्रो भवद्भिः सखिभिस्तदा ।११
यस्यावयवमात्रेण पूरितं सचराचरम् ।१२
लिङ्गभूतं जगत्सर्वं जातं तत्क्षणमेवहि ।
लयनालिङ्गमित्याहुः सर्वे देवाः सवासवाः ।१३

सर्वे देवाच्च सम्भूता यतो देवस्य शूलिनः ।
सोऽसौवेदान्तगोदेवस्त्वयाज्ञातुं नपार्यते ।१४
अकुलीनो वेदवाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् ।
तस्मान्नाक्रारितो भद्रे यज्ञार्थं चारुभाषिणी ।१७

पहिले आप स्वयं पाँच मुख वाले होकर सदाशिव से भी अधिक गर्व करने वाले हो गये थे फिर उन्हीं भगवान् सदाशिवने आपको चार मुखों वाला बना दिया था । क्या उस परम अद्भुत घटना को आप भूल गये हैं।१०। पहिले प्राचीन समय जिसने दारुवन में भिक्षाटन किया था । उस समय आप सखा लोग ने यह रुद्र शिक्षक है--ऐसा आप दिया था और रुद्र के द्वारा भी जो शप्त थे, उन भगवान रुद्रदेव को आप लोग इस समय में कैसे भूल गये हैं जिसके अवयव मात्र से यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् पूरित हो रहा है। उसी क्षण में यह समस्त जगत लिंगभूत हो गया था । सब देवगण और इन्द्र लयन होने थे लिंग–ऐसा कहते थे । जिस शूलधारी देव से ये सभी समुत्पन्न हुए हैं वही वेदान्तगामी देव आपके द्वारा नहीं जाना जा सकता है ।११-१४।

तस्यावचनमाकर्ण्यदक्षः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ।
किंण्वयागहुनोक्तेनकार्यनास्तहसाम्प्रतम् ।१५
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे ! कस्मात्वं हि समागता ।
अमंगलो हि भर्ता ते अशिवोऽसौ सुमध्यमे ।१६

मया दत्ताऽसि सुश्रोणिपापिनासन्दबुद्धिना ।
रुद्रायाविदितार्थाय उद्धताय दुरात्मने ।१८
तस्मात्कार्यं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
दक्षेणोक्ता तदा पुत्री सा सती लोकपूजिता ।१९
निन्दायुक्तं स्वपितरं विलोक्य रुषिताभृशम् ।
चितयन्तीतदा देवी कथयास्यामि मन्दिरे ।२०
शङ्कर द्रष्टुकामाऽहं किं वक्ष्येतेनपृच्छिता ।
योनिंदतिमहादेवं निन्द्यमानं श्रृणोतियः ।
तावुभौ नरके यातो यावच्चन्द्रदिबाकरो ।२१

सती देवी के इस वचन का श्रवण करके प्रजापति दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह वचन बोला--इस समय पर यहाँ पर बहुत अधिक तुम्हारे द्वारा कहने का क्या प्रयोजन है । यहाँ इस कथन का कुछ भी काम नहीं है । हे भद्र ! तुम जाओ अथवा रहो तुम यहां पर क्यों समागत हो गई हो ? हे सुमध्यमे ! तुम्हारी जो स्वामी हैं वह शिव नहीं अशिव स्वरूप और अमंगल है ।१५-१६। वह अकुलीन वेदों से बहिष्कृत और भूत-प्रेत तथा पिशाचों का राजा है । हे भद्रे ! तुम तो बहुत सुन्दर भाषण करने वाली हो । मैंने अपने इस महान् यज्ञ में इन्हीं कारण से उनको नहीं बुलाया है । हे सुश्रोणि ! मन्द बुद्धि वाले पापी मैंने पूरा समाचरण न जानने के कारण ही उस उद्धत दुरात्मा रुद्र के लिए तुमको उस समय में दे दिया था । इस कारण से कार्य का परित्याग करके हे शुचिस्मिति वाली! तुम अब स्वस्थ एवं शान्त हो जाओ। इस समय में दक्ष के द्वारा कही गई उस पुत्री सती ने जो सम्पूर्ण लोकों की परम पूजित थी बहुत ही अनुचित समझा था । और शिव की निंदा से युक्त अपने पिता को देखकर उसको अत्यन्त क्रोध आया था । उस समय में देता यही चिन्ता करने लगी थी कि मैं अब अपने मन्दिर में

कैसे क्या मुँह लेकर जाऊँगी। मैं भगवान शङ्कर के दर्शन करने की इच्छा रखती हूँ किन्तु जब वे मुझसे पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगी। जो महादेव की निन्दा है और निन्दा करने वालों के वचनों का श्रवण किया करता है वे दोनों ही नरकगामी हुआ करते हैं और जब तक संसार में ये चन्द्र और सूर्य विद्यमान रहते हैं तब तक नरकों की यातनायें भोगते हैं।१७-२१।

तस्मात्यक्ष्याम्यहं देह प्रवक्ष्यामि हुताशनम् ।२२
एवं मीमांसमानासाशिवरुद्रेतिभाषिणी ।
अपमानाभिभूतासाप्राविवेशहुताशनम् ।२३
हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ।
सर्वे ते मञ्चासमारूढाः शस्त्रैर्व्याप्तानिरन्तराः ।२४
शस्त्रैः स्वैघ्नुरात्मानं स्वानि देहानि चिच्छिदुः ।
केचित्करतले गृह्यं शिरांसि स्वानि चोत्सुकाः ।२५
नीराखन्तस्त्वरिता भस्मीभूताश्च जज्ञिरे ।
एवमूचस्तदा सर्वे जगज्जुरतिभीषणम् ।२६
शस्त्रप्रहारैः स्वाङ्गानि चिच्छिदुश्चातिभीषणाः ।
ते तथा विलयं प्राप्ता दाक्षायश्या नमन्तदा ।२७
गणास्तथायुतेद्वे च तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ते सर्वे ऋषयो देवा इन्द्राद्याः समरुद्गणाः ।२८
विश्वेऽश्विनौ लोकापालास्तूष्णीं भूतास्तदाऽभवन् ।
विष्णुं वरेण्यं केचिच्च प्रार्थयन्तः समन्ततः ।२९

इसलिए मैं इस अपने देह का ही त्याग कर दूँगी और हुताशन से कहूँगी ।२२। इस प्रकार से विचार करने वाली देवी उसने 'हा शिव-हा रुद्र !'--उस तरह भाषण करते हुए अत्यन्त अधिक अपमान से अभिभूत होकर अग्नि में प्रवेश किया था ।२३। उसी तरह महान् हाहाकार से समस्त दिशायें व्याप्त हो गईं थीं। वे सभी जो मञ्चों पर

समारूढ़ हो रहे थे शस्त्रों से व्याप्त हो गये थे तथा निरन्तर वहाँ पर शस्त्राघात आरम्भ हो गया था उन्होंने शस्त्रों के द्वारा अपने आपको हनन किया था और अपने ही देहों का छेदन करने लगे थे। कुछ लोग तो अपने मस्तक को काटकर करतल में रखकर समुत्सुक हो रहे थे। ।२४-२५। बहुत ही शीघ्रतासे युक्त होते हुए वे नीराजन कर रहेथे और सब भस्मीभूत हो गये थे। इसी प्रकार से उस समय कह रहे थे और अत्यन्त भीपण ध्वनि के साथ गर्जनाकर रहे थे। अत्यन्त भीषण स्वरूप धारी होकर शस्त्रों के प्रहारों के द्वारा अपने ही अंगों का छेदन करने लगे थे। वे सब उसी प्रकार से विनय को प्राप्त हो गये थे और दाक्षायणी के साथ ही उन्होंने प्राणों का त्याग कर दिया था। वहाँ पर दो अयुत गण थे और वह एक अद्भुत सा प्रश्य उस समय हो गया था। वहाँ पर जो भी सब ऋषिगण थे, इन्द्र आदि देवगण और मरुद्गण थे तथा विश्वेदेव, अश्विनीकुमार और समस्त लोकपाल विद्यमान थे उस समय ये सबके सब चुप होकर मौन धारण कर गये थे। इनमें से जो कुछ लोग वरेण्य भगवान विष्णु की सभी ओर से प्रार्थनायें कर रहे थे ।२२-२९।

एवं भूतस्तदा यज्ञोजातस्तस्य दुरात्मनः ।
दक्षस्य ब्रह्मबन्धोश्चऋषयो भयमागता ।३०
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा ! नारदेन महात्मना ।
कथितंसर्वमेवैतद्दक्षस्य च विचेष्टितम् ।३१
तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यनारदस्यमुखोद्गतम् ।
चुकोपरमंक्रुद्ध आसनादुत्पवन्निव ।३२
उद्धृत्यचजटांरुद्रो लोकसंहारकारकः ।
आस्फोटयामास रुषा पर्वतस्य शिरोपरि ।३३
ताड़नाच्चसमुद्भूतोवीरभद्रोमहायशाः ।
तथा कालीसमुत्पन्नाभूतकोटिभिरावृता ।३४

कोपाग्निः श्वसितेनैवरुद्रस्य च महात्मनः।
ज्ञात ज्वराणांचशतंसन्निपातास्त्रयोदश ।३५

उस ब्रह्म बन्धु दुरात्मा दक्ष का यज्ञ उस समय इस प्रकार का हुआ था और सब ऋषिगण भय से व्याप्त हो गये थे। हे विप्रगण ! उस बीच से देवर्षि नारदजी ने जो एक महान् आत्मा वाले हैं भगवान् शिव के समीप में पहुँचकर यह दक्ष का पूरा समाचार जो भी कुछ कहने की चेष्टा उसने की थी भगवान् को कह सुनाया था। भगवान् शिव ने नारद के मुख से कहे हुए इस वाक्य का श्रवण करके अत्यन्त अधिक क्रोध किया था और कोप के आवेश में आकर शिव अपने आसन से उछल पड़े थे।३०-३१। समस्त लोकों के संहार करने वाले भगवान् रुद्र ने अपनी जटा को खोल दिया था और उस जटा को पर्वत की शिखर पर बड़े ही रोष से फेंक मारा था। उस जटा के पछाटने से महान् यज्ञ वाला वीरभद्र समुत्पन्न हो गया था तथा करोड़ों भूतों से समावृत महा काली भी उत्पन्न हो गई थी। क्रोध के कारण जो भगवान् शिव के गर्म श्वांस निकल रहे थे उनमें सैकड़ों प्रकार के ज्वर और त्रयोदश सन्नि-पात समुत्पन्न हो गये थे।३०-३५।

विज्ञप्तो वीरभद्रेणरुद्रोरौद्रपराक्रमः।
किंकार्यं भवतः कार्यं शीघ्रमेव वद प्रभो ।३६
इत्युक्तोभगवान्रुद्रोप्रेषयामास सत्वरम्।
गच्छवीरमहाबाहो दक्षयज्ञं विनाशय ।३७
शासनंशिरसाधृत्वादेवदेवस्यशूलिनः ।
कालिकाऽऽलिहितो वीरः सर्वभूतैः समावृतः।
वीरभद्रो महातेजा ययौ दक्षमखं प्रति ।३८
तदानीमेवसहसादुर्निमित्तानि चाऽभवन्।
रूक्षोववोतदा वायुः शर्कराभिः समावृतः ।३९
असृग्वर्षति देवश्व (पर्जन्य) तिमिरेणाऽऽवृत दिशः।
उल्कापाताश्च बहवः पेतुरुर्व्यां सहस्राशः ।४०

एवं विधान्यरिष्टानि दद्दृशु र्विबुधादयः ।
दक्षोऽपिभयमापन्नौविष्णुं शरणमाययौ ।४१
रक्षरक्षामहाविष्णोत्वंहिनः परमोगुरुः ।
यज्ञोऽसि त्वं सुरश्रेष्ठ ! भयान्मांपरिमोचय ।४२

वीर भद्र ने समुत्पन्न होते ही रौद्र पराक्रम वाले भगवान रुद्र से प्रार्थना की थी--हे प्रभो ! शीघ्र ही मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए कि इस समय मुझे आपकी कौन सी सेवा करनी चाहिए । इस तरह से कहने पर भगवान रुद्र ने उसे शीघ्र ही भेज दिया था और आज्ञा प्रदान की थी कि हे वीर ! हे महाबाहो ! तुम चले जाओ और शीघ्र ही दक्ष के यज्ञ का विध्वस करादो । देवों के देव महादेवजी के इस शासन को शिरोधार्य करके कलिका के द्वारा अनिहित तथा भूतों से समावृत वीर भद्र जो कि महान् तेज से संयुक्त था दक्ष प्रजापति के यज्ञ की ओर रवाना हो गया था ।३६-३८। इसी समय में सहसा बड़े-बड़े अपशकुन होने लगे थे और उस अवसर पर वायु बहुत ही रूखा होकर चलने लगा था जिसमें धुली हुई थी । मेघों में रुधिर की वर्षा होने लगी थी और सभी दिशाओं में घोर अन्धकार छा गया था । पृथ्वी हर सहस्रों ही उल्कापात आकर गिरने लगे थे ।३६-४०। देवगण आदि सबने इस तरह के अरिष्टों को देखा था । प्रजापति दक्ष भी परम भय को प्राप्त हो गया था और भगवान् विष्णु की शरण में आ गया था ।४१। दक्ष ने भगवान विष्णु से प्राथना की--हे विष्णो ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो । आप ही हमारे परम गुरु हैं । आप तो स्वयं यज्ञ रूप हैं और सभी देवगणों में सर्वश्रेष्ठ हैं । इस महान् भय से मेरा मोचन कीजिए ।४२।

दक्षेण प्रार्थ्यमानो हि जगाद मधुसूदनः ।
मयारक्षा विधातव्याभवतोनात्र संशयः ।४३
अवज्ञा हि कृतादक्ष त्वयाधर्ममजानता ।
ईश्वराज्ञयया सर्वं विफलं च भविष्यति ।४४

अपूज्यायत्र पूज्यन्तेपूजनीयो पूज्यते ।
त्रीहि तत्रप्रवर्तन्तेदुर्भिक्षं मरणं भयम् ।४५
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेनमानीयोवृषध्वजः ।
अमानितान्महेशात्वांमहद्भयमुमास्थितम् ।४६
अधुनैव वयं सर्वे प्रभवो न भवामहे ।
भंवनो दुर्नयेनैव नाऽत्रकार्या विचारणा ।४७
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत् ।
विवर्ण वदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः ।४८

जिस समय दक्ष के द्वारा इस रीति से भगवान् से प्रार्थना की गई थी तो भगवान मधूसूदन ने कहा था । मेरे द्वारा आपको रक्षा अवश्य की जायगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।४३। हे दक्ष ! तुमने धर्म को न जानते हुए बड़ा भारी अवज्ञा की है । ईश्वर की इस महती अवज्ञा से तेरा यह सभी कुछ विफल अवश्य हो जायगा ।४४। जहाँ पर जो पूजने के योग्य हैं वे तो पूजे नहीं जाया करते हैं और न पूजन करने के योग्य देवों की पूजा की जाती है वहाँ पर ये तीन कार्य हुआ करते हैं--महान् दुर्भिक्ष का होना, मरण और तीसरा महान् भय । इसलिए सभी प्रयत्नों के द्वारा भगवान वृषध्वज का मान करना ही चाहिये । महेश के मान न करने से ही तुमको यह महान् भय इस समय में उपस्थित हो गया है ।४६। इसी समय हम सब समर्थ नहीं हो सकते हैं । यह आपके दुर्लभ से ही सब कुछ हो रहा है । इसमें अब अधिक विचार करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ।४७। भगवान् विष्णु के इस वचन को सुनकर दक्ष परम चिन्ता से समाकुल हो गया था और कान्तिहीन मुख वाला होकर चुपचाप भूमि पर स्थित हो गया था ।४८।

वीरभद्रो महाबाहू रुद्रेणैवप्रचोदितः ।
काली कात्यायनीशानाचामुण्डा मुण्डमर्दिनी ।४९

भद्रकालीतथाभद्रात्वरितावैष्णवी तथा ।
नवदुर्गादिसहितोभूतानां च गणोमहान् ।५०
शाकिनी डाकिनी चैव भूतप्रमथगुह्यकाः ।
तथैवयोगिनीचक्रं चतुः षष्ठ्या समन्वितम् ।५१
निजुंग्मुः सहसा तत्र यज्ञ वाटं महाप्रभम् ।
वीरभद्रसमेता ते गणाः शतसहस्रशः ।५२
पार्षदाः शङ्करस्यैतेसर्वेरुद्रस्वरूपिणः ।
पञ्चवक्त्रा नीलकण्ठाः सर्वे ते शस्त्रपाणयः ।५३
छत्र चामरसंवीताः सर्वे हरपराक्रमाः ।
दशबाहवस्त्रिनेत्रा जटिया रुद्रभूषणाः ।५४
अर्धचन्द्रधराः सर्वे सर्वे चैव महौजसः ।
सर्वे ते वृषभारूढ़ाः सर्वे ते वेषभूषणाः ।५५
सहस्रबाहुर्भुजगाधिपैर्वृतस्त्रिलोचनो भीमबलो भयावहः ।
एभिः समेतश्च तदा महात्मा स वीरभद्रोऽभिजगाम यज्ञम्।५६

महान् बाहुओं वाला वीरभद्र जिसको भगवान रुद्र ने प्रेरित कर प्रेषित किया था । काली देवी, कात्यायनी, ईशान्त, चामुण्डा, मुण्ड मर्दिन, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी इन सब दुर्गा आदि के सहित और महान् भूतों के गण, शाकिनी व डाकिनी, प्रमथ, गुह्यक तथा चौंसठ योगिनियों से समन्वित पूर्ण चक्र ये सभी वहाँ से निकल पड़े थे । वहाँ पर महान् प्रभा वाले यज्ञवाट में पहुँच गये । वीरभद्र सहित सैकड़ों और हजारों गण थे । ये सभी भगवान शङ्कर के पार्षद थे और सबका रुद्र के समान स्वरूप था । सबके पाँच मुख थे--नीले कण्ठ वाले थे और सबके हाथों में शस्त्र लगे हुए थे ।४९-५३। सब छात्र और चामरों से युक्त थे और हर के ही समान पराक्रम वाले थे । सबके दश बाहुयें थीं, जटाधारी थे और रुद्र के ही तुल्य भूषणों के धारण करने वाले थे ।५५। सब आधे चन्द्र को धारण करने वाले महान् ओजसे

सम्पन्न थे । सभी वृष पर समारूढ़ और शिवतुल्य वेष भूषाधारी थे । सहस्र बाहुओं वाला, भुजंगों के अधियों से समावृत तीन नेत्रों का धारी भीम बल वाला, भय देने वाला वह महात्मा वीरभद्र इन सबके साथ लिए हुए उस यज्ञ के समीप में पहुँच गया ।५५-५६।

युग्यानां च सहस्रेण द्विप्रमाणेनस्यंदनम् ।
सिंहानांप्रयुतेनैवबाह्यमानं च तस्य तत् ।५७
तथैव दशिताः सिंहबहवः पार्श्वरक्षकाः ।
शार्दूलामकरामत्स्या गजाश्चैव सहस्रशः ।
छत्राणि विविधान्येव चामराणि तथैव च ।५८
मूर्द्धनिध्रियमाणानिसर्वतोऽग्राणिसर्वशः ।
ततोभेरी महानादाः शङ्खाश्चविविधस्वनाः ।
पटहा गौमुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च ।५९
ततोऽवाद्यन्ततान्येवघनानिसुषिराणि च ।
कलगानपराः सर्वे सर्वे मृदङ्गवादिनः ।६०
अनेकलास्यसंयुक्ता वीरभद्राग्रतोऽभवन् ।
रणवादित्रनिर्घोषैर्जरमितौजसः ।६१
तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् ।
एवं सर्वे समायाता गणारुद्रप्रणोदिताः ।६२
यज्ञवाटं च दक्षस्यविनाशार्थंप्रहारिणः ।
रजसाचाऽऽवृतंव्योमतमसा च पृतादिशः ।६३

उस वीरभद्र का ही प्रमाण संयुक्त रथ था जिसमें एक सहस्र अश्व थे और एक प्रयुत सिंहों द्वारा वह बाह्यमान हो रहा था । उसके बहुत से दंशित सिंह पार्श्व रक्षक थे । सहस्रों शार्दूल, मकरमत्स्य और गज थे । अनेक प्रकार के छत्र चामर थे जो सबके आगे मस्तक पर धारण किये हुए थे । इसमें अनन्तर महान् नाद वाली भेरी और महान् शब्द ध्वनि वाले शंख बजा रहे थे । पटह, गोमुख और अनेक शृङ्ग

बनाये जा रहे थे ।५७-५६। इसके उपरान्त ये सभी वाद्य वहाँ बजाये गये थे जो महान् घनघोर और सुषिर थे । सभी गण कल गान के करने में तत्पर थे,सब मृदंग बजाने वाले थे ।अनेक लास्य करने में युक्त होकर उस वीरभद्र के आगे-आगे गमन करने वाले थे । ये सब अमित ओज से सम्पन्न रण के वादित्रों के निर्घोषों से समन्वित होकर गर्जना करने लगे थे ।६०-६१। उस महा ध्वनि से सम्पूर्ण त्रिभुवन नादित हो गया था । इस तरह से भगवान रुद्र के द्वारा प्रेरित ये सब गण वहाँ पर समायात हो गये । ये सभी दक्ष के यज्ञ वाट के विनाश करने वाले और प्रहार करने वाले थे । उस समय में आकाश रज से समावृत हो गया था और सभी दिशाओं में घोर अन्धकार छा गया था ।६२-६३।

सप्तद्वीपवती पृथ्वी चचाल साद्रिकानना ।
ते दृष्ट्वा महादाश्चर्यं लोकक्षयकरं तदा ।६४
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे देवदैत्यनिशाचराः ।
ते वै ददृशुरायातांरुद्रसेनां भयावहाम् ।६५
पृथ्वी केचित्समायाता गगने केचिदागताः ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव समावृत्य तथा परे ।६६
अनन्ता ह्यक्षरा सर्वे शूराः रुद्रसमा युधि ।
एवं भूतं च तत्सैन्यं रुद्रैश्च परिवारितम् ।
दृष्ट्वोचुर्विस्मिताः सर्वे यामोऽद्य शस्त्रपाणयः ।६७

यह सातों द्वीपों से युक्त भूमि जिसमें सभी धन और पर्वत भी है कम्पायमान हो गई थी । इस महान् आश्चर्य को जो समस्त लोकों के क्षय कर देने वाला था उस समय सब लोगों ने देखा था और सभी एक साथ उठकर खड़े हो गये थे जिसमें देव, दैत्य और निशाचर सभी थे । उन सब में अत्यन्त भय देने वाली आती हुई भगवान रुद्र की सेना को देखा था ।६४-६५। कुछ तो पृथ्वी पर समायात हुए थे कुछ

आकाशगामी थे और दूसरे सब दिश-विदिशाओं में समावृत होकर समावृत हुए थे। उस युद्ध में सभी शूर अनन्त और अक्षय थे जो कि रुद्र के समान थे। इस प्रकार से रुद्रों के द्वारा परिवारित वह सेना थी इन को देखकर सब परम विस्मित हो गये थे और कहने लगे थे कि हम तो शस्त्र हाथों में ग्रहण कर आज ही जाते है।६६-६७।

४—देवताओं और शिव गणों का युद्ध

विष्णुनोक्तं वचः श्रुत्वा दक्षो वचनमब्रवीत्।
वेदानामप्रमाणं च कृतं ते मधुसूदन ? ।१
वैदिकंकर्म मुत्सृज्यकथंसेश्वरतां व्रजेत्।
तदुच्यतांमहाविष्णो ! येनधर्मः प्रतिष्ठितः ।२
दक्षेणोक्तो महाविष्णुरुवाच परिसान्त्वयन्।
त्रैगुण्यविषया वेदाः सम्भवन्ति न चान्यथा ।३
वेदोदितानिकर्माणिईश्वरेण विना कथम्।
सफलानि भविष्यन्तिविफलान्येव तानि च ।४
तस्मात्सर्वंइयत्नेन ईश्वरं शरण ब्रज।
एवं ब्रुवति गोविन्द आगतः सैन्यसागरः।
वीरभद्रेण सहशो ददृशुस्ते तदा सुराः ।५
इन्द्रोऽपि प्रहसन्विष्णुमात्मवादरतं तदा।
वज्रपाणिः सुरैः साधवोद्धुकामोऽभवत्तदा ।६
भृगुणाचारितः शीघ्रमुच्चाटनपतेणहि।
तदा गणाः सुरैः सार्धंयुयुधुस्ते गणान्विताः ।७

महर्षि लोमश ने कहा--भगवान विष्णु के द्वारा कहे हुए वचन का श्रवण कर दक्ष प्रजापति ने कहा--हे मधुसूदन ! आपने वेदों को अप्रमाण कर दिया है। इस वैदिक कर्म को छोड़कर आप कैसे ईश्वरता के पद को प्राप्त करेंगे ? हे महाविष्णो ! अब आप यह बतलाइये जिससे धर्म प्रतिष्ठित होवें। इस तरह से दक्ष के द्वारा कहे गए विष्णु के

परिसान्त्वना देते हुए कहा था–ये वेद सब त्रैगुण विषय वाले हैं अन्यथा नहीं हुआ करते हैं।१-३। वेदों के द्वारा कहे हुए ये सब कर्म ईश्वर के बिना कैसे सफल होंगे ? ये तो सभी विफल होंगे। इसलिए अब तो अपने समस्त प्रयत्नों के द्वारा तुम ईश्वर की शरण में चले जाओ। भगवान गोविन्द यह कह ही रहे थे कि यह सेना रूपी सागर वहीं पर उमड़कर आ ही गया था। उस समय देवों ने वीरभद्र का सदृश ही उनको देखा था।४-५। इन्द्र उस समय में आत्मवाद में रत भगवान विष्णु की ओर हँसते हुए हाथ में वज्र ग्रहण करके सुरों के साथ युद्ध करने की इच्छा वाला हो गया था। भृगुने शीघ्र ही उच्चाटन परायण होकर समाचरण किया था। उस समय गणोंने देवों के साथ युद्ध किया था।६-७।

शरतोमरनाराचैध्नुस्ते च परस्परम्।
नेदुः शङ्खाश्च बहुशस्तस्मिन्महोत्सवे।८
तथा दुन्दुभयोनेदु. पढहाडिण्डमादयः।
तेन शब्देन महताश्लाघ्यमानास्तदा सुराः।
लोकपालैश्च सहिता जघ्नु स्ताञ्छिवकिंकरान्।९
खंगैश्चाऽपि हताः केचिद्गदाभिश्चविपीथिताः !
देवैः पराजिताः सर्वे गणाः शतसहस्रशः।१०
इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्चगणास्ते च पराङ्मुखाः।
कृताश्चतत्क्षणादेवभृगोर्मन्त्रबलेनहि।११
उच्चाटनंकृतं तेषांभृगुणायज्विना तदा।
पूजनार्थं च देवानांतुष्ट्यर्थंदीक्षितस्य च।१२
तेनैव देवा जयिनोजातास्तत्क्षणमेवहि।
स्वानां पराजयं दृष्ट्वा वीरभद्रोरुषान्वितः।१३
भूतान्प्रेतान्पिशाचाश्च कृत्वातानेव पृष्ठतः।
वृषभस्थानन्पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः।
तीक्ष्णं त्रिशूलमादाय पातायामास तान्रणे।१४

वे सब परस्पर में शर-तोमर और नाराचों के द्वारा निहनन करने लगे थे। उस रथ महोत्सव में बहुत बार शंखों की ध्वनियाँ हुई थी। इसी प्रकार से उस रणक्षेत्र में दुन्दुभियाँ और पन्द्रह एवं डिण्डिम आदि रुण के वाद्यों ने ध्वनियाँ की थीं। उस महान् शब्द से उस समय सुरगण बहुत ही श्लाघ्यमान हुए थे और लोकपालों के सहित उन्होंने उन समाक्रमणकारी शिव के किंकरों का खूब हनन किया था।८-९। कुछ लोग तो खड्गों के द्वारा निहत किए गये थे और कुछ गदाओं के प्रहारों से मारे गए थे। वे सैकड़ों और सहस्रों शिवगण देवों के द्वारा पराजित कर किए गए थे। इन्द्र आदि और लोकपालों द्वारा वे सब गण पराङ्मुख कर दिए गए थे। उस समय भृगु मन्त्र बल के द्वारा उन सबका उच्चाटन किया था। यज्वी भृगु ने देवों के यजन करने के लिए और यज्ञ में दीक्षित दक्ष प्रजापति की तुष्टि के लिए ही ऐसे मन्त्रों का प्रयोग किया था।१०-१२। उसी के द्वारा उसी क्षण में देवगण विजयी हो गए थे। अपने साथ सेनामें समागत गणों का पराजय देखकर वीरभद्र को बड़ा भारी क्रोध हुआ था। उसी समय उस वीरभद्र ने उस पराङ्मुख होने वाले भूत-प्रेत और पिशाचों को पीछे की ओर करके जो वृषभों पर समारूढ थे उनको आगे किया था और महान् बलशाली स्वयं भी आगे बढ़कर आ गया था। फिर उसने अपने तीक्ष्ण शूलों को हाथ में लिया और उन देवों को रणक्षेत्र में भूमिशायी कर दिया था।१३-१४।

देवान्यक्षान्पिशाचांश्चगुह्यकानृक्षसांस्तथा ।
शूलघातैश्च ते सर्वेगणादेवान्प्रजघ्निरे ।१५
केचिद् दिधाकृताः खड्गैर्मुद्गरैश्चाऽपि पोथिताः ।
परश्वधैः खण्डश्च कृताः केचिद्रणाजिरे ।१६
शूलैर्भिन्नाश्चशतश केचिच्चशकलीकृताः ।
एवं पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः ।१७

परस्परं परिष्वज्यगतास्तेऽपित्रिविष्टपम् ।
केवलंलोकपालश्चइन्द्राकास्तस्थरुत्सुका: ।
बृहस्पति पृच्छमाना: कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ।१८
बृहस्पतिरुवाचेदं सुरेन्द्रं त्वरितस्तदा ।
यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सत्यं जातमद्य वै ।१९
अस्ति चेदीश्वर: कश्चित्फलरूप्यस्य कर्मण: ।
कर्तारंभजतेसोऽपिनह्यकर्तु: प्रभुर्हिस: ।२०
न मन्त्रौषधया सर्वेनाभिचारानलौकिका: ।
न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयंतथा ।२१
ज्ञातुमीशा: सम्भवन्ति भक्त्या ज्ञेयास्त्वनन्यया ।
शान्त्या च परया तुष्ट्या ज्ञातव्यो हि सदाशिव: ।२२

उन सब गणों ने देवों, यक्षों, पिशाचों, गुह्यकों और राक्षसों तथा देवों को शूल के घातों के द्वारा निहनन किया था ।१५। कुछ लोग तो खड्गों से दो टुकड़े कर दिये गए थे और मुद्गरों के द्वारा भी पोथित किये गये थे। कुछ क्षेत्र परश्वधों से खण्ड-खण्ड कर डाले थे । इस प्रकार से उस रणक्षेत्र में हनन किया गया था ।१६। सैकड़ों तो परम-वधों के द्वारा मिश्र कर दिये थे और कुछ टुकडे कर डाले थे। इस तरह से सब पराजित होते हुए भागने में परायण हो गये थे ।१७। परस्पर परिष्वजन करके भी सब स्वर्ग चले गये थे। वहाँ पर सिर्फ लोकपाल और इन्द्र आदि उत्सुक होते हुए स्थित रह गये थे । इन सबने बृहस्पति से पूछा था कि हमारी विजय कैसे होगी ।१८। उस समय शीघ्रता से बृहस्पति ने सुरेन्द्र से यह कहा था । जो कुछ भी भगवान् विष्णु ने पहिले कहा था वह सब आज सत्य ही हो गया है ।१९। इस फल स्वरूप कर्म्म का यदि कोई ईश्वर है वह भी कर्त्ता का भजन किया करता है जो कर्ता का वह प्रभु नहीं होता है ।२०। सब मन्त्र और औषधियाँ--अभिचार, लौकिक, कर्म्म वेद और दोनों

पूर्व मीमाँसा तथा मीमाँसा (वेदान्त) उसको जानने से समर्थ नहीं हैं। वह तो अनन्य भक्ति के ही द्वारा जानने योग्य है । शान्ति और परा तुष्टि से ही भगवान सदाशिव जानने के योग्य हुआ करते हैं।२१-२२।

तेन सर्वं सम्भवन्तिसुखदु:खात्मकं जगत् ।
परन्तु सम्वदिष्यामिकार्याकार्यविवक्षया ।२३
त्वमिन्द्र ! बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्य वै ।
आगतो बालिशो भूत्वा इदानीं किं करिष्यसि ।२४
एतेरुद्रसहायाश्च गणाः परशोभनः ।
कुपिताश्च महाभागा न नु शेष प्रकुर्वते ।२५
एवं बृहस्पतेर्वाक्यं श्रुत्वातेऽपित्रिदिवौकसः ।
चिन्तामापदिरेसर्वेलोकपाला महेश्वराः ।२६
ततोऽब्रवीद्वीरभद्रोगणैः परिवृतो भृशम् ।
सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थंभवतांत्वरन् ।२७
एवमुक्त्वा शितैर्बाणैर्जघानाऽथ रुषान्वितः ।२८

उसी से यह दु:ख-सुख स्वरूप वाला जगत् और समुत्पन्न हुआ करते हैं किन्तु कार्य और अकार्य की विवक्षा से मैं कहूँगा ।२३। हे इन्द्र ! तुम मूर्ख हो गये हो और इन सब लोकपालों के साथ आज मूर्खता की है । यहाँ पर बिल्कुल मूढ़ बनाकर तुम समागत हो गए हो। इस समय क्या करोगे ? ।२४। ये समस्त गण भगवान् रुद्र की सहायता वाले हैं और परम शोभन हैं । ये महाभाग अत्यधिक क्रोध से भरे हुए हैं ये शेष नहीं रखा करते हैं ।२५। इस प्रकार के कहे हुए बृहस्पति के वाक्य का श्रवण करके वे समस्त देवगण भी चिन्तित हो गये थे तथा सब महेश्वर लोकपाल भी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे ।२६। इसके अनन्तर गणों से खूब घिरे हुए वीरभद्र बोले--आप सब मूढ़ता के कारण से ही अवदान के लिए समागत्त हुए हैं ।२७। आपको तृप्ति के

लिए बहुत ही शीघ्रता से मैं उन अवदानों को दूँगा। इस प्रकार से कहकर बड़े रोम से समन्वित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से हनन किया था।२८।

तैर्बाणैर्निहिताः सर्वे जग्मुस्ते च दिशो दश।
गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषुसुरेषु च।२९
यज्ञवाटे समायातो वीरभद्रो गणान्वितः।३०
तदा तं ऋषयः सर्वे सर्वमेवेश्वरेश्वरम्।
विज्ञप्तुकामाः सहसाऊकुरेवं जनार्दनम्।३१
रक्ष यज्ञं हि दक्षस्ययज्ञोऽसित्वं न संशयः।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषीणां वै जनार्दनः।३२
योद्धुकामः स्थितौयुद्धे विष्णुरध्यात्मदीपकः।
वीरभद्रोमहाबाहुः केशवंवाक्यमब्रवीत्।३३
अत्र त्वयागतंकस्माद्विष्णो ! वेत्तामहाबलम्।
दक्षस्यपक्षमाश्रित्यकथंजेष्यसितद्वद।३४
दाक्षायण्याकृतंयच्च न दृष्टं किं त्वयाऽनघ !।
त्ववंचाऽपियज्ञे दक्षस्यअवदानार्थमागतः।
अवदानं प्रयच्छामि तव चाऽपि महाभुज !।३५

उन बाणों से उन सबको निहतकर दिया था और वे दशों दिशाओं में चले गए थे।२९। उन समस्त लोकपालों के चले जाने पर और देव-गणों के विद्युत हो जाने पर फिर वह वीरभद्र अपने गणों को साथ में लेकर उस यज्ञ वाट में समायात हुए थे।३०। उस समय में वे समस्त ऋषिगण समस्त ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् जनार्दन से विज्ञापन करने की इच्छा वाले होते हुए साहस करने लगे थे। हे भगवन् ! इस दक्ष के यज्ञ की रक्षा करिये। क्योंकि आप यज्ञ स्वरूप हैं--इसमें कुछ संशय नहीं है। भगवान् जनार्दन ने ऋषियों के वचनों को सुनकर युद्ध करने की इच्छा वाले होकर अध्यात्म दीपक वह भगवान् विष्णु स्वयं

युद्ध स्थल में स्थित हो गए थे। उस समय महाबाहु वीरभद्र ने भगवान केशव से यह वाक्य कहा था–।३१-३४। हे विष्णो ! आप यहाँ पर कैसे आ गये हैं ? आप तो इस महाबल के ज्ञाता थे। आप इस यज्ञ के पक्ष को ग्रहण करके इस रुद्र की सेना को कैसे जीत लेंगे––यही आप हमको बतला दीजिए। हे अनघ ! जो यहाँ पर दाक्षायणी ने किया है क्या आपने उस दुर्घटना को नहीं देखा था ? आप भी इस दक्ष के यज्ञ में अवदान ग्रहण करने के लिए ही समागत हुए हैं। हे महाभुज ! मैं वह अवदान आपको भी देता हूँ ।३५।

एवमुक्त्वा प्रणम्यादौ विष्णुं सदृशरूपिणम् ।
वीरभद्रोऽग्रतो भूत्वा विष्णुवाक्यमथाऽब्रवीत् ।३६
यथाशम्भुस्तथात्वंहिममनास्त्यत्रसंशयः ।
तथाऽपित्वं महाबाहयोद्धु कामोऽग्रतःस्थितः ।
नेष्याम्यपुनरावृत्ति यदि तिष्ठेस्त्वमात्मन। ।३७
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्यधीमतः ।
उवाच प्रहसव्देवोविष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ।३८
रुद्रतेजः प्रसूतोऽसि पवित्रोऽसि महामते ।
अनेन प्रार्थितः पूर्वयज्ञार्थं च पुनः पुनः ।३९
अहंभक्तपराधीनस्तथासोऽपि महेश्वरः ।
तेनैव कारणेनाऽत्रदक्षस्य यजन प्रति ।४०
आगतोऽहं वीरभद्र ! रुद्रकोपसमुद्भव ! ।
अहं निवारयामित्वां त्वंवामां विनिवारय ।४१
इत्युक्तवतिगोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः ।
प्रश्रयावनोभूत्वा इदमाह जनार्दनम् ।४२

इस प्रकार से कहकर सर्वप्रथम सदृश स्वरूप वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम किया था और फिर वीरभद्र आगे होकर विष्णु भगवान से यह वाक्य बोला था ।३६। जिस प्रकार से मेरे माननीय भगवान शम्भु हैं

वैसे ही आप भी हैं--इसमें कुछ भी संशय नहीं है तो भी हे महाबाहो! आप मुझसे युद्ध करने की कामना वाले होकर मेरे आगे समवस्थित हो गए हैं। यदि आप अपने ही आप इनमें रण स्थित होकर लड़ते हैं तो मैं आपको अपुनरावृत्ति में पहुँचा दूँगा।३७। उस श्रीमान् वीरभद्र के इस वचन का श्रवण करके सबके ईश्वरों के भी ईश्वर विष्णुदेव हँसते हुए यह वचन बोले।३८। भगवान् विष्णु ने कहा--हे महामते ! आप रुद्र के तेज से समुत्पन्न हुए हैं अतएव आप परम पवित्र हैं। देखो, इस दक्ष ने पहले ही यज्ञ समागत होने के लिए मुझे बारम्वार बुलाया था और मेरी प्रार्थना की थी। मैं तो भक्त के पराधीन हूँ उसी तरह भगवान महेश्वर भी अपने भक्त के अधीन रहा करते हैं। इसी कारण से मैं दक्ष के इस यजन में आ गया हूँ। हे वीरभद्र ! आप तो रुद्रके कोप से समुत्पन्न होने वाले हैं। मैं आपको निवारण करता हूँ और आप मुझको विनिवारित कीजिए।३९-४१। इस प्रकार से यह श्री गोविन्द के कहने पर महान भुजाओं वाला हँसकर और प्रश्रय से एकदम विनम्र होकर जनार्दन से यह बोला--।४२।

यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः।
सेवकाश्च वयं सर्वे तव वा शङ्करस्य च।४३
तच्छ्रुत्वा वचनंतस्यसोऽच्युतः सम्प्रहस्य च।
इदं विष्णुर्महावाक्यं जगादपरमेश्वरः।४४
योधयस्वमहाबाहो मयासार्धमशङ्कितः।
तवाऽस्त्रैः पूर्यमाणोऽहंगच्छामिभवनंस्वकम्।४५
तथेत्युक्त्वा तु वीरभद्रो महाबलः।
गृहीत्वा परमास्त्राणिसिंहनादैर्जगर्जह।४६
विष्णुश्चाऽपिमहाघोषंशंखनादंछकारसः।
तच्छ्रुत्वा ये गतादेवारणंहित्वाऽऽययुः पुनः।४७
व्यूहं हणक्रुस्तदा सर्वे लोकपालाः सवासवाः।
तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा।४८

नन्दिना च हृतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे ।
वायुनाच हतो भृङ्गी भृङ्गिणा वायुराहतः ।४६

जिस रीति से भगवान् शिव उसी भाँति आप हैं और जैसे आप वैसे ही भगवान् शिव हैं । हम सब तो भगवान शङ्कर के और आपके सेवक हैं ।४३। उसके इस वचन का श्रवण करके भगवान् अच्युत हँस गये और फिर परमेश्वर भगवान् विष्णु यह महावाक्य बोले ।४४। हे महाबाहो ! तुम शङ्का रहित होकर मेरे साथ युद्ध करो । तुम्हार शस्त्रों में पूर्णमात्र होकर ही मैं अपने भवन को चला जाऊँगा।४५। ऐसा ही किया जायेगा--यह कहकर महान् बलवान् वीर वीरभद्र ने परम अस्त्रों को ग्रहण करके सिंहनादों के सहित गर्जना की थी ।४६। भगवान् विष्णु ने भी महान् घोष वाला शंखनाद किया था । यह सुनकर जो देवगण वहाँ से भागकर चले गए थे और युद्ध छोड़ चुके थे वे भी फिर वहाँ पर लौटकर वापिस आ गये थे । इन्द्र के सहित समस्त लोकपालों ने एक व्यूह (मोर्चा) की रचना की थी । इसके पश्चात उसी समय इन्द्र-देव ने शतपर्वा वज्र के द्वारा नन्दी पर प्रहार किया था तथा नन्दी ने त्रिशूल के द्वारा स्तनों के मध्य इन्द्र पर प्रहार किया था । वासुदेव ने भृंगि पर और भृगी ने वायु पर प्रहार किये थे और दोनों एक दूसरे के प्रहारों में आहत हो गये थे ।४७-४६।

शूलेन सितधारेण सनद्धो दण्डधारिणा ।
यमेन सह संग्रामं महाकालो बलान्वितः ।५०
कुबेरेण च संगम्य कूष्माण्डानां गतिःस्वयम् ।
वरुणेन सत युद्धं मुण्डश्चैवमहाबलः ।५१
युयुधे परया शक्त्या त्रैलोक्यं विस्मयन्निव ।
नैॠतेन समागम्य चण्डश्च बलवत्तरः ।५२
युयुधेपरमास्त्रेण नैॠत्यं च विडम्बयन् ।
योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवो नायकोमहान् ।५३

विदार्य देवानखिलान्पपौ शोणितमद्भूतम् ।
क्षेत्रपालास्तथा चान्ये भूतप्रथमगुह्यकाः ।५४
शाकिनी डाकिनी रौद्रा नवदुर्गास्तथैव च ।
योगिन्यो यातुधान्यश्च तथा कूष्माण्डकादयः ।
नेदुः पपुः शोणितं च बुभुजुः पिशितं बहु ।५५
भक्ष्यमाणंनदासैन्यंविलोक्यसुराट्स्वयम् ।
विहायनन्दिनंपश्चाद्वीभद्रं समाक्षिपत् ।५६

सितधार वाले शूल के द्वारा दण्डधारी यम के साथ बल से समन्वित महाकाल संग्राम के लिए सन्नद्ध हो गया था । कुवेर के साथ संगम करके स्वयं कूष्माँडों का पति तथा महान् बलशाली मुण्ड वरुण के साथ मिलकर युद्ध करने लगे थे । तीन लोकों को विस्मय में डालते हुए परमाधिक शक्ति से बलवानों में विशेष बलधारी चण्ड ने नैऋत देव के साथ मिलकर युद्ध किया था ।५०-५२। योगिनियों के चक्र से समन्वित होकर महान् सेना के नायक भैरवने परमास्त्र के द्वारा नैऋत्य देव को विडम्बित करते हुए घोर युद्ध किया था । समस्त देवों को विदीर्ण कर के उस भैरव ने अद्भुत देवों का रुधिर पान किया था । उसी भाँति अन्य क्षेत्रपाल, भूत, प्रमथ, गुह्यक, शाकिनी, डाकिनी, पर रौद्ररूप वाली नवदुर्गा, योगिनियाँ, यातुधानिताँ, कूष्मांड आदि सबने महान् घोर ध्वनि की रक्त का खूब पान किया तथा मांस का अच्छी तरह से अशन किया था । उस समय इस बुरी तरह से समस्त सेना का भक्षण होते हुए देखकर देवोंके राजा इन्द्रदेव ने नन्दी के साथ युद्ध करना छोड़कर फिर वीरभद्र के ऊपर आक्रमण किया था ।५३-५६।

वीरभद्रो विहायैव विष्णुं देवेन्द्रमास्थितः ।
तयोर्युद्धमभूद्धोरं बुधाङ्गारकयोरिव ।५७

वीरभद्रं पदात्‌शक्रो हन्तुकामस्त्वरात्वित: ।
तावच्छक्रं गजस्थं हि पूरयामास मार्गणै: ।५८
वीरभद्रो रुषाविष्टो दुर्निवार्यो महाबल: ।
तदेन्द्रेणाहत: शीघ्रं वज्रेण शतपर्वणा ।५९
सगजञ्च सवज्रं च वासवंगन्तुप्रद्यत: ।
हाहाकारोमहानासीद् भूतानांतत्रपश्यताम् ।६०
वीरभद्रं तथाभूतं हन्तुकाम पुरन्द्ररम् ।
त्वरमाणस्तदा विष्णुर्वीरभद्राग्रत: स्थित ।६१
शक्रं च पृष्ठत: कृत्वा योधयामास वै तदा ।
वीरभद्रस्य विष्णोश्च युद्धं परमभूत्तदा ।६२
शस्त्रास्त्रैर्विविधाकारैर्योधयामासतुतदा ।
पुनर्नन्दिनमालोक्य शक्रो युद्धविशारद: ।६३

वीरभद्र भी भगवान विष्णुको छोड़कर स्वयं देवेन्द्र के ऊपर आक्रमण के लिए समास्थित हो गया था। उस समय उन दोनों का बुध और अ गारक के समान अत्यन्त घोर युद्ध हुआथा। इन्द्र बहुत शीघ्रता युक्त होकर पद से वीरभद्र का हनन करना चाहता था किन्तु तब तक वीरभद्र ने ऐरावत हाथी यर स्थित इन्द्र को वाणों से पूरित कर दिया था। वह महान् बलवान वीरभद्र एकदम रोष के आवेश में आ गया और दुनिवार्य हो गया था। उसी समय इन्द्रदेव ने शतपर्वा वज्र के द्वारा उसे शीघ्र ही समागत करं दिया था।५७-५९। जिस समय हाथी और वज्र के सहित इस पर गमन करने के लिए वह उद्यत हुआ था उस समय वहाँ पर जो प्राणी देख रहे थे उसमें महान् हाहाकार मच गया था इस प्रकार से इन्द्रदेव का हनन करने की इच्छा वाले वीरभद्र को देखकर भगवान विष्णु शीघ्रता से समागत होते हुए वीरभद्र के आगे स्थित हो गये थे। इन्द्र को अपने पृष्ठ भाग की ओर करके स्वयं ही उस समय में युद्ध करने लगे थे। उस अवसर पर वीरभद्र

और भगवान विष्णु का परम घोर युद्ध हुआ था। वे दोनों ही अनेक भाँति के आकार वाले शस्त्र और अस्त्रों से युद्ध कर रहे थे। युद्ध करने की कला के महान् पण्डित इन्द्र ने नन्दी को फिर देखा था ६०-६३।

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलं देवानां प्रमथैः सह ।
प्रमथा मथिता देवैः सर्वे ते प्राद्रवद्रणात् ।६४
गणान्पराङ्मुखान्दृष्ट्वा सर्वे तेव्याधयो भृशम् ।
रुद्रकोपात्समुद्भूतादेवाश्चाऽपिप्रदुद्रुवुः ।६५
ज्वरैस्तु पीड़िताग्देवान्दृष्ट्वा विष्णुर्हसन्निव ।
जीवाग्राहेण जग्राह देवांस्तांश्च पृथक्पृथक् ।६६
देवाश्विनौ तदाऽऽहूय व्याधीन्हन्तुं तदाभृतिम् ।
ददौ ताभ्यां प्रयत्नेन गणयित्वा सुबुद्धिमान् ।६७
ज्वरांश्चसन्निपातांश्च अन्येभूतदुहस्तदा ।
तान्सर्वान्निगृहीत्वाऽअश्विनौतौमुदान्वितौ ।
विज्वरानथ देवांश्च कृत्वा मुमुदतुश्चिरम् ।६८
तैर्जितं योगिनीचक्रं भैरवं व्याकुलीकृतम् ।
तीक्ष्णाग्रै पातयामासुः शरैर्भूतगणानपि ।६९
सुरैर्विद्रावितं सैन्यं विलोक्य पतितं भुवि ।
वीरभद्रो रुषाविष्टो विष्णुवचनमब्रवीत् ।७०

तुमुल द्वन्द्व देवों का प्रमथों के साथ हुआ था। देवों के द्वारा मथित हुए वे सब प्रमथ गण रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए थे। गणों के पराङ्मुख देखकर वे समस्त व्याधियां जो बहुत अधिक परिमाणमें भगवान रुद्रदेव के कोप से समुत्पन्न हो गईं थीं उन्हें देखकर देवगण भी भाग गए थे। इस तरह से ज्वरों से पीड़ित देवों को देखकर भगवान् विष्णु ने हँसते हुए ही उन देवोंको पृथक्-पृथक् जीवग्राह से ग्रहण किया था।६४-६६। उसी समय अश्विनीकुमार दोनों देवों को बुलाकर

व्याधियों का हनन करेंगे के लिए कहा गया था। तभी से लेकर उन्हें परम सुबुद्धिमान गिनकर उन दोनों को प्रयत्नपूवक दे दिया था।६७। वे दोनों अश्विनीकुमार उस समय सब प्रकार के ज्वरों, सन्निपातों पर अन्य प्राणियों को पीड़ा देने वाले रोगोंको निगृहीत करके परम प्रसन्न हुए थे। समस्त देवों को ज्वर में रहित करके चिरकाल पर्यन्त वे अश्विनीकुमार मुदित हुए थे।६८। फिर उन देवोंने भैरव को व्याकुली कृत करके सम्पूर्ण योगिनी चक्र को जीत लिया था और अग्रभाग वाले शरों के द्वारा भूतगणोंको भी उन देवों ने रणक्षेत्र में गिरा दिया था। ।६९। इस तरह सुरों के द्वारा विद्रावित अपनी सेना को देखकर तथा सबको धराशायी विलोकन करके वीरभद्र को बड़ा भारी रोष आ गया था तथा क्रोध में भरकर वह भगवान विष्णु से यह वचन बोला था। ।७०।

त्वं शूरोऽसिमहाबाहो ! देवानांपालकोह्यसि।
युध्यस्वमांप्रयत्नेनयदि ते मतिरीदृशी।७१
इत्युक्त्वा तं समासाद्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
ववर्षे निशितैर्बाणैर्वीरभद्रोमहाबल:।७२
तदा चक्रेण भगवान्वीरभद्रं जघान स:।
आयान्तं चक्र मालोक्यग्रसितं तत्क्षणाच्चलात्।७३
ग्रसितं चक्रमालोक्य विष्णु: परपुरञ्जव:।
मुखंतस्य परामृज्यं विष्णुनोद्गलितं पुन:।७४
स्वचक्रमादाय महानुभावो दिवगंतोऽक्षो भुवनैकभर्त्ता।
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं च विष्णु: कृती कृतं दुष्प्रसह:
परेषाम्।७५

हे महाबाहो ! आप तो महान् शूरवीर हैं और देवों के आप परम पालन करने वाले भी हैं। यदि आपकी ऐसी ही बुद्धिहै तो प्रयत्नपूर्वक मेरे साथ अब आप ही स्वयं युद्ध कर लीजिये।७१। इतना कहकर वह

विष्णु भगवान के समीप में पहुँच गया था जो कि समस्त ईश्वरों के भी परम ईश्वर थे। महान बलवान् वीरभद्र ने अत्यन्त तीखे बाणों के द्वारा उन पर वर्षा आरम्भ करदी थी।७२। उसी समय भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा वीरभद्र का हनन किया था उस आते हुए चक्र को देखकर जो तत्क्षण ही ग्रसित कर लेने वाला था। पर पुरों को जय करने वाले भगवान विष्णु ने उस ग्रसित अपने चक्र को देखकर उसके मुख का परामृजन करके पुनः विष्णु ने उसे उद्गलित किया था। अपने चक्र को ग्रहण करके वे महानुभाव भगवान विष्णु जो समस्त भुवनों के एक ही भरण करने वाले हैं स्वर्ग लोक में चले गए थे। किन्तु विष्णुदेव ने इस सबका ज्ञान करके दूसरों का जो दुष्प्रसह था वह कर दिया था।७३-७५।

५—वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरश्छेदन

विष्णौ गते तदा सर्वे देवाश्च ऋषिभिः सह।
विनिर्जिता गणैः सर्वे ये च यज्ञोपजीविनः।१
भृगुं च पातयामास श्मश्रूणां लुञ्चनं कृतम्।
द्विजांश्चोत्पाटयामास पूष्णो विकृतविक्रियान्।२
विडम्बिता स्वधा तत्र ऋषयश्चविडम्बिताः।
ववृषुस्ते पुरीषेणवितानाग्नौरुषान्विताः।३
अनिर्वाच्यं तदाचक्रुर्गणाः क्रोधसमन्विताः।
अन्तर्वेद्यन्तरगतो दक्षोतदा वै महतो भयात्।४
तं निलीनं समाज्ञाय आनिनाय रुषान्वितः।
कपोलेषु गृहीत्वा तं खड्गेनोपहतशिरः।५
अभेद्यं तच्छिरो मत्वा वीरभद्रः प्रतदिवात्।
स्कन्धं पद्भ्यां समाक्रम्य कन्धरेऽपीडयत्तदा।६
कन्धरोत्पाट्यमानञ्च शिरश्छिन्नं दुरात्मनः।
दक्षस्य च तदा तेन वीरभद्रेणधीमता।
तच्छिरः सुहुतं कुण्डे ज्वलिते तत्क्षणात्तदा।७

महर्षि प्रवर लोमश मुनि ने कहा था--भगवान विष्णु के उस समय वहाँ से चले जाने पर समस्त देवगण ऋषियों के सहित गणों के द्वारा जीत लिए गए थे जो भी वहाँ पर यज्ञ उपवीती थे सभी को वीरभद्र के गणों ने पराजित कर दिया था ।१। उस वीरभद्र ने भृगु को नीचे गिरा दिया था औंर उसकी श्मश्रुओं का लुंजन कर डाला था पूष्णा को और विकृत विक्रिया वाले द्विजों को उत्पाटित कर दिया था ।२। स्वधा की ओर ऋषियों को वहाँ पर विडम्बित कर दिया था । रोष से समन्वित होकर उन्होंने वितानाग्नि में पुरीष (मल) की वर्षा की थी । क्रोध से भरे हुए उन गणों ने उस ममय में एसे कृत्य किए थे जो वचनों के द्वारा कहने के भी योग्य नहीं हैं । प्रजापति दक्ष महान् भय से अन्तर चला गया था किन्तु वहाँ पर उसको छिपा हुआ जानकर क्रोध से समन्वित होकर वह वीरभद्र उसको निकाल कर ले गया था । उसके कपोलों को पकड़कर उसका शिर खड्ग से काट डाला था ।३-५। प्रतापशाली वीरभद्र ने उसके शिर को अभेद्य मानकर उसके स्कन्ध को पैरो से दबाकर कन्धरा में पीड़ित किया था ।६। उतपाट्यमान कन्धरा से उस दुरात्मा का शिर छिन्न किया था । धीमान उस वीरभद्र ने उस समय इसी तरह से उसके मस्तक का छेदन किया था और उसी समय उस जलती हुई अग्नि के कुण्ड में उसके शिर को भली-भाँति हुत कर दिया था ।६-७।

ये चान्यो ऋषयो देवाः पितह्रो यक्षराक्षसाः ।
गणैरुपद्रुताः सर्वे पलायनपरा ययुः ।८
चन्द्रादित्यगणाः सर्वे ग्रहनक्षत्रतारकाः ।
सर्वेविचलिताह्यासन् गणैस्तेऽपिह्युंपद्रुता ।९
सत्यलोकंगतो ब्रह्मा पुत्रशोकेन पीडितः ।
चिन्तयामासचाव्यग्रः किं माया कार्यमद्यवै ।१०
मनसा दूयमानेन शं न लेभे पितामहः ।
ज्ञात्वा सर्वं प्रयत्नेन दुष्कृत तस्य पापिनः ।११

गमनाय मति चक्रे कैलासं पर्वत प्रति ।
हंसारूढ़ो महातेजा: सर्वदेवैः समन्वितः ।१२
प्रविष्टं पर्वतश्रेष्ठं स ददर्श सदाशिवम् ।
एकान्तवासिनं रुद्रं शैलादेन समन्वितम् ।१३
कपर्दिनं श्रियायुक्तं वेदाङ्गानां च दुर्गमम् ।
तथाविधिं समालोक्यब्रह्माक्षोभपरोऽभवत् ।१४
दण्डवत्पतितो भूमौ क्षमापयितुसुद्यतः ।
संस्पृश तत्पदाब्जं च चतुर्मुकुटकोटिभिः ।
स्तुतिं कर्तुं समारेभे शिवस्य परमात्मनः ।१५

जो अन्य ऋषिगण, देववृन्द, यक्ष और राक्षस थे वे सब गणों के द्वारा उपद्रुत होने पर भाग गए थे ।८। उन रुद्रदेव गणों के द्वारा पीड़ित होते हुए चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारक सभी विचलित हो गये थे ।९। अपने पुत्र दक्ष के शोक से पीड़ित होकर ब्रह्माजी सत्य लोक को चले गये थे और वे यह चिन्ता करने लगे कि आज मुझे अब कौन-सा कार्य करना चाहिए । उस समय ब्रह्मा बहुत ही अव्यग्र होकर यह सोच रहे थे ।१०। पितामह के मन में बहुत ही अधिक दुःख था और उसके दूयमान होने के कारण उनके मन में शान्ति नहीं हुई थी । उस पापी दक्ष का यह सब दुष्कृत खूब समझकर सब प्रकार के प्रयत्न से कैलाश पर्वत की ओर गमन करने की मति स्थिर की थी । समस्त देवगणों को साथ में लेकर अपने हँस पर समारूढ़ होकर महान् तेजस्वी उस परम श्रेष्ठ पर्वत में प्रविष्ट हो गये थे और वहाँ पर भगवान सदाशिव का दर्शन प्राप्त कियाथा । कैलाशपर भगवान रुद्र शैलाद के साथ एकान्त में निवास कर रहे थे । कपर्दी श्री से समन्वित और वेदांगों के द्वारा दुर्गम उस प्रकार से सम्बन्धित भगवान शिव का अवलोकन करके ब्रह्माजी के हृदय में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो गया था । ।११-१४। ब्रह्मा सदाशिव के चरणों में दण्ड की भाँति भूमि में

गिर गये थे और अपराध की क्षमा याचना के लिए समुद्यत हो गये थे। उन्होंने अपने चारों मस्तकों पर धारण किये हुए मुकुटों की नोकों से शिव के चरण कमलों का स्पर्श किया था। फिर ब्रह्माजी ने परमात्मा शिव का स्तवन करने का आरम्भ किया था।१५।

नमोरुद्राय शान्तायब्रह्मणेपरमात्मने ।
त्वं हि विश्वसृजांस्रष्टा धाता त्वं प्रपितामहः ।१६
नमो रुद्राय महते नीलकण्ठाय वेधसे ।
विश्वाय विश्वबीजाय जगदानन्दहेतवे ।१७
ओङ्कारस्त्वं वषट्कारः सर्वाम्भप्रवर्त्तकः ।
यज्ञोऽसि यज्ञकर्माऽसियज्ञानांचप्रवर्त्तकः ।१८
सर्वेषां यज्ञकर्तृणां त्वमेव प्रतिपालकः ।
शरण्योऽसिमहादेव ! सर्वेषां प्राणिनां प्रभो ।
रक्ष रक्ष महादेव ! पुत्रशोकेन पीडितम् ।१९

महादेव उवाच

श्रृणुष्वाऽवहितोभूत्वा मम वाक्यं पिता ! ।
दक्षस्ययज्ञभङ्गोऽनकृतश्चमयक्वचित् ।२०
स्वीयेन कर्मणा दक्षो हतो ब्रह्मन्न संशयः ।२१

ब्रह्माजी ने कहा—परम शान्त स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा भगवान् रुद्रदेव की सेवा में मेरा प्रणाम है। हे भगवन् ! आप तो समस्त विश्व के सृजन करने वालों के भी स्रष्टा है।आप धाता हैं और सबके प्रपिता मह हैं । नीलकण्ठ, महान् और वेधा रुद्रदेव के लिए नमस्कार है । विश्व स्वरूप, विश्व के वीज और इस जगत् को आनन्द प्रदान करने के हेतु आपके लिए प्रणाम है ।१६-१७। आप ओंकार हैं, वषट्कार हैं और सब आरम्भों की प्रवृत्ति कराने वाले हैं। आप यज्ञ स्वरूप हैं, यज्ञ में होने वाले कर्मरूप तथा समस्त यज्ञों के प्रवर्त्तक हैं। सभी यज्ञों

के करने वाले के आप ही प्रतिपालन करने वाले हैं। हे महादेव ! आप क्षरण्य हैं, हे प्रभो ! सब प्राणियों के शरण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं। हे महादेव ! परित्राण कीजिये, रक्षा कीजिये मैं अपने पुत्र के शोक से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ।१८-१६। श्री महादेवजी ने कहा--हे पितामह ! आप सावधान होकर मेरे वाक्य का श्रवण कीजिए। यह दक्ष के यज्ञ का भङ्ग मैंने कभी नहीं किया है। हे ब्रह्मन् ! दक्ष अपने ही कर्म के द्वारा हत हो गया है--इसमें कुछ भी सशय नहीं है।२०-२१।

परेषां क्लेशदं कर्म न कार्यं तत्कदाचन।
परमेष्ठिभे परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति।२२
एवमुक्त्वा तदा रुद्रो ब्रह्मणा सहितः सुरैः।
ययौ कनखलं तीर्थं यज्ञवाटं प्रजापतेः।२३
रुद्रस्तदा ददर्शाऽथ वीरभद्रेण यत्कृतम्।
स्वाहा स्वधा तथा पूषा भृगुर्मतिमताम्बरः।२४
तदाऽन्यत्रऋषयः सर्वे पितश्च तथाविधाः।
येऽन्ये च बहुनस्तत्र यक्षगन्धर्व किन्नराः।२५
त्रोटिता लुञ्चिताश्चैव मृताः केचिद्रणाजिरे।२६
शम्भुं समागतं दृष्ट्वा वीरभद्रो गणैः सह।
दण्डप्रणामसंयुक्तस्मस्थावग्रे सदाशिवम्।२७
दृष्ट्वा पुरः स्थितं रुद्रो वीरभद्रं महाबलम्।
उवाच प्रहससन्वाक्यं किं कृतं वीरनन्विदम्।२८

दूसरों को क्लेश देने वाला कार्य कभी भी नहीं करना चाहिए। हे परमेष्ठिन ! जो दूसरों के लिए होगा वही अपने लिए भी हो जायेगा।।२२। उसी समय में इस प्रकार से कहकर भगवान् रुद्र ब्रह्माजी और समस्त देवगणों के साथ प्रजापति की यज्ञशाला में कनखल तीर्थ को चल दिये थे। उस समय में भगवान् रुद्रदेव ने वहाँ पर पहुँच कर वह सभी स्वयं देखा था जो वीरभद्र ने किया था। स्वाहा, स्वधा, पूषा,

मतिमानों में परमश्रेष्ठ भृगु, अन्य समस्त ऋषिगण, उसी प्रकार वाले सब पितर और जो बहुत से वहाँपर यक्ष गन्धर्व और किन्नर थे वे सभी त्रोटित एवं लुञ्जित और रणक्षेत्र में कुछ मरे हुए थे।२३-२६। भगवान शम्भु को वहाँ पर समागत हुए देखकर वीरभद्र अपने गणों के सहित दण्ड की भाँति गिरकर प्रणाम करके भगवान सदाशिव के आगे समवस्थित हो गया था।२७। रुद्रदेव ने अपने महान् बलवान वीरभद्र को देखकर हँसते हुए यह वाक्य कहा था—हे वीर ! क्योंकि तुमने यह कार्य कर ही डाला है ?।२८।

दक्षमानय शीघ्रं भो येनेदं कृत्यमीदृशम् ।
यज्ञे विलक्षणं तात यस्येदं फलमीदृशम् ।२९
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रस्त्वरान्वितः ।
कबन्धमानयित्वाऽथ भस्मोरग्रे तदक्षिपत् ।३०
तदोक्तः शङ्करेणैव वीरभद्रो महामनाः ।
शिरः केनापनीतं च दक्षस्याऽस्य दुरात्मनः ।३१
दास्यामि जीवनं वीर कुटिलस्याऽपि चाधुना ।
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रोऽब्रवीत्पुनः ।३२
मया शिरोहुतंचाग्नौतदानीमेव शंकर ? ।
अवशिष्टं शिरः शम्भो पशोश्च विकृताननम् ।३३
इति ज्ञात्वा ततोरुद्रः कबन्धोपरिचाक्षिपत् ।
शिरः पशोश्चविकृतं कूर्चयुक्तं भयावहम् ।३४
च दक्षो जीवितं लेभे प्रसादाच्छङ्करस्यच ।
सदृष्ट्वाऽग्रे तथारुद्रं दक्षोलज्जासमन्वितः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शंकरं लोकशङ्करम् ।३५

हे वीरभद्र ! दक्ष को यहाँ पर बहुत शीघ्र लाओ जिसने यह ऐसा किया है। हे तात ! यज्ञ में जिसका ऐसा विलक्षण फल हुआ है। इस तरह से शङ्कर के द्वारा कहे गये वीरभद्र ने तुरन्त ही जाकर दक्ष

के कवन्ध की लाकर वहाँ पर शम्भु के आगे सूाल दिया था ।२९-३०। उस समय महान् मन वाले वीरभद्र से भगवान शङ्कर ने कहा--तुम दुरात्मा दक्ष का शिर किसने दूर किया है ? हे वीर ! इस समय तो इस कुटिल को भी मैं जीवन दान दूँगा । इस प्रकार से शकर के द्वारा कहे जाने पर फिर वीरभद्र ने कहा--।३१-३२। हे शंकर ! मैंने उसका शिर तो उसी समय में अग्नि में हवन कर दिया था तब तो हे शम्भो ! पशु का विकृत आनन ही अवशिष्ठ रह गया है । उस दक्ष ने शङ्कर के प्रसाद से जीवन प्राप्त किया था । उसने उस समय अपने आगे जब भगवान रुद्र को देखा तो वह दक्ष लज्जा से अवनन हो गया था । फिर उसने प्रणत होकर लोक के कल्याण करने वाले भगवान शङ्कर का स्तवन किया था ।३३-३५।

नमामि देवं वरदं वरेण्यं नमामि देवेश्वरं सनातनम् ।
नमामि देवाधिशमीश्वरं नमामि शम्भु जगदेकबन्धुम् ।३६
नमामि विश्वेश्वर ! विश्वरूपं सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम् ।
नमामि सर्वं निजभावभावं वरं वरेण्यं वरदं नमोऽस्मि ।३७
दक्षेण संस्तुतो दुद्रो बभाषे प्रसहन्नहः ।३८
चतुर्विधाभजन्तेमांजनाः सुकृतिनः सदा ।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानी च द्विजसत्तम ।३९
तस्मान्मेज्ञानिनः सर्वप्रियाः स्युर्नाऽत्रसंशयः ।
विनाज्ञानेनमांप्राप्तु ंययण्तेतेहिवालिशाः ।४०
केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्ततुंमिच्चसि ।।४१
न वेदैश्चनदानैश्च न यज्ञैस्तपसाक्वचित् ।
न शक्नुवन्तिमांप्राप्तु मूढाः कर्मवशा नराः ।४२

दक्ष ने कहा--वरदान प्रदान करने वाले, वरेण्य, देवों के ईशों में भी परमश्रेष्ठ ! सनातन देव को प्रणाम करता हूं । देवों के अधिप,

ईश्वर जगत् के एक मात्र बन्धु हर शम्भु की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ ।३६। हे विश्वेश्वर ! विश्व के स्वरूप वाले, निज के आत्मरूप से युक्त सनातन ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ । निज भाव के भाव, वर, वरेण्य, वर प्रदान करने वाले आपको मेरा नमस्कार है । मैं आपकी सेवा में नत हो रहा हूँ ।३७। महर्षि लोमश ने कहा--इस प्रकार से दक्ष प्रजापति के द्वारा भली-भांति स्तुति किये गये भगवान् रुद्र प्रहास करते हुए एकान्त में बोले ।३८। श्री हर ने कहा--हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! मेरे भजन एवं उपासना करने वाले चार प्रकार के प्राणी हुआ करते हैं जो परम सुकृती सदा होते हैं । एक तो उन चारों जनों में वह है जो आर्त्त होता है अर्थात् परम पीड़ा से उत्पीड़ित होकर मेरा भजन किया करता है । दूसरा जिज्ञासु होता है जिसे ज्ञान को पिपासा हुआ करती है । तीसरा अर्थ की चाह रखने वाला प्राणी मेरी उपासना करता है और चौथा ज्ञान सम्पन्न व्यक्तिं होता है । इन सब चारों तरह के भजन करने वालों में सभी ज्ञानी जन मेरा सदा परम प्रिय हुआ करते हैं-इसमें लेश मात्र भी संशय नही है । विना ज्ञान के जो मनुष्य मुझे प्राप्त करने की चेष्टा एवं प्रयत्न किया करते हैं वे महामूर्ख होते हैं । तुम तो केवल कर्म के द्वारा ही इस संसार से उद्धार होने की इच्छा रखते हो ।३९-४१। कर्म्म के वश में ही रहने वाले मनुष्य महान् मूढ़ होते हैं और वे दोनों के द्वारा, दानों से, यज्ञ कर्मों के द्वारा और तपश्चर्या से मुझको प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।४२।

तस्माज्ज्ञानपरोभूत्वाकुरुकर्म्मंसमाहितः ।
सुखदुःखमसो भूत्वासुखीभव निरन्तरम् ।४३
उपदिष्टस्तदा तेन शम्भुनापरमेष्ठिना ।
दक्षं तत्रैवसंस्थाप्ययौ रुद्रः स्वपर्वतम् ।४४
ब्रह्मणाऽपितथासर्वेभृग्वाद्याश्चमहर्षयः ।
आश्वासिताबोधिताश्चज्ञानिनश्चाऽभवन्क्षणात् ।४५

गतः पितामहो ब्रह्मा ततश्च सदनं स्वकम् ।४६
दक्षोऽपि च स्वयं वाक्यात्परं बोधमुपागतः ।
शिवध्यानपरोभूत्वातपस्तेपे महामनाः ।४७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संभेव्यो भगवान्छिवः ।४८

इसलिए ज्ञान में परम परायण होकर समाहित होते हुए तुम जो कुछ भी कर्म ही उसे करो। सुख और दुःख को समान समझकर निरन्तर सुखी बनो ।४३। महर्षि प्रवर लोमेशजी ने कहा---उस समय परमेष्ठी भगवान शम्भु ने इस प्रकार उपदेश दिया था और फिर भगवान रुद्रदेव वहीं पर दक्ष प्रजापति को संस्थापित करके अपने पर्वत कैलास पर वापिस चले गये थे ।४४। उस समय ब्रह्माजी के द्वारा भी भृगु आदि महर्षि गण उसी भाँति आश्वासित किये गये थे और उन्हें बोध दिया गया था और वे सभी तत्क्षण ज्ञानी हो गये थे। फिर पितामह ब्रह्माजी अपने घर को वापिस चले गये थे ।४५-४६। प्रजापति दक्ष भी भगवान शिव के द्वारा स्वयं कथित वाक्य से परम बोध को प्राप्त हो गये थे। महामना दक्ष ने फिर शिव के ध्यान में तत्पर होकर तपश्चर्या की थी। इसलिए परम सार यही है कि सभी प्रयत्नों के द्वारा भगवान् शिव की भली-भाँति उपासना करनी चाहिए ।४७-४८।

लिंग प्रतिष्ठा वर्णनम्

लिंग प्रतिष्ठा च कथं शिवं हित्वाप्रवर्तिताः ।
तत्कथ्यतां महाभाग ? परं शुश्रूषातांहिनः ।१
यदा दारुवने शम्भुभिक्षार्थं प्राचरत्प्रभुः ।२
दिगम्बरो मुक्तजटाकलापो वेदांतवेद्यो भवनैकभर्ता ।
स इश्वरो ब्रह्मकलापधारो योशीश्वराणां परमः पुरश्च ।३
अघोरणीयाम्महतो महीयान्महानुभावो भुवआधिपो महान्।
स ईश्वरो भिक्षुरूपी महात्मा भिक्षाटनं दारुवने ।४

मध्याह्ने ऋषयोविप्रास्तीर्थंजग्मु: स्वकाश्रमात् ।
तदानीमेवसर्वास्तऋषिभार्या: समागता: ।५
विलोकयन्त्य: शम्भुंतमाचख्युश्चपरस्परम् ।
कोऽसौ भिक्षुकरूपोऽयमागतोऽपूर्वदर्शन: ।६
अस्मैभिक्षांप्रयच्छामोवय च सखिभि: सह ।
तथेतिगत्वासर्वास्तागृहेभ्यआनयन्मुदा ।७

ऋषिगण ने कहा--हे महाभाग ! भगवान शिव का त्याग करके शिव के लिंग की पूजा करने की प्रतिष्ठा कैसे प्रवर्तित हुई थी--यह आप हमारे सामने बतलाइये । इसके श्रवण करने की हमारी बड़ी भारी इच्छा है ।१। लोमश जी ने कहा--जिस समय प्रभु शम्भु भिक्षाटन के लिए दारुवन में प्रचरण कर रहे थे । उस समय शिव परम दिगम्बर अर्थात् नग्न थे । उनकी जटायें सब खुली हुई थी जो कि प्रभु वेदान्तों के द्वारा जानने के योग्य है और इस भुवन के एक ही पूर्ण भरण करने वाले हैं वह ईश्वर ब्रह्म कलाप धारी और योगीश्वरों के परम पर थे ।२-३। वह ईश्वर अणु से भी छोटा है और महान् से भी महान् अर्थात् बड़ा है, समस्त भुवनों का स्वामी, महान् और महानुभाव है किन्तु वह एक भिक्षु का रूप धारण किते हुए दारुवन में भिक्षा का तमाचरण करता था ।४। मध्याह्न के समय में सभी विप्र और ऋषि गण अपने आश्रयों से तीर्थ को चले गये थे । उसी समय में वे सब ऋषियों की भार्यायें वहाँ पर समागत हो गईं थीं ।५। उन्होंने उन दिगम्बर स्वरूप धारी भगवान शम्भु को देखकर वे परस्पर में कहने लगी थी--यह ऐसा एक भिक्षुक के रूप को धारण करने वाला कौन है जो इस समय में यहाँ पर समागत हो गया है । यह तो अपूर्व ही दर्शन वाला है । इसको हम सब अपनी सखियों के साथ भिक्षा देवें । ठीक है ऐसा ही करो--यह कहकर वे सब अपने घरों से बहुत ही प्रसन्नता से भिक्षा ले आयी थी ।६-७।

भिक्षान्नं विविधं श्लक्ष्णं सोपचारं च शक्तितः।
प्रदत्तं भक्षितं तेन देवेदेवेनशूलिना ।८
काचित्प्रियतमंशम्भुंवभाषेविस्मयान्विता ।
कोऽसित्वंभिक्षुकोभूत्वाआगतोऽत्रमहामते ।९
ऋषीणामाश्रयं शुद्धं किमर्थं नो निषीदसि ।
तयोक्तोऽपि तदाशम्भुर्वभाषेप्रसहन्निव ।१०
ईश्वरोऽहं सुकेशान्ते पावने पाप्तवांनिमम् ।
ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा ऋषिभार्याउवाचतम् ।११
ईश्वरोऽसि महाभाग कैलासपतिरेव च ।
एकाकिनः कथं देव ! भिक्षार्थमटनं तव ।१२
एवमुक्तस्तया शम्भुः पुनस्तामब्रवीद्वचः ।
दाक्षायण्या विरहितो विचरामि दिगम्बरः ।१३
भिक्षाटनार्तं सुश्रोणि ! सङ्कल्परहित सदा ।
तया सत्या विना किञ्चित् स्त्रीमात्रं मम भामिनी ।
न रोचते विशालाक्षि ! सत्यं प्रति वदामि ते ।१४

वह भिक्षा का अन्न अनेक प्रकार का था, परम श्लक्ष्ण और शक्ति भर उपचारोंसे समन्वित था। उसे उन सबने दिया था और उसे प्राप्त कर उन देवों के भी शूली ने भक्षण कर लिया था।८। उनमें से किसी ने विस्मय से सयुक्त होकर प्रियतम भगवान् शम्भु से कहा था-आप कौन हैं जो भिक्षुक होकर हे महान् मति वाले ! इस समय में यहाँ पर आपने पदार्पण किया है ? यह ऋषियों का आश्रय परम शुद्ध है। आप हमारे मध्य में किसलिए स्थित हो रहे हैं ? उन ऋषि पत्नी द्वारा इस तरह से कहे गये भी भगवान् शम्भु ने हँसते हुए ही यह कहा था--हे सुकेशान्ते ! मैं ईश्वर हूँ और इस परम पावन आश्रम में प्राप्त हो गया हूँ। ऐसे ईश्वर के वचन का श्रवण करके ऋषिभार्या ने उनसे कहा था--हे महाभाग ! आप जब ईश्वर है और कैलास पर्वत के स्वामी है तो हे देव ! फिर एकाकी आपका यह इस तरह से भिक्षाटन क्यों होता

है ? उस ऋषि की भार्या के द्वारा इस तरह कहे गये शम्भु ने फिर उनसे यह वचन कहा था मैं अपनी पत्नी दाक्षायणी से विरहित दिगम्बर होते हुए इसी तरह विचक्षण किया करताहूं । हे सुश्रोणि! भिक्षाटन के लिए मैं सदा संकल्प से रहित रहा करता हूँ। हे भामिनी ! उस सती ने बिना मुझे स्त्री मात्र भी अच्छी नही लगा करती हैं। हे विशालाक्षि ! मैं यह बात आपको पूर्ण रूप से सत्य ही कह रहा हूँ । ।९-१४।

तस्यक्तो वचनं श्रुत्वाउवाचकमलेक्षणा ।
स्त्रियो हि सुखसंस्पर्शाः पुरुषस्य न संशयः ।१५
ताः स्त्रियो वर्जिताः शम्भो ! त्वादृशेन विपश्चिता ।१६
इति च प्रमदाः सर्वामिलितायत्र शङ्करः ।
भिक्षापात्रं च तच्छम्भोः पूरितं च महागुणैः ।१७
अन्नैश्चतुर्विधैःस्षड्भिः रसैश्च परिपूरितम् ।
यदा शम्भुर्गन्तुकामः कैलासं पर्वतं प्रति ।
तदा सर्वा विप्रपत्न्या ह्यन्वगच्छन्मुदान्विता ।१८
गृहकार्यं परित्यज्य चेरुस्तद्गतमानसाः ।
गतासु तासु सर्वासु पत्नीषु ऋषिसत्तमाः ।१९
यावदाश्रममेत्य तावच्छून्येवलोकनम् ।
परस्परमथोचस्ते पत्यः सर्वा कुतोगताः ।२०
न विदामोऽथवैसर्वा केननष्टेन चाहृताः ।
एवं विमृश्यमानास्ते चिन्तयन्त इतस्ततः ।२१
समपश्यंस्ततः सर्वे शिवस्यानुगताश्चताः ।
शिवं दृष्ट्वा सम्प्राप्त ऋषयस्ते रुषान्विताः ।२२
शिवस्याथाग्रतो भूत्वा उचः सर्वे त्वरान्विता ।
किं कृतं हि त्वया शम्भो ! विरक्तेन महात्मना ।
परदारापहर्त्ताऽसि त्वमृषीणां न संशयः ।२३

भगवान् शिव के द्वारा कथित इस वचन का श्रवण करके वह कमल के सदृश नेत्रों वाली ऋषि पत्नी योली-स्त्रियाँ निश्चय ही पुरुष के सुख संश्रय वाली हुआ करती हैं- इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे शम्भो ! आप जैसे महान् विद्वान पुरुष ने उन स्त्रियों को वर्जित कर दिया है।१५-१६। और इस प्रकार से उन समस्त प्रमदाओं ने सम्मिलित होकर जहाँ पर भगवान शंकर विराजमान थे उनके शिक्षा के पात्र को महागुण वाले चार प्रकार के अन्नो और छह प्रकारके रसों से परिपूर्ण कर दिया था। जिस समय भगवान शम्भु अपने कैलाश पर्वत पर जाने की इच्छा वाले हुए थे उस समय वे सब विप्रों की पत्नियाँ भी परमानन्द से समन्वित होकर उनके ही पीछे ही जाने लगी थी।१७-१८। शम्भु में ही अपना मन समासक्त करके उन्होंने अपने गृह का सम्पूर्ण कार्य त्याग दिया था और उन्हीं शम्भु के साथ विचरण करने लगीं थीं। उन सब पत्नियों के गमन करने के बाद परम श्रेष्ठ ऋषि वृन्द ने जैसे ही अपने आश्रमों में आकर देखा तो सबको उस समय शून्य ही पाया था वे सब आपस में कहने लगे थे सबकी सब पत्नियाँ कहाँ चली गई हैं। हव सब कुछ नहीं जानते हैं कि इन सबको किस नष्ट हुए व्यक्ति ने समाहृत कर लिया है, इस तरह से विचार करते हुए वे जहाँ-तहाँ पर खोज करने में तत्पर हो रहे थे। बाद में उन्होंने देखा कि वे सभी पत्नियाँ शिव के पीछे-पीछे चली गई हैं। भगवान् शिव को देखकर वे सब ऋषिगण रोष से संयुत होते हुये वहाँ उनके पास प्राप्त हुए थे। सब भगवान् शिव के सामने उपस्थित होकर बड़ी ही शीघ्रता के साथ वे सब कहने लगे थे। हे शम्भो ! आपने जो वहुत बड़ी महान् आत्मा वाले एवं परम विरक्त हैं, यह क्या किया है। आप तो पराई दाराओं के अपहरण करने वाले हैं और आप ने हम लोग लोग ऋषियों की पत्नियों का अपहरण किया है--इसमें कुछ भी संशय नहीं है।१९-२३।

एवंक्षिप्तः शिवोमौनीगच्छमानोऽपिपर्वतम् ।
तदासन्नृषिभिः प्राप्तोमहादेवोऽव्ययस्तथा ।२४
यस्मात्कलत्रहर्ता त्वं तस्मात्षण्ढो भवत्वरम् ।
एव शप्तः ससृनिभिर्लिङ्गं तस्यापतद्भुवि ।
भूमिप्राप्तं च तल्लिङ्गं ववृधे तरसा महत् ।२५
आवृत्यसप्तपातालन्क्षणाल्लिङ्गमधोर्ध्वतः ।
स्वर्गाः समावृताः सर्वस्वर्गातीयमथाभचत् ।२६
न मही न च दिक्चक्र न तोयं न च पावकः ।२७
नचवायुर्नवाऽऽकाशनाहृकारो न वा महत् ।
न चाव्तक्तं न कालश्चन महाप्रकृतिस्तथा ।२८

अपने कैलाश पर्वत पर जाते हुए भी भगवान् शिव उस प्रकार समाक्षिप्त होते हुए भी मौन धारण किए हुए थे। उस समय उन अव्यय महादेव जी को ऋषियों ने प्राप्त कर लिया था ।२४। क्योंकि आप कलत्रों के हरण करने वाले हैं इसलिए बहुत ही शीघ्र आप षण्ड हो जाइए। इस प्रकार से मुनियों के द्वारा शिव को शाप दिया था। और इसका प्रभाव यह हुआ था कि भगवान् शिव का लिंग भूमि पर गिर गया था। भूमि परं प्राप्त हुआ वह लिङ्ग बड़े ही वेग से महान् होकर बढ़ने लगा था ।२५। वह लिंग सातों पातालों को समावृत करके क्षण भर में वह लिंग नीचे से ऊपर की तरफ बढ़कर आ गया था। सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त करके फिर उस लिंग ने सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को व्याप्त कर लिया था। सभी स्वर्गों को समवृत कर लिया था और इसके उपरान्त स्वर्ग न भी अतीत हो गया था। मही, दिशाओं का समुदाय, जल, पाचेक, वायु, आकाश, अहंकार, महात्तल, अव्यक्त, काल और महा प्रकृति ये सभी एकमय हो गये थे ।२६-२८।

नासीद्द्वैतयिभागंचसर्वंलीनं च तत्क्षणात् ।
यस्माल्लीनजगत्सर्वंतस्मिल्लिङ्गे महात्मनः ।२९

लयनाल्लिङ्गमित्येवं प्रवदन्ति मनीषिणा ।
तथाभूतं वर्द्धमानं दृष्ट्वा तेऽपि सुरर्षय: ।३०
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवाय्वग्निलोकपाला: सपन्नगा: ।
विस्मयाविष्टमनस: परस्परमथाऽब्रुवन् ।३१
किमायामंचविस्तारं क्वञ्चान्त: क्वचपीठिका ।
इतिचिन्तान्वितोविष्णुमूचु: सर्वेसुरास्तदा ।३२
अस्य मूलं त्वया विष्णो ? पद्मोद्भव ! च मस्तकम् ।
युवाभ्यां च विलोक्य स्यात्स्थाने स्यात्परिपालकौ ।३३
श्रुत्वा तु तौ महाभागौवैकुण्ठकमलोद्भवौ ।
विष्णुर्गतौ हि पातालं ब्रह्म स्वर्गंजगामह ।३४
स्वर्गं गतस्तदा ब्रह्मा अवलोकनतत्पर: ।
नापश्यत्तश्रीलिङ्गस्य मस्तकं च विचक्षण: ।३५

उस भगवान् सदाशिव के लिए लिङ्ग की वृद्धि के कारण द्वैत विभाग ही नहीं रहा था । उसी क्षण में सब लीन हो गया था । लयहो जाने से मनीषीगण सब कुछ को लिङ्ग ही कहते थे क्योंकि सर्वत्र उन्हें लिंग के दर्शन होते थे और अन्य सभी उसी में लीन हो गये थे । उस प्रकार से वर्द्धमान होकर सर्वत्र व्याप्त हुए शिव के उस लिंग को देख-कर वे सब सुरर्षिगण, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, वायु,अग्नि, समस्त लोकपाल, पन्नग आदि सभी विस्मय से समाविष्ठ मन वाले होकर आपस में कहने लगे थे इसका कितना आयामहे, कैसा विलक्षण विस्तार है, इसका वहां पर अन्त है और कहां इसकी पीठियां है, इस तरह की चिन्तासे अत्यन्त समाकुल होते हुए सब सुरों ने उस समय में भगवान विष्णु से कहा था ।२९-३२। देवी ने कहा-हे विष्णो ! हे पद्म से उद्भव प्राप्त करने वाले ! आप इसका मूल और मस्तक दोनों ही के द्वारा देखने के योग्य है और आप दोनों ही समुचित परिपालक हैं । इसको भगवान् विष्णु

और ब्रह्माजी ने श्रवण करके दोनों महाभागों ने यह जानने का विचार किया था। भगवान् विष्णु तो पाताल लोक को गये थे और ब्रह्माजी स्वर्गलोक में यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए गये थे। स्वर्ग ये गये ब्रह्मा जी अवलोकन परायण हो गये थे किन्तु विचक्षण ब्रह्माजी ने शिव लिंग का मस्तक वहाँ पर कहीं भी नहीं देखा था।३३-३५।

तथागतेन मार्गेण प्रत्यावृत्याब्जसम्भवः।
मेरोः पृष्ठमनुप्राप्तः सुरभ्यालक्षितस्तः।३६
स्थिता या केतकीच्छायामुवाच मधुरंवचः।
तस्या वचनमाकर्ण्य सर्वलोकपितामहः।
उवाच प्रहसन्वाक्यं छलोक्त्या सुरभि प्रति।३७
लिङ्गं महाद्भुतंदृष्टं येनव्याप्तंजगत्यत्रयम्।
दर्शनार्थं च तस्यान्तं देवैः सम्प्रेषितोऽस्म्यहम्।३८
न दृष्ट मस्तकं तस्याव्यापकस्यमहात्मनः।
किं वक्ष्येऽहं च देवाग्रे चिन्तामेचातिवर्तते।३९
लिङ्गस्य मस्तकं दृष्टं देवानां च मृषा वदेः।
ते सर्वे यदि यक्ष्यन्तिइन्द्राद्यादेवतागणाः।४०
ते सन्ति साक्षिणो देवा अस्मिन्नर्थे वद त्वरम्।
अर्थेऽस्मिन्भव साक्षी त्वं केतक्या सह सुव्रते !।४१
तद्वचः शिरसागृह्यब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
केतकी सहिता तत्र सुरभीं तदमानयत्।४२

कमल से समुत्पन्न ब्रह्माजी तथागत मार्गसे प्रत्यावृत्ति से द्वारा मेरु पृष्ठ भाग पर प्राप्त हो गये थे। वहाँ पर सुरभि ने उनको देखा था। वह वहाँ पर केतकी की छाया में स्थित थी। उसने परम मधुर वचन कहा था। उसके वचन का श्रयण करके समस्त लोकों के पितामह ने छल की उक्ति से सुरभि के प्रति हँसते हुए यह वाक्य कहा था।

।३६-३७। एक महान् अद्‌भुत लिङ्ग देखा था जिसने तीनों जगतों को व्याप्त कर रखा है । उसी के दर्शन के लिए देवगणों ने मुझे यहाँ भेजा है और उसका अन्त कहाँ पर यह जानने के लिए भी मैं उनके द्वारा भेजा गया हूँ । उस व्यापक महात्मा का मस्तक भी कहीं देखा गया है । अब मैं जाकर उन देवगणों के आगे बतलाऊँगा–यही मुझे एक बड़ी भारी चिन्ता व्याप्त हो रही है । या मैं यह मिथ्या उन देवगणों के आगे बोल दूँ कि मैंने लिंग का मस्तक देख लिया है । यदि वे सब देवता जिनमें इन्द्र आदि सभी हैं वह कहेंगे कि तुम्हारे कोई साक्षिगण हैं तो आप इस विषय में शीघ्र बोलो । इस विषय में हे सुव्रते ! केतकी के साथ मेरे साक्षी बन जाओ ।३८-४१। परमेष्ठी ब्रह्माजी के उस वचन को शिर के बल ग्रहण करके वहाँ पर केतकी के सहित सुरभी ने उसको मान लिया था ।४२।

एवं समागतो ब्रह्मा देवाग्रे समुवाच ह ।४३
लिङ्गस्य मस्तकं देवा दृष्टवानहमद्‌भुतम् ।
समीचीनं चर्चितं च केतकीदलसंयुतम् ।४४
विशालं विमलश्लक्ष्णं प्रसन्नतरमद्‌भुतम् ।
रम्यं च रमणीयं दर्शनीयं महाप्रभम् ।४५
एतादृशं मयादृष्टं न दृष्टद्विनाक्वचित् ।
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सुराविस्मयमाययुः ।४६
एवं विस्मयपूर्णास्तेइन्द्राद्यादेवतागणाः ।
तिष्ठन्ति तावत्सर्वेशोविष्णु रध्यात्मदीपकः ।४७
पातालादागतः सद्यः सर्वेषामवदत्वरन् ।
तस्याप्यन्तो न दृष्टो मेह्यवलोकनतत्परः ।४८
विस्मयोमे महाञ्जातः पातालात्परतश्चरन् ।
अतुलं सुतलं चापि वितलं च रसातलम् ।४९

इस प्रकार ब्रह्माजी वहाँ वापिस समागत हो गये थे और देवों के समक्ष में बोले--हे देवगण ! इस लिंग का मस्तक मैंने देख लिया है

जो परम अद्भुत है। यह बहुत ही समीचीन है, चर्चित है और केतकी के दल से संयुत है।३३-४४। यह बड़ा विशाल है, विमल है, श्लक्षण है, प्रसन्न तर एवं अद्भुत है। परमरम्य, रमणीय, दर्शन करनेके योग्य और महान् प्रभा वाला है।४५। ऐसा मैंने देखा है और इसके बिना कहीं नहीं देखा है। ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर सुरगण परम विस्मय को प्राप्त हो गए थे। इस प्रकार से विस्मय में भरे हुए इन्द्र आदि सभी देवगण तब तक वहीं पर स्थित रहे थे जब तक अध्यात्म दीपक भगवान विष्णु तुरन्त ही पाताल लोक से समागत हो गए उनसे उन सभी देवगणोंसे शीघ्रतापूर्वक कहा था। मैंने उसका कोई भी अन्त नहीं देखा है और मैं इसके बराबर अवलोकन करने में तत्पर होकर लगा रहा हूँ। पाताल से भी आगे विचरण करते हुए मुझे बड़ा भारी विस्मय उत्पन्न हो गया है। मैंने अतल, सुतल, वित्तल और रसातल तक खाक छान ली है।४६-४९।

तथागतस्तलं चैव पातालं च तलातलम् ।
तलातलानि तान्येवं शून्यवद्यद्विभाव्यते ।५०
शून्यादापि च शून्यं च तत्सर्वंसुनिरीक्षितम् ।
न मूलं च नंमध्यञ्चद्वान्नोह्यस्यमविद्यते ।५१
लिङ्गरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत् ।
यस्य प्रसादाभ्त्पन्ना यूयं च ऋषयेस्तथा ।५२
श्रुत्वा सुराश्च ऋ षयस्तस्यवाक्यमपूजयन् ।
तदा विष्णुरुवाचेदं ब्रह्माणं प्रहसन्निव ।५३
दृष्टं हि चेत्वया ब्रह्मन् मस्तकपरमार्थतः ।
साक्षिणः केत्वयातत्र अस्मिन्नर्थे प्रकल्पिताः ।५४
आकर्ण्यवचनं विष्णोर्ब्रह्मलोकपितामहः ।
उवाच त्वरितेनैव केतकी सुरभिंत च ।५५
तेदेवा मम साक्षित्वे जानीहिपरतार्थतः ।
ब्रह्मणो हि वचः श्रु त्वासर्वेदेवास्त्वरान्विताः ।५६

इसके भी आगे मैं तल में गया था फिर पाताल और तलातल तक पहुँच गया था किन्तु वे सब शून्य की भाँति विभाजित होते हैं। मैंने शून्य से भी परम शून्य सम्पूर्ण स्थल का भली-भाँति निरीक्षण किया था किन्तु इस लिङ्ग का न तो कहीं पर मूल है, न मध्य है और न कही इसका अन्तही है। यह तो लिङ्ग रूपी सर्वत्र महादेव ही है जिनके द्वारा यह समस्त जगत धारण किया जाता है जिसके प्रसाद से आप और सर्व ऋषिगण समुत्पन्न हुए हैं।५०-५२। सुरों और ऋषियों ने यह सुनकर उनके वाक्य का बड़ा संस्कार किया था। उसी समय भगवान विष्णु ने हँसते हुए ब्रह्माजी ने कहा था--हे ब्रह्मन्! यदि वास्तव में आपने इस लिंग के मस्तक को देखा है आपने इस अर्थ विषय में कौन से साक्षी कल्पित किए हैं? लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने भगवान विष्णु देव के इस वचन को सुनकर बहुत ही शीघ्रता से कहा था--केतकी और सुरभि ये दोनों ही हैं। देवगणों! मेरे साक्षी हैं और इसको ही आप लोग साक्षण (गवाही) देने वाले समझ लो जो परामर्श रूप से है। ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके सब देवता लोग बहुत ही शीघ्रता वाले हो गए थे।५३-५६।

आह्लानं चक्रिरे तस्याः सुरभ्याश्च तया सह।
आगते तत्क्षणादेवकार्यार्थंब्रह्मस्तदा।५७
इन्द्राद्यैश्च तदादेवैरुक्ता च सुरभीततः।
उवाच केतकी सार्द्धं हृष्टो वै ब्रह्मणा सुराः।५८
लिंगस्य मस्तको देव केतकीदलपूजितः।
तदा नभोगता वाणीसर्वेषां श्रृण्वतामभूत।५९
सुरभ्याचैवयत्प्रोक्तं केक्याचतथा सुराः।
तन्मृषोक्तं च जानीध्वं नदृष्टोह्यस्यमस्तकः।६०
तदा सर्वेऽपिविबुधाः सेन्द्रा वै विष्णुना सह।
शेपुश्च सुरभिरोषाम्मृषावादनतत्पराम्।६१

मुखेनोक्तं त्वयाऽद्यवैमनृतं च तथा शुभम् ।
अपवित्रं मुखतेऽस्तु सर्वंधर्मंवहिष्कृतम् ।६२
सुगन्धकेतकीचाऽपिअयोग्या त्वं शिवार्चने ।
भविष्यसि न सन्देहोअनृताचैवमामिन ।६३

उन देवों ने उस केतकी के सहित सुरभी का वहाँ समाह्वान किया था । उसी समय उसी क्षण ब्रह्माजी के कार्य का सम्पादन करने के लिए वे वहाँ पर आ गयी थीं । फिर इन्द्र आदि देवों ने सुरभी से कहा था । तब केतकी के सहित सुरभी ने कहा था--हे सुरगणो ! ब्रह्माजी ने केतकी दल के पूजित लिंग का मस्तक देखा है । उसी समय सब लोगों के श्रवण करते हुए आकाश में स्थित रहने वाली वाणी हुई--सुरभी तथा केतकी ने यह जो कुछ भी कहा है वह सभी मिथ्या है । आप लोग अब यह समझ लीजिए कि ब्रह्माजी ने तथा इन दोनों ने लिंग का मस्तक नहीं देखा है ।५७-५८-५९-६०। उसी समय इसके अनन्तर सब देवताओं ने इन्द्रदेव के साथ तथा भगवान विष्णु के सहित रोष से मिथ्या बोलने में तत्पर सुरभी को शाप दिया था । तूने इस अपने मुख से आज मिथ्या वचन कहे हैं इसलिए यह तुम्हारा परम शुभ मुख आज से ही अपवित्र और सब धर्मों से बहिष्कृत हो जायगा । वह सुन्दर गन्ध वाली केतकी भी शिव अर्चना के अयोग्य हो जायगी । हे भामिनी ! इसमें अब कुछ भी सन्देह नहीं है कि आप अनृत भाषिणी हैं ।६१-६२-६३।

तदानभोगतावाणीब्राह्मणं च शशाप वै ।
मृषोक्तं च त्वया मन्दु ! किमर्थंबालिशेनहि ।६४
भृगुणा ऋषिभिः साकतथैव च पुरोधसा ।
तस्माद्य यं न पूज्याश्चभवेयुः क्लेशभागिनः ।६५
ऋषयोऽपि च धर्मिष्ठास्तत्यवाक्यबहिष्कृताः ।
विवादनिरता मूढ़ां अतत्वज्ञाः समत्सराः ।६६

याचकाश्चावदान्याश्च नित्यं स्वज्ञानघातकाः ।
आत्मसंभाविताः स्तब्धाः परस्परविनिन्दकाः ।६७
एवं सप्ताश्च मुनयो ब्रह्माद्या देवतास्तथा ।
शिवेन शप्तास्ते सर्वेलिगं शरणमाययुः ।६८

उसी समय आकाशवाणी ने ब्रह्माजी को भी शाप दिया था--हे मन्द ! आपने यह सब मिथ्या वचन कहे हैं । मूर्खता के वश ऐसा किस लिए तुमने कह दिया है । भृगु पुरोहित और समस्त ऋषियों के सहित आपने ऐसा किया है । इससे आप लोग पूजा के योग्य नहीं रहोगे तथा सब लोग क्लेशों के भोगने वाले बन जाओगे । ऋषिगण भी बड़े ही धर्मिष्ठ हैं किन्तु अब तत्व वाक्यों से वहिष्कृत, वेदों के वादों में ही सर्वदा निरत रहने वाले मुढ़ तत्वों में न जानने वाले मात्सर्य से युक्त याचक अवदान्य (दानशील न होने वाले), नित्य ही अपने ज्ञान के घात करने वाले, आत्म सम्भावित (अपने आपको प्रतिष्ठित मानने और कहने वाले) स्तब्ध और परस्पर एक दूसरे की निन्दा करने वाले हो जायेंगे । इस प्रकार से सब मुनिगण और ब्रह्मादि देवगण शिव के द्वारा आप दिये गये थे । वे फिर सबके सब शिव के लिंग की शरण में समागत हुए थे ।६४-६७-६८।

७--देवों द्वारा लिंग की स्तुति

तदा च ते सुराः सर्वे ऋषयोऽपियभान्विताः ।
ईडिरे लिंगमैशं च ब्रह्माद्यानविह्वलाः ।१
त्वं लिंगरूपी तु महाप्रभावो वेदान्तवेद्योऽसि महात्मरूपी ।
येनैव सर्वे जगदात्ममूलं कृतं सदानन्दपरेण नित्यम् ।२
त्वं साक्षीसर्वलोकानां हर्ता त्वं च विचक्षणः ।
रक्षणोऽसिमहादेवभैरवोऽसि जगत्पते ।३
त्वया लिंगस्वरूपेणव्याप्तमेतज्जगत्त्रयम् ।
क्षुद्राश्चत्र वयं नाथ ! मायामोहितचेतसः ।४

अहं सुराऽसुराः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
पन्नगाश्चपिशाचाश्च तथा विद्याधराह्यमी ।५
त्वं हि विश्वसृजांस्त्रष्टा त्वं हि देवोजगत्पयिः ।
कर्त्तात्वंभुवनस्यास्यत्वंहर्तापुरुषः परः ।६
बाह्यस्माकं महादेव ! देवदेवनमोऽस्तुते ।
एवं स्तुतो हि वै धात्रा लिंगरूपीमहेश्वरः ।७

महर्षि लोमशजी ने कहा--उस समय के सब सुरगण ऋषि वृन्द और ज्ञान विह्वल ब्रह्मा प्रभृति भय से अत्यन्त भीत हो गये थे और फिर सब ने भगवान शिव के लिंग का स्तवन किया था ।१। ब्रह्माजी ने कहा--हे भगवन् ! आप महान् प्रभाव वाले लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले हैं आप वेदान्तोंके द्वारा जानने योग्य हैं और महात्मा रूपी हैं । जिसने ही सानन्द परायण से यह सब जगत् आत्ममूल नित्य कर दिया है ।२। आप समस्त लोकों के साक्षी और हर्ता है । आप परम विचक्षण है । आप ही रक्षा करने वाले हैं । हे महादेव! आप इस जगत् के पति हैं और भैरव हैं । आपने इस समय अपने इस लिंग के स्वरूपसे इस त्रिलोकी को ही व्याप्त कर लिया है । हे नाथ! हम लोग तो बहुत ही क्षुद्र हैं और माया से सम्मोहित चित्त वाले भी हो रहे हैं । मैं सब सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग, पिशाच और ये विद्याधर हैं किन्तु आप तो इस विश्व का दर्शन करने वालों के भी सिरजन करने वाले हैं । हे देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं । आप ही इस भुवन करने वाले हैं । आप ही इसके संहार करने वाले हैं। आप परम पुरुष हैं । हे महादेव ! आप अब हमारा परित्राण कीजिए । हे देवों के भी देव ! आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है । इस प्रकार से धाता के द्वारा लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले महेश्वर महाप्रभु की स्तुति की गई थी ।३।७।

ऋषयः स्तोतुकामास्तेमहेश्वरमकल्मषम् ।
अस्तुवन्गीर्भिरम्याभिः श्रुतिगीताभिरादृताः ।८
अज्ञानिनो वयं कामान्न विदामोऽस्य संस्थितिम् ।
त्वं ह्यात्मा परमात्मा च प्रकृतिस्त्वं विभाविनी ।९
त्वमेव माता च पिता त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमीश्वरो वेदविदेकरूपो महानुभावैः परिचिन्त्यमानः ।१०
त्वमाता सर्वभूतानानेको ज्योतिरवैधसाम् ।
सर्वं भवति यस्मात्वन्तस्मात्सर्वोऽसि नित्यदा ।११
यस्माच्च सम्भवत्येतत्तस्माच्छम्भुरिति प्रभुः ।१२
त्वत्पादपङ्कजं प्राप्ता वयं सर्वे सुरादयः ।
ऋषयो देवगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।१३
तस्माच्च कृपया शम्भो पाह्यस्माञ्जगतः पते ! ।१४

उन कल्मष रहित महेश्वर की स्तुति करने की कामना वाले ऋषि-गण भी जो श्रुति गीता से समागत अपनी परमोत्तम वाणियों के द्वारा स्तुति करने लगे थे । ऋषियों ने कहा--हम लोग तो बहुत ही अज्ञानी हैं क्योंकि कामना से परिपूर्ण रहा करते हैं आपकी सस्थिति को नहीं जानते हैं । आप तो आत्मा-परमात्मा और विभावनी प्रकृति हैं । आप ही हम सबकी माता तथा पिता हैं । आप ही हमारे बन्धु हैं और आप ही हमारे सखा भी हैं । आप ईश्वर, वेदविन् और एक रूप हैं । आप महानुभावों के द्वारा सर्वदा परिचिन्त्यमान होते हैं ।८।९।१० आप समस्त भूतों के आत्मा हैं, आप एधों की एक ही ज्योति हैं । क्यों कि जिससे यह सभी कुछ होता है इसलिए आप नित्य ही सर्व स्वरूपों वाले हैं । जिससे यह सभी कुछ सम्भूत अर्थात् समुत्पन्न होता है इसी कारण से आप शम्भु प्रभु हैं । हम सभी सुर आदि आपके चरण रूपी कमलों की शरण में प्राप्त हुए हैं । हम में सब ऋषिगण, देव, गन्धर्व, विद्याधर और महोरथ भी हैं । इसलिए हे शम्भो ! हे जगत् के

स्वामिन् ! अब कृपा करके हमारी रक्षा कीजिए ।११-१४।

श्रृणुध्वं तु वचोमेऽद्य क्रियतां च वरान्वितैः ।
विष्णुं सर्वे प्रार्थयन्तुत्वरितेनतपोधना ।१५
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शंकरस्यं महात्मनः ।
विष्णुं सर्वे नमस्कृत्यईडिरे च तदा सुराः ।१६
विद्याधराः सुरगणा ऋषयश्च सर्वे
त्रातास्त्वयाऽद्य सकला जगदेकन्ब धो ।
तद्वत्कृपाकर ! जनान्परिपालयाऽद्य ।
त्रैलोक्यनाथ ! जगदीश ! जगन्निवास ! ।१७
प्रहस्य भगवान्विष्णुरुवाचेदं वचस्तदा ।
दैत्यैः प्रपीड़िता यूयं रक्षिताश्च पुरामयाः ।१८
अद्यैवभयमुत्पन्नं लिङ्ग दस्माच्चिरेन्तनम् ।
न शक्यतेमयात्रातुमस्माल्लिङ्गभयात्सुराः ।१९
अच्युतेनैवमुक्तास्तेदेवाश्चिन्तान्विताभवन् ।
तदानभोगतावाणीउवाचाश्वास्यतैसुरान् ।२०
एतल्लिङ्गं संवृणुष्व पूजनाय जनार्दन ।
पिण्डीभूत्वा महाबाहोरक्षस्व सचराचरम् ।
तथेति मत्वा भगवान्वीरभद्रोऽभ्यपूजयत् ।२१

श्री महादेवजी ने कहा—आप लोग आज मेरा वचन श्रवण करो और त्वरा से समन्वित होकर उसी काम को आप लोगों को करना ही चाहिए । आप सब लोग शीघ्रता से समन्वित होकर—हे तपोधनो ! भगवान् विष्णु की प्रार्थना करो । महान् आत्मा वाले भगवान शङ्कर के वचन को श्रवण करके सब सुरगणों ने भगवान् विष्णु को नमस्कार कर स्तवन करना आरम्भ कर दिया था ।१५।१६। देवगण ने कहा—हे जगत् के बन्धो ! समस्त सुरगण, ऋषि वृन्द और विद्याधर समस्त

आपके द्वारा ही रक्षित हैं और रहे हैं। हे कृपा करने वाले ! आप तो इस त्रिलोकी के नाथ हैं, जगत् के ईश हैं और इस जगत् के आश्रय हैं। उसीभाँति जैसे समय-समय पर आप रक्षा करते रहे हैं। अपने इन जनों का परिपालन करिए। उस समय भगवान विष्णु हँसकर बोले-- आप लोगों को पहले दैत्यों ने पीड़ित किया था तो मैंने आपकी सुरक्षा की थी। आज ही इस लिंग से चिरन्तन भय समुत्पन्न हो गया है। हे सुरगणो ! इस लिंग के भय से मैं आपका त्राण नहीं कर सकता हूँ। जब भगवान् अच्युत ने इस प्रकार कहा तो वे देवता लोग परम चिन्ता में आतुर हो गये थे। इसी समय आकाशवाणी ने समस्त सुरों को समाश्वासन प्रदान करते हुए कहा था--हे जनार्दन ! पूजन के लिए वस लिंग का स्मरण कीजिए। हे महाबाहो ! पिण्डी होकर समस्त चराचर जगत की रक्षा कीजिए। तब भगवान ने तथास्तु (ऐसा ही होगा) यह मानकर वीरभद्र ने अभिपूजन किया था ।१७।२१।

ब्रह्मादिभिः सुरगणैः सहितैस्तदानींसम्पूजितः।
शिवविधानरतो महात्मा।
स वीरभद्रः शशिशेखरोऽसौ शिवप्रियौ
रुद्रसमस्त्रिलोक्याम् ।२२
लिंगस्यार्चनयुक्तोऽसौ वीरभद्रोऽभवत्तदा ।
तद्रूपस्यैव लिंगस्य येन सर्वमिदं जगत् ।२३
उद्भाति स्थितिमाप्नोतितथाविलयमेति च।
तल्लिगं लिंगमित्याहुर्लयनात्तत्त्ववित्तमाः ।२४
ब्रह्माण्डगोलकैर्व्याप्तं तथा रुद्राक्षभूषितम्।
तथा लिंग महज्जातं सर्वेषां दुरितक्रमम् ।२५

तदा सर्वेऽथ विबुधा ऋषयो वै महाप्रभाः ।
तुष्टुवुश्च महालिंग वेदवादैः पृथक्-पृथक् ।२६
अणोरणीयांस्त्वंदेवतथा त्वं महतोमहान् ।
तस्मात्त्वयाविधातव्यं सर्वेषांलिंगपूजनम् ।२७
तदानीमेव सर्वेण लिंग च बहुशः कृतम् ।
सत्ये ब्रह्मेश्वर लिंगं बैकुण्ठे च सदाशिवः ।२८

उस समय ब्रह्मा आदि महान् सुरगणों के द्वारा शिव की समर्चा के विधान में रति रखने वाले महात्मा वह वीर सम्पूजित हुए थे जो चन्द्र को मस्तक में धारण करने वाले शिव के परम प्रिय और त्रिभुवन में भगवान् रुद्र के ही तुल्य थे ।२२। उस अवसर पर वीरभद्र शिवलिंगकी अर्चना में समायुक्त होगये थे यह लिंग साक्षात् उन शिवके स्वरूप वाला था जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् उद्भूत होता है--स्थिति को प्राप्त होता है और विलय को प्राप्त हुआ करता है । हे तत्व के ज्ञाता गणो ! लय हो वैसे ही लिंग-२' इस नाम से कहा गया है ।२३-२४। ब्रह्माण्डों गोलोकों द्वारा व्याप्त तथा रुद्रों से विभूषित यह लिंग सभी के लिए दुरति क्रम वाला महान् समुत्पन्न हो गया था ।२५। उस समय समस्त देवगण और महती कृपा से सुसम्पन्न ऋषिगणों ने वेद वादों के द्वारा पृथक्-पृथक् स्तवन किया था--हे देव ! आप अणु से भी अधिक अणु हैं और आप महान् से भी अधिक महान् हैं । इसलिए सभी के द्वारा लिंग का पूजन करना चाहिए । उसी प्रकार भगवान् शर्व ने बहुत से लिंग कर दिए थे । सत्य लोक में ब्रह्मेश्वर नाम वाला लिंग है और वैकुण्ठ में सदा शिव हैं ।२६।२८।

अमरावत्यां सुप्रतिष्ठिममरेश्वरसंज्ञकम् ।
वरुणेश्वरं च वारुण्यां याम्यांकालेश्वरं प्रभुम् ।२९

नैर्ऋतेश्वरं च नैर्ऋत्यां वायव्यांपावनेश्वरम् ।
केदारं मृत्युलोके स तथैव अमरेश्वरम् ।३०
ओङ्कारं नर्मदायां च महाकालं तथैव च ।
काश्यां विश्वेश्वरं देवं प्रयागेललितेश्वरम् ।३१
त्रियम्बकं ब्रह्मगिरौ कलौ भद्रेश्वरं तथा ।
द्राक्षारामेश्वरं लिङ्गं गङ्गासागरसङ्गमे ।३२
सौराष्ट्रे च तथा लिंगसोमेश्वरमितिस्मृतम् ।
तथा सर्वेश्वरं विन्ध्येश्रीशैलेशिखरेश्वरम् ।
कान्त्यामल्लालनाथ च सिंहनाथं च सिंगले ।३३
विरूपाक्षं तथा लिंगकोटिशङ्करमेव च ।
त्रिपुरान्तकं च भीमेशममरेश्वमेव च ।३४
भोगेश्वरं च पाताले हाटकेश्वरमेव च ।
एवमादान्यनेकानि लिंगानि भुवनत्रये ।
स्थापितानि तदा देवैर्विश्वोप्रकृतिहेतवे ।३५

अमरावती में अमरेश्वर नाम वाले सुप्रतिष्ठित हुए थे । वारणी दिशा में वरुणेश्वर और यामी दिशा में कालेश्वर प्रभु संस्थापित हुए थे । नैर्ऋत्यदिशा में नैर्ऋतेश्वर तथा वायव्य कोण में पावनेश्वर विराजमान हुए थे । इस मृत्युलोक में केदार तथा अमरेश्वर स्थापित हुए । नर्मदा में ओंङ्कार तथा महाकाल प्रतिष्ठित हुए थे । काशीपुरी में विश्वेश्वर (विश्वनाथ) और प्रयाग में ललितेश्वर हैं ।२९-३०-३१। ब्रह्मगिरि में त्र्यम्बक हैं, कलि में भद्रेश्वर और गंगासागर संगम में द्राक्षा रामेश्वर लिंग विराजमान हैं ।३२। सौराष्ट्र में सोमेश्वर लिंग हैं । क्रान्ति में मल्लालनाथ तथा सिंगल में सिंहनाथ नामक लिंग विराजमान हैं ।३३। विरुपाक्ष लिंग कोटिशङ्कर, त्रिपुरान्तक, भीमेश, अमरेश्वर, भोगेश्वर और पाताल में हाटकेश्वर लिंग है ।

इस प्रकार से उपर्युक्त अनेक लिंग इस त्रिभुवन में प्रतिष्ठित हैं और उस समय सम्पूर्ण विश्व के उपकार के लिए देवगणों ने इन्हें स्थापित किया है ।३४-३५।

लिंगेशैश्च तथा सर्वे: पूर्णमासीजगत्त्रयम् ।
तथा च वीरभद्रांशा: पूजायममरै: कृता: ।३६
तत्रविंशति संस्कारास्तेषामष्टाधिकाभवन् ।
कथिता: शंकरेणैव लिंगस्यार्चनसूचका: ।३७
सन्ति रुद्रेण कथिता: शिवधर्मा: सनातना: ।
वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथाऽन्ये गुरव: स्मृता: ।३८
गुरोर्जाताश्च गुरवो विख्याता भुवनत्रये ।
लिंगस्य महिमानं तु नन्दीजानातितत्वत: ।३९
तथास्कन्दोहिभगवानन्येतेनामधारक: ।
यथोक्ता: शिवधर्माहिनन्दिनापरिकीर्त्तिता: ।४०
शैलादेन महाभागा विचित्रा लिंगधारका: ।
शवस्योपरिलिंग च ध्रियते च पुरातनै ।४१
लिंगेन सह पञ्चत्व लिंगेन सह जीवितम् ।
एते धर्मा: सुप्रतिष्ठा: शैलादेन प्रतिष्ठिता: ।४२

समस्त लिंगेशों के द्वारा तीनों जगत् परिपूर्ण थे । और अमर गणों के द्वारा पूजा के लिए वीर भद्रांश कर दिये गए थे । वहाँ पर अट्ठाईस संस्कार हुए थे ये भगवान् शंकर ने ही लिंग की अर्चना के सूचक कहे थे ।३६।३७। भगवान् शिव के द्वारा कहे गये सनातन शिव-धर्म हैं । जिस प्रकार से भगवान् रुद्र हैं उसी तरह वीरभद्र हैं अन्य गुरुगण कहे गये हैं ।३८। गुरु से गुरुवृन्द समुत्पन्न हुए थे जो भुवन त्रय में विख्यात थे । लिंग की महिमा को तत्व पूर्वक नन्दी जानते हैं । उसी प्रकार से भगवान स्कन्द भी जानते हैं । अन्य जो हैं वे नाम धारक हैं । जो जिस तरह से शिवधर्म कहे गये हैं वे नन्दी द्वारा परिकीर्तित

है।३६।४०। शैलाद के द्वारा महाभाग विचित्र लिंग धारक हुए हैं। पुरातनों के द्वारा शिव के ऊपर लिंग को धारण किया जाता है। लिंग के सह पञ्चत्व हैं और लिंग के साथ जीवित हैं। वे सब सुप्रतिष्ठित धर्म शैलाद के द्वारा प्रतिष्ठित हुए हैं।४१-४२।

धर्मः पाशुपतः श्रेष्ठः स्कन्देन प्रतिपादितः।४३
शुद्धापञ्चाक्षरीविद्याप्रासादी तदनन्तरम्।
षडक्षरी तथा विद्याप्रासादस्य च दीपिका।४४
स्कन्दात्तत्समनुप्राप्तमगस्त्येन महात्मना।
पश्चादाचार्यभेदेनह्यागमा बहवोऽभवन्।४५
किंनुवै बहुनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयम्।
उच्चारयन्ति ये नित्यं ते रुद्रा नात्र संशयः।४६
सतांमार्गंपुरस्कृत्य ये सर्वे ते पुरान्तकाः।
वीरा मारेश्वरा ज्ञेयाः पापक्षयकरान्नृणाम्।४७
प्रसंगे नानुषंगेणश्रद्धयाचयदृच्छया।
शिवभक्तिम्प्रकुर्वन्ति ये वै ते यान्तितद्गतिम्।४८
श्रृणुध्वं कथयामीह इतिहासं पुरातनम्।
कृतं शिवालये यच्च पतंग्या मार्जनं पुरा।४६

भगवान् स्कन्द के द्वारा प्रतिपादित पाशुपत धर्म परमश्रेष्ठ है। ।४३। इसके अनन्तर प्रसादी शुद्धा पञ्चाक्षरी विद्या तथा प्रासाद की दीपिका षडक्षरी विद्या महान् आत्मा वाले अगस्त्य के द्वारा भगवान् स्कन्द से भली भाँति प्राप्त की थी। पीछे आचार्यों के भेद से बहुत से आगम हुए थे।४४-४५। अत्यधिक कथन करने से क्या लाभ है ? केवल 'शिव'--ये दो अक्षरों को जो नित्य ही उच्चारण किया करते हैं वे साक्षात् रुद्र ही हैं–इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।४६। जो सत्पुरुषों के मार्ग को पुरस्कृत करके रहने वाले हैं वे सब पुरान्तक हैं। मनुष्यों

के पापों का क्षय करने वाले महेश्वर वीर जानने के योग्य होते हैं ।४७। जो प्रसंग से अनुषंग से, श्रद्धा से और यदृच्छा से भगवान् सदाशिव की भक्ति किया करते हैं वे सद्गति को प्राप्त होते हैं ।४८। यहाँ पर एक परम पुरातन इतिहास मैं कहता हूँ उसका आप सब लोग श्रवण करिये । पहले जो पतंग्या ने शिवालय में मार्जन किया था ।४६।

आगता भक्षणार्थं हि नैवेद्यं केन चार्पितम् ।
मार्जनं रजसस्तस्याः पक्षाभ्यामभवत्पुरा ।५०
तेन कर्मविपाकेन उत्तमं स्वर्गमागता ।
भुक्त्वा स्वर्गसुख चोग्रं पुनः संसारमागता ।५१
काशिराजसुता जातासुन्दरी नामविश्रुता ।
पूर्वाभ्यासाच्च कल्याणी बभूवपरतासती ।५२
उषस्युषसि तन्वगीशिवद्वाररतासदा ।
सम्मार्जनं च कुरुते भक्त्या परमया युता ।५३
स्वयमेव तदा देवी सुन्दरीराजकन्यका ।
तथाभूतां च तां दृष्ट्वाऋषिरुद्दालकोऽब्रवीत् ।५४
सुकुमारी सती बाले स्वयमेव कथं शुभे !
समार्जनं च कुरुषे कन्यकेत्वंशुचिस्मिते ! ।५५
दासी दास्यश्चबहवः सन्ति देवि ! तवाग्रतः ।
तवाज्ञयाकरिष्यन्तिसर्वं संमार्जनादिकम् ।५६

ये किसी के द्वारा समर्पित किये हुए नैवेद्य के भक्षण करने के लिए वहाँ शिवालय में समागत हुए थे । पहिले उस पतंग्या के पंखों से वहाँ की रज का मार्जन हुआ था ।५०। उस रज के मार्जनस्वरूप कर्म के विपाक थे वह स्वर्ग में आगई थी । वहाँ पर परमोग्र स्वर्ग के सुख का उपभोग करके पुनः वह संसार में आगई थी । वहाँ पर वह सुन्दरी--इस नाम से प्रसिद्ध काशिराज की पुत्री होकर समुत्पन्न हुई

थी। पूर्व जन्म के अभ्यास से वह कल्याणी परम सती हुई थीं ।५१।५२। प्रत्येक दिन प्रातःकाल के समय में वह तन्वंगी सदा भगवान् शिव के द्वार पर रत रहा करती थी और परम भक्ति से युक्त होकर वहाँ पर शिवालय में सम्माजंन किया करती थी ।५३। उस समय राजकन्या सुन्दरी स्वयं ही शिवालय के मार्जन को किया करती थी। उस प्रकार से सम्मार्जन करने वाली उसको देखकर उद्दालक ऋषि ने उससे कहा था--हे बाले ! हे शुभे ! हे कन्यके ! हे शुचि स्मितवाली ! आप तो परम सुकुमारी हैं और परम सती हैं। यहाँपर आप स्वयं ही यह शिवालय का सम्मार्जन क्यों करती हैं ? हे देवि ! आप तो राजकन्या हैं, आपके तो दास और दासियाँ ही अनेक हैं जो आपके आगे यह सभी सम्मार्जन आदि कर्म आपकी आज्ञा से ही कर लेंगे ।५४-५५-५६।

ऋषेस्तद्वचनश्रुत्वा प्रहस्येहमुवाच ह ।
शिवसेवां प्रकुर्वाणाः शिवभक्तिपुरस्कृताः ।५७
ये नराश्चैव नार्यश्व शिवलोकं व्रजन्तिवै ।५८
सामर्जनंपाणिभ्यांपद्भ्यांयानंशिवालये ।
तस्मान्मया च क्रियतेसम्मार्जनमतन्द्रितम् ।५९
अन्यत्किञ्चन्न जानामिएकसम्मार्जनंविना ।
ऋषिस्तद्वचनं श्रुत्वामनसा च विमृश्यहि ।६०
अनया किं कृतं पूर्वं केयं कस्य प्रसादतः ।
तदा ज्ञातं च ऋषिणा तत्सर्वं ज्ञानचक्षुषा ।
विस्मयेन समाविष्टस्तूणीभूतोऽभवत्तदा ।६१
सविस्मयोऽभूदथ तद्विदित्वा उद्दालको ज्ञानवयां वरिष्ठः ।
शिवप्रभावं मनसा विचिन्त्य ज्ञानात्परं बोधमवाप शान्तः ।६२

ऋषि के उस वचन का श्रवण कर वह हँसकर ऋषि से यह बोली थी-जो नर और नारियाँ शिव की भक्ति की भावना में निमग्न होकर

शिव की सेवा किया करते हैं वे निश्चय ही शिवलोक में गमन किया करते हैं ।५७-५८। जो अपने हाथों से ही सम्मार्जन किया करते हैं तथा अपने पैरों से चलकर शिवालय तक गमन किया करते हैं उन्हें ही शिवलोक प्राप्त हुआ करता है। इसी कारण मेरे द्वारा स्वयं ही निरालस्य होकर यहाँ नित्य सम्मार्जन किया जाता है ।५९। इस एक सम्मार्जन के अतिरिक्त अन्य मैं कुछ भी नहीं जानती हूँ। महर्षि ने उसके इस वचन को श्रवण करके मन में विचार किया था कि यह कौन है और किसके प्रसाद से इसने पहले जन्म में क्या किया है ? ऐसा विचार-विमर्श करने पर उस समय ऋषि ने अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा उसी समय में वह सभी ज्ञान कर लिया था । वह ऋषि विस्मय से समाविष्ट होकर चुप हो गया था ।६०-६१। वह विस्मय से समन्वित हो गया था। इसके अनन्तर ज्ञान वालों में परम वरिष्ठ उद्दालक यह सभी कुछ जानकर और भगवान् शिव के प्रभाव को मन में सोच कर परम शान्त होते हुए ज्ञान से उसने परम ज्ञान प्राप्त किया था ।६२।

८—रावणोपाख्यान

रावणेन तपस्तप्तं सर्वेषामपि दुःसहम् ।
तपोधिपो महादेवस्तुतोष च तदा भृशम् ।१
वरान्प्रायच्छत तदा सर्वेषामपि दुर्लभान् ।
ज्ञानं विज्ञानसहित लब्धतेन सदाशिवात् ।२
अजेयत्वं च संग्रामे द्वैगुण्यं शिरसामपि ।
पञ्चवक्त्रो महादेवोदशवक्त्रोऽथ रावणः ।३
देवानृषीन्पितृंश्चैव निर्जित्यतपसा विभुः ।
महेशस्यप्रसादाच्च सर्वेषामधिकोऽभवत् ।४

राजा त्रिकूटाधिपतिर्महेशेनकृतो महान् ।
सर्वेषांराक्षासाना च परमासनमास्थितः ।५
तपस्विनां परीक्षार्थे यदृषीणां विहिंसनम् ।
कृतंतेन तदाविप्रा रावणेन तपस्विना ।६
अजेयो हि महाञ्जातो रावणोलोकरावणः ।
सृष्टायन्तरं कृतं येन प्रसादाच्छंकरस्य च ।७

लोमश महर्षि ने कहा—रावण ने सब लोगों के लिए परम दुःसह तप किया। उस समय तप के स्वामी महादेव अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुए। उसी समय सबको अतीव दुर्लभ वरदान प्राप्त किए। उसने सदाशिव भगवान से विज्ञान के सहित ज्ञान प्राप्त किया था।१-२।संग्राम में उसने अजेयत्व की प्राप्ति की थी और शिर भी दुगुने प्राप्त कर लिए थे। महादेव तो पाँच ही मुख वाले थे किन्तु रावण दश मुख वाला हो गया था।३। विभु उसने समस्त देवों को, ऋषियों को तप के द्वारा निर्जित करके महेश के प्रसाद से मैं बस अत्यधिक हो गया था।४। महेश भगवान् ने महान् त्रिकूट का अधिपति राजा कर दिया। वह रावण समस्त राक्षसों के परमासन पर समास्थित हो गया था।५। हे विप्रगण! उस समय परम तपस्वी रावण ने तपस्वियों की परीक्षा के ऋषियों का विहिंसन किया था। वह लोक रावण महान् ही अजेय हो गया था जिसने भगवान् शङ्कर के प्रसाद से सृष्ट्यान्तर अर्थात् राचना में अनन्तर कर दिया था।६-७।

लोकपाला जितास्तेन प्रतापेन तपस्विना ।
ब्रह्माऽपि विजितोयेन तपसापरमेणि हि ।८
अमृतांशुकरोभूत्वाजितोयेनशशो द्विजाः ।
दाहकत्वाज्जितोवयिनरीशः कैलास तोलनात् ।९

ऐश्वर्येणजितश्चेन्दो विष्णुः सर्वगतस्तथा ।
लिंगार्चनप्रसादेनत्रैलोक्य च वशीकृतम् ।१०
तदा सर्वे सुरगणा ब्रह्मविष्णुपरोगमाः ।
मेरुपृष्ठं समासाद्य सुमंत्रं चक्रिरे तदा ।११
पीड़िता स्मोरावणेनतपसादुष्करेण वै ।
गोकर्णाख्येगिरौदेवाः श्रूयतां परमाद्भुतम् ।१२
साक्षाल्लिंगार्चनं येन कृतमस्ति महात्मना ।
ज्ञानगेयं ज्ञानगम्यं यद्यत्पमद्भुतम् ।१३
तत्कृतं रावणनैव सर्वेषां दुरतिक्रमम् ।१४

उस प्रतापी तपस्वी ने सम्पूर्ण लोकपालों को जीत लिया था और अपने परम उग्र तप के द्वारा ब्रह्माजी को भी जीत लिया था । हे द्विज-गण ! उसने अमृतांशुकर होकर चन्द्र को जीत लिया था और बाहुकत्व के होने से अग्नि को जीत लिया था । कैलाश पर्वत को हाथों से उठाकर भगवान् शिव को ही जीत लिया था क्योंकि शङ्कर भगवान् उस कैलास पर ही विराजमान रहा करते थे ।८।६। ऐश्वर्य से इन्द्र को जीत लिया था तथा सर्वत्र रहने वाले भगवान् विष्णु को जीत लिया था । लिंग की अर्चना के प्रसाद से उस रावण ने सम्पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया था । उस समय देवगण जिनमें ब्रह्मा विष्णु पुरोगामी थे मेरु पर्वत की पृष्ठभूमि पर एकत्रित होकर मंत्रणा करने लगे थे कि हम सब लोग परम दुष्कर तपश्चर्या के द्वारा रावण से उत्पीड़ित हो गये हैं । गोकर्ण नामक गिर पर हे देवगणो ! इस परम अद्भुत का श्रवण करो । जिस महात्मा ने साक्षात् शिव के लिंग का अर्चन किया है । ज्ञान के द्वारा गेय (गान करने के योग्य) ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य जो-जो भी परम अद्भुत हैं वही सभी कुछ सबके लिए दुरतिक्रम रावण ने ही किया है ।१०।११।१२।१३।१४।

वैराग्यंपरमास्थाय औदार्यं च ततोऽधिकम् ।
तेनैव ममता त्यक्तारावणेत्महात्मना ।१५
संवत्सरसहस्राच्च स्वशिरो हि महाभुजः ।
कृत्वा करेशलिंगस्य पूजनार्थं समर्पयेत् ।१६
रावणस्य कबन्धं चतदग्रे च समीपतः ।
योगधारणया युक्तं परमेण समाधिनाः ।१७
लिंगेलयसमाधायकयापिकलया स्थितम् ।
अन्यच्छिरोविवृश्च्यैवंतेनापिशिवपूजनम् ।१८
कृतं नैवान्यमुनिना तथा चैवापरेण हि ।१६
एवं शिरास्येव बहूनि तेन समर्पितान्येव शिवार्चनार्थे ।
भूत्वा कबन्धो हि पुनःपुनश्च तदा शिवोऽसौं वरदोबभूव ।२०
मया विनामुरस्तत्र पिंडीभूतेन वै दुरा ।
वरान्वरय पौलस्त्ययथेष्ट वान्ददाम्यहम् ।२१

उस महात्मा रावण ने परम वैराग्य में समास्थित होकर और उससे भी अधिक औदार्य में आस्थित होकर समता का पूर्ण रूप से त्याग कर दिया था। महान् भुजाओं वाले उसने एक सहस्र वर्ष तक घोर तपश्चर्या करते हुए अपना मस्तक हाथ में लेकर उसे लिंगकी पूजा के लिए समर्पित कर दिया था। उस लिंग के समीप में ही उसके आगे रावण का कबन्ध (धड़) योग की धारणा से युक्त होकर परम समाधि से लिंग में किसी भी अत्यद्भूत कला से लय को प्राप्त कर स्थित रहा था। इसी भाँति उसने अपने अन्य शिर भी काटकर भगवान् शिव का पूजन किया था ऐसा अन्य किसी भी मुनि ने तथा किसी दूसरे ने नहीं किया था।१५-१६-१७-१८-१९। इस प्रकार से उसने अपने बहुत से शिरों को ही भगवान् शिव के अर्चना के लिए समर्पित कर दिया था वारम्वार कबन्ध स्वरूप हो गया था।. उसी समय शिव वर प्रदान करने वाले हो गये थे।२०। वहाँ पर बिना सुर के पिण्डी भूत मैंने

उससे पहिले ही कहा था—हे पौलस्त्य ! वरदानों की याचना कर लो जो भी तुमको अभीष्ट हों, में उन सब वरों को देता हूं ।२१।

रावणेन तदा चोक्तः शिवः परममंगलः ।
यदि प्रसन्नोभगवन्देयो मे वर उत्तमः ।२२
कामयेऽन्यं च वरमाश्रये त्वत्पदांबुजम् ।
यथा तथा प्रदातव्यं यद्यस्ति च कृपामयि ।२३
तदा सदाशिवेनोक्तोरावणोलोकरावणः ।
मत्प्रसादाच्च सर्वंत्वंप्राप्स्यसेमनसेप्सितम् ।२४
एवं प्राप्तं शिवात्सर्वं रावणेनसुरेश्वराः ।
तस्मात्सर्वैर्भवद्भिश्च तपसापरमेण हि ।२५
विजेतव्योरावणोऽयमितियिमे गनसिस्थितम् ।
अच्युतस्यवचः श्रुत्वाब्रह्माद्यादवताचणाः ।२६
चिंतामापे दरे सर्वे चिरन्ते विषयान्विताः ।
ब्रह्माऽपि चेन्द्रियग्रस्तः सुतां रमितुमुद्यतः ।२७
इन्द्रोहि जारभावच्च चन्द्रोहि गुरुतल्पगः ।
यमः कंदर्पभावच्च चञ्चलत्वांत्सदागतिः ।२८

उस समय परम मंगल स्वरूप भगवान् शिव ने कहा था—हे भगवन् ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो मुझे एक ही सर्वोत्तम वरदान देने की कृपा कीजिए। मैं अन्य कोई भी वरदान नहीं चाहता हूँ, मैं केवल आपके चरण कमलों का समाश्रय प्राप्त करने का ही वरदान चाहता हूं। यदि मुझ पर आपकी कृपा है तो यथा तथा यही मुझे प्रदान करिये ।२२-२३। उस समय उस लोक परायण से भगवान सदाशिव ने कहा था—मेरे प्रसाद से सभी कुछ जो भी तुम्हारे मनमें है तथा अभीष्ट हैं वह तुम अवश्य प्राप्त कर लोगे ।२४। हे सुरेश्वरों ! इसी प्रकार से उस रावण ने भगवान् शिव से सभी कुछ प्राप्त कर लिया है इसलिए अब आप सबके द्वारा परमोत्तम तपश्चर्या से इस रावण को

भी जीत लेना चाहिए, यही बात मेरे मन में स्थित है। भगवान् अच्युत के इस वचन का श्रवण करके ब्रह्मादि देवगण सब वड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे क्योंकि वे चिरकाल के विषयों में लिप्त थे। पितामह ब्रह्मा भी इन्द्रियों में ग्रस्त थे और अपनी सुता के साथ रमण करने को समुद्यत हो गये थे। इन्द्रदेव भी जार भाव से युक्त थे तथा चन्द्रदेव भी गुरु शय्या पर गमन करने वाला था। यम में पूर्ण तथा कदर्प भाव था। सदागति वासुदेव चञ्चल थे।२५-२८।

पावकः सर्वभक्षित्वात्तथाऽन्पेदेवतागणाः।
अशक्ता रावणंजेतुं तपसा च विजृम्भितम्।२९
शैलादो हि महातेजा गणश्रेष्ठः पुरातनः।
बुद्धिमान्नीतिनिपुणो महाबलपराक्रमी।३०
शिवप्रयो रुद्ररूपी महात्मा ह्युवाच सर्वानथ चन्द्रमुख्यान्।
कस्माद्यूयं संभ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यतां विस्तरेण।३१
नन्दिना च तदा सर्वे पृष्ठाः प्रोचस्त्वरान्विताः।३२
रावणेन वयंसर्वेनिर्जितामुनिभिः सहः।
प्रसादयितुमायाताः शिवं लोकेश्वरेश्वरम्।३३
प्रहस्य भगवान्नंदी ब्रह्माणां वै ह्यवाच ह।
क्वयूयं क्व शिवः शम्भुस्तप्सा मरमेण हि।
द्रष्टव्यो हृदि मध्यस्थः सोऽद्य द्रष्टुं न पार्यते।३४
यावद्भावा ह्यनेकाश्चइन्द्रियार्थास्तथैव च।
यावच्च ममभावाः चस्तावदीशो हि दुर्लभः।३५

अग्निदेव में सर्व भक्षिता का दोष था तथा अन्य भी सब देवता-गण अशक्त थे। तपश्चर्या के द्वारा रावण को जीतना एक विजृम्भित मात्र ही था। शैलाद पुरातन गणों में श्रेष्ठ महान तेजस्वी था। यह महान् बुद्धिमान, नीति शास्त्र में परम निपुण, महान् बल और पराक्रम से समन्वित थे। शिव के परम प्रिय रुद्र के रूप धारण करने वाले

महात्मा चन्द्र जिनमें प्रमुख थे उन सबसे बोले—आप सब किस सम्भ्रम से यहाँ पर समागत हुए हैं—यह विस्तार पूर्वक हमको बतलाइए। इस प्रकार से जब नन्दी के द्वारा पूछे गये तो सभी देवगण त्वरान्वित होकर कहने लगे थे।२९-३२। देवगण ने कहा—रावण ने समस्त मुनि-गण के साथ हम लोगों को जीत लिया है, इसलिये हम सब लोकों के ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् सदाशिव को प्रसन्न करने के लिए यहाँ पर आये हुए हैं। उस समय में भगवान् नन्दी ने हँसकर ब्रह्माजी से कहा, कहाँ तो आप हैं और कहाँ परम तप से समन्वित भगवान् शम्भू शिव हैं। वह तो हृदय के मध्य में स्थित ही देखने के योग्य हैं। वे अब आज देखे नहीं जा सकते हैं। जब तक अनेक भाव हृदय में विद्यमान हैं तथा इन्द्रियों के अर्थ अर्थात् बहुत प्रकार के विषय मन में प्रविष्ट हो रहे हैं एवं जिस समय तक ममता की भावना हृदय में स्थित है तब तक भगवान् ईश परम दुर्लभ ही हैं।३३-३४-३५।

जितेन्द्रियाणाशांतानांतन्निष्ठानांमहात्मदाम्।
सुलभोलिंगरूपीस्याद्भवताहिसुदुर्लभः।३६
तदा ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च विपश्चितः।
प्रणम्यनोदिनं प्राहुः कस्मात्त्वं वानराननः।३७
तत्सर्वं कथयाग्यं च रावणस्य तपोबलम्।
कुबेरोऽधिकृतस्तस्तेनशकरेणमहात्मना।
धनानामाधिपत्ये च तं द्रष्टुं रावणोऽबवे।३८
आगच्छत्त्वरया युक्तः समारुह्यस्ववाहनम्।
मां दृवष्टा चाब्रवीत्क्रुद्धः कुबेरोह्यत्रआगतः।३९
त्वया दृष्टोऽथवाऽत्रासौकथ्यतामविलम्बितम्।
किंकार्यं धनदेनाद्यइतिपृष्टोमय हि सः।४०
तदोवाच महातेजा रावणो लोकरावणः।
मय्यश्रद्धान्वितो भूत्वा विषयात्मासुदुर्मदः।४१

शिक्षापयितुमारब्धोमैवकार्यमतिप्रभो ।
यथाऽहं च श्रियायुक्तआढ्योऽहं वलवानम् ।
तथा त्वं भव रे मूढ मा मूढत्वमुपार्जय ।४२

जो अपनी इन्द्रियों के जीतने वाले हैं, परम शान्ति की भावना से युक्त हैं, शिव में ही परम निष्ठा रखने वाले हैं और महान आत्मा वाले हैं उनको ही लिंग रूपी भगवान शिव सुलभ हुआ करते हैं आप लोगों को तो वे सुदुर्लभ ही हैं ।३६। उसी समय में ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं और महान विद्वान ऋषिगणों ने नन्दी को प्रणाम करके कहा था कि आप वानर के तुल्य मुख वाले किस कारण से हो गये हैं यह सब कथा हमको बतलाइये तथा अन्य जो रावण का तपोबल है उसे भी कहिये । नन्दीश्वर ने कहा—महात्मा शंकर ने कुबेर को धनों के आधिपत्य में अधिकृत कर दिया था। यहाँ पर उसको देखने के लिए अपने वाहन पर समारूढ़ होकर बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर यहाँ पर रावण आया था। उसने यहाँ पर मुझको देखकर अत्यन्त क्रोधित होते हुए कहा था कि क्या वहाँ पर कुबेर आया था ? क्या आपने उसको यहाँ पर देखा है ? यह बहुत ही शीघ्र बिना कुछ विलम्ब किये मुझे बतलाओ कि क्या वह यहाँ पर है ? उस समय में मैंने उससे पूछा था कि आज आपकी धनद (कुबेर) से क्या काम है ? उस समय लोक रावण, महान तेजस्वी रावण ने कहा था—मुझसे अश्रद्धा से युक्त होकर विषयों में लिप्त आत्मा वाला तू अतीव सुदुर्मद हो गया है। मुझे ही आज शिक्षा देना तुमने आरम्भ कर दिया है। हे प्रभो ! ऐसा तुमको नहीं करना चाहिये। जैसा मैं श्री से युक्त हूँ और परम आढ्य हूँ तथा मैं बलवान् भी हूँ। रे मूढ़ ! उसी प्रकार का तू भी हो जा और इस मूढ़ता का उपार्जन मत कर ।३७-४२।

अहं मूढः कृतस्तेन कुबेरेणमहात्मना ।
मया निराकृतो रोषात्तपस्तेपे सगुह्यकः ।४३

कुबेरः हि नन्दिन्किमागतस्तव मन्दिरम् ।
दीयतां च कुबेरोऽद्यनात्रकार्यविचारणा ।४४
रावणस्यवचः श्रुत्वा वोचत्वरियोऽप्यहम् ।
लिंगकोटिमहाभाग्रत्वमहं च तथाविधः ।४५
उभयोः समत्तांज्ञात्वावृथा जल्पसि दुर्मते ।
यथोक्तः स त्वादीन्मां वंदनार्थेवलोद्धतः ।४६
यथाभवद्भि पृष्ठोऽहं वदनार्थे मसात्मभिः ।
पुरावृतंमयाप्रोक्त शिवार्चनविधेः फलम् ।
शिवेन दत्तं सारूप्य न गृहीतं मया तदा ।४७
याचितं च मया शम्भोर्वदन वानरस्य च ।
शिवेन कृपया दत्तं मम कारुण्यशालिना ।४८
निरभिमानिनो ये च निर्दभानिष्परिग्रहाः ।
शम्भोः प्रियास्तेविज्ञेयाह्यन्येशिवबहिष्कृताः ।४९

उस महात्मा कुबेर के द्वारा मैं मूढ़ बना दिया गया हूँ। अब मैंने रोष से उसका निरादर कर दिया था तो उस गुह्यक (कुबेर) ने तपश्चर्या की थी ।४३। रावण ने कहा—हे नन्दिन ? वह कुबेर आपके मन्दिर में क्यों समागत हुआ था ? आज उस कुबेर को तुम मेरे सुपुर्द कर दो और इस विषय में कुछ भी विचार मत करो ।४४। रावण के इस वचन को सुनकर मैंने तुरन्त ही उससे यह कहा था—हे महाभाग ! आप लिंगक हैं अर्थात् शिव लिंग की उपासना करने वाले हैं और मैं भी उसी प्रकार का उपासक हूँ। हम तुम दोनों की समता का ज्ञान प्राप्त करके भी हे दुर्मते ! वह सब व्यर्थ कह रहे हो। ऐसा ज्यों ही मैंने उससे कहा था वह मुझसे बोला—वदनार्थ में बल से उद्धत हो गया। महान् आत्मा वाले आपने जैसा मुझसे वदनार्थ में पूछा है मैंने शिवार्चन की विधि का फल पुरावृत्त कहा है। भगवान् शिव ने मुझे अपना सारूप्य प्रदान किया था किन्तु उस समय में मैंने उसे स्वी

कार नहीं किया था ।४५-४६-४७। मैंने उस समय भगवान् शम्भू से वानर का वदन याचित किया था । करुणाशाली शिव ने कृपा करके मुझे वह प्रदान कर दिया था ।४८। जो अभिमान से रहित हैं, दम्भ से शून्य है और परिग्रह हीन होते हैं वे ही लोग भगवान् शम्भु के परम प्रिय होते हैं और अन्य जो होते हैं वे शिव के द्वारा बहिष्कृत हुआ हैं ।४९।

तथाबदन्मया सार्द्धंरावणस्तपसोबलात् ।
मया च याचितान्येवदश वक्त्राणिधीमता ।५०
उपहासकरं वाक्यं पौलस्त्यतदासुराः ।
मयातदा हि शिप्तोऽपौरावणोलोकरावणः ।५१
ईदृशान्येव ववत्राणि येषां वै सम्भवति हि ।
तैः समतो यदाकोर्पिनरवर्यो महातपाः ।
मां पुरस्कृत्य सहसा हनिष्यति न संशयः ।५२
एवं शप्तोमया ब्रह्मन्नवशो लोकरावणः ।
अर्चितं केवलं लिंग विना तेन महात्मना ।५३
पीठिकारूपसस्थेनविनातेनसुरोत्तमाः ।
विष्णुनाहिमहाभागास्तस्मात्सर्वं विधास्यति ।५४
देवदेवोमहादेवो विष्णुरूपी महेश्वरः ।
सर्वे यूयं प्रार्थयन्तु विष्णुं सर्वगुहाशयम् ।५५
ते सर्वे नन्दिनोवाक्यं श्रुत्वा मुदितमानसाः ।
वैकुण्ठमागता गीर्भिर्विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रिरे ।५६

तपोबल से रावण ने मेरे साथ इस प्रकार से कहा था कि धीमान् मैंने तो भगवान शम्भु से दशमुखों के हो जाने की याचना की थी । हे सुरगण ! यह उस समय में पोलस्त्य का परम उपहास के करने वाला

वाक्य था उस समय में लोकों को डराने वाले उस रावण को मैंने शाप दे दिया था। जिनको ऐसे ही मुख हुआ करते हैं। जिस समय में उनसे युक्त महान तपस्वी कोई नरवर्य होगा यह सहसा मुझको आगे करके मार डालेगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।५०-५१-५२। इस तरह से मेरे द्वारा शाप दिया हुआ ये ब्रह्मन् ! वह लोकरावण रावण था। उसने उस महात्मा के बिना केवल लिंग का ही अचन किया था। हे महान भाग वाले सुरोत्तमो ! उसने पीठिका रूप संस्थित उस विष्णु कुछ करेंगे। देवों के भी देव महेश्वर विष्णु के स्वरूप वाले महादेव हैं इसलिए आप सब लोग सबके गुहाशय अर्थात् सबके अन्तर्यामी भगवान् विष्णु की प्रार्थना करिये।५३-५४-५५। इसलिए मैं आप सब लोगों के आगे रहने वाला होऊँगा। वे समस्त देवता लोग नन्दी के इस वाक्य का श्रवण कर बहुत ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे। फिर वे सभी वैकुण्ठ में गये थे और प्राणियों के द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति करने लगे थे।५६।

नमो भगवते तुभ्यं देवदेव ! जगत्पते ! ।
त्वदाधारमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।५७
एतल्लिग बयाविष्णोधृतं वै पिण्डरूपिणा।
महाविष्णुस्वरूपेणघातितौ मधुकैटभौ।५८
तथा कमठरूपेण धृतो वै मंदराचलः।
वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो हतस्त्वया।५९
हिरण्यकशिपु दैत्यो हतोनृहरिरूपिणा।
त्वयाचैवबलिर्बद्धो दैत्यौ वामनरूपिणा।६०
भृगूणामन्वये भूत्वा कृतवीर्यात्मजोहतः।
इतोप्यस्मान्महाविष्णो तथैव परिपालतः।६१
रावणस्य भयादस्मान्त्रातुं भयोऽर्हसि त्वरम्।६२

एवं सम्प्रार्थितो देवैर्भगवान्भूतभावनः ।
उवाच च सुरान्सर्वान्वासुदेवो जगन्मयः ।६३
हे देवाः श्रूयतां वाक्यप्रस्तावसदृशंमहत् ।
शैलादि च पुरस्कृत्यसर्शे यूयं त्वरान्विताः ।
अवतारान्प्रकुर्वन्तु वानरी तनुमाश्रिताः ।६४

देवगण ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं । भगवान आपके लिये हमारा नमस्कार है । इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के आप ही एकमात्र आधार हैं ।५७। हे विष्णु के स्वरूप से आपने मधु और कैटभ दोनों असुरों का हनन किया था ।५८। आपने कमठ रूप से मन्दराचल को धारण किया था तथा आपने वराह के स्वरूप में समास्थित होकर हिरण्याक्ष का वध किया था । नृसिंह के स्वरूप को धारण करके आपने हिरण्यकशिपु दैत्य का हनन किया था और मानव रूपी आपने ही बलि दैत्य को बद्ध किया था । भृगुओं के वंश में जन्म धारण करके कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन का हनन किया था । हे महाविष्णो ! उसी भाँति से यहाँ पर भी हमारी रक्षा आप कीजिए । रावण के इस भय से आप बहुत ही शीघ्र पुनः रक्षा के योग्य होते हैं ।५९-६२। इस प्रकार से देवगणों के द्वारा भूतों पर दया करने वाले भगवान् समस्त देवों से जगन्मय वासुदेव बोले—हे देवगणों ! आपके इस प्रस्ताव के सदृश मेरा महान् वाक्य श्रवण करो । आप सभी लोग अत्यन्त शीघ्रता से समन्वित होते हुए शैलाद को अपने आगे करके वानरी तनु (शरीर) का समाश्रय ग्रहण करते हुए अवतारों को करो ।६३-६४।

अहहिमानुषो भूत्वा ह्यज्ञाने समावृतः ।
सविभज्यामययोध्यायां गृहे दशरथस्य च ।
ब्रह्मविद्यासहायोऽस्मि भवतां कार्यसिद्धये ।६५

जनकस्यगृहेसाक्षाद्ब्रह्मविद्याजनिष्यति ।
भक्तो हि रावण: साक्षाच्छिवध्यानपरायण: ।६६
तपसा महता युक्तो ब्रह्मविद्या यदेच्छति ।
तदा सुसाध्योभवति पुरुषो धर्मनिर्जित: ।६७
एवं संभाष्य भगवान्विष्णु: परममंगल ।
वालीचेन्द्रांशसंभूत सुग्रीवोऽशुभत: सुत: ।६८
तथा ब्रह्मांशसम्भतो जाम्ववानुक्षकुञ्जर: ।
शिलादतनयोनन्दीशिवस्यातुचर: प्रिय: ।६९
यो वै छेनादशोरुदो हनुमान्स महाऋषि: ।
अवतीर्णं सहायार्थं विष्णोरमिततेजस: ।७०

मैं फिर अज्ञान से समावृत होकर मनुष्य होऊँगा और राजा दशरथ के घर में अयोध्या पुरी में जन्म ग्रहण करूँगा । आप सब लोगों के कार्य की सिद्धि के लिये मैं ब्रह्म विद्या की सहायता वाला होऊँगा । वह ब्रह्म विद्या राजा जनक के गृह में जन्म ग्रहण करेगी । परमभक्त रावण साक्षात् शिव के ध्यान में परायण होकर महान् तपश्चर्या से युक्त जब ब्रह्म विद्या की इच्छा करेगा, तो उसी समय में वह धर्म निर्जित पुरुष सुसाध्य हो जायगा ।६५-६७। परम मङ्गल स्वरूप भगवान् विष्णु ने इस तरह से कहकर इन्द्र के अंश से सम्भूत वाली, अंशुमान् का पुत्र सुग्रीव का, ऋण कुंजर जाम्ववान् ब्रह्मा के अंश से सम्भूत हुआ । शिलाद का तनय (पुत्र) नदी भगवान् शिव का प्रिय अनुचर था जो एकादश रुद्र रूप महा ऋषि था वह हनुमान् हुआ । इसी रीति से अपरिमिति तेज धारण करने वाले भगवान् विष्णु की सहायता करने के लिये अवतीर्णं हुए थे ।६८-७०।

मैन्दादयोऽथ कपयस्ते सर्वे सुरसत्तमा: ।
एवं सर्वेसुरगणाअवतेरुर्यणातथम् ।७१

तथैव विष्णुरुत्पन्नः कौशल्यानंदवर्द्धन ।
विश्वस्य रमणाच्चैव राम इत्युच्यते बुधैः ।७२
शेषोऽपि भक्त्या विष्णोश्च तपसाऽवहारद्भुवि ।७३
दोर्दण्डावपि विष्णोश्च अवतीर्णौप्रतापिनौ ।
शत्रुघ्नभरताख्यौ च विख्यातौभवनत्रये ।७४
मिथिलाधिपतेः कन्याउक्ताब्रह्मवादिभिः ।
सा ब्रह्मविद्याऽवतरत्सुराणंकार्यसिद्धये ।
सीता जाता लांगूलस्य इय भूमिविकर्षणाद् ।७५
तस्मात्सीतेति विख्याता विद्या सान्वीक्षिकी तदा ।
मिथिलायां समुत्पन्ना मैथिलीत्यभिधीयते ।७६
जनकस्य कुले जाता विश्रुताजनकात्मजा ।
ख्याता वेदवती पूर्वं ब्रह्मविक्ऽघनाशिनी ।७७

ये सब सुरश्रेष्ठ तथा मैन्द आदि ऋषिगण इसी प्रकार से यथा तथा अवतीर्ण हुए थे । उसी भाँति कौशल्या के आनन्द का वर्द्धन करने वाले भगवान् विष्णु समुत्पन्न हुए थे समस्त विश्व के रमण कराने से बुधों के द्वारा "राम"—इस नाम से कहे जाते हैं । भगवान् शेष भी विष्णु भगवान् की भक्ति के कारण तप द्वारा इस भूमण्डल में अवतीर्ण हुये थे । प्रतापी दो दण्ड भी जो भगवान विष्णु के थे उस समय अवतीर्ण हुए थे । दोनों दो दण्ड भुवनत्रय में भरत और शत्रुघ्न इन दो शुभ नामों से विख्यात हुये थे ।७१-७४। जो मिथिला देश के स्वामी की कन्या थी वह ब्रह्म वादियों के द्वारा ब्रह्मविद्या कही गयी थी जो कि सुरों के कार्य की सिद्धि के लिये अवतीर्ण हुई थी । यह सीता हल के द्वारा भूमि के विकर्षण से समुत्पन्न हुई थीं ।७५। इसी कारण से उस समय में वह आन्वैक्षिकी विद्या 'सीता' इस नाम से विख्यात हुई थी । यह मिथिला देश में समुत्पन्न हुई थी इसलिये यह 'मैथिली'- इस शुभ नाम से कही जाती है । वह राजा जनक के कुल में समुत्पन्न

हुई थी अतएव वह जनकात्मजा नाम से विश्रुत हुई थी। यह अद्यों के नाश करने वाली ब्रह्म पहिले वेदवती—इन नाम से विख्यात हुई थी। ।७६-७७।

सा दत्ता जनकेनैव विष्णवे परमात्मने ।७८
तथाऽथ विद्यया सार्द्धंदेवदेवो जगत्पतिः।
उग्र तपसिलागोऽसौविष्णुः परंमंगलः ।७९
रावण जेतुकामो वै रामो राजीवलोचनः।
अरण्मवारकमरोद्‌देवानां कार्यसिद्धये ।८०
शेषावतारोऽपि महांस्तपः पपतदुष्करम्।
ततापं परयाशक्त्या देवानांकार्यं सिद्धये ।८१
शत्रुघ्नो भरतश्चैव तेपतुः परमन्तपः ।८२
यतोऽसौ तपसा युक्तः सार्द्धंतैर्देवतागण।
सगणं रावण रामः षडभिर्मासरजीहनत्।
विष्णुना धातितः शस्त्रैः शिवसारूप्यमाप्तवान् ।८३
सगणः स पुनः सद्यो बन्धुभिः सह सुव्रताः ।८४

उसको स्वयं राजा जनक ने ही परमात्मा विष्णु को प्रदान किया था ।७८। इसके अनन्तर देवों के देव भगवान जगत्पत्ति उस विद्या के साथ में परमोग्र तप में यह परम मगल प्रभु लीन हो गये थे। राजीव (कमल) के समान लोचनों वाले भगवान् श्री राम रावण को जीतने की कामना वाले थे। उन्होंने देवगणों के कार्य की सिद्धि के लिये अरण्यका निवास किया था। शेष के अवतार वाले लक्ष्मण ने भी देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये अपनी पराशक्ति के द्वारा परम दुष्कर एवं महान् तपश्चर्या की थी। शत्रुघ्न और भरत ने भी परम तप का तपन किया था ।७९-८२। इसके उपरान्त देवगणों के साथ तपश्चर्या से युक्त इन भगवान श्रीराम ने छैः मासों के अन्दर गणों के सहित रावण को मार डाला था। भगवान् विष्णु ने शस्त्रों से उनका

वध किया था। वह रावण भगवान् शिव के सारूप्य को प्राप्त हो गया था। हे सुव्रतो ! उसने समस्त बन्धुगणों के साथ तथा अपने गणों के सहित पुनः तुरन्त ही शिव की स्वरूप प्राप्त करली थी।८३-८४।

शिवप्रसादात्सकलं द्वैतागैतमवापह ।
द्वैताद्वैतविवेकार्थंमृषयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्सर्वं प्राप्नुवन्तीह शिवार्चनरता नराः।८५
तेऽर्चयन्तिशिवंनित्यलिंगरूपिणमेवच ।
स्त्रियोबाऽप्यथवाशूद्राः श्वपचाह्यन्त्यवासिनः ।
तं शिव प्राप्नुवन्त्येव सर्वदुःखोपनाशनम्।८६
पशवोऽपि परं याता किं पुनर्मानुषादयः।८७
ये द्विजा ब्रह्मचर्येण तपः परमास्थिताः ।
वर्षेनेयैज्ञाना तेऽपि स्वर्गपरा भवम्।८८
ज्योयिष्टोमो वाजयेयो ह्यविरात्रादयो ह्ययी ।
यज्ञाः स्वर्गं प्रयच्छन्नि सविणां नात्र संशयः।८९
तत्र स्वसुख चभुक्त्वापुण्यं क्षयकरं महत् ।
पुण्यक्षयेऽपि यज्वानो मर्त्यलोकं पतन्तिवै।९०
पतितानां च ससारे दैवाद्बुद्धिः प्रजायते ।
गुणत्रयमयी विप्रास्यासु तास्विहयोनिषु।९१
यथा सत्वं संभवति सत्वयुक्तभव नराः ।
राजसाश्च तथा ज्ञेयास्तामसाश्चैव ते द्विजाः।९२

उसने भगवान् शिव के प्रसाद से सम्पूर्ण द्वैताद्वैत की प्राप्ति कर ली थी। द्वैताद्वैत विवेक ऐसा है जिसको जानने के लिए इन विषय में बड़े-बड़े महर्षिगण भी मोहित हो जाया करते हैं। उस सम्पूर्ण द्वैताद्वैत सिद्धान्त को भगवान् शिव के समर्चन में निरत रहने वाले मनुष्य इस संसार में प्राप्त कर लिया करते हैं।८५। जो पुरुष नित्य प्रति लिंग स्वरूप वाले भगवान् शिव का अर्चन किया करते हैं चाहे वे स्त्रियाँ हों

अथवा पुरुष हों, शूद्र हो, श्वपच हो या अन्त्यज हो क्यों न होवें वे सभी शिव के लिंगार्चन के प्रभाव से समस्त दुःखों के उप नाश करने वाले भगवान् शिव की सन्निधि को अवश्य ही प्राप्त कर लिया करते हैं ।८६। शिव लिंग की अर्चना का प्रभाव तो ऐसा है कि पशु गण भी परम पद को प्राप्त कर लिया करते हैं फिर मनुष्य आदि की तो बात ही क्या है ।८७। जो द्विज ब्रह्मचर्य पूर्वक अनेक वर्षों तक यज्ञों के परम तप से समास्थित हैं वे भी स्वर्ग पर ही जाया करते हैं। ज्योतिष्ठोम, वाजपेय और ये अतिरात्रिदि यज्ञसत्व करने वालों को स्वर्ग प्रदान किया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह स्वर्ग प्राप्ति का सुख महान् पुण्यों के क्षय करने वाला है—इस सुख को भोग कर किये हुई समस्त पुण्य के क्षीण हो जाने पर यज्वागण फिर इसी मर्त्य लोक में पतन प्राप्त किया करते हैं। जब इस संसार में पुण्य पतन हो जाता है तो उनमें पतितों को दैव वश बुद्धि उत्पन्न हो जाया करती है। वह बुद्धि गुणत्रय मयी होनी है। हे विप्रगण ! जिस प्रकार से सत्वासत्व युक्त भव वाल जन्म ग्रहण किया करता है। हे द्विजगण ! वे मनुष्य राजस और तामस ही जानने चाहिये ।८८-६२।

एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमिता बहुवो जनाः ।
यदृच्छयादैवगत्या शिवं संयेवते नरः ।६३
शिवध्यानपरायणां च नराणां यतचेतसाम् ।
मायानिरसनसद्योभविष्यति न चान्यथा ।६४
मायानिरसनात्सद्यो न यत्येव गुणत्रयम् ।
यदागुणत्रयातीतोभवतीति स मुक्तिभाक् ।६५
तस्माल्लिंगार्चनं भात्र्यसर्वेषामपिदेहिनाम् ।
लिंगरूपी शिवोभूत्वात्रायते सचराचरम् ।६६
पुरा भवद्भिः पृष्टोऽहं लिंगरूपीकथंशिवः ।
तत्सर्वं कथित विप्र याथातथ्येन सम्प्रति ।६७

कथं गर भक्षितवाञ्छिवो लोकमहेश्वर।
तत्सर्वं श्रूयतां विप्रा यथावत्कथयामि वः।९८

इस प्रकार से इस संसार के चक्र में बहुत-से मनुष्य भ्रमण किया करते हैं। देवगति से यतृच्छा से मनुष्य भगवान शिव का संसेवन किया करता है। जो नर भगवान् शिव के ध्यान में परायण होते हैं और संयत चित्त वाले होते हैं उनकी माया का निरसन तुरन्त ही हो जायगा—इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से नहीं होता है। जब माया का निरसन हो जाता है तो तुरन्त सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों का नाश हो जाया करता है। जब मनुष्य गुणों से अतीत हो जाया करता है तो वह मुक्ति के प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी हो जाता है। इसलिए समस्त देहधारियों को शिव लिंग का अर्चन अवश्य ही करना चाहिये। लिंग रूपी शिव होकर इस चराचर जगत् का त्राण किया करता है। पहिले मुझसे आप लोगों ने पूछा था कि यह भगवान् शिवलिंग के स्वरूप को धारण करने वाले कैसे हुए थे ! हे विप्रगण ! वह सभी कुछ उस समय में यथातथा रूप से आप लोगों को कहकर बतला दिया है। लोक महेश्वर भगवान शिव ने गरल को भक्षण कैसे किया था—इस सबको भी हे प्रिय वृन्द ! आप श्रवण करिये। मैं यथा-वत् सब आपको बतला रहा हूँ।९३-९८।

९—गुरु की अवज्ञा से इन्द्र का राज्य भंग

एकदा तु सभामध्येआस्थितोदेवराट्स्वयम्।
लोकपालैः परिवतोदेवैश्चऋषिभिस्तथा।१
अप्सरोगणसवोदो गन्धर्वैश्च पुरस्कृतः।
उपगीयमानविजयः सिद्धविद्याधरैरपि।२
तदाशिष्यैः परिवृतो देवराजगुरुः सुधीः।
आगतोऽसो महाभागोवृहस्पतिरुद्धारधीः।३

तं हृवष्टा सहसाः देवा प्रणेसुः समुपस्थिताः ।
इन्द्रोपिदहृशे तत्र प्राप्त बाचस्पतितदा ।४
नोवाच किञ्चदृदुमंधावचो मानपुरः सरम् ।
नाह्वान नासन तस्य न विसजनमेवच ।५
शक्रं प्रमत्तंजात्वाऽथ मद्राज्यस्य दुर्मतिम् ।
तिरोध नमनुप्राप्तो वृहस्पतीरुषान्वितः ।६
गते देवगुरौतस्मिन्विमनस्काऽभवन्सराः ।
यक्षनागाः सगन्धर्वाश्रृषयोऽपितथाद्विजाः ।७

महर्षि लोमश ने कहा—एक बार सभा में देवराज इन्द्र स्वयं समास्थित हो रहे थे। उनके चारों ओर लोकपाल, देव और ऋषि-गण विराजमान थे। वह अप्सराओं के नृत्य को देखने में मग्न थे गन्धर्वगण आगे गमन कर रहे थे और सिद्ध तथा विद्याधरों के द्वारा उनके विजय गण का गान हो रहा था। उसी समय शिष्यों के सहित देवराज के सुधी गुरुदेव उकार बुद्धि वाले महाभाग वृहस्पति वहाँ पर समागत हो गये थे ।१-३। उनको देखकर सब देवगण सहसा उठ खड़े हुए और सबने उनको प्रणाम किया था। उस समय वहाँ पर प्राप्त हुए वाचस्पति को इन्द्रदेव ने भी स्वयं देखा था किन्तु उस दुष्ट बुद्धि वाले ने मानपूर्वक उनसे कुछ भी नहीं कहा था। न तो उनका कुछ स्वागत ही किया—न आसन दिया और न उनकी विदाई ही की। इसके अनन्तर वृहस्पतिजी ने इन्द्र को राज्य के मद के प्रमत्त दुर्मति समझकर क्रोध से युक्त होकर अपना तुरन्त ही वहाँ से तिरोधान कर लिया था ।४-६। देव गुरु के चले जाने पर समस्त सुरगण बहुत ही उदास हो गये थे। सब यक्ष, नाग, गन्धर्व, ऋषिवृन्द और द्विजगण विमनस्क हो गये थे ।७।

गान्धर्वस्यावसानेतु लब्धसंज्ञोहरिः सुरान् ।
संप्रच्छत्वरितेनैत क्व गतो हि महातपाः ।८

तदैव नापदेनोक्तः शक्रो देवाधिपस्तथा ।
त्वयाकृताह्यवज्ञः चगुरोनांस्त्यत्र संशयः ।६
गुरोरवज्ञा राज्यं गत ते बलसूदन ।
तस्मात्क्षमापानीयोऽसौ सर्वभावेन हि त्वया ।१०
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यनारदस्य महात्मनः ।
आसनात्सहसोत्थायतैः सर्वः परिवारितः ।
आगच्छत्वरया शक्रो गुरोगेंहमतन्द्रितः ।११
पृष्ट्वा ताराप्रणम्यादो क्वागतो हि महातपाः ।
न जानामीत्युवाचेदं तारा शक्रं निरीक्षती ।१२
तदा चिन्तःन्वितोभूत्वाशक्रः स्वगृहमाव्रजत् ।
एतस्मिन्नन्तरे स्वर्गंह्यनिष्टान्युद्भुतानि च ।१३
अभवन्हर्वंदुःखार्थी शक्रस्य च महात्मन ।
पातालस्थेन वलिना ज्ञात शक्रस्य चेष्ठितम् ।१४
ययौ दैत्येः परिवृतः पातालदमराबतीम् ।
तदा युद्धमतीबाऽऽसीद्दबानां दानवैः सह ।१५

गन्धर्वों का गायन जब समाप्त हो गया तो उस समय में इन्द्र को कुछ होश आया था और उसने देवताओं से शीघ्र ही पूछा था--महान तपस्वी गुरुदेव कहाँ चले गये हैं ? उसी समय में देवर्षि नारदजी ने देवों के स्वामी इन्द्रदेव से कहा था--तुमने गुरु की अवज्ञा की है--इसमें कुछ भी संशय नहीं है । हे बलसूदन ! तेरा राज्य वसुदेव की अवज्ञा से गया है। इसलिये आपको अब सर्वतोभाव से उनसे क्षमामांगनी चाहिये । महात्मा श्री नारद जी के इस वचन का श्रवण करके वह अपने आसन से सहसा समुत्थित हो गया था और उन सबके साथ बड़ी ही शीघ्रता से इन्द्र अतन्द्रित होकर गुरुदेव के घर में आया था सर्व प्रथम गुरु पत्नी तारा को प्रणाम करके उसने पूछा था—महान तपोमूर्ति

गुरुदेव इस समयमें कहाँ चले गये हैं ? तारा ने इन्द्र को देखते हुए यही उत्तर दियाथा कि मैं नहीं जानती हूं । उस समयमें परमचिन्तामें समन्वित होकर इन्द्र वापिस अपने घरमें आ गये थे । इसी बीच स्वर्गमें अत्यद्भुत अनिष्ट हुए थे जो सब प्रकारके दुःखोंके लिए ही महात्मा इन्द्र को हुये थे । पाताल में स्थित बलि ने इन्द्र की इस दुश्चेष्टा को समझ कर वह पाताल से दैत्यों से परिवृत होता हुआ अमरावती में आ गया था । उस समय में देवों का दानवों के साथ घोर युद्ध हुआ था ।८-१५।

देवाः पराजिता दैत्यैः राज्यं शक्रस्य तत्क्षणात् ।
सम्प्राप्तं सकलं तस्म मूढस्य च दुरात्मनः ।१६
नीतं सर्वप्रयत्नेन पातालं त्वरितं गताः ।
शुक्रःप्रसादात्ते सर्वे तथा विजयिनोऽभवन् ।१७
शक्रोऽपि निःश्रिकोजातोदेवैस्त्यक्तस्तनोभृशम् ।
देवीतिरोधानगतावभव कमलेक्षणा ।१८

ऐरावती महानागस्तथैवोच्चैः श्रवा हयः ।
एवमाद नि रत्नानि अनेकानि बहून्यपि ।१९
नातानिसहसादैत्यैर्लोभादसाधुवृत्तिभिः ।
पुण्यभाञ्जि च तान्येवपतितानि च सागरे ।
तदा स विस्मयाविष्ठो बलिराह गुरुम्प्रति ।२०
देवान्निर्जित्य चास्माभिरानीतानिवहूनि च ।
रत्नानि तु समुद्रेऽथपतितानि तद्भुतम् ।
बलेस्तद्वचनं श्रुत्वा उशना प्रत्युवाचत्तम् ।२१

दैत्यों के द्वारा सब देवगण पराजित हो गये थे और दुरात्मा महामूढ़ इन्द्र का सम्पूर्ण राज्य दैत्यों ने प्राप्तकर लिया था वे सब राज्य के सम्पूर्ण वैभव को लेकर शीघ्र ही वापिस पाताल लोक को चले गये थे । दैत्यों के गुरुदेव शुक्राचार्य के प्रभाव से सब दैत्यगण विजयी हो गये थे । इन्द्र भी श्रीहीन हो गया था और समस्त देवों के द्वारा

वह त्याग दिया था। लक्ष्मी देवी भी वहाँ से छिपकर लुप्त हो गई थी। महानाग ऐरावत तथा उच्चैश्रवा अश्व आदि इस प्रकार से अनेक बहुत से रत्न भी सहसा दैत्यों ने जो असाधु चरित्र वाले थे। ये सब रत्न परम पुण्यात्मा के ही उपभोग करने के योग्य थे इसलिए वे सब सागर में पतित हो गये थे। उस समय में अतीव विस्मय से समाविष्ट होकर राजा बलि ने गुरुदेव मुक्राचार्य जी से कहा था।१६-२०। हे गुरुदेव ! देवों को युद्ध में जीतक' हमने ये सब रत्न प्राप्त किये थे किन्तु ये सभी रत्न स मुद्र में गिर गये हैं—वह एक अदभुत घटना है। दैत्यराज बलि के इस वचन का श्रवण करके शुक्राचार्य ने उसको इसका उत्तर दिया था।२१।

अश्वमेधशतेनैव सुरराज्यं भविष्यति।
दीक्षितस्य न सन्देहस्तस्माद्भोक्ता स एवच।२२
अश्वमेघ विना किञ्चित्स्वर्गं भोक्तं न पार्यते।२३
गुरोर्वचनमाज्ञाय तूष्णींभूतो वलिस्ततः।
वभूव देवैः सार्द्धं च यथोचितमकारयत्।२४
इन्द्रोऽपिशोच्यताप्राप्नोजगाम परमेष्ठिनम्।
विज्ञापयामासत थांसर्वं राज्यभयादिकम्।
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा परमेष्ठी उवाच हि।२५
संमिलित्वा सुरान्सर्वास्त्वया साक त्वरान्विताः
आराधनार्थं गच्छामो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।२६
तथेति गत्वा ते सर्वंशक्राद्यालोकपालकाः।
व्रह्माणं च पुरस्कृत्य तटं क्षीं रावर्णस्य च।२७
प्राप्योपविश्य ते सर्वे हरि स्तोतुं प्रचक्रमुः।२८

सौ अश्वमेध यज्ञों के करने पर ही सुर राज्य के वैभव का आनन्द प्राप्त होगा जबकि इस प्रकार से दीक्षित तुम ही जाओगे।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । इससे इन समस्त रत्नों का भोक्ता वह ही होता है जो सौ अश्वमेव कर लिया करता है । बिना अश्वमेघ यज्ञ का स्वर्ग का सुख भोग किया जा सकता है ।२२-२३। गुरुदेव के इस वचन का श्रवण करके दैत्यराज वलि चुप हो गया था और देवों के साथ उसने यथोचित व्यवहार कराया था ।२४। देवराज इन्द्रभी परम शोकको प्राप्त होकर परमेष्ठी ब्रह्माजी के पास गया था और वहां जाकर सब राज्य-भय आदि की घटना का समाचार सुनाया था । इन्द्र-देव के इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—।२५। अत्यन्त शीघ्रता से समन्ति होकर समस्त सुरों के साथ मिलकर सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णु की समाराधना करने के लिए चलें । ऐसा ही करना चाहिए—यह विचार कर वे सब इन्द्र आदि लोकपाल ब्रह्माजी को अपना अग्रगामी बना कर क्षीर सागर के तट के समीप वहां बैठकर उन सबने श्री हरि का स्तवन करना आरम्भ कर दिगा ।२६-२८।

देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत ।
पुण्यलोकाव्ययानन्त परमात्मन्नमोऽस्तुते ।२६

यज्ञोऽसि यज्ञरूपोऽसियज्ञांगोऽसि रमापते ।
ततोऽद्य कृपताविष्णोदेवानां वरदोभव ।३०

गुरोरवज्ञयाचाद्य भ्रष्टराज्यः शतक्रनुः ।
जातः सुरर्षिभिः साकं तस्मादेन समुद्धर ।३१

गुरोरवज्ञया सर्वं नश्यतीति किमद्भुतम् ।
ये पापिनोह्यधर्मिष्ठाः केवलं विषयात्मकाः ।
पितरौ निन्दौ यैश्च तिदै वास्ते न संशयः ।३२

अनेन यत्कृत ब्रह्मन्सद्यस्तत्फलमागतम् ।
कर्मणा चास्य शक्रस्य सर्वेषां संकटागमः ।३३

विपरीतो यदा कालः पुरुषस्य भवेत्तदा।
भूतमैत्री प्रकुर्वन्ति सर्वकार्यार्थसिद्धये ।३४
तेन वै कारणेनेन्द्र मदीयं वचन कुरु।
कार्यहेतोस्त्वया कार्यो दैत्यैः सह समागमः ।३५

ब्रह्माजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं। सुर और असुर सभी आपको नमस्कार करते हैं। हे पुण्य श्लोक ! आप विनाश रहित हैं और अनन्त स्वरूप वाले हैं। हे परमात्मन् ! आपको हम सबका नमस्कार है ।२६। आप यज्ञ स्वरूप हैं और स्वयं ही साक्षात् यज्ञ हैं। हे रमापते ! आप यज्ञ के अंग हैं। इसलिये हे विष्णो ! आज परम कृपा करके इस समस्त देवों को वरदान देने वाले हो जाइये। अब अपने गुरुदेव की अवज्ञा करने के कारण इन्द्र अपने राज्य से भ्रष्ट हो गये हैं। यह सुरर्षियों के सहित अत्यन्त ही हीन दशा को प्राप्त हो गया है। इसलिये आप सब कृपा करके इसका उद्धार कर दीजिये ।३०-३१। श्री भगवान् ने कहा—गुरु की अवज्ञा करने से सभी कुछ नाश को प्राप्त हो जाया करता है—इसमें अद्भुत क्या बात है। जो पापी और अधर्म्मिष्ठ हैं तथा केवल विषयात्म ही हैं अर्थात् विषयों के उपभोग करने में ही लिप्त रहा करते हैं और जिन्होंने अपने माता-पिता की निन्दा की है वे निर्दैव अर्थात् भाग्यहीन ही होते हैं—उसमें कुछ भी संशय नहीं है ।३२। इस इन्द्र ने जो कुछ भी किया है उस कर्म का तुरन्त ही इसे फल भी प्राप्त हो गया है। इस इन्द्र के ही इस दुष्कर्म से आप सभी को संकट प्राप्त हो गया है ।३३। जिस समय पुरुष का विपरीत काल आकर उपस्थित हो जावे वे उस समय में समस्त कार्यों को अर्थ सिद्धि के लिये मनुष्य भूत मैत्री अर्थात् समस्त प्राणि मात्रों से मित्रता का व्यवहार करना चाहिये। हे इन्द्र ! इस कारण से अब तुम मेरा वचन स्वीकार करो। कार्य के हेतु तुमको दैत्यों के साथ समागम कर लेना चाहिये ।३४-३५।

एवं भगवताऽऽदिष्टः शक्रः परमबुद्धिमान् ।
अमरावतीं ययौहित्वा सुतलं दैवतैः सह ।३६
इन्द्रं समागतं श्रुत्वा इन्द्रसेनो रुषान्वितः ।
वभूव सह सैन्यैन् हन्तुकामः पुरन्दरम् ।३७
नारदेन तदा देत्या बलिश्च बलिनां वरः ।
निवारित स्तद्वधाच्च वाक्यैरुच्चावचैस्तथा ।३८
ऋषस्तस्यैव वचनात्त्वक्तसन्युर्वलिस्तदा ।
बभूव स सैन्येन आगतो हि शतक्रतुः ।३६
इन्द्रसेनेन दृष्टोऽसौ लोकपालैः समावृतः ।
उवाच त्वरयायुक्त प्रहसन्निव दैत्यराट् ।४०
कस्मादिहागतः शुक्र ! सुतलं प्रतिकथ्यताम् ।
तस्यैतद्वचनश्रुत्वास्मयमान उवाचतम् ।४१
वयं कश्यपदायादा यूयं सर्वे तथैव च ।
यथा वयं तथा यूयं विग्रहोहि निरर्थकः ।४२
मम राज्यं क्षणेनैव तीतं दैवशात्वया ।
तथा ह्येतानि तान्येव रत्नानि सुवहुन्यपि ।
गतानि तत्क्षणादेव यत्नानीतानि वै त्वया ।४३

परम बुद्धिमान इन्द्र ने इस भाँति भगवान के द्वारा समादिष्ट होकर अपनी अमरावती का त्याग करके वह देवगणों के साथ सुतल को चले गये थे। वहाँ पर इन्द्र को समागत सुनकर इन्द्रसेन क्रोध से युक्त होकर इन्द्र को हनन करने की कामना वाला होकर अपनी सेना के साथ हो गया था। उस समय से देवर्षि नारद के द्वारा दैत्यगण और बलियों में परम श्रेष्ठ बलि को उसके वध से ऊँचे नीचे वाक्यों के द्वारा निवारत कर दिया गया था। उस समय उसी ऋषि के वचन से राजा बलि ने अपना क्रोध त्याग दिया था। इन्द्र अपनी सेना के साथ-समागत हुआ था। इन्द्रसेन ने लोकपालों से उसे समावृत देखा था यह

दैत्यराज बहुत शीघ्रता के साथ हँसते हुए ही वह बोला था। हे इन्द्र ! आप इस सुतल लोक में किस कारण समागत हुए हैं— यह बतलाइये। उसके इस वचन को श्रवण करके मुस्कराते हुए इन्द्रदेव ने उससे कहा था।३६-४२। हम सभी लोग महर्षि कश्यप के दामाद हैं और आप भी सब लोग उसी भाँति के हैं। जैसे हम हैं वैसे ही आप भी सब लोग हैं। हमारे आपके बीच में विग्रह निरर्थक ही है। दैव वश एक ही क्षण में आपने मेरा सम्पूर्ण राज्य ले लिया था उसी भाँति बहुत से वे ही रत्न है, जो आपने ही बड़े यत्न से समानीत किये थे। वे सभी इसी क्षण में चले गये हैं।४३।

तस्माद्विमर्शः कर्तव्यः पुरुषेणविपश्चिता।
विमर्शाज्जायते ज्ञातं ज्ञानान्मोक्षो भविष्यति।४४
किंतु मे वत उक्तेन जाने नच तवाग्रतः।
शरणार्थी ह्यहं प्राप्तं सुरैः सहतवान्तिक्रम्।४५
एतच्छ्रुत्वा तु शक्रस्यवाक्यंवाक्यविदां वरः।
प्रहस्योवाचमतिमाञ्छक्र प्रतिविदांवरः।४६
त्वमायतोऽसि देवेन्द्र किमर्थं तन्न वेद्म्यहम्।४७
शक्रस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यश्रुपुणाकुलेक्षणः।
किञ्चिन्नोवाच तत्रैनं नारदो वाक्यमब्रवीत्।४८
वले त्वं किनजानासिकार्याकार्यविचारणाम्।
धर्मो हि महमेषशरणागतपालनम्।४९
शरणागतं च विप्रं च रोगिणं वृद्धमेव च।
य एतान्न च रक्षन्ति ते वै ब्रह्मणो नराः।५०
शरणागतशब्देन आगतस्तव सन्निधौ।
संरक्षणाय योग्यश्च त्वया नास्त्यत्र संशयः।
एवमुक्तो नारदेन तदा दैत्यपतिः स्वयम्।५१

इसलिए विद्वान् पुरुष को विमर्श अवश्य ही करना चाहिये । विमर्श करने से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर ही मोक्ष होगा ।४४। किन्तु मेरा यह केवल ही है उससे क्या होगा । मैं तो आपके आगे कुछ भी नहीं जानता हूँ । मैं तो देव वृन्द के साथ आपके समीप शरणार्थी होकर आया हूँ ।४५। वाक्यों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ और विद्वानों में उत्तम वह मतिमान इन्द्र के इस वचन का श्रवण कर हँसते हुए इन्द्रदेव से यह बोला—हे देवेन्द्र ! तुम यहाँ किस योजना से आये हो—यह मैं नहीं जानता हूँ ।४६-४७। इन्द्र उसके वचन का श्रवण करके आँसुओं से अपनी आँखे भर कर कुछ भी न बोला वहाँ पर इससे देवर्षि नारदजी ने यह वचन कहा था—।४८। हे बले ! क्या कार्य (करने के योग्य) और अकार्य (न करने के योग्य) की विचारणा को नहीं जानते हो ? महान् पुष्पों का यही धर्म होता है कि जो भी कोई शरणागत हो उसका पूर्ण पालन करे । शरण में समागत विप्र रोगी और वृद्ध पुरुष, इनकी जो रक्षा नहीं करता है वे मनुष्य ब्राह्मणघाती हुआ करते हैं । वह इन्द्र तो शरणागत शब्द से आपकी अन्निधिमे प्राप्त हुआ है और आप इसके संरक्षण के लिए परम योग्य भी हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इस प्रकार जब श्री नारद जी द्वारा दैत्यपति से कहा था तब उसने स्वयं विचार किया था ।४९-५१।

विमृश्व परया बुद्धया कार्याकार्यविचारणम् ।
शक्रं प्रपूजयामास बहुमानपुरः सरम् ।
लोकपालैः समेतं च तथा सुरगणैः सह ।५२
प्रत्ययार्थं च सत्वानि ह्यनेकानि व्रतानि वै ।
वलिप्रत्ययभूतानि च चकार पुरन्दरः ।५३
एवं स समयं कृत्वाशक्रः स्वार्थपरायणः ।
वलिनां सहैचावात्सीदर्थशास्त्रपरी महान् ।५४

एवं निवसतस्तस्य सतलेऽपि शतक्रतोः ।
वत्सरा बहवोह्यासस्तदा बुद्धिमकल्पयत् ।
संस्मृत्य वचनं विष्णोर्विमृश्य च पुनः पुनः ।५५
एकदातु सभामध्य आसीनोदेवराट् स्वयम् ।
उवाचप्रहसन्वाक्यबलिमुद्दिश्यनीतिमान् ।५६

दैत्यों के राजा बलि ने अपनी पराबुद्धि से कार्याकार्य के विचार का विमर्श करके फिर उसने बहुमान पूर्वक इन्द्र की पूजा की थी और समस्त लोकपालों एवं सुरगणों का भी परम समादर किया था ।५२। उस इन्द्रदेव ने दैत्यराज बलि के विश्वासके स्वरूप वाले उसके विश्वास को समुत्पन्न करने के ही लिए इन्द्रदेव ने अनेक सत्व व्रतों को उस समय वहाँ पर किया था । इस प्रकार से परम स्वार्थ में परायण इन्द्र ने सन्धि करके महान अर्थशास्त्र में परायण वह पुरन्दर वही पर बलि दैत्यराज्य के साथ ही निवास करने लग गया था ।५३-५४। इस रीति से सुतल लोक में दैत्यों के राजा बलि के साथ निवास करते हुए उस इन्द्र देवराज को बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे । उस समय फिर उसने अपनी बुद्धि से विचार किया था । जबकि भगवान् विष्णु के कहे वचनों का उसे संस्मरण हुआ था और बारम्बार उसने उस पर विचार किया था । एक बार वह देवराज सभा में विराजमान थे । नीति में निपुण इन्द्र ने उस समय में दैत्यराज बलि का उद्देश्य करके हँसते हुए यह वाक्य कहा था ।५५-५६।

प्राप्तव्यात्रत्वयावीरअस्माकं च त्वयावलले ।
वज्रादीनिबहून्ययेव रत्नानि विविधानि च ।५७
गतानि तत्क्षणादेवसागरेपतितयानि वै ।
प्रयत्नो हि प्रकर्तव्योह्यस्नाभिस्त्वगयान्वितैः ।५८
तेषां चोद्धरणे दैत्य रत्नानामिह सागरात् ।

तर्हि निमंथनं कार्यंभवताकार्यंसिद्धये ।५९
वलि प्रर्वातित स्तेनशक्रेण सुरसूदनः ।
उवाच शक्रं त्वरितः केनेद मथनं भवेत् ।६०
तदा नभोगतावाणीपृघगंभीरनिःस्वना ।
उवाच देवादैत्याश्च मन्थध्व क्षीरसागरम् ।६१
भवता वलवृद्धिश्च भवष्यति न संशयः ।६२
मन्दरञ्चै वमन्थानरज्जुं कुरुतवासुकिम् ।
पश्वाद् देवाश्चदैत्याश्चसेलयित्वाविपथ्यताम् ।६३
नभोगतां तु तां वाणी नशम्याथतदा सुराः ।
दैत्यैः साद्धततः सर्वं उद्यमं चक्रुरुद्यताः ।६४

हे दैत्यराज बोले ! आप बड़ें वीर पुरुष हैं हमारे जोरत्न हैं वे आप को अवश्य ही प्राप्तकर लेने चाहिये । ऐरावत आदि बहुतसे अनेक परम सुन्दर रत्न विद्यमान हैं । वे सब चले गये हैं और सागर में जाकर पतित हो गये हैं । अब उनको प्राप्त करनेके लिये हम सभीको बहुतही शीघ्रता के साथ अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए । हे दैत्यराज ! उन रत्नों का सागर से उद्धरण करने के लिये अब आपको कार्य सिद्धि के लिये समुद्र का निर्मंथन करना ही चाहिए ।५७-५९। वह सुरसूदन दैत्यराज बलि उस इन्द्रदेव के द्वारा प्रर्कत्तित किया गया था वह फिर इन्द्रसे बोला था कि वह निमर्थन किसके द्वारा होगा ।६०। उस समय मेघके समान परम गम्भीर ध्वनि वाली आकाश वाणी ने कहा था—'हे देववृन्द ! और हे दैत्यगण ! अब आप लोग क्षीर सागर का मन्थन करो, इसके करने से आप लोगों के बल की वृद्धि होगी—इसमें तनिक भी संशय नहीं हैं । आप लोग इस क्षीर सागरका मन्थन करनेके लिए मन्दराचलकी मन्थनी बनाइये और वासुकि सर्पराजको रज्जुकरिये । इसके पश्चात् देवता और दैत्यगण सब मिलकर सागर का मन्थन करो । इस तरहकथितआकाशवाणी

को उसी समय श्रवण कर देवों ने दैत्यों के साथ मन्थन करने के लिए उद्यम किया था ।६१-६२।

१२—लक्ष्मी देवी का आविर्भाव

पुनः सर्वे सुसंरब्धाममन्थुः क्षीरसागरम् ।
मथ्यमानात्तदा तस्माददुदधेश्व तथाऽभवत् ।१
कल्पवृक्षः परिजातश्चूतः सन्तानकस्तथा ।
तान्द्रुमानेकतः कृत्वा गन्धर्वनगरोपमान् ।
मनन्थुरुग्रे त्यरिताः पुनः क्षीराणेवं बुधाः ।२
निर्मथ्यमानादुदधेर भवत्सूर्यवर्चसम् ।
रत्नानामुत्तमं रत्नं कौस्तुभाख्यं महाप्रभम् ।३
स्वकीयेन प्रमाशेन भासयन्तं जगत्त्रयम् ।
चिन्तामणिपुरस्कृत्य कौस्तुभं ददृशुर्हिते ।४
सर्वसुराददुस्तं व कौस्तुभंविष्णवेतदा ।
चिन्तामणिततः कृत्वां मध्ये चैवसुरासुराः ।
दमन्थुः पुनरेवाब्धि गर्जन्तस्ते बलोत्कटाः ।५
मध्यमानात्ततस्तस्मादुच्चैः श्रयाः समुद्भुतम् ।
व भूव अश्योरत्नानां पुनश्चैरावतो गजः ।६
तथैवगजरत्नं च चतुःषष्ट्यासमन्वितम् ।
गजानांपान्डुराणां च चतुर्दन्तमदान्वितम् ।७

महर्षि लोमश जी ने कहा-फिर सभी देव और दैत्यगण ने सुसंरब्ध होकर क्षीर सागर का मन्थन किया था। उस समय में मन्थन किये गये उस सागर से उस प्रकार से हुआ था कि कल्प वृक्ष, पारिजात, सन्तानक, आम ये वृक्ष समुत्पन्न हुये थे। उन सब द्रुमों को एक जगह करके जो गन्धर्व नगर में तुल्य थे फिर देवगण ने बहुत ही शीघ्र उग्रता से उस क्षीर सागर का मन्थन किया था।

१।२। उस निर्मथ्यमान सागर से सूर्यदेव के समान वर्चस वाला समस्त रत्नों में परम श्रेष्ठ रत्न महती प्रभा से समन्वित कौस्तुभ समुत्पन्न हुआ था। अपने प्रकाश से तीनों भुवनों को भासित करते हुए चिन्ता-मणि रत्न को आगे करके उन्होंने कौस्तुभ को देखा था। सब सुरों ने उस कौस्तुभ मणि को उसी समय भगवान् विष्णु को समर्पित कर दिया था। इसके अनन्तर चिन्तामणि को मध्य में करके उन सुर और असुरों ने जो परम बल से उत्कट थे गर्जना करते हुये फिर उस सागरका मन्थन किया था।३-५। इसके उपरान्त मन्थन किये गये उस समुद्र से उच्चैः श्रवा अश्व समुद्भुत हुआ था जो एक उन रत्नों में से था। इसके पश्चात् ऐरावत हाथी समुत्पन्न हुआ था।६। उसी प्रकार से चौंसठ से से समन्वित गजरत्न जो पाण्डुर गजों में चतुर्दस्त और मदान्वित था, उदधि से समुत्पन्न हुआ था।७।

तान्सर्वान्मध्यतः कृत्वा तुनाश्चैव ममन्थिरे।
निर्मंथ्यमानादुदधेर्निघतानि वहून्यथ।८
मदिरा विजया भ्रंगी तथा लशुनगंजनाः।
अतीव उन्मादकरो धत्तूरः पुष्करस्तथा।९
स्थापितानैकपद्येनतीरेनदनदीपतेः।
पुनश्चतेतत्रमहासुरेन ममन्थुरब्धिसुरत्तमैः सह।१०
निर्मच्यमानादूदमेस्तदासीत्सा दिव्यलक्ष्मीर्भुवनैकनाथा।
आन्वीक्षिकीं ब्रह्मविदो वदन्ति तथा चान्ये मूलविद्यां गृणन्ति।११।
ब्रह्मविद्यां केचिदाहुः समर्थाः केचित्सिद्धिमाज्ञामथाशाम्।
याँ वैष्णवींयोगिनः केचिदांहुस्तथा च मांयां मायिनी नित्य-युक्ताः।१२
वदन्ति सर्वे चेन सिद्धांन्तयुक्तां यां योगमायां ज्ञानशक्त्या-न्विता ये।१३

ददृशुस्तांमहालक्ष्मीमायान्तीपनकैस्तदा ।
गौरां च युवतोस्निग्धांपद्मकिंजल्कभूषणम् ।१४

उस सबको मध्य में करके उन्होंने मन्थन किया था। इस तरह से निर्मंथ्यमान सागर से बहुत से रत्न निकले थे। मदिरा, विजया, भृंगी, लहसुन, (गाजर) और अन्यन्त उन्मादके करने वाला धतूरा तथा पुष्कर सागर से निकले थे। ये सब एक ही साथ नदी-नदी पति अर्थात् सागर के तटपर स्थापित किये गये थे। फिर वहाँ पर महान असुरेन्द्रोंने देवगणों के साथ मिलकर उस सागर का मन्थन किया था।८-१०। उस समय मन्थन किये गये सागर से वह दिव्य लक्ष्मी प्रकट हुई थी जो भुवनों की एक मात्र स्वामिनी है। ब्रह्म वेत्ता इस देवी को आन्विक्षिनी कहा करते हैं तथा अन्य लोग इसी देवी को मूल विद्या इस नाम से ग्रहण किया करते हैं।११। कुछ लोग इस देवी को ब्रह्म विद्या कहते हैं और कुछ समर्थ लोग इसको ऋषिं एवं सिद्धि कहते हैं तथा आशा करते हैं। योगी लोग जिसको वैष्णवी देवी कहते हैं और कुछ नित्य युक्त मायी लोग बसको "माया"—इस नाम से पुकारते हैं। केनोपनिषत् के द्वारा प्रतिपाद्य सिद्धान्त (उमा शब्द वाच्य ब्रह्मविद्या) से युक्त जिस देवी को ज्ञान की शक्ति से समन्वित जो लोग हैं वे योग माया कहते हैं।१२-१३। उस समय आती हुई उस महालक्ष्मी को जो गौर वर्ण वाली, युवती, स्निग्धा पद्मकिंजल्क के भूषणों वाली थी, धीरे से सबने देखा था अर्थात् सबको उस देवी के दर्शन हुए थे।१४।

आलोकितास्तथा देवास्तया लक्ष्मया श्रियान्विताः ।
सञ्जतास्तत्क्षणादेव राज्यलक्षणलक्षियाः ।१५
दैत्यास्ते नि श्रिका जाता ये श्रियाऽनवलोकिताः ।१६
निरीक्ष्यमाणा च तदा मुकुन्दं तमालनील सुकपोलनासम् ।
विभ्राजमान वपुषा परेण श्रीवत्सक्ष्मं सदयावलोकम् ।१७

दृष्ट्वा तदैव सहसा वनमालयान्विता लक्ष्मीर्गजादवततार
सुविस्मयन्ती ।
कण्ठे ससर्ज पुरुषस्य परस्य विष्णोर्माला श्रिया विरचितां
भ्रमररुपेताम ।१८
वामांगमांश्रित्य तदा महात्मन सोपाविशत्तव
समीक्ष्य ता उभौ ।
सुराः सदैत्या मुदमापुरद्भुतां सिद्धाप्सरः
किन्नरचारणाश्च ।१९

उस सती महा लक्ष्मी देवी ने उन सब देवगणों—दानवों और सिद्ध—चारणों एवं पन्नगों को जिस तरह से माता अपने पुत्रों को देखा करती है उसी भांति देखा था । लक्ष्मी देवी ने श्री से समास देवों का अवलोकन किया था । उसी क्षण में वे सब देवगण राज्य लक्षणों से लक्षित हो गये थे ।१५। वे सब दैत्यगण जो श्री के द्वारा अवलोकित नहीं हुए थे निःश्रीक अर्थात् श्री हीन हो गये थे ।१६। उस समय भगवान् मुकुन्द को जो तमाल के समान नीलवर्ण वाले—सुन्दर कपोल और नासिका के युक्त परमोन्नम वपु से बिभ्राज्य मान, श्री वत्स के वक्षःस्थलमें चिह्नवाले तथा दया पूर्वक सबका और अवलोकन करने वाले थे ऐसे भगवान् का निरीक्षण करती हुई महालक्ष्मी तुरन्त ही उसी समय बन माला से समन्धित होकर मुस्कराती हुई गज से नीचे उतर गई थी और वनमाला परमदेव पुरुष भगवान् विष्णु के कण्ठ में डाल दी थी जो कि श्री देवी द्वारा विरचित की हुई और भ्रमरों के समूहों से संयुक्त थी । उस समय महान् आत्मा वाले भगवान् के कामांग में समःश्रित होकर वह देवी उपनिष्ट हो गई है । यहां पर उन दोनों देवों तक दैत्यों के दलों ने उसको देखा था । सुर और असुर, सिद्ध, किन्नर, चारण और अप्सराओं के गण ने लक्ष्मी देवी के

सहित विष्णु का दर्शन करके परम आनन्द को प्राप्त किया था अर्थात् सबको अत्यन्त ही प्रसन्नता हुई थी ।१७-१९।

सर्वेषामेवलोकानामैकपाद्येन सर्वदाः ।
हर्षो महानतभूतत्र लक्ष्मीनारायणागमे ।२०

लक्ष्म्यावतो महाविष्णुर्लक्ष्मीस्तेनैव सम्वृता ।
एवं परस्पर प्रीत्याह्यवलोककतत्परौ ।२१

शंखाश्च पटहाश्चैव मृदंगानयगोमुखाः ।
भेर्यंश्च झर्झरीणां च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।२२
बभूव गायकांना च गायनं सुमह तदा ।
ततानि वितताल्येव घनानि सुषिराणि च ।२३

एवं बाद्यप्रभेदैश्चविष्णु सर्वक्त्मना हरिम् ।
अतोषयन्सगीतज्ञागन्धर्वाप्सिरमागणाः ।२४
तथा जगुर्नारदतुम्बुरादयो गन्धवेयक्षा सुरसद्धिसंघाः ।
ससेवमानाः परमात्मरूपं नारायण देवमगाघबोधम् ।२५

उस समय लक्ष्मी नारायण के समागम के होने पर वहाँ पर समस्त लोकों को एक साथ महान हर्ष हुआ था । महान् विष्णु लक्ष्मी देवों से आवृत थे और महालक्ष्मी देवी उन विष्णु भगवान् से सवृत थीं । इस प्रकार परस्पर ये दोनों ही प्रीति पूर्वक एक दूसरे के परस्पर करने में परायण हो रहे थे ।२०-२१। उस समय चारों ओर शंख, पटह मृदंग, आनक, गोमुख, भेरी, झर्झरी—इन सब प्रकार के वाद्यों की तुमुल ध्वनि हुई थी । उस आनन्द के काल में गायक गणों के गायन का सुनहान् शब्द हो रहा था । तत-वितत-घन और सुषिर प्रभृति वाद्यों के प्रभेदों के द्वारा सबने इस रीतिसे सर्वात्म भावसे हरि विष्णु का परम तोष किया था । सुन्दर गीतों के ज्ञाता गन्धर्व, अप्सराओं के गण, नारद, तुम्बर आदि गन्धर्व, यक्ष, सुर, सिद्धों के समुदायने गान

किया था और परमात्मा के स्वरूप वाले, रगाध बोध से सूसम्पन्न देव नारायण की सबने परम सेवा की थी ।२२-२५।

११—अमृत विभाजनम् वर्णन

प्रणभ्य परमात्मान रमायुक्तं जनार्दनम् ।
अमृतार्थं ममन्थुस्ते सुरासुरेगणाः पुनः ।१
तदधेर्मंथ्यमानाच्च निर्गतः सुमायशाः ।
धन्वन्तरिरिति ख्यातो युवामृत्युञ्जय- परः ।२
पाणिम्यां पूर्णकलशसुधायाः परिगृह्य गै ।
यावत्सगैं सुराः सर्वं निरीक्षस्ते नोहरम् ।३
तदा दैत्याः समंगत्वा हर्तु कामा बलादिव ।
सुधया पूर्णकलशं धन्वन्तरिंकरे स्थितम् ।४
तावत्तङ्गमालाभिरावृतोऽभषक्तमः ।
शनैः शनैः समायातो दृष्टोऽसौ वृषपर्वणा ।५
करस्थः कलशस्तस्य हृतस्तेन बलादिव ।
असुराश्च ततः सर्वे जगजुं रतिभीषणराम् ।६
कलशं सुधया पूर्णगृहीत्वातेसमुत्सुकाः ।
दैत्याः पाताजमाजग्मुस्तदावेवाभ्रभान्विताः ।७
अनुजग्मतु सुसंनद्धायोद्धुकामाश्च तैः सह ।
तदा देवान्समालोक्य बलिरेवमभाषत ।८

महर्षि प्रवर लोमश ने कहा—रमादेवी से समन्वित परमात्मा भगवान् जनार्दन को प्रणाम करके फिर उन सुर और असुरों के गण ने अमृत की प्राप्ति करने के लिए समुद्र का मन्थन करना आरम्भ कर दिया था ।१। उस मथ्यमान उदधि से सुन्दर यक्ष से सम्पन्न, युवा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले परम 'धन्वन्तरि'—इस नाम से विख्यात निर्गत हुए थे ।२। उनके दोनों हाथों में सुधा से परिपूर्ण कलश परिगृहीत हो रहा। उनको सभी सुरगण बहुत ही सुन्दरता के साथ

देख रहे थे। उसी समय दैत्यगण एक साथ एकत्रित होकर बल पूर्वक उस अमृत के कलश को हरण करने की इच्छा वाले हो गये थे जो कि सुधा का कलश भगवान् धन्तवरि के कर में स्थित था।३४। वह भिषकों में श्रेष्ठ जब तक तरंगों की मालाओं से समावृत थे और बहुत ही धीरे-धीरे समायात हो रहे थे तभी तक वृषपर्वा ने उनको देख लिया था। उस इन्द्र ने उन धन्वन्तरि के हाथ में स्थित उस सुधा के कलश को बल पूर्वक ग्रहण कर लिया था। इसके पश्चात् सब असुरगण अत्यन्त भीषणता के साथ गर्जना करने लगे थे।५-६। उस सुधा से परिपूर्ण कलश को असुरों ने ग्रहण कर लिया था और बहुत ही उत्सुक होते हुए दैत्यगण पाताल में आ गये थे। उस समय में समस्त देवता श्रम युक्त हो गये थे। वे सभी उन दैत्योंके पीछे ही चले गये और उन दैत्यों के साथ युद्ध करने की इच्छा करने लगे थे तब बलि ने उन देवों को देखकर इस प्रकार से उनसे कहा था।७-८।

वयं तु केवलं देवाः सुधया परितोषताः।
शीघ्रमेव प्रगन्तव्यं भवद्भिश्च सुरोत्तमैः।९

त्रिविष्टपं मुदायुक्तैः किमस्माभिः प्रयोजनम्।
पुरोऽस्माभिः कृतमैत्रंभवद्भिः स्वार्थंतत्परैः।
अधुना विदित तत्तु नात्र कार्या विचारणां।१०

एव निर्भर्त्सितास्तेन बलिना सुरसत्तमाः।
यथागतेन मार्गेण जग्मुर्नारायण प्रभुम्।११
तं दृष्ट्वा विष्णुना सर्वे सुरा भग्नमनोरथाः।
आश्वासितावचोभिश्चनानामुनयकोविदैः।१२
मा त्रासं कुरुतात्रार्थं आनयिष्यामि मां सुधाम्।
एवमाभाष्य भगवान्मुकुन्दोऽनाथसश्रयः।१३
स्थापयित्वा सुरान्सर्वासतत्रैव मधुसूदनः।
मोहिनीरूपमास्थायदैत्यानामग्रतोऽभवत्।१४

वदादैत्याः सुमरब्धाः परस्परमथाब्रुवन् ।
विवादः सर्वदैत्यानममृतार्थे तदाऽभवत् ।१५

दैत्यराज बलि ने कहा—हे देवगणो ! हम तो केवल सुधा से ही पारितोषित हो गये हैं । हे सुरोत्तमो ! आप लोगों को अब यहाँ से बहुत ही शीघ्र चले जाना चाहिए । आप लोग आनन्द से मुक्त होकर अपने स्वर्गलोक में चले जाओ । अब हम लोगों से आपका क्या प्रयोजन है ? पहिले ही स्वार्थ में परायण होकर आप सबने हमारे साथ मैत्री का व्यवहार किया था । अब हमको यह सब ज्ञात हो गया है । इसलिए अब इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ।९-१०। इस सब यथागत मार्ग के द्वारा परम प्रभु नारायण के समीप में चले गये थे । भगवान् विष्णु ने उन समस्त सुरों को भग्न मनोरथों वाले देखकर अनेक अनुनय से परिपूर्ण वचनों के द्वारा भगवान् ने उन सबको समाश्वासन दिया था ।११-१२। हे देवगणो ! इस विषय में आप लोग मन में किसी भी प्रकार का त्रास मत करो । मैं उस सुधा के कलश को ले जाऊँगा । इस तरह से अनाथों को आश्रम प्रदान करने वाले भगवान् मुकुन्द ने उन सब देवताओं से कहा था, भगवान् मधुसूदन ने वहीं पर समस्त सुरों को स्थापित करके मोहिनी रूप धारण किया और उन दानवों के सामने जाकर स्थित हो गये थे । तब तक वे सब दैत्यगण सुसंरब्ध होकर परस्पर में बातचीत कर रहे थे । उस समय सब दैत्यों का उस अमृत के लिए बड़ा भारी विवाद हो गया था ।१३-१५।

एवं प्रवर्तमानेतु मोहिनीरूपमाश्रिताम् ।
दृष्ट्वा योषां तदा दैवात्सर्वभूतमनोरमाम् ।१६
विस्मयेन जमाविष्टा बभूवुस्तृपितेक्षणाः ।
तां समान्य तदा दैत्यराजो बलिरुवाच ह ।१७

सुधा त्वयाविभक्तव्या सर्वेषां गतिहेतवे ।
शीघ्रत्वेन महाभा कुरुष्व वचनं मम ।१८
एवमुक्ताह्यु वाचेद स्मयमाना बलिंप्रति ।
स्त्रीणांनैवचविश्वासः कर्तव्योहिविपश्चिता ।१९
अनतंसाहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचं निर्घृणत्वंचत्रीणांदोषा स्वभावजा ।२०
नि स्तेहत्वच विज्ञेय धूर्तत्वचैव तत्त्वतः ।
स्वस्त्रीणांचैवविज्ञेयादोषानास्त्यत्र संशयः ।२१

ऐसा होने पर उसी समय मोहिनी के स्वरूप में समाश्रित सब प्राणियों के लिए परम मनोरमा उस स्त्री को दैवात् देखकर सभी दैत्यगण अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गये थे और सब पिवासित नेत्रों वाले होकर स्थित हो गये थे। उस समय में दैत्यगण बलि ने उस मोहिनी का बड़ा भारी सम्मान किया और उससे कहा था—दैत्यराज बलि ने कहा—आपको इन सबकी भलाई के लिए इस सुधा का विभाजन कर देना चाहिए। हे महाभागे ! आप बहुत शीघ्रता से मेरे वचन को स्वीकृत कर लीजिए ।१६-१८। जब इस प्रकार से देव मोहिनी से कहा गया तो वह मुस्कराती हुई दैत्यराज वलि से बोली—विद्वान् पुरुषों स्त्रियों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि कि स्त्रियों के अमृत (मिथ्याभाषण), साहस, माया, मूर्खता, अत्यन्त लालच अशौच, निर्घृणत्व ये स्वभाव सिद्ध दोष हुआ करते हैं। स्नेह का न होना और तात्विक रूप से धूर्त्तता ये दोष भी स्त्रियों के जानने के योग्य हुआ करते हैं। ये दोष तो अपनी स्त्रियों में भी समझ लेने चाहिए—इस विषय में लेशमात्र भी संशय नहीं है ।१९-२१।

यथैव श्वापदानांचवृकार्हिसापरायणाः ।
काक यथाण्डतानांचश्वापदानांचजंबुकाः ।

धूर्ता तथा मनुष्याणां स्त्री ज्ञेया सततं बुधैः ।२२
मया सह भवद्भिश्च कथं सख्यं प्रवर्तते ।
सर्वथास्त्र न विज्ञेया के यूयं चैव का ह्यहम् ।२३
तस्माद्भवद्भिः सचिन्त्य कार्याकार्यविचक्षणैः ।
कर्तव्यंपरयाबुद्ध्याप्रायातासुतसत्तमाः ।२४
यास्त्वया कथितानार्यं ग्राम्या ग्राम्यजनप्रियाः ।
तासाँ त्वं कथ्यमग्रानानां मध्यमा नासि शोभने ! ।२५
किं त्वया बहुनोक्तेन कुरुष्व वचनंहिन ।
सा मोहनीद प्रोवाच बलेर्वाक्यादनन्तरम् ।२६
करिष्यामि च ते वाक्यं सूक्तासूक्तमिति प्रभो ! ।२७
अजामृतं च सर्वेषां विभजस्व यथायथम् ।
त्वँया दत्त च गृहणीमः सत्यं सत्यंवदामिते ।२८
एवमुक्ता तदादेवीमोहनीसर्वमंगला ।
उवाचाऽथासुरान्सर्वाचर्यल्लौकिकीस्थितम् ।२९

ज़िस प्रकार के श्वपदों के मध्य में (भेड़ियाँ) परायण हुआ करते हैं—कौए अण्डजों के मध्यों में तथा श्वपदों में जम्बुक (हिंसक वृत्ति वाले होते हैं ठीक उसी भाँति मनुष्यों में बुध पुरुषों को स्त्रियों को निरन्तर समझ लेना चाहिए ।२२। मेरे साथ आपका मित्र भाव किस तरह में प्रवृत्त रहेगा । इस विषय में हम लोग सब प्रकार से जानने के योग्य नहीं हैं । कौन लोग आप हैं और कौन मैं हूं ? इसलिए कार्याकार्य में परमकुशल आप लोगों को बहुत अच्छी तरह से विचार करके परा-बुद्धि के द्वारा ही करना चाहिए । हे असुरश्रेष्टों आप जाइए ।२३-२४। दैत्यराज बलि ने कहा—हे देवी ! आपने जो नारियों के विषय में दोष आदि के बाबत कहा है । वे ग्राम्य नारियाँ ही होती हैं और ग्राम्य जनों

को ही प्रिय हुआ करती है। आप उन कही हुई नारियों के मध्य में रहने वाली हैं ? शोभने ! नहीं ।२५। आपके ऐसे अत्यधिक कथन से क्या लाभ है ? बलि के वाक्य के अनन्तर बोली--हे प्रभो ! आपके सूक्त-सूक्त वाक्य का मैं अवश्य ही पालन करूँगी ।२६-२७। बलि ने कहा-- आज आप इस अमृत को यथातथा अर्थात् ठीक-ठीक रूप से सबको विजाजित कर दीजियेगा। आपके द्वारा दिये हुए इस अह्नत को हम सब लोग ग्रहण कर लेंगे। यह बात हम बिल्कुल आपसे सत्य सत्य कह रहे हैं। इस प्रकार से उस समय में कही हुई मंगला मोहिनी देवी समस्त असुरों से लौकिक स्थिति को रोचित करती हुई बोली ।२८-२९।

यूयं सर्वेकृतार्थाश्च जातादैवेनकेनचित् ।
अद्योपवाससंयुक्ता अमृतस्याधिवासनम् ।३०
क्रियतामसुराः श्रेष्ठाः शुभेच्छाकिञ्चिदस्तिवः ।
श्वोभूते पारणंकुर्यद्व्रतार्चनरतिश्च वः ।३१
न्यायोपार्जितवित्त न दशमांशेन धीमता ।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे ।३२
तथेति मत्वा ते सर्वे यथोक्तदेवमायया ।
चक्रुस्तथैव दैतेया मोहिता नातिकोविदाः ।३३
मयासुरेण च तदा भवनानि कृतानवै ।
मनोज्ञानि महार्हाणि सुप्रभाणि महान्तित्र ।३४
तेषूप्रविष्टास्ते सर्वे सुस्नाताः समलङ्कृताः ।
स्थापयित्वा सुसंरब्धाः पूर्णं कलशमग्रतः ।३५
रात्रौ जागरणं सर्वैः कृतं परमया मुदा ।
अथोषसि प्रवृत्ते च प्रातः स्नानयुता भवन् ।३६

असुरा बलिमुख्याश्च पङ्क्तिभूता यथाक्रमम् ।
सर्वमावश्यककृत्वातंदा पानरताभवन् ।३७

मोहिनी के स्वरूप को धारण करने वाले श्री भगवान ने कहा—आप सब लोग किसी देव के द्वारा परम सफल हो गये हैं। हे श्रेष्ठ असुर गणो ! यदि आपकी कुछ शुभेच्छा है तो आप लोग सब उपवास से संयुत होओ अर्थात् उपवास करो और इस प्राप्त हुए अमृत का अधिवासन करो। कल प्रातःकाल होने पर इस उपवास का पारण करना चाहिए। आप लोगों को व्रवार्चक की रति समुत्पन्न होगी। धीमान पुरुष के द्वारा ईश प्रीति के लिए न्याय से समुपार्जित वित्त के दशम अंश से विनियोग करना चाहिए ।३०-३२। उन सबने ऐसा ही किया जायेगा—इस तरह से जो कुछ भी देव माया ने कहा था उसको मान लिया था। उन असुरों ने मोहित होते हुए वैसा ही कुछ किया था क्योंकि वे अत्यन्त कोढ़ित तो थे नहीं ।३३। उस समय में मयासुर के द्वारा परम सुन्दर-सुन्दर प्रभा से समन्वित, विशाल एक बहुमूल्य भवनों की रचना की गई थी। उन भवनों में वे सब भलीभाँति स्नानादि करके अलंकृत उपविष्ट हो गये थे। सुसंरब्ध उन्होंने सुधा से परिपूर्ण कलश आगे स्थापित कर रात्रि में सबने बहुत ही अधिक प्रसन्नता के साथ जागरण किया था। इसके अनन्तर प्रातःकाल होने पर सब लोगों ने स्नान किया था। जिसमें बलि प्रधान था उन सब असुरों ने अपनी पंक्ति पराक्रम से बना ली थी। सभी कुछ आवश्यक कर्म करके वे सब अमृत के पान करने के लिए निरत हो गये थें ।३४-३७।

करस्थेन तदा देवी कलशेन विराजिता ।
शुशुभे परया कान्त्या जगन्मंगलमंगला ।३८
परिवेषधराः सर्वं सुरास्तेह्यसुरान्तिकम् ।
आगतास्तत्क्षणादव यत्र ते ह्यसुरोत्तमाः ।
तान्दृष्ट्वा मोहिनी सद्य उवाच प्रमदोत्तमा ।३९

एते ह्यतिथयो ज्ञेया धर्मसर्गस्वसाधनाः ।
एभ्योदेयं यथाशक्त्या यदि सत्यवचोमम ।
प्रमाणं भवतां चाद्य कुरुध्वं मा विलम्बथ ।४०
परेषामुपकारं च ये कुर्वन्तिस्वशक्तितः ।
धन्यास्ते चैव विज्ञेयाः पवित्रालोकपालकाः ।४१
केवलात्मोदरार्थाय उद्योगये प्रकुर्वते ।
ते क्लेशभागिनी ज्ञेया नात्रकार्या विचारणा ।४२

उस समय वह मोहिनी देवी अपने कर में स्थित अमृत के कलश से शोभायमान हो रही थी । वह जगन्मंगलों के भी परम मङ्गल स्वरूपिणी अपनी परमाधिक कान्ति से सुशोभित हो रही थी । परिवेष को धारण करने वाले वे समस्त देवगण, भी उन असुरों के ही समीप उसी क्षण समागत हो गये थे जहाँ पर वे असुर श्रेष्ठ विराजमान हो रहे थे । उनको देखकर वह प्रमदाओं में परमोत्तमा मोहिनी तुरन्त ही बोली थी ।३८-३९। मोहिनी ने कहा—ये सभी धर्म्म सर्वस्व के साधन करने वाले अतिथिगण हैं । इनके लिये भी गणशक्ति कुछ अवश्य ही देना चाहिये । यदि मैं वह वचन सर्वथा सत्य कह रही हूँ तो अब आज आप लोग ही सब कुछ करने के लिये समर्थ हैं जो भी कुछ आप चाहें वैसा ही करिये । अब इसमें विलम्ब मत करिये ।४०। जो लोग परम धन्य हैं । ऐसे ही लोगों को परम पवित्र और लोकों के पालन करने वाले समझना चाहिये ।४१। जो केवल अपने उदर भरने के लिये ही हुआ करते हैं ऐसा ही जानना चाहिये । इस विषय में बिल्कुल विचार नहीं करना चाहिये ।४२।

तस्माद्विभजनं कार्यं मयैवस्यशुभव्रताः ।
देवेभ्यश्च देयश्च यद्धि चात्मप्रियाप्रियम ।४३

इत्युक्ते वचने देव्यातथाचक्रु रतन्द्रिताः ।
ओह्वयामासुरसुरा सर्वान्देवान्सवासवान् ।४४
उपविष्टाश्चते सर्वे अमृतार्थंचभोद्विजाः ।
तेषूपविश्यमानेषु ह्यु वाच परमं वचः ।
मोहिनी सर्व धर्मज्ञा असुराणां स्मयन्निव ।४५
आदौ ह्यभ्यागताः पूज्या इति वै वैदिकी श्रुतिः ।४६
तस्माद्यूयं वेदपराः सर्वे देवपरायणाः ।
ब्रुवन्तु त्वरितेनैव आदौ केषां ददाम्यहम् ।
अमृतं हि महाभागा बलिमुख्या वदन्तु भोः ।४७
बलिनोक्तातदादेवी यत्ते मनसिरोचते ।
स्वामिनी त्वं न सन्देहो हयस्माकंसुन्दरानने ।४८
एवं संमानिता तेन बलिना भावितात्मना ।
परिवेषणकार्यार्थं कलशं गृहय सत्वरा ।४९

हे शुभ व्रत वालो ! मुझे तो इस अमृत का विभाजन सभी के लिए कर देना चाहिए। जो भी अपना प्रिय तथा अप्रिय भी हो उसको देवों के लिये भी दो। इस वचन को कहने पर जो कि देवी मोहिनी ने कहा था, उन असुरों ने अतन्द्रिय होकर वैसा ही स्वीकार कर लिया था और फिर असुरों ने उन सब सुरगणों को भी जिनमें इन्द्रदेव भी विद्यमान थे वहीं पर बुला लिया था ।४३-४४। हे द्विजगणों ! उस अमृत के पान करने के लिए वे सभी वहाँ पर उपविष्ट हो गये थे। उन सबके वहाँ पर बैठ जाने पर सब प्रकार के धर्म्म के जानने वाली मोहिनी ने असुरों की ओर मुस्कराते हुए यह परम वचन कहा था—।४५। मोहिनी ने कहा—वैदिकी श्रुति की यही आदेश है कि सबके आदि में अभ्यागत गणों का पूजन करना चाहिये ।४६। इसलिये आप सभी लोग वेदों को मानने में परायण है और आप सब देव परायण भी है। अतएव अब आप लोग मुझे अति शीघ्रता से बतलाइये कि सबसे प्रथम मैं किन को इस अमृत को दूँ। हे महाभाग

वालो ! दैत्यराज बलि जिनमें परम प्रधान हैं वे सभी मुझे अब बतलाइये ।४७। उस समय में इस प्रकार से कहने पर दैत्यराज बलि ने मोहिनी से कहा था—हे सुन्दरानने ! जो भी आपको अपने मन में अच्छा लगे वैसा ही करिये । आप तो हम सबकी स्वामिनी हैं । इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं । इस तरह से भावितात्मा बलि के द्वारा सम्मानित हुई उस मोहिनी देवी ने परिवेषण करने के लिए शीघ्र ही उस सुधा के कलश को ग्रहण कर लिया था ।४८-४९।

तस्मान्नरेन्द्रकरभोरुलसद्दुकूला
श्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलांगी ।
सा कूजती करकनूपुरसिञ्जितेन
कुम्भस्तनीं कलशपाणिरथाविवेश ।५०
तदा तु देवी परिवेषयन्ती सा मोहिनी देवगणाय साक्षात् ।
ववर्ष देवेषु सुधारसं पुनः पुनः सुधाहाररसामृतं यथा ।५१
पुनश्च ते देवगणाः सुधारसं दत्तं तयः परमा विश्वमूर्त्या
देवन्द्रमुख्याः सह लोकपाला गन्धर्वयक्षाप्सरसां गणाश्च ।५२
सर्वे दैत्या आसनस्थास्तदानीं
चिन्तान्विताः क्षुधया पीड़िताश्च ।
तूष्णींभुता बलिमुख्या द्विजेन्द्रा
मनस्विनो ध्यनपरा बभूबुः ।५३
ततस्चताविधान्द्दृष्ट्वा दैत्यास्तान्मोहमाश्रितान् ।
तदाराहुश्चकेतुश्चद्वावेतौ दैत्यपुंगवौ ।
देवानां रूपमास्थाय अमृतार्थंत्वरान्वितौ ।
उपविष्टौ तदा पद्भ्यांदेवानाममृतार्थिनौ ।५५
यदाऽमृत पातुकामो राहुः परमदुर्जयः ।
चन्द्राकभ्यां प्रकथितो विष्णोरमिततेजसः ।५६

तदा तस्य शिरच्छिन्नं राहोर्दुर्विग्रहस्य च ।
शिरो गगनमापेदो कबन्धं च महीतते ।
भ्रममाण तदा हयग्रीश्चूर्णतामास वै तदा ।५७

श्रेष्ठ पुरुष के करम के सदृश उरुओं पर शोभित (वस्त्र) वाली श्रोणी तट से अलग गति से युक्त, मद से विह्वलित अङ्गों वाली, सुवर्ण के नूपरों की ध्वनि से पूजन करती हुई, कुम्भ के तुल्य स्तनो से समन्वित कलश हाथों में ग्रहण किये हुई उस मोहिनी ने इसके अनन्तर वहाँ पर प्रवेश किया था ।५०। उस समय देवगण के लिये साक्षात् परिवेषण करती हुई उस मोहिनी देवी ने जिस प्रकार से सुधा के आहार का रसामृत हो उस तरह से बारम्बार उन देवगणों में सुधा रस की खूब वृष्टि की थी ।५१। परा विश्व मूर्त्ति द्वारा दिये उस सुधा के रस का उन सब देवगणों, देवेन्द्र मुख्यों, लोकपालों गन्धर्व, यक्ष तथा अप्सराओं के समुदाय ने बारम्बार खूब पान किया था ।५२। उस समय सब दैत्यगण अपने आसनों पर स्थित हुए परमाश्चिन्तित हुए थे और क्षुधा से पीड़ित हो रहे थे । हे द्विजेन्द्रो ! बलि दैत्य जिसमें प्रधान था वे सब दैत्यगण ध्यान में परागण होते हुए मनस्वी चुप ही रह गये थे । इसके अनन्तर मोह में स्थित उन समस्त दैत्यों को देखकर उसी समय राहु और केतु दोनों दैत्य श्रेष्ठ देवों का स्वरूप धारण करके बहुत ही शीघ्रता से अमृतपान करने के लिए देवों के पैरों में आकर बैठ गये थे । जिस समय अमृत पान करने की कामना वाला परम दुर्जय राहु वस्तुत हो रहा था उसी समय चन्द्र और सूर्य इन दोनों देवों ने अपरिमित तेज वाले भगवान विष्णु से इनको बतला दिया था । उस समय में उस दुर्विग्रह राहु का शिर छिन्न हो गया था और वह शिर गगन में पहुँच गया था तथा उनका धड़ महातल पर गिर गया था । उस धड़ ने भ्रमण करते हुए उस समय में पर्वतों को भूषित कर दिया था ।५३-५७।

साद्रिश्च सर्वंभूलोकश्चूर्णितश्च तदाऽभवत् ।
तया येन च देहेन चूर्णितं सचराचरम् ।५८
द्रवष्टा तदां महादेवस्तस्योपरितुसंस्थितः ।
निवासः सर्वं देवानां तस्याः पादतलेऽभवत् ।५९
पीडनं तत्समीपेऽथ निवास इति नाम वै ।६०
महतामालयंयस्माद्यस्यास्तच्चगणाम्बुजम् ।
महांयथेतिविख्याता जगत्त्रयविमोहिनी ।६१
केतुश्चधूमरूपोऽसावाकाशे विलयं गतः ।
सुधां समायं चन्द्राय तिरोधानगतोऽभवत् ।६२
वासुदेवोजगद्योनिर्जगतांकारणंपरम् ।
विष्णोः प्रसादात्तज्जातं सुराणांकार्यसिद्धिदम् ।६३
असुराणां विनाशाय जात दैवविपर्ययात् ।
विना दैवेनजानीध्वमुद्यमो हि निरर्थकः ।६४
यौगपद्येनः तैः सर्वैः क्षीराब्धेर्मथनं कृतम् ।
सिद्धिर्जाता हि देवानासिद्धिरसुरान्प्रति ।६५
ततश्च ते देववरान्प्रकोपिता दैत्याश्च ।
मायाप्रविमोहिताः पुनः ।
अनेकशस्त्रास्त्रयुतास्तदाऽभवन्विष्णौ
गते गर्जमानास्तदानीम् ।६६

पर्वतों के सहित सम्पूर्ण भूलोक उस समय चूर्णित हो गया था और उसके देह से जड़-चेतन सभी चूर्णित हो गया। उस काल में महादेव जी ने देखा कि सर्व देवों का निवास उसके ऊपर जो संस्थित था वह उसके पाद तल में हो गया था और उसके समीप में पीड़न हो रहा था। इसके निवास यह नाम हो गया था।५८-६०। क्योंकि उसका चरणाम्बुज महान पुरुषों का आलय था इसलिये 'महालया—इस नाम से वह जगत् त्रय को

विमोहन करने वाली विख्यात हो गयी थी। यह केतु जो धूम रूप वाला था वह आकाश में विलय को प्राप्त हो गया था। उस सुधा को चन्द्र के लिये समर्पित करके वह तिरोहित हो गया था। भगवान् वासुदेव इस सम्पूर्ण जगत् की योनि थे और जगतों के परम कारण थे। भगवान् विष्णु के प्रसाद से वह सुरों के कर्मों की सिद्धि प्रदान करने वाला हो गया था। ।६१-६४। देव के विपर्यय होने से असुरों के विनाश करने के लिये हुआ था। यह जान लेना चाहिए कि बिना देव के समस्त उद्यम निरर्थक ही हुआ करता है। उन सबने एक ही साथ मिलकर उस क्षीर सागर का मन्थन किया था किन्तु उस मन्थन करने की सिद्धि देवगणों को ही हुई थी और असुरों को केवल परिश्रम ही मिला था और सर्वथा असिद्धि उनको प्राप्त हुई थी। इसके अनन्तर माया से प्रकृष्ट रूप से विमोहित हुए वे सब दैत्यगण देवों के प्रति अत्यधित प्रकुपित हुए थे। उस समय अनेक शस्त्र और अस्त्रों से संयुत होकर वे सब भगवान विष्णु के चले जाने बहुत अधिक गर्जन करने लगे थे।६५।

१२—शिव लिंग माहात्म्य वर्णनम्

हत्वा तं तारकं संख्ये कुमारेण महात्मना।
किं करं सुमहद्विप्र तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।१
कुमारो ह्यपरः शम्भुर्येन सर्वमिदं ततम्।
तपसा तोषितः शम्भुर्ददाति परमं पदम् ।२
कुमारो दर्शनात्सद्यः सफलो हिरणांसदा।
येपापिनोहयधर्म्मिष्ठाः श्वपचार्पिलोमश।
दर्शनाद्धूतपापास्ते भवन्त्येव न संशयः ।३
शौनकस्य वचः श्रुत्वा उवाच चरितंतदा।
व्यासशिष्योमहाप्राज्ञः कुमारस्यमहात्मनः ।४

हत्वा तं तारक संख्ये देवानामजयं ततः ।
अवध्यं च द्विज श्रेष्ठाः कुमारोजयमाप्तवान ।५
महिमा हि कुमारस्य सर्वशास्त्रेषु कथ्यते ।
वेदश्च स्वागमैश्चापि पुराणैश्च तथैव च ।६
तथोपनिषदैश्चैव मीमांसाद्वितयेन तु ।
एवं भूतः कुमारोयमशक्यो वर्णितु द्विजाः ।७

शौनक जी ने कहा हे प्रियवर ! महात्मा कुमार द्वारा रण स्थल में उस तारक का हनन करके फिर सुमहान क्या कर्म किया था वह सभी कुछ आप वर्णन करने के योग्य है ।१। भगवान कुमार तो दूसरे शम्भू ही है जिसने यह सभी कुछ विस्तृत किया हैं । तपश्चर्या के द्वारा पोषित हुए भगवान् शम्भू परम पद प्रदान किया करते हैं ।२। भगवान् कुमार सदा ही मनुष्यों के लिए दर्शन से ही तुरन्त फलदाता हो जाया करते हैं । हे लोमश ! जो महापापी हैं, अधर्म्मिष्ठ है और श्वपच हैं वे भी सब दर्शन से ही निष्पाप हो जाया करते हैं इसमें लेश मात्र भी संशय की कोई बात नहीं है ।३। शौनक ने इस वचन का श्रवण करके उसी समय महान पण्डित श्री व्यास देव के शिष्य ने महात्मा कुमार का चरित कहा था । लोमश महर्षि ने कहा—हे द्विजों में परम श्रेष्ठो ! युद्ध स्थल में देवों के द्वारा अजेय उस तारकासुर का हनन करके क्योंकि वध करना सम्भव ही नहीं था, कुमार ने विजय प्रास करने का यश प्रास किया था । भगवान् कुमार की महिमा समस्त शास्त्रों में कहीं है मीमांसाओं द्वारा भी कुमार की महिमा का पान किया जाता है वेदों के, आगमों के, पुराणों के, उपनिषदों और दोनों प्रकार हे द्विजगण ! इस प्रकार का यह कुमार है जिनका दर्शन नहीं किया जा सकता है ।४-७।

यो हि दर्शनमात्रेण पुनाति सकलजगत् ।
त्रातारं भुवनस्यास्यनिशम्यपितृराट्स्वयम् ।८

ब्रह्माण च पुरुस्कृत्य विष्णुं चैव सवासवम् ।
स ययौ त्वरितेनैवमकरं लोकशंकरम् ।
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा दक्षिणाशापतिः स्वयम् ।९
मनो भर्गाय देवाय देवानाँ पतये नमः ।
मृत्युञ्जयाय रुद्राय ईशानाय कपर्दिदने ।१०
नीलकण्ठाय शर्वाय व्योमावयवरूपिणे ।
कालाय कालनाथाय कालरूपाय वै नमः ।११
यमेन स्तूयमानो हि उवाच प्रभुरीश्वरः ।
किमर्थमागतोऽसि त्व तत्सर्वंकथयस्व नः ।१२
श्रूयता देवदेवेश वाक्यं वाक्यविशारद ।
तपसा परमेणैव तुष्टि प्राप्तोऽसिशङ्कर ।१३
कर्मणा परमेणैव ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तुष्टिमेति न सदेहो वराणां हि सदा प्रभुः ।१४

जो दर्शन मात्र से सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर दिया करता है और इस भुवन का परिणाम करने वाला है—ऐसा पितृराट् यम ने स्वयं श्रवण किया था। वह ब्रह्मा और इन्द्र सहित भगवान् विष्णु को आगे करके बहुत ही शीघ्रता के साथ लोकों का कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर के समीप में गया था। दक्षिण दिशा के स्वामी यमराज ने स्वयं प्रयत होकर स्तवन किया। देवों के पति भर्ग देव के लिये बारम्बार नमस्कार है। भगवान् मृत्युंजय, रुद्र, ईशान, कपर्दी, नीलकन्ठ, शर्व, व्योमावयत रूपी, काल, काल नाथ और काल रूप के लिये हम सबका नमस्कार है। इस प्रकार से यम के द्वारा स्तवन किये गये प्रभु ईश्वर ने कहा—तुम यहाँ किस प्रयोजन से आये हो—यह सब हमको बतलाओ। यमराज ने कहा—हे देवों के भी वेश ! आप तो वाक्य कहने में महान् विशारद है। मेरा वाक्य श्रवण कीजिए। हे शङ्कर ! आप परमाधिक तप से तुष्टि को प्राप्त हो गये हैं।

लोकों के पितामह ब्रह्मा जी परम कर्म से ही तुष्टि को प्राप्त हो जाते हैं। इनमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि वरों के प्रदान करने में सदा प्रभु है।८-१४।

तथा विष्णुर्हि भगवान्वेदवेद्यः सनातनः।
यज्ञैरनेकैः सन्तुष्ट उपवासव्रतैस्तथा।१५
ददाति केवल भावं येन कैवल्यमाप्नुयुः।
नराः सर्वे मम मतं नान्यथा हि वचो मम।१६
ददाति तुष्टोवैभोगतथास्नगांदिसतंदः।
सूर्योनमस्यया ऽऽरोग्यंददातिहिनचान्यथा।१७
गणेशो हि महादेव अर्घ्यंपाद्यादिचन्दनैः।
मन्त्रावृत्या तथा शम्भो निर्विघ्नं चकरिष्यति।१८
तथान्ये लोकपाः सर्वे यथाशक्त्या फलप्रदाः।
यज्ञाध्ययनदानाद्यैः परितुष्टाश्च शङ्कर।१९
महादाश्चयसभूत सर्वेषां प्राणिनामिह।
कृतं च तव पुत्रेण स्वर्गंद्वारमपाववृतम्।२०
दर्शनाच्च कुमारस्य सर्वे स्वर्गोकिसौ नराः।
पापिनोऽपिमहादेवजातानास्त्यत्रसंशयः।२१

उसी प्रकार से वेदों के द्वारा जानने के योग्य, सनातन भगवान् विष्णु अनेक प्रकार के यज्ञों द्वारा तथा उपवास और व्रतों के द्वारा सन्तुष्ट हो जाते हैं। वह केवल भाव को प्रदान किया करते हैं जिसके द्वारा सब मनुष्य कैवल्य को प्राप्त कर लेते हैं—ऐसा मेरा मत है। मेरा वचन अन्यथा नहीं है। वह तुष्ट होकर भोग तथा स्वर्गादि की सम्पदा प्रदान किया करते हैं। सूर्य देव नमस्कारों से ही आरोग्य को प्रदान करते हैं जैसा कि अन्य कोई नहीं करता है। हे महादेव ! हे शम्भो ! गणेश देवता अर्घ्य-पाद्य आदि चन्दन जैसे अर्चनोपचारों के द्वारा तथा मन्त्र की आवृत्ति के द्वारा कर्मों में निर्विघ्नता कर दिया करते हैं उसी

भाँति अन्य लोकपाल भी सब यथाशक्ति फल प्रदान करने वाले हैं। हे शङ्कर! यज्ञ-अध्ययन-दान आदि के द्वारा सब परितुष्ट ही यात्रा करते हैं। यहाँ पर समस्त प्राणियों के लिये यह महान् आश्चर्य सम्भूत हैं आपके पुत्र ने स्वर्ग का द्वार खोल दिया है। केवल कुमार के दर्शन कर लेने भर से ही सब मनुष्य स्वर्ग में निवास करने वाले हो जाया करते हैं। हे महागेव! जो महापापी लोग होते हैं वे भी सीधे कुमार के दर्शन करने की महिमा से स्गर्गगामी हो ज़ाते है--इसमें किंचित मात्र भी संशय नहीं है।१५-२१।

मया किंक्रियतांदेवकार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ये सत्यशीलाः शाताश्चवदान्यानिरवग्रहा।२२
जितेन्द्रिया अलुब्धा कामरागविर्वजिताः।
याज्ञिका धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदागपारगाः।२३
या गर्ति यांति वै शम्भो सर्वे सुकृतिनोपि हि।
तोगर्तिदर्शनात्सर्वेश्वपचाअधमाअपि।२४
कुमारस्य च देवेश महादाश्चर्यकर्मणः।
कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगसहितायां शिवस्य च।२५
शिवस्द तनयं दृष्ठवा ते यांयि स्वकुलैः सह।
कोटिभिर्बहुभिश्चैवमत्स्थान परिमुच्यवै।२६
कुमारदशनात्सवें श्वपचा अपि याति वैध्रुवम्।
सद्गर्ति त्वरितेनैव किं क्रियेयमयाऽधुना।२७
यमस्य वचन श्रुत्वा शङ्करो वाक्यमब्रवीत्।२८

हे देव! अब ऐसी दशा में कार्य और अकार्य की व्यवस्था में मैं क्या करूँ? जो प्राणी सत्य शील, परम शान्त, वदान्य (वाणी) निरवग्रह जितेन्द्रिय, अलुब्धक, काम और राग से रहित, याज्ञिक, धर्म में परम गाढ़ निष्ठा रखने वाले वेदों के अङ्ग शास्त्रों में पारगामी विद्वान् पुरुष हे शम्भो! सब मनुष्य जिस दिव्य गति को

प्राप्त किया करते हैं उसी उत्तम गति को सभी श्वपच और अधम पुरुष भी केवल कुमार के दर्शन मात्र के करने से प्राप्त कर लिया करते हैं ।२२-२४। यमराज ने भगवान् शङ्कर से पूछा था—हे देवेश ! कृत्तिका के संयोग से संयुत कार्त्तिकी में महान् आश्चर्य से युक्त कर्म वाले कुमार का और शिव का तथा शिव के पुत्र का दर्शन प्राप्त करके वे अपनी बहुत से करोड़ो कुलों के साथ मेरे स्थान का परित्याग करके कुमार के दर्शन के प्रभाव से सब श्वपच भी तुरन्त ही सद्गति को प्राप्त हो जाया करते है। अब मुझे क्या करना चाहिए अर्थात् अब तो मेरे लिए कुछ भी कार्य करना शेष नहीं रह गया है। यमराज के इस वचन को श्रवण करके भगवान् शङ्कर ने यह वाक्य कहा था ।२५-२६-२७-२८।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
विशुद्धभावो भो धर्म्म तेषां मनसि वर्तते ।२९
सत्तीर्थगमनायैव दर्शनार्थं सतामिह ।
वांछामहतो तेषां जायते पूर्वकारिता ।३०
बहुनां जन्मनायन्ते मयि भायोऽनुवर्त्तते ।
प्राणिनां सर्वभावेन जन्माभ्यासेनभो यम ।३१
तस्मात्सुकृतिनः सर्वे येषां भावोऽवर्त्तते ।
जन्मजन्मानुवृत्तानां विस्तयनैवकारयत् ।३२
श्रीबालशूद्राः श्वपचाधमाश्च
प्राग्जन्मसंस्कारवशाद्धि धर्म्म ! ।
योनि गताः पापिषु वर्त्तमानास्तथाऽपि
शुद्धा मनुजा भवन्ति ।३३
तथा सितेन मनसा च भवन्ति सर्वे
सर्वेषु चैव विषयेषु भवन्ति तज्ज्ञाः ।
दैवेन पूर्वचरितेन भवन्ति सर्वे
सुराश्चेन्द्राद्रयो लोकपाला प्राक्तनेन ।३४

जाता ह्यमी भूतगणाश्च सर्वे ह्यमी ऋषयो देवताश्च ।३५

भगवान् शङ्कर ने कहा—जिन परम पुण्य कर्म पुण्य करने वाले मनुष्यों के पाप नष्ट होते हैं धर्म ! उनके कर्म में परम विशुद्ध भाव वाला धर्म रहा करता है। यहाँ अच्छे तीर्थों में गमन और सत्पुरुषों के दर्शन प्राप्त करने के वास्ते उसको पूर्व कारिता वांछा समुत्पन्न हुआ करती हैं। बहुत से जन्मों के अन्त में मुझमें उनका भाव अनुवर्तित हुआ करता है। हे यमराज ! ऐसा प्राणियों के सर्वतोभाव से जन्मों के अभ्यास से ही हुआ करता है। इसलिए जिनका भाव अनुवर्तित होता है वे सभी सुकृती होते हैं क्योंकि वे सब जन्म-जन्मानुवृत्त ही हुआ करते हैं अर्थात् बहुत से जन्मों के अनुवर्त्तन से ही ऐसा हुआ करता है। इसलिए इसमें विस्मय कभी नहीं करना चाहिये। हे धर्मराज ! स्त्री, बालक शूद्र, श्वपच और अधर्म लोग भी पहिले जन्मों के संस्कार के कारण ही पापियों की वर्त्तमान योनियों में प्राप्त हुए हैं, तो भी वे मनुष्य शुद्ध होते हैं।२९-३२। इसी भांति वे अपने विशुद्ध मन से सब सभी विषयों में उनके पूर्ण ज्ञाता हो जाया करते हैं। पूर्व चरित देव से और प्राक्तन कर्म से वे सब सुर, इन्द्रादि और लोकपाल हो जाया करते हैं। वे समस्त भूतगण ऋषिगण और देवगण समुत्पन्न हुए हैं।३४-३५।

विस्मयो नैव कर्त्तव्यस्त्वया वापि कुमारके।
कुमारदर्शने चैव धर्मराज्य निबोध मे।३६
बजणं कर्मसंयुक्तं सर्वेषां फलदायकम्।
सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च दानानि विविधानि च।
कार्याणि मनः शुद्धयर्थं नात्र कार्यविचारणा।३७
मनसाभावितोह्यात्माआत्मनात्मानमेवच।
आत्माअहंचसर्वेषांप्राणिनांहिच्यवस्थितः।३८

अहं सदा भावयुक्त आत्मसंस्थो निरन्तरः ।
जगमाजंगमानां च सत्य प्रति वदादिते ।३६
द्वन्द्वातीतो निर्विकल्पो हि साक्षात्स्वस्थो
नित्यो नित्ययुक्तो निरीहम् ।
कूटस्थो वै कल्पभेदप्रवादंबहिष्कृत
बाधबोध्यो हयनन्तः ।४०
विस्मृत्यचैनकेवलबोधलक्षणम् ।
ससारिणो हि दृश्यन्तेसमस्ताजीयराशयः ।४१
अहं व्रह्मा च विष्णुश्चत्रयोऽमीगुणकारिणः ।
सृष्टिपालनसंहारकारकानान्यथाभवेत ।४२
अहंकारवृतेनैव कर्मणा कारितावयम् ।
यूयं च सर्वे विवुधा मनुष्यत्श्च खगादयः ।४३

हे धर्म राज ! आपको कुमार के विषय में बिल्कुल विस्मय नहीं होना चाहिए। कुमार के दर्शन में जो भी फलोदय हुआ करता है उसे तुम मुझसे भली भाँति समझ लो। कर्म्मों से समन्वित वचन ही सबको फल प्रदान करने वाला हुआ करता है। सम्पूर्ण तीर्थ-यज्ञ और विविध प्रकार के किये जाने वाले दान मन की विशुद्धि प्राप्त करने के लिए अवश्य ही करने चाहिये इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए। ।३६-३७। मन से भावति आत्मा होता है, और अपनी आत्मा में ही आत्मा हुआ करता है अर्थात् अपने आपका कल्याण अपनी आत्मा के द्वारा हुआ करता है। समस्त प्राणियों की व्यवस्थित आत्मा में ही हूँ। मैं सदा भाव से युक्त निरन्तर आत्मा में संस्थित करने वाला हूँ चाहे कोई जंगम सृष्टि हो तो जड़ सृष्टि ही। यह में आपको बिल्कुल सत्य-सत्य बतला रहा हूँ। मेरा स्वरूप सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से परे हैं— मैं निर्विकल्पक हूँ, मेरा स्वरूप साक्षात् स्वरूप, नित्य, नित्ययुक्त, गिरीह (चेष्टा रहित) कूटस्थ, कल्पों भेद, प्रवाहों से बहिष्कृत, बोध के द्वारा

जानने के योग्य और अनन्त हैं। किन्तु इस प्रकार के इस बोध लक्षण वाली अपनी आत्मा को विस्मृत करके ही ये समस्त सांसारिक जीवों के समुदाय दिखलाई दिया करते हैं। में ही ब्रह्मा हूँ और मैं ही साक्षात् विष्णु हूँ, ये तीनों स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के गुणकारी है। संसार का सृजन-पालन और संहार करने वाले ये जिस प्रकार से हुआ करते हैं।३८-४२। अहङ्कार वृत कर्म से ही हम सब कराये गये हैं और आप सब देवगण तथा मनुष्य वृन्द और खग (पक्षी) प्रकृति भी उसी प्रकार के किए गये कर्म से हुए हैं।४३।

पश्वादयः पृथग्वूतास्तथान्ये वहवो ह्यमी ।
पृथक्पृथक्समींचीना गुणवन्तश्च संसृतौ ।४४
पतीता सृगतृष्थायां मायया च वशीकृताः ।
वय सर्वेचविबुधाः प्राज्ञाः पण्डितमानिनः ।४५
परस्पर द्वेषयन्तौ मिथ्यावादरता खुला ।
त्रैगुणा भवसम्पन्न अतत्त्वज्ञाश्च रागिणः ।४६
कामक्रोधभयद्वेषमदमात्सयसंयुताः ।४७
परस्परं द्वेषयन्तो ह्यतत्त्वज्ञा बहिर्मुखाः ।
तस्मादेव विदित्वाथ असत्यं गुणभेदतः ।४८
गुणातीते च वस्त्वर्थेपरमार्थेक दर्शनम् ।४६

पशु आदि सब पृथाभूत हैं तथा अन्य बहुत हम पृथक्-पृथक् इस संसार में पुत्रवान् ओर समींचीन है। माया के द्वारा वशीकृत हुए हम सब मृग तृष्णा में पड़े हुए हैं। हम सब और परम प्राज्ञ अपने आपको पन्डित मानने वाले देवगण परस्पर में एक दूसरे को दूषित करते हुए मिथ्यावाद में निरत हुए खल हो रहे हैं। सत्व, रज, तम इन त्रिगुणों ने संयुक्त, भव से सम्पन्न, तत्वों के न जानने वाले राग से परिपूर्ण—काम, क्रोध, भय, द्वेष, मद और मात्सार्य से समान्वित एक दूसरे के बतलाने वाले—अतत्वज्ञ और बहिर्मुख हैं। इसलिए गणों

के भेद ने इस प्रकार से सबको असत्य जान कर रहे। गुणातीत वस्तु अर्थ में परमार्थ का एक दर्शन होता है।४८-४९।

यस्मिन्भेदोह्यभेदंचयस्मिनागोविरागनाम्।
क्रोधोह्यक्रोधतांयातितद्धाम परमशृणु।५०
न तद्भासयते शब्दः कृतकत्वाद्यथा घटः।
शब्दो हि जायते धर्म्म प्रवृत्तिपरमो यतः।५१
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा द्वन्द्वानि सर्वशः।
विलयंयातियत्रैवतत्स्थानंशाश्वतं मतम्।५२
निरन्तरं निर्गुण ज्ञप्तिमात्रं निरंजन निर्विकारं निरीपम्।
सत्तामात्रं ज्ञानगम्य स्वसिद्धं स्वयं प्रभ सुप्रभं बोधगम्हम्।५३
एतज्ज्ञानं ज्ञानविदो वदन्ति सर्वात्मभावेन निरीक्ष्यन्ति।
सर्वातीत ज्ञानगम्यं विदित्वा येन स्वस्थाः समबुद्धयां
चरन्ति।५४
अतीत्य संसारमनादिमूलं मायामयं मायया दुर्विचार्यम्।
मायां त्यक्त्वा निर्ममा वीतरागा गच्छन्ति
प्रेतराण्निर्विकल्पम्।५५
संसृति कल्पनामूलं कल्पनाह्यमृतोपमा।
यैः कल्पनापरित्यक्तातेयाति परमांगतिम्।५६

जिसमें भेद अभेदता को प्राप्त हो जाता है, राग विरागता की प्राप्ति कर लिया करता है, क्रोध अक्रोध भाव को प्राप्त होता है वही परम धाम है, यह श्रवण कर लो। जिस तरह से कृतक होने से घट प्रतीत नहीं होता है उसी भांति वहां पर शब्द भासित नहीं हुआ करता है क्योंकि यह शब्द प्रवृत्ति परम धम हुआ करता है। सभी जगह प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा द्वन्द विद्यमान रहा करते हैं किन्तु जहाँ पर थे सब विलीनता को प्राप्त हो जाया करते हैं वही शाश्वत स्थान माना गया

गया है ।५०-५२। निरन्तर, निर्गुण ज्ञप्तिमात्र, निरंजन, निर्विकार, निरीह सत्तागम्य, ज्ञानगम्य, स्वात्मसिद्ध, सुप्रभ, बोधगम्य जो होता है उसी को ज्ञान के वेत्ता गण ज्ञान कहा करते हैं और सर्वात्म भाव से निरीक्षण किया करते हैं अर्थात् सभी को अपने ही समान देखा करते हैं। सबसे अतीत अर्थात् परे और ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य समझकर जिसके द्वारा परम स्वरूप और सम बुद्धि से संचरण किया करते हैं ।५३-५४। माया से परिपूर्ण, माया से दुर्विचार्य अर्थात् परम दुःख से विचार करने के योग्य और अनादि मूल इस संसार का अतिक्रमण करके हे प्रेतराट् ! इस माया का त्याग करके ममता से रहित, वीतराग वे पुरुष ही निर्विकल्पक हो जाया करते हैं ।५५। यह संसृति कल्पना के मूल वाली है और यह कल्पना अमृत के समान है जिन्होंने इस कल्पना का त्याग कर दिया है वे सत्पुरुष ही परम गति को प्राप्त किया करते हैं ।५६।

शुक्त्यां रजतबुद्धिश्च रज्जुबुद्धिर्यथोरगे ।
मरीचौ जयबुद्धिश्चमिथ्यौवनान्यथा ।५७

सिद्धिः स्वच्छन्दवर्त्तित्वंपारतन्त्र्यहिवैमृषा ।
बद्धोहिपरतन्त्राख्योमुक्तः स्वातन्त्र्यभाविनः ।५८

एको ह्यात्मा विदित्वाय निर्ममो निरवग्रहः ।
कुतस्तेषां बन्धनं च यथाखेपुष्पमेव च ।५९

शशविषाणमेवंतज्ज्ञानं संसार एव च ।
किं कार्यं बहुनोक्तेन वचसा निष्फलेन हि ।६०

ममतां च निराकृत्यप्राप्तुकामाः परपदम् ।
ज्ञानिनस्तेहिविद्वांसोवीतरागाजितेन्द्रियाः ।६१

यैस्त्यक्तो ममताभावोलोभक्रोधौनिराकृतौ ।
तेयांतिपरमंस्थानंकामक्रोधविवर्जिताः ।६२

यावत्कामश्च लोभश्चरागद्वेषैव्यवस्थितौ ।
नाप्नुवंतिचतांसिद्धिशब्दमात्रैक वोधकाः ।६३

जिस प्रकार सीप में रजत (चाँदी) की बुद्धि सर्प में रज्जु (रस्सी) की बुद्धि और मरीचि में जल की बुद्धि—यह मिथ्या ही मिथ्या है इसमें अन्यथा कुछ भी नहीं है । सिद्धि, स्वच्छन्द, वर्त्तित्व और परतन्त्रता भी मृषा हैं । जो परतन्त्र नाम वाला है वही बद्ध है और स्वतन्त्रता भावना वाला ही मुक्त होता है । एक ही आत्मा है—ऐसा ज्ञान करके निर्भय और जो निरवग्रह होता है उसको बन्धन कहाँ हो सकता है ? जैसे आकाश में पुष्प का होना असम्भव है वैसे ही ऐसे पुरुष का बन्धन असम्भव होता है । संसार में ही यह ज्ञान (खरगोश) के सींग की ही भांति असम्भव है । इस प्रकार के फल शून्य अत्यधिक वचनों से क्या करना है अर्थात् अधिक कथन का कोई भी लाभ नहीं है । परम पद की प्राप्ति करने की कामना रखने वाले पुरुषों की संसार में इस ममता की भावना का त्याग कर लेना चाहिये । वे ही विद्वान् ज्ञानी हैं जो वीतराग और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं । जिन्होंने अपने हृदय में स्थित ममता का भाव त्याग दिया है और लोभ तथा कोण को निराकृत कर दिया है । वे ही काम और क्रोध से रहित पुरुष परम स्थान को प्राप्त हुआ करते हैं । जबतक यह काम, लोम, राग और द्वेष व्यवस्थित रहा करते हैं ऐसे शब्द मात्र एक के ही बोधक पुरुष होते हैं वे उस सिद्धि को प्राप्त नहीं किया करते हैं ।५७-६३।

शब्दाच्छब्दः प्रवर्त्तेत निःशब्दं ज्ञानमेव च ।
अनित्यत्वहिशब्बस्यकथंप्रोक्तंत्वया प्रभो ।६४

अजरं ब्रह्म परमं शब्दावै हयक्षरात्मकः ।
तस्माच्छब्दस्त्वया प्रोक्तोनिरीक्षकइतिश्रुतम् ।६५
प्रतिपाद्यं हियत्किंचिच्छब्देनैवविनाकथम् ।
तत्सर्वंकथ्यतांशंभोकार्याकार्यव्यवस्थितौ ।६६

श्रृणुष्वात्वहितो भूत्वा परमार्थयुथं वचः।
यस्य श्रवणमात्रेण ज्ञातव्यं नावशिष्यते ।६७

ज्ञानप्रवादिनः सर्वे क्षषयो वीतकल्मषः।
ज्ञांनाभ्यासेन वर्तते ज्ञानं ज्ञानविदोविदुः ।६८

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यंमात्वा च परिगीयते।
कथं केन च ज्ञातव्यं किंतद्वक्तुंविवक्षितम् ।६९

एतत्सर्वं समासेन कथयामि निबोध मे।
एको ह्यनेकधा चैव दृश्यते भेदंभावनः ।७०

शब्द से शब्द की प्रवृत्ति हुआ करती है और निःशब्द केवल ज्ञान ही होता है हे प्रभो ! आपने इस शब्द की अनित्यता कैसे वर्णित की है ? अक्षर परम ब्रह्म होता है और यह शब्द भी अक्षर स्वरूप ही तो है। इसलिए आपने शब्द को निरीक्षक कहा है—ऐसा श्रुत है। जो कुछ भी प्रतिपादन करने के योग्य विषय होता है वह शब्द के ही द्वारा हुआ करता है शब्द के बिंना प्रतिपादन कैसे हो सकता है ? हे शम्भों ! वह सभी कार्याकार्य की व्यवस्था में आप मुझको कृपा करके बतलाइये। ।६४-६६। भगवान् शङ्कर ने कहा—अब तुम बहुत ही अच्छी तरह सावधान होकर परमाथ से समन्वित मेरा वचन श्रवण करो जिसके श्रवण भाव से ही फिर जानने के योग्य कुछ भी शेष नहीं रह जाय करता है। ऋषिगण जो बीत कल्मष वाले हैं ज्ञान प्रवादी होते हैं। ज्ञान के अभ्यास से ये रहा करते हैं। ज्ञान के वेत्तागण इसको ज्ञान। कहा करते हैं। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानगम्य को जानकर परिगान किया जाता है। किसके द्वारा कैसे क्या जानना चाहिये और क्या कहने के लिये विवक्षित है–यह सभी कुछ अतीव संक्षेप से मैं कहता हूँ। उसे तुम अब मुझसे समझ लो। एक ही भेद भावन अनेक प्रकार से दिखलाई दिया करता हैं ।६७-७०।

यथा भ्रमरिकादृष्टा भ्रम्यते च मही यम ।
तथात्मा भेदबुद्धया च प्रतिभातिह्यनेकधा ।७१
तस्माद्विमृश्य तेनैव ज्ञातव्यः श्रवणेन च ।
मंतव्यः सुप्रयोगेण मननेन विशेषतः ।७२
निर्द्धार्य चात्मनात्मानं सुख बन्धात्प्रमुच्यते ।
मायांजालमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।७३
मायामयोऽयं संसारो ममतालक्षणो महान् ।
ममतांचवर्हिः कृत्वासुसबन्धात्प्रमुच्यते ।७४
कोऽहं कस्त्वं कुतश्चान्ये महामायावलंविनः ।
अजागलस्तनस्येव प्रपञ्चोऽयंनिरर्थकः ।७५
निष्फलोऽयं निराभासो निःसारो घूमडंवरः ।
तस्मात्सर्वंप्रयत्नेनआत्मानंस्मरवैयम ।७६

हे यम ! जिस तरह से भ्रमरिका के द्वारा देवी गई मही घूमती हुई दिखलाई दिया करती हैं ठीक उसी भांति यह आत्मा भेद की बुद्धि से अनेक प्रतीत हुआ करती है। इसलिये भली भाँति विमर्श करके उसी के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और श्रवण के द्वारा मनन करने के द्वारा मानना चाहिए ।७१-७२। अपनी आत्मा में ही अपनी आत्मा का निर्धारण करके सुख पूर्वक बन्ध से प्रमुक्त हो जाया करता है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् माया का ही एक जाल है। यह समस्त संसार भी माया से परिपूर्ण है और यह महान ममता के लक्षण वाला हैं। इस ममता का बहिष्कार करके अर्थात् मैं मेरे मन की भावना को दूर हटाकर प्राणी परम सुख के साथ संसार में बार-म्बार जन्म-मरण के द्वारा आवागमन के बन्धन से छुटकारा पा जाया करता है। मैं कौन हूँ, तू कौन है और अन्य महामाया का अवलम्बन करने वाले कौन कहाँ से आये हैं—वकरी के गले में समुत्पन्न होने वाले स्तन की ही भांति यह सारा प्रपंच निरर्थक ही होता है। यह सभी

कुछ फलरहित, निराभास, सार से शून्य धूमडम्बर है अर्थात् धुँआ का सा छाया हुआ जाल है जिसमें वास्तविकता लेश मात्र को भी नहीं हैं। इसलिये हे यम ! सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा आत्मा का ही स्मरण करो।७३-७६।

एवंप्रबोदितस्तेन शम्भुना प्रेतराट् स्वयम् ।
बुद्धोभूत्वायमः साक्षादात्मभूतोऽभवतदा ।७७
कर्म्मणां हि च सर्वेषां शास्ता कर्मानुसारतः ।
वैभव डम्वरो नृणोभूतांचसमाहितः ।७८

हत्वा तु तारकं युद्धे कुमारेण महात्मना ।
अत उर्ध्वं कथ्यतां भोकि कृतं महदद्भतम् ।७९
हते तु तारके दैत्ये हिमवत्प्रमुखाद्रयः ।
कार्त्तिकेयं समागत्य गोभीं रभ्याभिरैडयन् ।८०
नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमंगलः ।
विश्वबन्धो तमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ।८१
वरिष्ठा श्वपचः येन कृता वै दशनात्वया ।
त्वां नमामो जगद्बन्धुं त्यांवयं शरणागताः ।८२
नमस्ते पार्वतोपुत्र शङ्करात्मज ते नमः ।
नमस्ते कृत्तिकासूनो अग्निभूत नमोऽस्तु ते ।८३
नमोऽस्तु ते देववरैः सुपूज्य नमोऽतु ते ज्ञानविदां वरिष्ठाः ! ।
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद शरण्य सर्वातिविनाशदक्ष ! ।८४

महर्षि लोमश ने कहा—इस तरह से भगवान् शम्भु के द्वारा प्रेरणा दिये हुए प्रेतराज स्वयं ही परम बुद्ध होकर उस समय में साक्षात् आत्मभूत हो गये थे। समस्त कर्म्मों के अनुसार ही सबके कर्म्मों का शासन करने वाले हो गये थे और प्राणियों का तथा मनुष्यों का परम समाहित डम्बर हो गया था।७७-७८। ऋषिगण ने कहा—महात्मा कुमार ने रणभूमि में तारकासुर का हनन करके इसके पश्चात्

उन्होंने क्या महान् अद्भुत कर्म किया था उसे बतलाइये । श्री सूतजी ने कहा—तारकासुर के निहत हो जाने पर हिमवान् आदि प्रमुख पर्वत वृन्द स्वामी कार्त्तिकेय के समीप परम रम्य वाणियों के द्वारा स्तवन करने लगे थे । गिरिगण ने कहा—हे विश्व के मंगल करने वाले ! कल्याण स्वरूप आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे विश्व बन्धो ! आप तो समस्त विश्व पर दयाभाव रखने वाले हैं आपके लिये बारम्बार नमस्कार है । आपने अपने सुन्दर दर्शन ही देकर चान्डालों को भी परम वरिष्ठ बना दिया है । जगत् के बन्धु आपको हम नमस्कार करते हैं और हम सब आपकी शरणागति में प्राप्त हुये हैं ।७९-८२। यमराज ने कहा—हे पार्वती के पुत्र ! हे शङ्कर के आत्मज ! आपके लिये नमस्कार है । हे कृत्तिका के पुत्र ! आप तो अग्निभूत हैं । आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है । हे देववरों के द्वारा भली भाँति पूजा करनेके योग्य ! हे ज्ञानके वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ! आपकी सेवा में बारम्बार नमस्कार है । हे देवों में श्रेष्ठ ! हे शरण्य ! आप तो सबकी आर्त्ति के विनाश करने में परम कुशल है । आप प्रसन्न होइये । आपको मेरा नमस्कार है ।८२-८४।

एवं स्तुतोगिरिभिः कार्त्तिकेयोहयु मासुतः ।
तान्गिरीन्सप्रसन्नत्मा वरदातु समुत्सकः ।८५

भोभो गिरिवरा यूयं शृणुध्वंमद्वचोऽधुना ।
कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चैवसेव्यमानाभविष्यथ ।८६
भवत्स्वेवहि वर्त्तते हृषदो यत्नसेविताः ।
न तु विश्वं वचनान्मम ता नात्र संशयः ।८७
पावतीयानितोर्थानिभविष्यतिनचान्यथा ।
शिवालयानिदिव्यानिदिव्यान्यायतनानिच ।८८
अयनानि विचित्राणि शोभनानि महांति च ।
भविष्यन्ति न सन्देहः पर्वता वचनान्मम ।८९

योऽयं मातामहो मेऽद्यहिमवान्पर्वतोत्तमः ।
तपस्विनांमहाभागः फलदोहि भविष्यति ।९०
मेरुश्च गिरिराजोऽयमाश्रयो हि भविष्यति ।
लोकालोकोगिरिवरउदयाद्रिमहायशाः ।९१

उस प्रकार सुन्दर वाणियों के द्वारा स्तवन किये गये उमा देवी के पुत्र स्वामी कार्त्तिकेह परम आत्मा वाले होकर उन गिरिवरों को वरदान प्रदान करने के लिये समुत्सुक हो गये थे । स्वामी कार्त्तिकेय ने कहा—हे गिरिवरो ! आप लोग इस समय मेरे वचन का श्रवण करो। आप लोग सब कर्म्मों के करने वालों के द्वारा ज्ञानियों के द्वारा सेव्यमान हो जायेंगे । आप लोगों के अन्दर ही ऐसी शिलायें विद्यमान हैं जो यत्नों के द्वारा सेवित होती हुई मेरे वचन से इस सम्पूर्ण विश्व को पवित्र करेंगी, उसमें कुछ भी संशय नहीं है । अनेक पर्वतीय तीर्थ होगे, यह अन्यथा नहीं हैं । दिव्य शिवालय और दिव्य आयतन एवम् विचित्र अयन जो शोभन तथा महान् होंगे । हे पर्वतगण ! मेरे इस वचन में विल्कुल भी सन्देह नहीं है जो यह मेरे पितामह हैं । वे समस्त पर्वतों में महा श्रेष्ठ इस समय हैं । यह सब तपस्वियों में महान भाग वाले है और निश्चय ही फल देने वाले होंगे । यह मेरु नाम धारी पर्वत गिरियों का राजा है और यह सबका समाश्रय होगा । लोकालोक पर्वत गिरि है और यह महान् यश वाला उदय गिरि हैं ।८४-९१।

लिंगरूपी हि भगवान्भविष्यतिन चान्यथा ।
श्रीशैलोहिमहेन्द्रश्चतथासह्याचंलोगिरिः ।९२
माल्यवान्मलयो विन्ध्यस्तथासौ गन्धमन्दना ।
श्वेतकूठस्त्रिकूटो हि तधादर्दू रूपवतः ।९३
एते चान्ये च बहवः पर्वता लिंगरूपिणः ।
मम वाक्यभ्दविष्यन्ति पापक्षयकरा ह्यमो ।९४

एवं वरं ददौ तेभ्यः पर्वतेभ्यश्च शाङ्करिः ।
ततो नन्दो ह्युवाचेदं सर्वागमपुरस्कृतम् ।९५

त्वया कृता हि गिरयो लिंगरूपिण एव ते ।
शिवालयाः कथनाथ पूज्याः स्युः सर्वदेवतः ।९६

लिंगं शिवालयं देवदेवस्य शूलिनः ।
सर्वैर्नृभिर्देवैश्च ब्रह्मादिभिरतन्द्रितः ।९७

नीलं मुक्ता प्रवालं च वैडूर्यं चन्द्रमेव च ।
गोमेदं पद्मरागं च मारतं काञ्चनं तथा ।९८

राजतं ताम्रयारं च यथा ताम्रमयं परम् ।
रत्नधातुमयान्येव लिंगनिर्कथितावि ते ।९९

भगवान् लिंग रूप वाले होंगे—इसमें अन्यथा नहीं है । श्री शैल, महेन्द्र, सह्याचल, गिरि, माल्यवान, मलय, विन्ध्य, गन्ध, मादन, श्वेत कूट, त्रिकूट तथा दर्दुर, पर्वत-ये सब तथा अन्य पर्वत लिंग रूप वाले हैं। ये सभी मेरे वचन से पापों के क्षय करने वाले हो जायेंगे । इस प्रकार भगवान् शङ्कर के पुत्र कुमार ने उन पर्वतों के लिये वरदान प्रदान किया था । इसके पश्चात नन्दी ने समस्त आगमों से पुरस्कृत वचन कहा था । नन्दी ने कहा था—हे भगवन् ! आपने इन समस्त पर्वतोंको लिंग रूपी बना दिया है । हे नाथ ! ये शिवालय समस्त देवों के द्वारा किस प्रकार से पूज्य होंगे ? कुमार ने कहा—देवों के देव भगवान शूली के लिंग को ही शिवालय कहना चाहिये । यह बात सभी मनुष्यों, देवतों और अतन्द्रियों व्रह्मा आदि को भी समझ लेनी चाहिये । नील (नीलम), मुक्ता (मोती) प्रवाल (मूँगा) वैडूर्य्य, चन्द्र, गोमेद, पद्मराग, मरकत, कांचन, राजत, ताभ्रम्बर तथा नागभय—इन सब रत्न एवं धातुओं से परिपूर्ण लिंग आपको हमने वतला दिये हैं ।९२-९९।

पवित्राण्येव पूज्यानि सर्वकामप्रदानि च ।
एतेषामपि सर्वेषां काश्मीरं हि विशिष्यते ।१००
ऐहिकामुष्मिकं सर्वं पूजाकर्तुः प्रयच्छति ।१०१
लिंगानामपि स्याद्बाणलिंग त्वयां कथम् ।
कथितं चोत्तभावेन तत्सर्वंवद्सुव्रत ।१०२
रेवायां तोयमध्ये च द्रश्यन्ते दृषदोहियाः ।
शिवप्रसादात्तस्युर्लिगंरूपानचान्यथा ।१०३
श्लक्ष्णमूलाश्चैं कर्तव्याः पिंडिकोपरिसंस्थिताः ।
पूजनीयाः प्रयत्नेनशिवदीक्षायुतैर्नरैः ।१०४
पिण्डीयुक्तं च शास्त्रेणविधिनाचयजेच्छिवम् ।
वरदोहिजगन्नाथः पूजकस्यनचान्यथा ।१०५
पञ्चाक्षरी यस्य मुखे स्थिता सदा
चेहोनिवृत्तिः शिवचिन्तने च
भूतेषु साम्यं परिवादमूकता
वदत्वमेवं परयोषितासु ।१०६

ये सब परम पवित्र, पूज्य एवं समस्त प्रकार की कामनाओं को पूर्णतया प्रदान करने वाले हैं। इन समस्तों में भी काशमीर विशेष रूप से माना जाता है। पूजा करने वाले मनुष्य को एहिक (इस लोक का) और आमुष्मिक (परलोक का) सभी कुछ यह प्रदान किया करता है ।९९-१०१। नन्दी ने कहा—हे सुव्रत ! इन समस्त लिगों में वाण लिंग को परम पूज्य कैसे कहा था ? आपने उसे सर्वो-त्तम रूप से बतलाया था—यह सब कृपा करके बतलाइये। भगवान् कुमार ने कहा—रेवा नदी में जल के मध्य में जो शिलायें दिखलाई दिया करती है वे सब भगवान् शिव के प्रसाद से लिंग के स्वरूप वाली हो गई हैं—इसमें तनिक भी अन्यथा नहीं है। पिण्डिका के ऊपर संस्थित श्लक्ष्ण मूल करनी चाहिये। उन शिलाओं का पूजने भगवान्

शिव की दीक्षा से संयुक्त मनुष्य के द्वारा ही करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधि के द्वारा पिन्डीयुक्त भगवान् शिव का यजन करना चाहिये। जो भगवान शिव का अर्चन करने वाला पुरुष होता है उसको शिव वरदान के प्रदाता हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है। जिसके मुख में सदा 'ॐनमः शिवाय'—यह पञ्चाक्षरी मन्त्र स्थित रहा व रता है और भगवान् शिव के चिन्तन करने में चेत की निवृंत्ति को जाया करती है प्राणिमात्र में ममता की भावना, परिवाद में मूकता अर्थात् किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का विवाद न करना तथा पराई स्त्रियों के विषय में षंढत्व अर्थात् दूसरों की स्त्रियों के साथ में संगम के अभाव का रहना यह कल्याण के लिये होना चाहिये।१०२-१०६।

१६--राशि नक्षत्र निरूपण

यदा सृष्टं जगत्सर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
कालचक्रं तदा जात पुरा राशिसमन्वितत्।
द्वादश राशयस्तत्र नक्षत्राणि तथैव च।१
सप्तविंशतिसंख्यानि मुख्यानि कार्यसिद्धये।
एभिः सर्वं प्रचण्डं च राशिभिरुडुभिस्तथा।२
कालचक्रान्वितः कालः क्रोडयन्सृजतेजगत्।३
शाब्रह्मस्तंवपर्यंतं सृजत्यवति हति च।
निवद्धमस्ति तेनैव कालनैकेन भो द्विजाः।४
कालो हि वलवांल्लोकेएकएवनचापरः।
तस्मात्कालात्मकन्सर्वमिदंन/स्त्यत्रसशतः।५
आद्रौशालः कालनाच्छ लोकनायकनायकः।
ततोलोकाः हिंसजाताः सृष्टिश्च तदनन्तरम्।६
सृष्टेर्लवो हि संजातो लवाच्च क्षणमेव च्च।
क्षणाच्च निमिषजातंप्राणिनांहिनिरन्तरम्।७

ऋषिगण ने कहा—इस व्रत को पहिले किसने बतलाया था—किसने सर्व प्रथम इसको किया था, इसका फल क्या है इसका उद्देश्य क्या हैं, हे विभो ! सब आप बतलाने की कृपा करें। महर्षि श्री लोमश ने कहा—ब्रह्माजी ने जिस समय इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया था उसी समय पहिले राशियों से समन्वित वह काल चक्र समुत्पन्न हुआ था। उनमें बारह राशियाँ हुईं थीं तथा उसी प्रकार से नक्षत्र भी हुए थे।१। ये नक्षत्र संख्या में सत्ताईस परम मुख्य कार्यों की सिद्धि के लिए हुये थे।२। इस समस्त राशियों से तथा उड्डगणों से संयुक्त यह सम्पूर्ण प्रचन्ड जगत का काल चक्र से समन्वित काल क्रीड़ा करता हुआ स्रजन किया करता है।३। अब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त हे द्विजगण ! यही स्रजन किया करता है, परिपालन करता है और हनन किया करता है अर्थात् इसी में उत्पत्ति, रक्षण और संहार हुआ करते हैं। यह सभी कुछ उसी एक काल के द्वारा निवद्ध है।४। यह काल एक ही इस लोक में परम बलबान है। ऐसा अन्य कोई भी बलशाली नहीं है। इसलिये यह भी कुछ कालात्मक ही है और इसमें कुछ भी संशय नहीं है।५। सबके आदि में काल न होने से काल होता है और यह लोकों के नायकों का भी नायक हैं। इसके अनन्तर यह समस्त लोक समुत्पन्न हुए थे और इसके पश्चात् यह सृष्टि हुई है।६। स्रष्टि से लव हुआ और लवसे क्षण उत्पन्न है। क्षण से निमिष की उत्पत्ति हुई जो प्राणियों की निरन्तर रहा करती है।७।

निमिषाणां च षष्ठया व पल इत्यभिधीयते।
पञ्चदश्या अहोरात्रैः पक्षइत्यभिधीयते।८
पक्षाभ्या मास एवं स्यान्मासाद्वादशवत्सरः।
तकालज्ञातुकामेनकार्यंत्रानं विचक्षणैः।९
प्रविपद्दिनमारभ्य पौर्णमास्यन्तमेव च।
पक्ष पूर्णो हि यस्माच्च पूर्णिमेत्यभिधीयते।१०

पूर्णचन्द्रमसी या तु सा पूर्णा देवताप्रिया ।
नष्टस्तुचन्द्रोयस्यांव: अमासाकथिताबुधैं ।११
अग्निष्वात्ताविपितृणां प्रियातीद बभूव ह ।
त्रिंशद्दिनानि ह्येतानिपुण्यकालयुतानि च ।
तेषां मध्ये विशेषो यस्तं शृणुध्व द्विजोत्तमाः ।१२
योगानां वा व्यतीपात ऊडूना श्रवणस्तथा ।
अमावस्यामिश्रीनांचपूर्णिमावथैवच ।१३
सक्रांतयस्तथा ज्ञेयाः पवित्रा दानकर्मणि ।
तथाष्टमी प्रिया शम्भोगणेशस्यचतुर्थिका ।१४

साठ निमिषों का एक पल होता है जो 'पल'—इस नाम से ही कहा जाता है । पन्द्रह अहोरात्रों से एक पक्ष होता है । दो पक्षों का एक मास होता है और बारह मासों का एक वर्ष होता है । उस काल का ज्ञान प्राप्त करने की कामना से विचक्षण के द्वारा ज्ञान करना चाहिये । प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके पूर्णमासी की समाप्ति पर्यन्त पूर्ण एक पक्ष हुआ करता है । इसलिए इस तिथि का नाम पूर्णिमा कहा जाता है ।८-१०। जो यह पूर्ण चन्द्र से युक्त हुआ करती है इसलिये यह पूर्णा और देवगणों को परम प्रिय हुआ करती है । जिस तिथि में चन्द्र पूर्णतया नष्ट होता है अर्थात् बिलकुल दिखलाई ही नहीं दिया करता है यह तिथि 'अमा' अर्थात अमावस्या कही जाया करती हैं । यह अमावस्या अग्निष्वातादि पितृगणों को अत्यन्त प्रिय हुई थी । इस प्रकार से तीस दिन होते हैं जो पुण्य काल में युक्त हुआ करते हैं । हे द्विजोत्तमो ! उन तीस मास के दिनों में जो विशेषता से युक्त दिन होता है उसका आप लोग मुझसे श्रवण करिये ।११-१२। योगों का व्यतीपात तथा उडुगणों में श्रवण तिथियों में अमावस्या तथा पूर्णिमा एवम् संक्रान्तियों ये सब दान देने के कर्म में परम पवित्र जाननी चाहिये । विभिन्न देवों की भी परम प्रिय विभिन्न तिथियां हुआ करती हैं । भग-

वान शम्भु को प्रिय तिथि अष्टमी होती है और गणेश की परम प्रिय तिथि चतुर्थी हुआ करती है ।१३-१४।

पञ्चमी नागराजस्य कुमारस्य च षष्ठिका ।
भानोश्चसप्तमीज्ञ या नवमीचण्डिकाप्रिया ।१५
ब्रह्मणो दशमी ज्ञेया रुद्रस्यैकादशी तथा ।
विष्णुप्रिया द्वादशीं च अन्तकस्यत्रयोदशा ।१६
चतुर्द्दशी तथा शम्भो: प्रिया नास्त्यत्र संशय: ।
मिशीथसंयुतायातुकृष्णपक्षो चतुर्द्दशी ।
उपोष्ता सा तिथि: श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी ।१७
शिवरात्रितिथि: ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ।
अत्रौ वोदासरतोममितिहार पुरातनम् ।१८
ब्रह्मणो विधवा काचित्पुराह्यसीच्चचञ्चता ।
श्वचाभिरतासाचकामुकी कामतु:हेल ।१६
तस्यां तस्य सुता जात: श्वपचस्यदुरात्मन: ।
दु:सहोदुष्टनामात्मा सर्वं धर्मं वहिष्कृत: ।२०
महापापप्रयोगाच्च पापमारभते सदा ।
कितवश्च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पग: ।२१
मृगयुश्च दुरात्मासौ कर्मचण्डाल एव स: ।
अधर्मिष्ठोह्यसद्ध त्त: कदाचिच्चशिवालयम् ।
शिवरात्र्यां च संप्राप्तो ह्युषित: शिवसन्निधौ ।२२

नागराज की परम प्रिय तिथि पंचमी होती है तथा कुमार स्कन्द की प्यारी तिथि षष्ठी हुआ करती है । भगवान् सूर्य की प्रिय तिथि सप्तमी होती हैं और नवमी तिथि भगवती चण्डिका की परम प्रिय मानी गई है । ब्रह्माजी की प्यारी तिथि दशमी हुआ करती है तथा रुद्रदेव की परम तिथि एकादशी होती है । भगवान् विष्णु की तथा प्रिय तिथि द्वादशी है तथा यमराज की प्रिय तिथि त्रयो-

दशी हुआ करती है। चतुर्दशी तिथि भगवान् शम्भु की होती है। इस विषय में लेश मात्र संशय नहीं होता है। माघ के कृष्ण पक्षमें अर्धरात्रि में संयुतजी चतुर्दशी तिथि हुआ करती है उस तिथि में उपवास अवश्य ही करना चाहिए। यह तिथि परम श्रेष्ठ मानी गई है जो कि भगवान शिव के सायुज्य करने वाली हुआ करती है।१५-१७। यही शिव रात्रि तिथि के नाम से विख्यात है जो समस्त पापों का नाश करने वाली होती है। इसी विषय में इस परम पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं।१८। पुराने समय में कोई एक विधवा ब्रह्माणी थी जो अत्यन्त चञ्चल थी। वह काम वासना के कारण से ऐसी कामुकी कि एक श्वपच के साथ अभिरत रहा करती थी। उस ब्राह्मणी के उदर से उस दुरात्मा श्वपच का एक पुत्र समुत्पन्न हो गया था। वह बहुत ही अधिक दुःसह, दुष्टनामात्मा और सभी धर्मों से बहिष्कृत था। महान पापों के प्रयोग के कारण यह सदा पाप कर्म का ही आरम्भ किया करता था। यह कितब था, मदिरा के पान करने वाला था, स्तेय (चोरी) कर्म का करने वाला और गुरु पत्नी के साथ गमन करने वाला भी या वस मृगयु, दुरात्मा और कर्मों से पूर्णतया चाण्डाल ही था। असद्धर्य में रति रखने वाला दुश्चरित्र था। यह किसी समय शिवरात्रि के दिन एक शिवालय में पहुँच गया था और वहाँ पर यह भगवान शिव की सन्निधि में बैठ गया था।१९-२२।

श्रवणं शैवशास्त्रस्य यदृच्छाजातमतिके ।
शिवम्य लिंगरूपस्य स्वयम्भुवो यदा तदा ।२३
स एकत्रोषितो दुष्टः शिवरात्र्यांतुजागरात् ।
तेन कर्मविपाकेनपुण्यां योनिमवातवान् ।२४
भुक्त्वापुण्यतमाँल्लोकानुषित्वांशाश्वतीः समाः ।
चित्रांगदस्यपुत्रोऽभूद्भूपालेश्वरलक्षणः ।२५

नाम्ना विचित्रवीर्योऽसो सुभगः सुन्दरीप्रियः ।
राज्यं महत्तरं प्राप्यानिः स्तम्भो हि महानभुत् ।२६
शिवे भक्ति प्रकुर्वाणः शिवकर्मपरोऽभवत् ।
शैवशास्त्रं पुरस्कृत्य शिवपूजनतत्परः ।
रात्रौ जागरणं यत्नात्करोति शिवसन्निधौ ।२७
शिवस्य गाथां गायन्स्तु आनन्दाश्रुकणान्मुहुः ।
प्रमुचश्चैवनेत्राभ्यां रोमांचपुलकावृता ।२८

शिव के समीप रहने पर शैवशास्त्र श्रवण स्वेच्छा से ही समुत्पन्न हो गया था । जब तक स्वयम्भू भगवान शिव के लिङ्ग रूप का भी श्रवण हुआ था । वह दुष्ट एक ही स्थान में बैठा रहा था शिव रात्रि में जागरण हो जाने से उसी कर्म के विपाक से उसने फिर पुण्यमयी योनि की प्राप्ति की थी । परम पुण्यतम लोगों के निवास करने का सुख भोगकर जो कि बहुत ही अधिक समय एक हुआ था और सहस्रों वर्षों तक वहाँ निवास करके फिर चित्रांगद का भूपालेश्वर लक्षणों वाला पुत्र हुआ था । यह नाम से विचित्र वीर्य था और परम सुभग एवं सुन्दरी प्रिय था । इसने बहुत अधिक बड़ा राज्य प्राप्त किया था तथा यह महान् निःस्तम्भ हो गया था ।२३-२४। भगवान शिव की भक्ति करता हुआ भगवान् शिव के ही कर्म में परायण हो गया था । शैव शास्त्र को आगे करके यह शिव के ही पूजन में तत्पर हो गया था वह रात्रि में भगवान् शिव की सन्निधिमें रहकर बड़ेही यत्न से जागरण करता हुआ आनन्द के कारण समुद्भुत अश्रुओं के कणों को बारम्बार नेत्रों से मोचन करता हुआ रोमांच पुलकों से समावृत्त हो जाया करता था ।२५-२८।

आयुष्यं च गत तस्य शिवध्यामपरस्य च ।
शिवोहिपुलभोलोकेपशूनां ज्ञानिनामपि ।२९

संसेवितुं सुभप्राप्त्यै ह्येक एव सदाशिवः ।
शिवरात्र्युपवासेन प्राप्नो ज्ञानमनुत्तमन् ।३०
ज्ञानात्सर्वं मनुप्राप्तं भूतसाम्यं निरन्तरम् ।
सर्वंभूतात्मकंज्ञवाकेवलं च सदाशिनम् ।३१
विना शिवेन यत्किंचिन्नस्ति वस्त्वत्र न क्वाचित् ।३२
एवं पूर्णं निष्प्रपञ्चं ज्ञानं प्राप्नोतिदुर्लभम् ।
प्राप्तज्ञानस्तदा राजजातोहंशिवबल्लभः ।३३
मुक्ति सायुज्यतां प्राप्तं शिवरात्रो रुपोषणात् ।
तेन लब्धं शिवाज्जस्मपुरायत्कथितमया ।३४
दाक्षायणीवियोगाच्च जटाजूटेन विस्तरात् ।
योत्पन्नोमस्तकाच्चशिवस्यपरमात्मनः ।
वीरभद्रेति विख्यातो यक्षयज्ञविनाशनः ।३५

इस तरह से भगवान् शिव के ही ध्यान में परायण हुए उनकी आयु समाप्त हो गई थी। इस लोक में ज्ञानियों को और पशुओं को भी भगवान् शिव सुलभ हो जाया करते हैं। परम सुख की प्राप्ति के लिए भली-भाँति सेवन करने के लिए एक ही भगवान् सदाशिव हैं। शिव-रात्रि के एक दिन के ही उपवास करने से परम उद्यम ज्ञान उसने प्राप्त कर लिया था और उस ज्ञान से ही सभी कुछ प्राप्त कर लिया था। समस्त प्राणियों में समानता का भाव निरन्तर सर्वं भूतात्मकता का ज्ञान प्राप्त करके फिर केवल भगवान् सदाशिव को प्राप्त कर लिया था २९-३१। कहीं पर भी भगवान शिव के विना यहाँ पर कुछ भी कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकार से पूर्ण प्रपञ्च रहित दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त किया करता है। उस समय ज्ञान प्राप्त करने वाला राजा भगवान शिव का बल्लभ हो गया था।३२-३३। केवल शिवरात्रि के दिन का उपवास करने ही से वह सायूज्यता स्वरूप वाली मुक्ति को प्राप्त हो गया था। पहले जो मैंने वर्णन किया था वह जन्म उसने भगवान शिव से ही प्राप्त किया था। दाक्षायणी सती प्रजापति दक्ष की पुत्री के

वियोग से जटाजूट के द्वारा परम विस्तार वाले परमात्मा शिव के मस्तक से जो समुत्पन्न हुआ था जो प्रजापति दक्ष के वंश का विनाश करने वाला था वह 'वीरभद्र'-इस शुभ नाम से विख्यात हुआ था । ।३४-३५।

शिवरात्रिव्रतेनैव तारिता बहव: पुरा: ।
प्राप्ता: सिद्धि पुगा विप्राभरताद्याश्चदेहिन: ।३६
मान्धाता धुन्धुमारिश्च हरिश्चन्द्रादयो नृपा: ।
प्राप्ता: सिद्धिममेनैव व्रतेनपरमेणहि ।३७
ततो गिरीशो गिरिजासमेत: ।
क्रीडान्वितोऽसौ गिरिराजमस्तके ।
द्यूतं तथैवाक्षयूतं परेशो
युक्तो भवान्या स वृश चकार ।३८

हे विप्रवृन्द ! पुरातन समय में देहधारी भरत प्रभृति बहुत से इस शिवरात्रि के व्रत से ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे और तारित हो गये थे । मान्धाता, धुन्धुमारि और हरिश्चन्द्र आदि नृप इसी परमोत्तम व्रत से ही सिद्धि को प्राप्त हुए थे । इसके अनन्तर गिरिजा के सहित भगवान् गिरीश गिरिराज कैलाश के शिखिर पर क्रीड़ान्वित हुए थे । भवानी के साथ संयुत होकर परेश भगवान् शम्भु ने अक्षों से युक्त द्यूत अत्यधिक रूप से किया था ।३६-३८।

१७—दानभेद प्रशंसा वर्णन

अवस्त्वहं चिन्तयामि कथं स्थानमिदं भृमेत् ।
ममामत्त यतो राज्ञां ममिरेषासदावंशे ।१
यत्तवहं धर्मंवर्मणं गत्वा याचे ह मेतिनीम ।
अर्पयत्ये सच मे याचितो न पुन: नर: ।२
तथा हि मुनिभि: प्रोक्त द्रव्यं त्रिविधुमुत्तमम् ।
शुक्लं मध्यं च शवलमत्तमंकृष्णमुच्यते ।३

श्रु तेः संपादनाच्चिष्यात्प्राप्तं शुक्लचकन्यय ।
तथाकुसीदवाणिज्यकृषियाचितमेवच ।४
शबलं प्रोच्यते सद्भिद्यू तचौर्येण साहसे ।
व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णसमुदाहृतम् ।५
शुक्लवित्तेन लो धर्मं प्रकुर्याच्छृद्धयाण्वितः ।
तीर्थपात्रं समासाद्य देवत्वे तत्समश्नुते ।६
राजसेन च भावेन वित्तेन शबलेन च ।
प्रदद्याद्दानमर्थिभ्यो मानुष्यत्वे तदश्नुते ।७

देवर्षि नारदजी ने कहा--इसके उपरान्त मैंने सोचा कि यह स्थान किस प्रकार से मेरे अधीन होवे ? क्योंकि यह भूमि तो सदा राजाओं के वश में रहा करती है। यदि मैं कर्म वर्मा के समीप समुपस्थित होकर इस मेदिनी की याचना करूँ तो मेरे द्वारा याचना किया हुआ मुझे अर्पण कर दिया करेगा। पुनः नर नहीं है।१-२। उस प्रकार मुनियों ने कहा है कि तीन प्रकार द्रव्य उत्तम होता है--शुक्ल, मध्य, शबल, । अधम द्रव्य कृष्ण हुआ करता है।३। श्रुति के सम्पादन से शिष्य से और कन्या के द्वारा जो प्राप्त होता है वह शुक्ल द्रव्य हुआ करता है। कुसीद (ब्याज) वाणिज्य, कृषि और याचित किया हुआ जो द्रव्य होता है वह शबल द्रव्य कहा जाया करता है जिसे सत्पुरुष ऐसा ही बतलाया करते हैं। द्यूत के द्वारा चोर कर्म से साहसपूर्ण कर्म के द्वारा और ब्याज से उपार्जित द्रव्य होता है, वह कृष्ण द्रव्य कहा गया है।४-५। श्रद्धा से समन्वित जो पुरुष शुक्ल धन से धर्म किया करता है और तीर्थ पात्र को प्राप्त करने जो धर्म किया जाता है उसको देवत्व भाव उपभोग किया करता हैं। राजस भाव से और शबल धन के द्वारा याचकों के लिए दान दिया करता हैं उसका मानुष्यत्व में उपभोग किया करता है ।६-७।

तमोवृतस्तु यो दद्याकृष्णयित्तेनमानवः ।
तिर्यक्त्वेतत्फलं प्रेत्यसमश्नातिनराधमः ।८
तत्तु याचितव्यं मे राजसं हि स्फुटं भवेत् ।
अथ ब्राह्मणभावेन नृप याचेप्रतिग्रहम् ।९
तदप्यो चातिकष्टं हेतुना तेन मे मतम् ।
अयं प्रतिग्रहो घोरोमध्वास्वादोविषोपमः ।१०
प्रतिग्रहेण संयुक्तं ह्यमोवमाविशेद्द्विजम् ।
तस्मादहं निवृत्तश्चपापादस्मात्प्रतिग्रहात् ।११
ततः केनप्युपायेन द्वयोरन्यतरेण तु ।
स्वायत्तं स्यानकं कुर्मं एतत्सञ्जितसे मुहुः ।१२
यथा कुभायः पुरुसश्चिन्तान्त न प्रपद्यते ।
तथैव विमृशश्चाहचिन्तान्त त लभाम्यणु ।१३
एतस्मिन्नन्तरे पार्थस्नातुं तत्र समागताः ।
बहवो मुनयः पुण्ये महीसागरङ्गमे ।१४

तमोगुण से आवृत्त होकर जो मानव कृष्ण द्रव्य से दान किया करता है वह नराधम तिर्यक योनि में जाकर ही उसके फल की प्राप्ति किया करता है । वह मेरे द्वारा याचना किया हुआ द्रव्य स्फुट रूप से राजस ही होगा । इससे अनन्तर ब्राह्मण भाव से राजा से प्रतिग्रह को याचना करूँ । किन्तु उस हेतु से मेरे लिए वह भी अत्यन्त कष्टदायक है । यह प्रतिग्रह भी अत्यन्त घोर ही है जो मधु का आस्वाद विष के समान ही है जो प्रतिग्रह से संयुक्त द्विज के अन्दर अमृतकी भाँति प्रवेश कर जाया करता है । इसीलिए मैं तो इस प्रतिग्रह के पाप से निवृत्त होता हूँ । इसलिए मैं बार-बार सोचता हूँ कि इन दोनों में से किसी भी एक उपाय के द्वारा इस स्थान को स्वागत अर्थात् अपने अधीन में रहने वाला बना लूं ।८-१२। जिस प्रकार से बुरी भार्या वाला पुरुष कभी भी अपने हृदय में स्थित चिन्ता का अन्त नहीं प्राप्त किया करता

है उसी प्रकार से विचार-विमर्श करता हुआ भी मैं चिन्ता का एक अणुमात्र भी अन्त नहीं प्राप्त कर रहा हूँ। हे पार्थ ! इसी बीच में बहुत से मुनिगण उस पुण्यमय मही-सागर के सङ्गम में वहाँ पर स्नान करने के लिए समागत हो गये थे।१३-१४।

अहं तानब्रवं सर्वान्कितो यूयं समागताः।
ते सामूचुः प्रणम्याथ सौराष्ट्र विषयेमुने।१५
धर्मवर्मेति नृपतिर्योऽस्य देशस्त भूपतिः।
स तु दानस्य तत्वार्थीतेर्वगणान्बहून्।१६
ततस्तं प्राह खे वाणीश्लोकमेकनृप शृणु।
द्विहेतु षडधिष्ठानं षडगं चद्विपाक्युक।१७
चतुः प्रकारं त्रिविधं विनाशंदानमुच्यते।
इत्येक श्लोकमाभाष्यखेवाणीविररामह।१८
श्लोकस्यार्थं नावभाषे पृच्छमानाऽपि नारद।
ततो पाजाधर्मवर्मा पटहेनान्वघोषयत्।१९
यस्तुश्लोकस्यचैवास्यलब्धस्तुतपसामया।
करोतिसम्यग्व्याख्याणतस्मैचैतद्दादाम्यहम्।२०
गवां च सप्त नियुतं सुवर्णंतावदेवतु।
आजग्मुर्वदेशीयाब्राह्मणाः कोटिशो मुने।२१

उन सबसे मैंने पूछा था कि आप सब लोग कहाँ से समागत हुये हैं ? तब उनने प्रमाण करके मुझसे कहा था--हे मुने ! सौराष्ट्र देश में धर्म्म वर्मा नाम वाला एक राजा है जो कि इस देश का भूपति है। वह दान के तत्व का अर्थी है और बहुत से वर्षों तक उसने तपश्चर्याकी थी। इसके पश्चात् आकाश में होने वाली वाणी ने उससे कहा था--हे नृप ! एक श्लोक का श्रवण करो, दो हेतु वाला, छः अधिष्ठानों से युक्त, छः अङ्गों वाला, दीपाकों से युक्त चार प्रकार का, तीन किस्मों वाला तथा तीन तरह के नाशों से समन्वित दान कहा जाया करता है-

इस एक श्लोक को कहकर वह आकाश में होने वाली वाणी विरत हो गई थी ।१५-१८। हे नारद ! पूछने पर भी उसने इस श्लोक का अर्थ उसने नहीं कहा था। उसके पश्चात् उस धर्म्म वर्मा राजा ने पटह की ध्वनि के साथ यह घोषणा करदी थी कि जो कोई विद्वान् मेरे द्वारा तपस्या से प्राप्त इस श्लोक का अच्छी तरह में व्याख्या करेगा उसको मैं ऐसा दान दूँगा जिसमें सात अयुत गौयें होंगी और उतना ही सुवर्ण भी होगा। जो विद्वान् इस श्लोक की व्याख्या भली-भाँति कर देगा उसको मैं सात ग्राम दूँगा ।१९-२१।

पटहेनेति नृपतेः श्रुत्वा राज्ञा वचो महत् ।
आजग्मुर्बहुदेशीयाब्राह्मणाः कोटिशो मुने ।२२
पुनर्दुर्बोधविन्यासः श्लोकस्तैर्विप्रपुङ्गवैः ।
आख्यातुं शक्यते नैव गुडा भूकयथा मुने ।२३
वयं च नत्र याताः स्मा धनलोभेननारद ।
दुर्वोधत्वान्नमस्कृत्यश्लोकंचात्रसमागताः ।२४
दुत्यर्ख्येयस्त्वयश्लोकोधनलभ्यंनचैवना ।
तीर्थयात्रांरथयामोत्येवांचित्यात्रचागताः ।२५
एवंफाल्गुनतैषांवच श्रुत्वामहात्मनाम् ।
अतीवसंप्रहृष्टोऽवं तान्विसृज्येत्तचिन्तयम् ।२६
अपोप्राप्तउपायोमेस्थानप्राप्तौनसंशयः ।
श्लोकं व्याख्यायनृपते लप्स्येस्थानधनं तथा ।२७
विद्यामूल्येन नैव याचितः स्यात्प्रतिग्रहः ।
सत्यमाह पुराणर्षिर्वासुदेवो जगद्गुरु ।२८

पटह के द्वारा राजा के इस महान् वचन का श्रवण करके हे मुनिवर ! बहुत से देशों के करोड़ों ब्राह्मण वहाँ पर समागत हो गये थे, किन्तु उन विप्र श्रेष्ठों के द्वारा वह श्लोक दुर्बोध विन्यास वाला हो गया था अर्थात् वह श्लोक उनके क्षुद्र ज्ञानके द्वारा व्याख्यात नहीं हो

सका था। हे मुने ! जिस तरह से कोई गूंगा पुरुष गुण के स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता है उसी भांति वे उस श्लोक की व्याख्या नहीं कर सके थे। हे नारद ! हम भी वहाँ पर उस विशाल धन के लोभ से गये थे किन्तु उस श्लोक को अपने तुच्छ ज्ञान की सीमा से बाहर होने से कारण नमस्कार करके वापिस यहाँ चले आये है क्योंकि वह श्लोक बहुत ही कठिनाई से व्याख्या करने योग्यहै अतएव वह धन प्राप्त करने योग्य ही नहीं है। अब तीर्थों की यात्रा को कैसे जावें। यही विचार करके यहाँ पर समागत होगये हैं। इस प्रकार उन महात्माओं का यह फाल्गुन वचन सुनकर मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ था और मेंने उनको छोड़कर यही विचार किया है कि बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि मैंने स्थान की प्राप्ति के विषय में अब उपाय प्राप्त कर लिया है, अब इसमें कुछ भी संशय नहीं हैं। इस श्लोक की व्याख्या करके मैं अब राजा से धन और स्थान प्राप्त कर लूँगा। वह विद्या के मूल्य के द्वारा ही सब प्राप्त हो जायगा और याचित यह किसी प्रकार भी नहीं होगा। इस प्रकार यह प्रतिग्रह नहीं होगा। जगत् के गुरु पुराणों के ऋषि वासुदेव ने यह सर्वथा सत्य ही कहा है।२२-२८।

धर्मस्य यस्यश्रद्धास्यान्न च सा नैव पूर्यत।
पापस्ययस्यश्रास्यान्न च सापिनपूर्यते।२६
ईवं विचिन्त्यविद्वांसः प्रकुर्न्तियथारुचि।
सत्यमेतद्विभोवाक्यं दुर्लभोऽपियथाहिमे।३०
मनोरथेऽयं सफलः संभूतोऽकुरितः स्फुटम्।
एवं च दुर्विदं श्लोकमहं जानामिसुस्फुटम्।३१
अमूर्तैः पितृभिः पूर्वमेष ख्यातो हि ने पुरा।
एवंहर्षान्वितः पार्थसंचित्याऽहं ततो मुहुः।३२
प्रणम्य तीर्थेचलितो महीसागरसंगँमम्।
वृद्धाब्राह्मणरूपेण ततोऽहं यातबान्नृपम्।३३

इदं भणितवानस्मि श्लोचव्यख्यांन नृप श्रृणु ।
तत्ते पटहृविख्यातं दान च प्रगुणीकुरु ।३४

एवमुक्ते नृपः प्राह प्रोचुरेव हि कोटिशः ।
द्विजोत्तमाः पुनर्नास्य प्रोक्तुमर्थो हि शक्यते ।३५

धर्म के विषय में जिसकी श्रद्धा होती है वह कभी पूर्ण नहीं की जाया करती है और जिसकी पाप कर्म करने की श्रद्धा हुआ करती है वह पूरी नहीं की जाया करती है । इस प्रकार से विशेष चिन्तन करके विद्वान् पुरुष अपनी रुचि के ही अनुसार किया करते हैं–यह विभु का वाक्य पूर्णतया सत्य ही है जैसा कि मुझे यह दुर्लभ भी है । यह मेरा मनोरथ पूर्णतया सफल हो गया है और अब यह स्फुट रूप से अङ्कुरित भी हो गया है । यह श्लोक यद्यपि दुर्दिद हैं तथापि मैं इसको स्फुट रूप से जानता हूँ । विना मूर्त्ति वाले पितृगणों ने पहले पुराने समय में मुझे इसको बतलाया था । हे पार्थ ! इस प्रकार से बड़े ही हर्ष से समन्वित होते हुए मैंने सचिन्तन करके इसके अनन्तर मैंने फिर तीर्थ को प्रणाम किया था । फिर मैं एक परम वृद्ध ब्राह्मण के स्वरूप को धारण करके नृप के समीप में गया था । मैंने वहाँ पर पहुँच कर इस तरह से कहा था–हे नृप ! अब आप उस श्लोक की व्याख्या का श्रवण कीजिये । आपने जो पटह के द्वारा लोक में घोषणा करके विख्यात किया है उस दान को प्रगुणित कीजिए। इस तरह से मेरे कहने पर उस राजा ने कहा–इसी तरह से करोड़ों,ब्राह्मणों ने मुझसे कहा था। हे द्विजोत्तमो ! किन्तु इस श्लोक का अर्थ नहीं कहा जा सकता है । ।२९-३५।

के द्विहेतूषडख्यायान्यधिष्ठातांनिकानिच ।
कानिचैवषडमगानिकौद्वौपाकौतथास्मृतौ ।३६

केच प्रकाराश्चत्वारः किंस्त्तित्रिविधद्विजा ।
त्रयोनाशाश्वकेप्रोक्तादानस्यैतत्स्फुटवद ।३७
तदो गवां सप्तनियुतं सुवर्णतावदेवतु ।३८
सप्तग्रामांश्चदास्तामिनोचेद्यास्वसिवंनृपम् ।
इस्वुक्तवचनं पार्थसौराष्ट्रं नृपम् ।३९
धर्मवर्माणमस्त्वेवं प्रोवाचमवधारय ।
श्लोकव्याख्या स्फुटांवक्ष्ये दानहेतचतौश्रृणु ।४०
अल्पत्वं वा बहुत्वबादानस्याभ्यु दयावहम् ।
श्रद्धाशक्तिश्चदानाहां वृद्धिक्षयकरेहिते ।४१
तत्र श्रद्धाविषये श्लोका भवन्तिः ।
कायक्लेशैश्च बहुभिर्न चेवाऽयथास्य दाशिभिः ।४२
धर्मः संप्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धा धर्मोऽद्भुतं तपः ।
श्रद्धा स्वर्गश्च क्षश्च सर्वमिदं जगत् ।४३

वे दो हेतु कौन से हैं और छैः कहे हुए वे अधिष्ठान कौन हैं । ६ अङ्ग कौन से होते हैं तथा वे दो पाक कौन से बनाये गये हैं । वे चार प्रकार कौन होते हैं । हे द्विज ! क्या वह तीन प्रकार के हैं । तीन नाश कौन से बतलाये गये हैं जो दान के हुआ करते हैं--यह सब आप मेरे सामने स्फुट रूप से बतलाइए । हे ब्राह्मण देव ! इन सात प्रश्नों को यदि आप बिल्कुल स्पष्ट रूप से कह देंगे तो फिर नियुत गौयें और उतना ही सुवर्ण तथा सात ग्राम में अवश्य ही आपको दे दूँगा । यदि ऐसा नहीं होगा तो आप अपने घर को चले जायेंगे । इस तरह से इन वचनों को कहने वाले, सौराष्ट्र के स्वामी धर्म वर्मा नृप से मैंने कहा हे पार्थ ! मैंने कहा था-ऐसा ही होगा, अच्छा, अब आप अवधारण करिये । मैं इस श्लोक की व्याख्या को बहुत सुस्पष्ट रूप से कहूँगा उन दोनों दान के हेतुओं को सुनिये-दान का अल्पत्व हो या बहुत्व हों अर्थात् दान चाहे छोटा-सा हो या बहुत बड़ा हो इसके अभ्युदय अह होते हैं । श्रद्धा और शक्ति ये दोनों ही दोनों को वृद्धि एवं क्षय करने

वाली हुआ करती हैं। वहाँ पर श्रद्धा के विषय में श्लोक हैं--बहुत से कार्य क्लेशों के द्वारा और धन की राशियों के द्वारा परम सूक्ष्म धर्म्म से प्राप्त किया जाता है। श्रद्धा ही धर्म और श्रद्धा ही अद्भुत तप है। श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है। यह सम्पूर्ण जगत श्रद्धा ही है ।३६-४३।

सर्वंस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धयायदि ।
नाप्नुयात्सफलकिञ्चिच्छ्द्दधानस्ततोभवेत् ।४४
श्रद्धाया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः ।
अकिञ्चना हि मुनयः श्रद्धान्तोदिवंगताः ।४५
त्रिविधा भवतिश्रद्धादेहिदांसास्वावजा ।
सात्त्विकीराजसीचैवम मसीचेतितांश्रृणु ।४६
यजन्ते सात्त्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ।
प्रेतान्भूतपिशाचांश्चयजन्तेतामसाजनाः ।४७
तस्माच्छ्रद्धावता पात्रे दत्तँन्यायार्जितं हियत् ।
तेनैवभगवान्रुद्र स्वल्पकेनापितुष्यति ।४८
शक्तिविषये च श्लोका भवन्तिः
कुटुम्बभुक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते ।
मध्यस्वारो वियंपश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत् ।४९

अपना सर्वस्व और जीवन भी यदि कोई अश्रद्धा से दान कर देता है तो वह कुछ भी फल प्राप्त नहीं किया करता है। अतएव यह परम आवश्यक है कि श्रद्धा वाला होवे। धर्म की साधना श्रद्धा से ही की जाया करती है। महान धन की राशियों से धर्म साध्य कभी नहीं हुआ करता है। मुनिगण आकिंचन हुआ करते हैं किन्तु श्रद्धावान् होने के ही कारण से वे सब दिवंलोक को प्राप्त हुए हैं। देहधारियों की वह श्रद्धा स्वभाव से ही समुत्पन्न तीन प्रकार की हुआ करती है। एक सात्विकी श्रद्धा होती है, दूसरी राजसी और तीसरी तामसी हुआ करती है। उसका अब श्रवण करो ।४४-४६। सात्विकी श्रद्धा वाले

सात्विक पुरुष देवों का यजन किया करते हैं। राजस लोग यक्ष और राक्षसों का यजन करते हैं और जो तामस जन होते हैं वे प्रेत-भूत और पिशाचों का यजन किया करते हैं। इसलिए श्रद्धा से युक्त पुरुष के द्वारा न्याय से उपार्जित धन का पात्र में जो दान किया गया है उससे ही चाहे वह बहुत ही स्वल्प ही क्यों न हो भगवान् रुद्र परम तुष्ट हो जाया करते हैं। अब शक्ति के विषय में भी श्लोक हैं--कुटुम्ब के भोजन और वस्त्र से अधिक अतिरिक्त देय ही पीछे मधु का आस्वाद करना विष के समान ही होता है अन्यथा दाता का धर्म्म होता है। ।४७-४९।

शक्ते परजने दाता स्वसने दुःखजीवनि।
मध्वापानविषादः स धर्माणां प्रतिरूपकः ।५०
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
तद्भवत्यसुखोदकं जीवतोऽस्मृतस्य च ।५१
सामान्यं याचितन्यासमाधिर्दाराश्चदर्शनम्।
अन्वाहितर्वनिक्षेपः सर्वस्वचान्वसेयति ।५२
आपत्स्वपि न देयानिनववस्तूनि पण्डितैः।
योददातिसिमढात्माप्रायश्चित्तीयतेनरः ।५३
इति ते गदितौ राजद्वौ हेतु श्रूयतामतः।
अधिष्ठानानि वक्ष्यामि षडेवश्रृणुतान्यपि ।५४
धर्ममर्थं च कामं च व्रीडाहर्षयानि च।
अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि प्रचक्षते ।५५
पात्रेभ्यो दीयते नित्यसनपेक्ष्य प्रतीजनन्।
केवलं धर्मबुद्ध्यायद्धर्मदानं तदुच्यते ।५६

अपने जनों के दुःख से पूर्ण जीवन यापन करने पर भी जो शक्त दूसरे जनों का दाता होता है तथा मध्यापान से विष का अदन करने वाला होता है वह धर्म्मों का प्रति रूपक हुआ करता है ।५०।

मृत्यों के उपरोध से जो और्ध्व कृत्य किया करता है। वह इसके जीवित रहते हुए और मृत हो जाने पर भी सुखीपूर्वक ही हुआ करता है अर्थात् उससे किसी भी दशा में सुख प्राप्त नहीं होता ।५१। सामांय, याचित, न्यास, आधि, द्वारा, दर्शन, आवाहित, निक्षेप और सर्वस्व अन्वय के होने पर पण्डितों के द्वारा जल वस्तुओं को आपत्ति काल के समयों में भी नहीं देना चाहिए। जो देता है वह महान मूढ़ आत्मा वाला हैं और ऐसा मनुष्य प्रायश्चित्त करने का अधिकारी हो जाया करता है। हे राजन् ! ये दो हेतु हमने आपको बतला दिये है। इसके उपरान्त अब अधिष्ठानों के विषयमें आप श्रवण कीजिये। वे अधिष्ठान छैः होते हैं उनको मैं बतलाऊंगा। उन्हें भी सुनिए ।५२-५४। धर्म्म, अर्थ, काम, क्रीड़ा, हर्ष और भय छह दोनों के अधिष्ठान कहे जाया करते हैं। सुयोग्य पात्रों के लिए विना किसी प्रयोजन की अपेक्षा किये हुए जो नित्य ही केवल धर्म बुद्धि से दान दिया जाता है वह धर्म दान दानवान से पुकारा जाता है ।५५-५६।

धनिनं धनलोभेन लोभयित्वाऽर्थमाहरेत् ।
तदर्थदानमित्याहुः कामदानमतः शृणु ।५७
प्रयोजनमतेक्ष्यैव प्रसमगंद्यत्प्रदीयते ।
अनर्हेणु सरागेण कामदानं तदुच्यते ।५८
संसदिव्रीडयाऽश्रुत्यअर्थिभ्यः प्रददाति च ।
प्रतिदीयतेचयद्दानव्रीणादानमिति श्रुतत् ।५६
दृष्ट्वा प्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते ।
हर्षदाकमिति प्रोक्तं दानं यद्धर्मचितकैः ।६०
आकोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत् ।
दीयरऽनुपकर्तृभ्यी भयदानं तदुच्यते ।६१
प्रोक्तानिषडाधिष्ठानान्यंगान्यपि च तच्छृणु ।
दाताप्रतिग्रहीताचशुद्धिर्देयं च धर्मयुव ।६२

किसी धनी पुरुष को धन के लोभ से लालच में डालकर जो अर्थ का आहरण किया जावे वह 'अर्थदान' कहा जाता है। इसके उपरान्त में काम धनके विषय में श्रवण कीजियेगा। प्रयोजन की अपेक्षा करके प्रसग से जो दान किया जाता है और वह भी राग के सहित आर्हत से शून्य पुरुषों को दिया जावे वही दान कामदान कहा जाया करता है।५७-५८। किसी सनद में क्रीड़ा से प्रतिज्ञा करके जो अर्थियों के लिये दान या धन दिया जाता है और प्रतिदान किया जाता है वही दान बीड़ा दान कहलाता हैं।५९। प्रिय वस्तुओं को देखकर या परम प्रिय वस्तु एवं मनुष्यों को देखकर हर्षवान् होकर जो प्रदान किया जाता है उस दान को धर्म चिन्तकों के द्वारा हर्षदान कहा जाता है। अक्रोश, अनर्थ और हिंसा के प्रतिकार के लिए दान दिया जाता है। वह भय दान कहा जाया करता है। ये ही छैः अधिष्ठान कहे गये हैं। अब इसके छैः अ गों का भी श्रवण करिये। दानदाता, प्रतिग्रहीता, शुद्धि, धर्मयुक् देश और काल ये छंः दानों के छैः अंग जान लेने चाहिए।६०-६२।

देशकालौ च दामाममंगन्येमानिषड् विदु:।
अपरोगोचधर्मात्मादित्सुरव्यसनः शुचिः।६३
अनिंद्याजीवकर्मा चषड्भिर्दाताशस्यते।
अनुजुश्चाश्रद्दधानोऽशान्तात्माधृष्टभीरुक:।६४
असत्यसन्धो निद्रालर्दाताऽयंतामसोऽधम:।
त्रिशुक्ल: कृशवृत्तिश्चघृणालु: ककलेन्द्रिय:।
विमुक्ता योनिदोषभ्योब्राह्मण: पात्रमुच्यते।६५
सौमुख्यादभिसप्रीतिरर्थिनां दर्शने सदा।
सत्कृतिश्चादसूया च तदा सुद्धिरितिस्मृता।६६
अपराबाधमक्लेश स्वयत्नेर्जितं धनम्।
स्वल्पं वा विपुलं वा पदेयमित्यभिधीयते।६७

तेनापि किल धर्मेण उद्दिश्य किल किञ्चन् ।
तेयं तद्धर्मेयुगिति शून्येशून्यं फलं मतम् ।६८

न्यायेन दुर्लभं द्रव्यं देशे कालेऽपिवापुनः ।
दानाहोदेशकालौतौस्यातां श्रेष्ठौनचान्यथां ।६९

षडंगानीचोक्तानिद्धौ च पाकावतः श्रृणु ।
द्वौपाकौदानजौप्राहुः परवाऽथत्विहोच्यते ।७०

अपरोगी, धर्मात्मा, दित्सु (देनेकी इच्छा वाला), अव्यसन (व्यसनों से रहित) शुचि, अनिन्द्य अजीविका के कर्म वाला--इन छह बातों से दाता प्रशस्त हुआ करताहै। असरल, श्रद्धा रहित, अशान्त आत्मावाला हृष्टता सहित, भीरुक असत्य सन्ध्या (प्रतिज्ञा) वाला,निर्दयी ऐसा दाता तामस और अधम हुआ करता है। त्रिशुक्ल, कुप्रवृत्ति, घृणालु, समस्त इन्द्रियों वाला, योनि दोषसे विमुक्त जो ब्राह्मण होता है वही पात्र कहा जाया सकता ।६३-६४-६५। सौमुख्य होने से अभि सम्प्रीति जो अर्थियों के दर्शन में सदा ही होती है, सत्कार, अनसूया, जब होती हैं सभी शुद्धि कही गई है। अपना बाधा से रहित क्लेशसे हीन, अपने ही यत्नों के द्वारा उपार्जित जो धन है वह चाहे स्वल्प ही या विपुल (अधिक) हो, वही देयम इस नाम से कहा जाता। वह भी किसी धर्म के द्वारा उद्देश्य करके जो कुछ भी देय होता है। वही देय धर्म्मयुत होता है और जो शून्य होता है उसमें फल भी शून्य ही माना गया है। न्याय से देश और काल में भी द्रव्य दुर्लभ होता है। दान के योग्य वे दोनों देश और काल परम श्रेष्ठ होते हैं ये दोनों अन्यथा नहीं होने चाहिये। ये छह अङ्ग बतला दिए हैं अब इससे आगे दो पाकों के विषय में श्रवण करिये। दान से समुत्पन्न होने वाले दो कहे गये है जो परलोक में होते हैं यहाँ हैं कहे जाते हैं ।६६-७०।

सद्भ्यो यद्दीयते किंचित्तत्परत्रोपतिष्ठति ।
असत्सु दीयते किञ्चित्तद्दानमिह मुज्यते ।७१
द्वौपाकाविति निर्दिष्टौप्रकारांश्चतुर: श्रृणु ।
ध्रुवमाहुस्त्रिककाम्यनैमित्तिकमितिक्रमात् ।७२
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विज: ।
प्रपारामतडागादिसर्वकामफल ध्रुवम् ।७३
तदा स्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिनेदिने ।
अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीवालार्थं प्रदीयते ।७४
श्च्छासंस्थ च यद्दानंकाम्यमि यभिधीयते ।
काल पेक्षं क्रियापेक्षं गुणापेक्षमितिस्मृतौ ।७५
त्रिधानैमित्तिकप्रोक्तं सदाहोमविवर्जितम् ।
इति प्रोक्ता: प्रकारस्तेत्रैविध्यमभिधीयते ।७६
अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यामधिविधानत: ।
कानीयसानि शेषणि त्रिविधत्वमिदं विदु: ।७७

सत्पुरुषों के लिए जो कुछ भी दान किया जाता है वह परलोक में उपस्थित होता है और असत्पुरुषों के जो कुछ दिया जाया करता है वह दान यहाँ पर ही भोग लिया करता है। इस तरह से ये दो पाक निर्दिष्ट किये गये हैं। अब इसके चार जो प्रकार होते है उसका श्रवण कीजिए। ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक-इस क्रम से चार तरह का होता है। यह दैविक दान मार्ग द्विजों के द्वारा चार प्रकार से वर्णित किया जाता है। प्रपा (प्याऊ) आराम (उद्यान) और तड़ाग आदि यह सर्व काम फल ध्रुव होता है। जो दिन-दिन में दिया जाया करता है तथा असत्य, विजय, ऐश्वर्य, स्त्री और बालकों के लिए दिया जाता है। अपनी इच्छा में सस्थित रहने वाला जो दान है वह काम्य कहलाता है। कालापेक्ष, क्रियापक्ष और गुणापेक्ष मे स्मृति मे तीन प्रकार का नैतित्तिक दान बताया गया है जो सदा होम से विवर्जित

होताहै। इस तरह से ये प्रकार कहे गये हैं जिनके तीन प्रकार कहे गये हैं। उसके तीन प्रकार इस तरह से हैं–आप उत्तम है, आधिनिधान से चार मध्यम है और शेष कनिष्ठ होते हैं।७१-७७।

गृहप्रासादविद्याभूगोकूपप्राणहाटकम् ।
एतान्मुत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानातः।७८
अन्नरः मंच वासांसिहयप्रभृतिवाहनम् ।
दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः।७९
उषानच्छत्रपात्रादिदधिमध्वासनानि च।८०
दीपकाष्ठोपलादीनि चरम बहुवार्षिकम् ।
इति कानीयसान्यहुर्दाननाशत्रय श्रृणु।८१
यद्दत्वा तप्यते पश्चादासुरं तद्वथा मतम् ।
अश्रद्धया यद्ददाति राक्षसं स्यात्तथैवतत्।८२
यचाऽऽक्रु श्यददात्यंनदत्वाचकोशतिद्विजम् ।
पैशाचतद्वथा दानदातानाशस्त्रयस्त्वमी।८३
ज्ञप्ति सप्तदर्देवेंद्ध दानमहाम्यमुत्तमम् ।
शक्त्या ते कीर्तितराजन्साधुवाऽसाधुवा वद।८४

गृह, प्रासाद, विद्या, भूमि, गौ, कूप, प्राण, हाटक--ये उत्तम द्रव्य द्रव्य के दान से उत्तम दान हुआ करते हैं। अन्न, आराम, वस्त्र, अश्व प्रभृति वाहन–ये सब दान मध्यम द्रव्य के दान होने के कारण से मध्यम दान कहे जाते हैं, उपान (जूता) छत्र (छाता), पात्र आदि, दधि, मधु, आसन, दीप, काष्ठ, उपल प्रभृति बहु वार्षिक चरम श्रेणी के दान हैं। इसीलिए ये सब दान कनिष्ठ कहे जाते हैं। अब तीनों दानों के नाशों का श्रवण करो। जिसको दान में लेकर पीछे से हृदय ताप किया जाता है वह असुर दान कहा गया है और वह वृथा ही माना गया है। जो अश्रद्धा से दिया जाया करता है वह राक्षस दान होता है। यह भी बृथा ही हुआ करता है। जिसकी आक्रोश करके

दिया जाता है और जो देकर फिर द्विज को कोशा करता है। वह पैशाच दान होता है और वह भी दान वृथा ही हुआ करता है अर्थात् फल मे सर्वथा शून्य माना जाया करता है। ये तीन दानों के नाश होते हैं अर्थात् दिये हुए दानों को फलों से शन्य बना देने वाले हुआ करते हैं। हे राजन् ! इस प्रकार से तुम्हारे सामने कीर्तित कर दिया गया है। यह साधु है अथवा असाधु है-यह आप बतलाइये ।७८-८४

अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफलं तपः ।
अद्य ते कृतकृत्यौऽस्मि कृतः कृतिमतां वर ।८५
पठिन्त्वामकलंजन्मब्रह्मचारीयथा वृथा ।
बहुक्लेशात्प्राप्तभार्यः मावृथाऽप्रियवादिनी ।८६
क्लेशनकृत्वा कपं वा सच क्षारोदकोवृथा ।
बनूक्लेशै जंन्म नीतं विना धर्मं तथा वृथा ।८७
एव मे यद्वृथा नाम जातं नत्सफलं त्वया ।
कृतं तस्मान्नमस्तुभ्यंद्विजेभ्यश्चचमोनम् ।८८
सत्यमाहं पुरा विष्णु कुमारान्विष्णुसद्मनि ।
नाहं तथा द्य धजमानहविर्वितान-
इज्योद्घृतप्लुमदन्हुतभुड़् मुखेन ।८९
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरनोऽत्तघासं
तुष्टस्य मय्यपहितैर्निजकर्मवाकैः ।९०
तन्मयाऽशर्नंणा वापि यदि प्रोक्तप्रियं कृतम् ।
सर्वस्य प्रभवो विप्रास्तत्क्षमतांप्रसादये ।९१
त्वं च कोऽसिनसामान्यः प्रणम्याहं प्रसादये ।
आत्मानंख्यापयमुनेंप्रोक्तश्चेत्यब्रवतदा ।९२

धर्मवर्मा ने कहा—हे कृतिमानों में परम श्रेष्ठ ! आज मेरा जन्म सफल हो गया है और आज ही मेरा किया हुआ तप भी फल युक्त हो गया है । आज आपके द्वारा मैं पूर्णतया कृत-कृत्य हो गया हूँ ।

समस्त पढ़कर एक ब्रह्मचारी के तुल्य जन्म वृथा ही है । अत्यधिक क्लेशों से भार्याको प्राप्त किया था सो वह भी अप्रिय बोलने वाली होने के कारण वृथा ही है। क्लेश पूर्वक कूप का निर्माण कराया सो खारा जल वाला होने के कारण वृथा ही हुआ । बहुत से क्लेशो को भोग कर यह जन्म प्राप्त किया है सो धर्म विना यह भी वृथा ही है । इस तरह से मेरा यह सब वृथा हीं नाम हुआ था वह आपने आज मुझे पूर्ण रूप से सफल बना दिया है ।इसलिए आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है और सब द्विजों के लिए भी बारम्वार नमस्कार है । विष्णु के सद्म में पहले भगवान् विष्णु ने कुमारों के प्रति बिलकुल सत्य को कहा जो हवि वितान में बहते हुए घृत से युक्त है और हुतभुक् के मुख के द्वारा जिसको दग्ध कर दिया गया हैं उस यजमान के हवि को मैं उस प्रकार से नहीं खाता हूँ जो मुझमें अपहित कर्म वाली के द्वारा अनुघास चरण करके परम तुष्ट ब्राह्मण के मुख में पड़े हुए हवि से जैसा मैं ग्रहण किया करता हूँ । अकल्याणकारी मैंने विप्रों का जो कुछ भी अप्रिय किया है उनके लिए मुझे क्षमा कीजिये और उन्हें आप मेरे ऊपर प्रसन्न करा दीजिये क्योंकि विप्र सबके प्रभु होते हैं । आप कौन हैं ? आप कोई साधारण पुरुष नहीं है । मैं प्रणाम करके आपको प्रसन्न करता हूँ । हे मुने ! आप अपना पूर्ण परिचय प्रदान करिये । इस तरह से जब राजा के द्वारा कहा गया तो उस समय में मैंने यह कहा था ।८५-९२।

नारदोऽस्मि नृपश्रेष्ठ स्थानकार्थी समागतः ।
प्रोक्तं च देहि मे द्रव्यभूमिचस्थानहेतवे ।९३
यद्यपीयं देवतानांभूमिर्द्रव्यंचपार्थिव ।
यद्यपीयं देवतानांभूमिर्द्रव्यंचपार्थिव ।
तथापियस्मिन्यः काले राजाप्रार्थ्यः सुनिश्चितम् ।९४
स हीश्वरस्यावतारो मर्त्ता दाताऽभयस्य सः ।
तथैव त्वामहं याचेद्रव्यशुद्धिपरीप्सया ।९५

पूर्वं त्वं नारदो विप्र राज्यमश्त्वखिलं तव।
अहं हि ब्राह्मणनांतेदास्यंकर्तानिरंशय: ।९६
यद्यन्माकं भवान्भक्तस्तत्ते दार्यं नो वच: ।९७
सर्वं यत्तद्ददेहि मे द्रव्यंमुक्त भुवं च मे सप्तमव्यतिमात्राम्।
मूयात्वत्तोऽप्यस्य रक्षेति सोऽपि मेने त्वहं चिन्तये
चाऽर्थंशेषम् ।९८

देवर्षि नारदजी ने कहा—हे नृपों में परम श्रेष्ठ ! मैं नारद हूँ। मैं स्थानका इच्छुक होकर ही यहाँ पर समागत हुआहूँ और मैंने कह दिया है। मुझे द्रव्य दो और स्थान के लिए भूमि दो। हे पार्थिव! यद्यपि यह भूमि देवताओं की ही है और द्रव्य भी देवी का हैं जिस समय में जो भी कोई राजा होता है उसीकी प्रार्थना करनी चाहिए यही निश्चित है क्योंकि वह राजा एक ईश्वर का ही अवतार होता है। वह भरण करने वाला होता है तथा अन्न का देने वाला हुआ करताहै। उस रीति से मैं आपसे द्रव्य की शुद्धि की परीक्षा से याचना कर रहा हूँ। देवार्थ में प्रार्थना परायण होकर सबसे पूर्व मुझे आशय दो ।९३-९६। राजाने कहा—हे विप्र ! यदि आप नारद हैं तो यह सम्पूर्ण राज्य ही आपका है। मैं तो ब्राह्मणों का ही सेवक हूँ। मैं अब आपकी दासता करने वाला रहूँगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। देवर्षि नारदजी ने कहा—यदि आप हमारे परम भक्त है तो आपको हमारा वचन करना चाहिए ।९७। जो द्रव्य कहा गया है वह मुझको दो और मुझे सात गव्यूति परिमाण वाली केवल भूमि दो। तुमने इसकी भी रक्षा होवे। वह भी माना गया था और मैं अर्थ शेष का चिन्तन करता हूँ।९८।

१५—सुतनु और नारद सम्वाद

ततोऽहं धर्मवर्माणोच्यं तिष्ठद्धनत्वयि ।
कृत्यकालेग्रहीत्यामोत्यागमरैवतं गिरिम् ।१

आसं प्रमुदितश्चाह पश्यंस्तीगिरिसत्तमम् ।
आह्वायाननरान्साधून्भूजमिवोच्छितम् ।२
यस्मिन्नविधा वृक्षाः प्रकाशन्ते समन्ततः ।
साधुं गृहपति प्राप्य पुत्रभार्यादयोयथा ।३
मुदिता यत्र संतृप्ता वाशन्ते कोकिलादयः ।
सद्गुरोर्ज्ञानसंपन्वयथाशिष्यगणाभुवि ।४
यत्र तप्त्वा तपो मर्त्ययथेप्सितमवाप्नुयुः ।
श्रीमहादेवमासाद्य भक्तोयद्वन्मनोरथम् ।५
तस्याहं च गिरेः पार्श्वं समासाद्यमहाशिलाम् ।
शीतसौरभ्यमन्देनप्रीणितोऽचितयहृदि ।६
तावन्मया स्थानमाप्तं यदतीव सुदुर्लभम् ।
इदानीं ब्राह्मणार्थेऽहं कुर्वे तावदुपक्रमम् ।७

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा इसके उपरान्त यह धन तब तक तुम्हारे पास ही रहे यह उस धर्म वर्मा राजा से मैंने कहकर कि मैं जब मेरा कृत्य करने का समय आवेगा तभी मैं उसे ग्रहण कर लूंगा। मैं फिर रैवत गिरि पर आ गया था।१। उस परम उत्तम पर्वतको देखते हुए मैं अत्यन्त अधिक प्रमुदित हो गया था जो साधु नरों को बुलाने वाला भूमि का ऊँचा उठा हुआ एक भुज की ही भाँति था। जिस पर्वत में अनेकों प्रकार के वृक्ष चारों ओर प्रकाश दे रहे थे जिस प्रकार से किसी परम साधु वृत्ति वाले गृह के स्वामी को प्राप्तकर पुत्र एवं भार्या आदि रहा करते हैं। जहाँ पर कोकिल आदि पक्षिगण परम संतृप्त और प्रसन्न होते हुए निवास कर रहे थे जिस तरह से किसी सद्गुरु से ज्ञान से सुसम्पन्न शिष्यगण भूमण्डल में निवास किया करतेहैं ।२-४। जहाँ पर मनुष्य तपश्चर्या करके अपने मन में अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति किया करते हैं जैसे कोई भक्त साक्षात् भगवान् श्रीमहादेवजी को प्राप्त करके अपने मनोरथ को पूर्ण किया करता है। हे पार्थ ! उस

गिरिवर की मैंने महाशिला को प्राप्त अत्यन्त शीत, सुरभित और मन्द वायु से मैं परम प्रसन्नात्मा हो गया था। फिर मैंने अपने हृदय में विचार किया था--उस समय तक मैंने अपने लिए कोई भी स्थान नहीं किया था किन्तु अब यहाँ पर मैंने देखा कि यह स्थान तो अत्यन्त सुदुर्लभ स्थान है। अब मैं ब्राह्मणों के लिए ही उपक्रम करूँगा।५-७।

ब्राह्मणश्चविलोक्यामेयेह्रिपात्रतमामता: ।
तथा हि चात्रश्रूयन्तेवचांसिश्रुतिवादिनाम् ।८
न जलोत्तरणे शक्तायद्वन्नो कर्णवर्जिता ।
तद्वच्छ्रेष्ठोऽप्यनाचारो विप्रोनोद्धिरणक्षमः ।९
ब्राह्मणोह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्य न दातव्यनहिभस्मनिहूयते ।१०
दानपात्रमतिक्रम्य यदपात्रे प्रदीयते ।
तद्दत्त गामतिक्रम्य गर्दभस्यगवाह्निकम् ।११
ऊषरे वापित बीजं भिन्नभाण्डे च गोदुहम् ।
भस्मनीव हुतं हव्यं मूर्खे दानमशाश्यतम् ।१२
विधिहीने तथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।
न केवलं हि तद्यातिशेषपुण्य प्रणश्यति ।१३
भुणता गौस्तथा भोगाः सुवर्णदेहमेवच ।
अश्वञ्चक्षुस्तथावासोघृततेजस्तिलाः प्रजाः ।१४

मुझे अब वे ब्राह्मण देखने चाहिए जो परम योग्य पात्र तम होवें। यहाँ पर श्रुति वादियों के उसी भाँति के वचन श्रवण गोचर हुआ करते हैं। ये लोग जल उत्तरण करने में भी समर्थ नहीं होते हैं। जिस तरह से कर्णधार से रहित नौका पार जाने में असमर्थ हुआ करती है उसी तरह से परम श्रेष्ठ भी विप्र यदि आचार से हीन है तो वह उद्धरण करने में समर्थ नहीं होता है। बिना पढ़ा ब्राह्मण

तृणों की अग्नि के समान ही शीघ्र शान्त हो जाया करता है। ऐसे विप्र को कभी भी द्रव्य नहीं देना चाहिए क्योंकि भस्म में कभी भी हवन नहीं किया जाता है।८-१०। दान देने के योग्य पात्र का अतिक्रमण करके जो किसी अयोग्य अपात्र को दान दिया जाता है वह दान इसी तरह का है जैसे किसी गौ का अतिक्रमण करके वह गवाह्निक गर्दभको दे दिया जावे।११। ऊपर भूमि में बोया बीज, टूटे हुए बरतन में दोहन किया हुआ दूध, भस्म में हवन किया हुआ हव्य तथा मूर्ख विप्र को दिया हुआ दान अशाश्वत अर्थात् अस्थायी एवं निष्फल ही हुआ करता हैं।१२। शास्त्रकार दान की जो विधि बतलाते हैं उससे हीन तथा अपात्र में जो कोई प्रतिग्रह दिया करता है उसका वह दिया हुआ दान ही केवल नष्ट नहीं होता बल्कि शेष पुण्यभी नष्ट हो जाया करता है। भूमि, गौ, भोग, सुवर्ण, देह, अश्व, चन्दन, वस्त्र, घृत, तेज, तिल प्रजा नष्ट कर दिया करते हैं।१३-१४।

घ्नन्तितस्मादविद्वांस्तु विभियाच्चप्रतिग्रहात्।
स्वल्पकेनाप्यविद्वांस्तुपङ्के गौरिवसीदति।१५
तस्माद्ये गूढतपसोगूढस्वाध्यायसाधकाः।
स्वदारनिताः शान्तास्तेषु दत्तं सदाऽक्षयम्।१६
देशेकालउपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्।
मात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम्।१७
न विद्यया केवलया तपसा चाऽपि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रम्प्रचक्षते।१८
तेषां त्रयाणां मध्येचविद्यामुख्योमहागुणः।
विद्यां विनान्धवद्विप्राश्चक्षुष्मन्तोहितेमताः।१९
तस्माच्चक्षुष्मतो विद्वान्देशे देशेपरीक्षयेत।
प्रशनान्ये ममवक्ष्यतिटेभ्यौदास्ताभ्यहततः।२०

इति संचित्य मनसातस्माद्देशात्समुत्थितः ।
आश्रमेषुमहर्षीणांविचराम्मस्मिफाल्गुन ।२१

इसलिए विद्वान् पुरुष को प्रतिग्रह लेने में भय करना चाहिए। जो विद्वान् नहीं हैं वह तो बहुत स्वल्प भी प्रतिग्रह से दलदल में फँसी हुई गौ के समान उत्पीड़ित हो जाया करता है। इसीलिए जो परम गूढ़ तपश्चर्या वाले हैं-गूढ़ स्वाध्याय की साधना करने वाले हैं, अपनी ही स्त्री में रति रखने वाले हैं और परम शांति से पूर्ण वृत्ति वाले हैं ऐसे ही विप्रों को दिया हुआ दान सदा अक्षय हुआ करता है।१५-१६। देश और काल के उपाय वे श्रद्धा से समन्वित द्रव्य जो किसी सुयोग्य पात्र को प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म का लक्षण है।१७। केवल विद्या से और न केवल तपश्चर्या से पात्रता हुआ करती है। जहाँ पर सच्चारित्रता है और ये दोनों (विद्या और तप) भी विद्यमान हैं वह ही वस्तुतः पात्र कहा जाया करता है। उन तीनों के मध्य में विद्या मुख्य और एक महान मुख्य गुण है क्योंकि विद्या के विना चक्षुओं वाले भी अन्धे ही माने गये हैं। इसलिए विद्यारूपी चक्षुओं वाले विद्वानों का परी क्ष देश-देश में करना चाहिए। जो मेरे किए हुए प्रश्नों का उत्तर दे देगे उन्हीं को मैं दूँगा। इस प्रकार से मन के द्वारा भली भाँति चिन्तन करके हे फाल्गुन! मैं फिर उस देश से उठकर चल दिया था और महर्षियों के आश्रमों में विचरण किया करता था।१-२१८।

इमांछ्लोकान्गायमानः प्रश्नरूपांछ्रुणुष्व तान् ।
मातृकां को विजानाति कतिधा कीदृशाक्षराम् ।२२
पञ्चपंचभूत गेहं को विजानाति वा द्विजः ।
वहुरूपां स्त्रियं कर्तुं सेकरूपाञ्च वेत्ति कः ।२३
को वा चित्रकथाबन्ध वेत्ति संसारगोचरः ।
कोवार्णवमहाग्राहवेत्तिविद्यापरायणः ।२४

कोवाऽष्टविधंब्राह्मण्यवेत्तिब्राह्मणसत्तमः ।
युगानांचचतुर्णाम्वा कोमूलदिवासान्वदेत् ।२५
चतुर्दशमनूकां वा मूलवासरं वेत्ति कः ।
कस्मिश्चैव दिने प्राप पर्वं वा भास्करोरथम् ।२६
उद्वेजयति भूतानिकृष्णाहिरिवः वेत्तिकः ।
को वाऽस्मिन्घोरसंसारे दक्षदक्षतमोभवेत् ।२७
पन्थाना द्वौ कश्चिद्वेत्ति वक्ति च ब्राह्मणः ।
इतिमेवादशप्रश्नान्ये विदुर्ब्राह्मणोत्तमाः ।२८

मैं प्रश्नों के स्वरूप वाले इन श्लोकों को गाता हुआ विचरण किया करता था। उन श्लोकों को तुम श्रवण कर लो। कौन ऐसा पुरुष है जो मातृका को जानता है ? यह कितने प्रकार की है और उसके अक्षर किस प्रकार के होते हैं ? अथवा ऐसा कौन द्विज है जो पंचभूत गेह को जानता है ? कौन ऐसा है जो गेह रूपों वाली और एक रूप वाली स्त्री को करना जानता है ? अथवा ऐसा कौन संसार का गोचर है जो चित्र कथा बन्ध का ज्ञान रखता है ? ऐसा कौन विद्या में परम परायण है जो आर्णव ग्राह को जानता है तथा बतलाया है ? ऐसा कौन परम श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो आठ प्रकार के ब्राह्मण्य का ज्ञान रखता है ? ऐसा कौन है जो चारों युगों के मूल दिवसों को बतला देवे ? ऐसा कोई कौन हैं जो चौदह मनुओं के मूल वासर का ज्ञान रखता है। कौन वह है जो यह बतला देवे कि किस दिन में सबसे प्रथम भगवान् भास्कर ने रथ को प्राप्त किया था ? ऐसा कौन ज्ञाता है जो यह बतला देवे कि वह कौन है जो कृष्ण सर्प की भाँति समस्त प्राणियों को उद्विग्न किया करता है ? ऐसा कौन है जो इस अतीव घोर संसार में दक्षों में भी परम दक्ष होवे ? कोई ऐसा ब्राह्मण है जो दोनों मार्गों को जानता है और बतलाया है ? ये बारह प्रश्न हैं। इनको जो जानते हैं वे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं।२२-२८।

ते मे पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम् ।
इयहं गायमानो वै भ्रमितः सकलांमहीम ।२९
ते चाहदुःखमा ख्यादाः प्रश्नास्तेकुर्महे नमः ।
इत्यहं सकला पृथ्वी विचित्यालब्धब्राह्मणः ।३०
हिमाद्रिशिखरासीनो भूयश्चिन्तामवाप्तवान् ।
सर्वेविलोकिताविप्राः कियतः कर्तुमुत्सहे ।३१
तयो मे चिन्तमानस्य पुनर्जातामतिस्त्वियम् ।
अद्यापि न गमश्चाहं कलापग्राममुत्तमम् ।३२
अस्मिन्विप्राः संवसन्तिमूर्तानिावतपांसि च ।
चतुरशीतिसाहस्राः श्रताध्ययनशालिनः ।३३
स्थाने तस्मिन्गष्यामीत्यूक्त्वाहंचलितस्तदां ।
खेचरोहिममाक्रम्यपरं पारं गतस्ततः ।३४
अद्राक्षं पूज्यभूमिस्थं ग्रामरत्नमहं महत् ।
शतयोजनविस्तीर्णं नामावृक्षसमाकुलम् ।३५

ऐसे ज्ञाता जो ब्राह्मण हैं वे मेरे परम पूज्य हैं और मैं उनकी चिरकाल पर्यन्त आराधना करने वाला हूँ। इस प्रकार से ही गायन करता हुआ मैं सम्पूर्ण भूमि में भ्रमण किया करता हूँ।२९। मैं ब्राह्मण जो इन मेरे प्रश्नों को सुनते थे वे यही कह दिया करते थे कि ये प्रश्न तो बहुत ही दुःख देने वाले प्रसिद्ध हैं--कहकर वे नमस्कार कर दिया करते थे। इस रीति से मैं इस समस्त भूमि पर घूम चुका था किन्तु विचार करके देखा कि कोई भी ऐसा योग्य ब्राह्मण प्राप्त नहीं हुआ था। फिर मैं हिमालय पर्वत के शिखर पर समासीन हो गया था और फिर पुनः मैं इसी चिन्ता में ग्रस्त हो गया था। मैंने सभी ब्राह्मणों को देख डाला है। अतएव अब मैं क्या करूँ ? इस प्रकार से अब मैं चिन्तन कर ही रहा था कि मुझे फिर यह बुद्धि स्फुरित हुई थी कि अभी तक मैं परमोत्तम कलाप नामक ग्राम में नहीं जा पाया हूँ जिस

ग्राम में श्रुताध्ययनशील चौरासी सहस्त्र ब्राह्मण निवास किया करते हैं साक्षात् तप की मूर्ति के ही समान हैं। मैं उस स्थान में अवश्य ही जाऊँगा–इतना कहकर ही मैं कहने से उसी समय में चल दिया था। आकाशगामी होकर समाक्रमण किया और मैं परले पार पर इसके पश्चात् पहुँच गया था। वहाँ पर मैंने परम पुण्य भूमि में स्थित महान् ग्राम रत्न को देखा था जो सौ योजन के विस्तार से युक्त और अनेक प्रकार के वृक्षों से सम्यकीर्ण था।३५।

यत्र पुण्यवतां सन्तिशतशः प्रचराश्रमाः।
सर्वेषांमपिजीवानां यत्रान्योन्य न दुष्टताः।३६
यज्ञभाजाँ मुनिनां यदुपकारकरं यदुपकारकरं सदाः।
सतां धर्मवतां यद्वदुपकारो न शाम्यति।३७
मुनीनां यत्र परमस्थान चाप्यविनाशकृत्।
स्वाहास्वत्रावषट् कारहन्तकारोननश्यति।३८
यत्र कृतयुगस्याऽर्थं बीज पार्थाऽत्रशिष्यते।
सूर्यस्य सोमवंशस्य ब्राह्मानाँतथैव च।३९
स्थानकयत्समासाद्यप्रविष्टोऽहं द्विजाश्रमान्।
तत्रतेविविधान्वादान्विवतेद्विजोत्तमाः।४०
परस्परं चितमामां वेदा मूर्तिधरा यथा।
तत्र मेधाविनः केचिदर्थमन्यैः प्रपूरितम्।४१
विचिक्षिपुर्महात्मानो नभोगतमिवामिषम्।
तत्राऽहं करमुद्यम्य प्रावोचंपूर्वंताँद्विजाः।४२
काकारावैः किमेतैर्वौ यद्यस्तिज्ञानशालिता।
व्याकुरुध्व ततः प्रश्नान्ममदुर्विषान्बहून्।४३

जिस विशाल ग्राम में परम पुण्यशाली महापुरुषों के सैकड़ों अतिश्रेष्ठ आश्रम बने हुए थे और जिस ग्राम में सभी जीवों में परस्पर अन्योन्य के प्रति सर्वथा दुष्टता की भावना थी ही नहीं। यज्ञों के

यजन करने वाले मुनियों का जो सदा उपकार करने वाला था और धर्म वाले सत्पुरुषों का जो उपकार होता है यह कभी भी शाम्य भाव को प्राप्त नहीं हुआ करता है ।३६-३७। जिस ग्राममें अविनाशों के करने वाला परम स्थान था । और जहाँ पर स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और हन्तकारे कभी भी नष्ट नहीं हुआ करता है । हे पार्थ ! जिस ग्राम में कृतयुग का अर्थ और बीज अवशिष्ट रहता है और सोम तथा सूर्य के वंश का एवं ब्राह्मणों का वह अभी तक भी बीज विद्यमान था । उस स्थान को मैं पहुँच कर द्विजों के आश्रमों में प्रविष्ट हुआ था । वहाँ पर मैंने देखा था कि द्विजोत्तम वृन्द अनेक प्रकार के वादों की परस्पर चर्चा कर रहे थे । वे ब्राह्मण ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानो साक्षात् वेद ही मूर्त्ति धारण करके वहाँ पर उपस्थित होकर परस्पर में विविध विषयों का चिन्तन कर रहे हो ।उनमें कुछ लोग परम मेधावी थे जोकि महान आत्मा वाले शून्यों के द्वारा प्रभूत अर्थ को नभोगत कामिष की भाँति ही विशेष रूप से क्षिप्त कर दिया करते थे । वहाँ पर मैंने भी अपना हाथ उठाकर कहा था--हे द्विजगणो ! मेरे अर्थ की भी पूर्ति कीजिए । उन काकों की भाँति ध्वनि (काँव-काँव) करने से आप लोगों को क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? यदि आप लोगों में कुछ ज्ञानशीलता विद्यमान है तो मेरे किए हुये परम दुर्विषह बहुत से प्रश्नों की व्याख्या करके मुझे समझाइये ।३८-४३।

वद ब्राह्मण प्रश्नान्त्वांछ्रुत्वाऽऽधास्यामहे वयम् ।
परमो ह्येष नो लाभः प्रश्नापृच्छति यद्भवान ।४४

अहं पूर्विकथा ते वै न्यषेधन्त परस्परम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति वीरा यथा रणे ।४५

ततस्तानब्रवं प्रश्नाहं द्वादश पूर्वकान् ।
श्रुत्वा ते मामवोचन्त लीलाय नोमुनीश्वराः ।४६

किं ते द्विज ब्रालप्रश्नैरमोभिः स्वल्पकैरपि ।
अस्मा केयन्निहीन त्वं मन्यसे स ब्रवीत्वमन् ।४७
ततोऽतिविस्मितश्चाऽहमन्यमानः कृतार्थताम् ।
तंषांनिहीनसञ्चित्यप्रावोचप्रब्रवीत्वनयम् ।४८
ततऽसुतनुनामा स बालोऽवालोऽवालोऽभ्युवाच माम् ।
मय मन्दायते वाणी प्रश्नैं स्वल्पैंस्तव द्विज ।
तथापि वच्मि मां यस्मान्निहोन मन्यते भवान् ।४६

उन ब्राह्मणों ने कहा--हे ब्राह्मण देव ! आप अपने प्रश्नों को बोलिये । हम लोग उनको सुनकर उनके विषय में व्याख्यान करेंगे । यह तो हमारा परम लाभ का अवसर प्राप्त हो गया है कि आप हम लोगों से कतिपय प्रश्न पूछ रहे हैं ।४४। उस समय में वे मब अहमहमिका की भावना से परस्पर में एक दूसरे को निषेध करने लगे थे और पहले मैं ही इसके प्रश्नों का उत्तर दूंगा-इस तरह से मैं पहले कह कर एक दूसरे से कहने लगे थे । जिस तरह वीर लोग रणस्थल में युद्ध करने के लिए स्वयं ही सर्वप्रथम जाने के लिए प्रस्तुत हुआ करते हैं । ।४५। इसके अनन्तर मैंने अपने वे ही बारह पहले बताते हुए प्रश्नों को कहा था । उन्होने उन बारह प्रश्नो का श्रवण करके लीला सी करते हुए मुझसे कहा था--हे द्विज ! इन बहुत ही छोटे-२ बालकों के समान प्रश्नों के करने से आपका क्या अभिप्राय है ? क्या आपने हम सबको इतना हीन श्रेणी का मान लिया है ? इन प्रश्नों का उत्तर तो यह एक बालक की दे देगा । इसके पश्चात् मैं अत्यन्त ही विस्मित हो गया था और मैं अपने आपको परम कृतार्थ मानने लगा था । उनमें जो सबसे विहीन मैंने सोचा था उसी से मैंने कहा था-यह ही मेरे प्रश्नों का उत्तर देवे । इसके अनन्तर एक सुतनु नाम वाला बालक जो ज्ञानाधिक्य के कारण अवाल था मुझसे बोला था हे द्विज ! आपके अति स्वल्प प्रश्नों से मेरी वाणी मन्द हो रही है

तो भी मैं बोलता हूँ जिससे कि आप मुझको विहीन न मान लेवें। ।४६-४६।

अक्षरास्तु द्विपञ्चाशन्मातृकाया: प्रकीर्तिता: ।५०
ॐकार: प्रथमस्तत्र चतुर्दश स्वरातथा ।
स्पर्शाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च ।५१
विसर्जनीयश्च परो जिह्वमूलीय एव च ।
उपध्मानीय एवापि द्विञ्चाशदमी स्मृता: ।५२
इति ते कथितासंख्याअर्थं चेषां शृणु द्विज ।
अस्मिन्नर्थे चेतिहासं तववक्ष्यामि यथापुरा ।५३
मिथिलायांप्रवृत्तोऽसूद्ब्राह्मणस्यनिवेशिने ।
मिथिलायांपुरायांब्राह्मण: कौथुमाभिध: ।५४
येन विद्या: प्रपठितांवतन्ते सुविज्ञया द्विज: ।
एकत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणां स कृतादर: ।५५
क्षणमप्यनवच्छिन्नं पठित्वागेहवानभूत् ।
तत: केनाऽपि कालेनकौथुमस्याऽभवत्सुत: ।५६

सुतनु ने कहा—कुल अक्षर बावन है जो मातृक से प्रकीर्त्तित किए गये हैं। उनमें ॐकार सबसे प्रथम अक्षर होता है तथा चौदह उनमें स्वर हुआ करते हैं और तेतीस स्पर्श वाले वर्ण होते हैं तथा अनुस्वार, विसर्जनीया जिह्वा मूलीय और उपध्मानीय भी होते हैं-ये सब पचास दो बावन अक्षर है। हे द्विज! यह पूरी संख्या तो मैंने आपको बतला दी है अब इनके अर्थ का भी आप मुझसे श्रवण कीजिये। इस अर्थ में एक इतिहास जो पहिले का है उसे मैं पहले आपको बतलाऊँगा ।५०-५३। यह इतिहास एक ब्राह्मण के मिथिला में प्रवृत्त हुआ था। पहिले मिथिला में पुरीका एक कौथुम नाम वाला ब्राह्मण था। हे द्विज! उसने जो भी भूमण्डल में विद्यमान थीं ये सभी विद्यायें पढ़ ली थीं। उसने इकतीस सहस्र वर्ष तक आदर पूर्वक विद्या का

अध्ययन किया था। एक क्षण भी उसने नष्ट नहीं किया था। समस्त विद्या पढ़कर फिर वह गेह वाला हुआ। इसके उपरान्त किसी काल में उन कौतुम विप्र के घर में पुत्र की उत्पत्ति हुई थी।५४-५६।

जडवद्वर्त्त मानः स मातृकां प्रत्यपद्यत।
पठित्वा मातृकामन्यन्नाध्येहि स कथञ्चनः।५७
ततः पिता खिन्नरूपी जड़ं तं समभाषत।
अधीष्वपुत्रकाधीष्वतवदास्यमिमोदकान्।५८
अथाऽन्यस्मै प्रदास्यामि कर्णावित्पाटयामि ते।५९
तात किं मोदकार्थाय पठयते लोभहेतवे।
पठनं नामयत्पु सां परमार्थं हि तत्स्मृतम्।६०
एवं ते बदमानस्य आयुर्भवतुब्रह्मणः।
साध्वीं बुद्धिरियंतेऽस्तु कुतोनाध्येष्यतः परम्।६१
ता सर्वं परिज्ञे यंज्ञातमत्रैव वै यतः।
ततः परं कण्ठशोषः किमर्थं क्रियते वद।६२
विचित्रं भाषसेबालज्ञातोऽतार्थश्चकत्वया।
ब्रूहिब्रूहिपुनर्भत्सश्रोतुमिच्छामितेगिरम्।६३

वह पुत्र एक जड़ की भाँति ही रहा करता था। उसने बड़ी कठिनाई से मातृका ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बस, केवल मातृका को पढ़कर वह किसी भी प्रकार से अन्य कुछ भी नहीं पड़ता था।इसके अनन्तर उसका पिता बहुत ही खिन्न हो गया था। उस कौथुम ने उस अपने जड़ पुत्र से कहा–हे पुत्र ! पढ़ो-पढ़ो, मैं तुमको खाने के लिए मोदक दूंगा। यदि तुम नहीं पढ़ोगे तो वे मोदक मैं किसी अन्य को दे दूंगा और तुम्हारे कान उखाड़ डालूंगा।५७-५९। पुत्र ने अपने पिता से कहा—हे तात ! क्या लोभ के ही कारण से मोदकों के पाने के लिए अध्ययन किया जाया करता है। वह अध्ययन तो पुरुषों का परमार्थ कहा गया है। कौथुम ने कहा–इस प्रकार से बोलने वाले तुम्हारी

आयु ब्रह्मा की जैसे हो जावे। यह तो तुम्हारी बुद्धि अतीव साध्वी है फिर तुम आगे क्यों नहीं पढ़ते हो ? पुत्र ने उत्तर दिया था--हे तात ! इसी में सभी कुछ परिज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य मैंने जान लिया है। इसमें आगे किस प्रयोजन के लिए व्यर्थ ही कण्ठ का शोषण किया जाता है ? आप ही मुझे बतलाइये।६०-६२। पिता ने कहा–हे बालक ! तुम तो अत्यन्त विचित्र बात कह रहे हो। बतलाओ, तुमने इसी में क्या जान लिया है ! हे वत्स ! बतलाओ, बोलो, मैं तुम्हारी वाणी के श्रवण करने की उत्कृष्ट इच्छा रखता हूँ।६३।

एकत्रिंशत्सहस्राणि पठित्वयापित: ।
नानातर्कान्भ्रान्तिरेवसंचितामनसिस्वके ।६४
अयमयं चायनिति धर्मो यो दर्शनोदित: ।
तेषु वातायते चेतस्तव तन्नशयामि ते ।६५
उपदेशं हठस्येव नैवार्थज्ञोऽसितत्वत: ।
पाठमात्रा हि ये विप्रा द्विपदा: पशवो हि ते ।६६
तत्ते ब्रवीमि तद्वाक्यमोहमार्तण्डमद्भुतम् ।६७
अकार: कथितोब्रह्मा उकारोविष्णुरुच्यते ।
मकारश्चस्मृतोरुद्रस्त्रयस्चैतेगुणा: स्मृता ।६८
अर्धमात्रा च या मूर्ध्नि परम: स सदाशिव: ।
एवमोंकारमाहात्म्यश्रुतिरेषासनातनो ।६९
ॐकारस्य च माहात्म्यं याथात्म्येननशक्यते ।
वर्षाणामयुतेनाऽपिग्रन्थकोटिभिरेववा ।७०

पुत्र ने कहा–हे पिताजी ! आपके इकत्तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त अनेक तर्कों को पढ़कर भी अपने मन में भ्रान्ति को ही सचित किया है। दर्शन शास्त्रों के द्वारा कहा गया यह-यह जो धर्म है। उन धर्मों में आपका चित्त वायु के भाँति भ्रमित हो रहा है। उसका मैं अब विनाश करता हूँ। आप उपदेश करना ही पढ़े हुए हैं। तात्विक रूप से आप

अर्थों के ज्ञाता नहीं हैं । जो विप्र केवल पाठ ही का ज्ञान रखा करते हैं वे द्विपद होते हुए भी पशु ही हुआ करते हैं । इसीलिए आपको अद्भुत मोह के अन्धकार के नाश करने वाले मार्त्तण्ड रूपी वाक्य को बतलाता हूँ । यह अकार ब्रह्मा कहा गया है और उपकार विष्णु कहा जाता है । मकार रुद्र कहा गया है । ये तीन गुण बतलाये गये हैं । जो यह अर्थ मात्रा मूर्धा में हैं वह पर सदाशिव है । इस प्रकार से इस ॐ कार का माहात्म्य है । यही परम सनातनी श्रुति है । इस ॐकार का माहात्म्य अयुतों वर्षों में करोड़ों ग्रन्थों के द्वारा भी यथार्थ रूप से वर्णन किया जा सकता है ।६४-७०।

पुनर्यत्सारसर्वस्वं प्रोक्तं तच्छ यतां परम् ।
आकारांता आकांरातां मनवस्ते चतुर्दश ।७१
स्वायम्भुवश्च स्वारोचिरौत्तमोरैवतस्तथा ।
तामसश्चाक्षुषः षष्ठस्तथा वैवस्वतोऽधुना ।७२
सावर्णिब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेव च ।
दक्षसावर्णिरेवाऽपि धर्मं सावर्णिरेव च ।७३
रौच्यो भौत्यस्तथा चापि मनवोऽमी चतुर्दश ।
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः ।७४
कृष्णः स्यामस्तथा ध्रूम्रः पिशङ्गः पिशङ्गकः ।
त्रिवर्णः शवलोवणः कर्कन्धुरइतिक्रमात् ।७५
वैवस्वतः क्षकारश्च कृष्णः प्रदृश्यते ।
ककाराद्या हकारान्तास्त्रयसंत्रशच्च नेवताः ।७६
ककारा्थाष्ठकारान्ताआदित्याद्वादशस्मृताः ।
धातामित्रोऽर्यमाशक्रोवरुणश्चांशुरेव च ।७७
भगो विवस्वान्पूषान सविता दशमस्तथा ।
एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादशउच्यते ।७८

फिर भी जो सार का सर्वस्व है वह मैंने बतला दिया है। इसके भी आगे आप और श्रवण कीजिये। अकार है आदि में जिनके और 'अ' यह अन्त में जिनके ऐसे जो ये चौदह स्वर हैं वे ही चौदह मनुगण हैं। उन चौदह मनुओं के ये नाम होते हैं--स्वायम्भुव, स्वारोचिष उत्तम, रैवत, तामस चाक्षुष छटा है। इस समय में वैवस्वत मनु वर्तमान है। वावर्णी, रुद्र, षावर्णी, दस सावर्णी धर्म सावर्णी, रौच्य और भौत्य ये ही चौदह मनुगण हुआ करते हैं। श्वेत पाण्डु, रक्त, ताम्र, पीत, कपिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, सुपिशङ्ग पिशङ्गक, त्रिवर्ण, वर्णों से शबल और कर्कन्धुर इस क्रम से उन चौदहों मनुओं के वर्ण होते हैं। हे तात ! वैवस्वत और क्षकार कृष्ण दिखलाई देता है। ककार जिनके आदि में है वे सब हकारान्त पर्यन्त तेतीस देवता हैं। ककार से आदि लेकर उकार के अन्त द्वादशी आदित्य कहे गये हैं। उन बारहों आदित्यों के नाम ये होते हैं-धात, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंशु, भगा विवस्वान्, दशवां सविता एकादशवां त्वष्टा और बारहवां विष्णु नाम कहा जाता है।७१-७८।

जघन्यजः स सर्वेषायादित्यानाँ गुणाधिकः।
डकाराद्यःबकासत्तारुद्राश्चैकादशैवत ।७९
कपालो पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहिः।
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा।८०
भकाराद्या षकारान्ताअष्टौहिवसवोमताः।
ध्रुवो घोरश्च आपश्चैवनलोऽनिलः।८१
प्रत्यूषश्चन्द्रभासश्चकष्टौतेवसवसवः स्मृताः।
सौ पश्चेत्यर्शिवनौख्यातौ त्रयस्त्रिशदिमेस्मृता।८२
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीयएव।
उपध्मानीलइत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः।८३
स्वेमजाश्चोद्भिजाश्चेतिततोजीवा प्रकीर्तिताः।
भावर्थः कथितश्चायंतत्वार्थंश्रुणसांप्रतम् ।८४

वह इन समस्त आदित्यों में जघन्यज अर्थात् सबसे अन्त में समुत्पन्न होने वाला है किन्तु जघन्यज होते हुए भी गुणों में सबसे अधिक है। डंकार से आदि लेकर बकारान्त पर्यन्त एकादश रुद्र होते हैं। जिन एकादशा रुद्रों के नाम ये होते हैं--कपाली, पिङ्गल, भीमा विरूपाक्ष, वियोहित, अजक, शासन शास्ता, शम्भु, चण्ड, भव। भकार से आरम्भ करके प्रकार के अन्त तक आठ वसुगण कहे गये हैं। दोनों प्रकार हजार येदो अश्विनी कुमार प्रसिद्ध हैं। इस रीति से ये तैंतीस देवगण बताये गये हैं। अनुस्वार विसर्ग, जिह्वामूलीय और गपठमानीय ये चारों जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिव ये चार प्रकार के जीव कीर्तित किये गये हैं। वस मैंने इसका भावार्थ कह दिया है। अब इसका तत्वार्थ भी आप श्रवण कीजिए।७६-८४।

ये पुमांसस्त्वमन्देवान्सभाश्रित्य क्रियापराः।
अर्धमात्रात्मकेनित्येपदेलीनास्तएवहि ।८५
चतुर्णा जीवयोनीनां तदैव परिमुच्यते।
यदा भून्मनसा वाचा कर्मणा च यजेत्सुरान् ।८६
यस्मिछास्त्रे त्वमीदेवामानितानैव पापिभिः।
तच्छास्त्रं हि न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ।८७
अमीचदेवाः सर्वत्र श्रौते मार्गे प्रतिष्ठताः।
पाषण्डशास्त्रे सर्वत्र निषिद्धाः पापकर्मभिः ।८८
तदमन्ये व्यतिक्रम्य तपोदानमथो जपम्।
प्रकुर्वन्ति दुरात्मानोवेपन्ते मरुतः पथि ।८९
अहोमोहस्यमाहात्म्यपश्यताऽविजितात्मनाम्।
पठन्तिमातृकांपापामन्यन्तेनसुरानिह ।९०

जो मनुष्य न देवों का समाश्रय ग्रहण करके क्रिया में परायण रहा करते हैं वे अर्ध मात्रात्मक नित्य पद में तीन ही होते हैं। चार प्रकार की जीवों की योनियों का परिमोचन उस समय में हुआ करता

हैं जबकि मन, वाणी और कर्म के द्वारा सुरों को यजन होता है। जिस शास्त्र में ये सब देवगण हैं। पापियों के द्वारा ये सब देवगण नहीं माने गये हैं। ऐसा शास्त्र भी कभी नहीं मानना चाहिए चाहे उसको साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न कहते हों।८५-८७। ये देवगण सर्वत्र श्रोत्र (वैदिक) मार्ग ये प्रतिष्ठित होते है। पाषन्ड शास्त्र में सब जगह पाप कर्म करने वालों के द्वारा निषिद्ध किये गये हैं। तो जो लोग इन देव वृन्दों का विशेष रूप से अतिक्रमण करके तप धन तथा जप किया करते हैं वे दुष्ट आत्मा वाले पुरुष वायु के मार्ग कम्पित हुआ करते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात हैं अविजित आत्माओं वाले पुरुषों के मोह के इस माहात्म्य को देखिये। ये लोगमातृका का पाठ तो किया करते हैं अर्थात् इसका अध्ययन करते हैं किन्तु पापात्मा लोम इसमैं सुरों को नहीं मानते हैं।८८-९०।

इति तस्यवचः श्रुत्वा पिताऽभूदतिविस्मितः।
पप्रच्छचबहून्प्रश्नान्सोप्यवादीत्तथातथा।९१
मयापि तव प्रोक्तोऽयं मातृकाप्रश्न उत्तमः।
द्वितीय श्रृणु तं प्रश्नं पञ्चपचाद्भुतं गृहम्।९२
पंचभूतानि पंचैव कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च।
पंच पंचाऽपि विषया मनोबुद्ध्यहमेव च।९३
प्रकृति पुरुषश्चेव पंचविंशः सदाशिवः।
पंचपंचभिरेतैस्तु निष्पन्नं गृहमुच्यते।९४
देहमेतदिदं वेद तत्वो यात्यसौशिवम्।
वहुरूपां स्त्रिय प्राहुर्बुद्धि वेदान्तवादिनः।९५
सा हि नानार्थं भजनान्ननारूप प्रपद्यते।
धर्मस्तेकस्य संयोगाद्बहुधाऽप्ये किंकैव सा।९६
इति यो वेद तत्वार्थंनाऽसौ नरकामप्नुयात्।
मुनिभिर्यंच्च न प्रोक्तं न मन्येतदैवतान्।९७

वचनं तद्बुधाः प्राहुदन्धं चित्रकथं त्विति ।
यच्चकामान्वितवाक्यं पंचमंवाप्यतः श्रृणु ।६८

सुतनु ने कहा उस अपने पुत्र के इस वचन का श्रवण करके पिता अत्यन्त विस्मित हो गये थे । फिर पिता ने उससे बहुत से प्रश्नों को पूछा था सो वे भी उसने ठीक-ठीक बतला दिये थे । मेरे द्वारा भी आपका यहीं उत्तम मातृ का प्रश्न कहा है । अब आप अपना दूसरा प्रश्न सुनिए जो कि पञ्चातृभुत गृहम् ।६१-६२। पाँच तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच भूत होते हैं और पाँच ही इन्द्रियाँ हैं जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियाँ । इनके पाँच ही विषय होते हैं । मन, बुद्धि अहङ्कार प्रकृति और पुरुष ये भी पाँच हैं इस प्रकार से पच्चीस तत्वों से परिपूर्ण सदा शिव है । इन्हीं पाँच-पाँचों से निष्पन्न गृह कहा जाया करता है ।६३-६४। सभी देह जानते हैं और तत्व से यह शिव को प्राप्त किया करेगा । वेदान्त वादी लोग इस बुद्धि को बहुत से रूपों वाली स्त्री कहा करते हैं ।६५। वह अनेक प्रकार के अर्थों का सेवन करने से नाना भौतिक स्वरूप को प्राप्त कर लिया करती है । केवल एक धर्म का जब इसके साथ संयोग प्राप्त हो जाया करता है तो यह बहुत प्रकार की भी एक ही हो जाती है । इस प्रकार से जो भी कोई तत्वार्थ को जान लिया करता है वह फिर कभी भी नरक को प्राप्ति नहीं किया करता है । जिसको मुनियों ने नहीं कहा है कि देवतों को नहीं मानना चाहिये । बुद्ध पुरुष चित्र कथा युक्त वन्त वचन को बोला करते हैं । जो कामान्वित वाक्य है अथवा पञ्चम है । इसलिए उसका श्रवण करो ।६६-६८।

एको लोभो महान्ग्राहोलोभात्पायप्रवर्त्तते ।
लोह्यत्क्रोधः प्रभवतियोभात्कामः प्रवर्तते ।६६
लोभान्मोहश्च माया च मान स्तम्भः परेप्सुता ।
अविद्याऽमुज्ञताचैव सर्वं लोभात्प्रवर्त्तते ।१००

हृरणं परवित्ताना परदाराभिदर्शनम् ।
साहसानां च सर्वेषांबकार्याणाँ क्रियास्तथा ।१०१
स लोभः सह माहेन विजैतव्योजितात्ममा ।
दम्भौद्रोहश्चनिन्मात्त्रपैशुन्यं मत्सरतथा ।१०२
भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानाकृतात्मनाम् ।
सुमहान्त्यपि शास्त्राणिधारयन्ति बहुश्रु ता ।१०३
छत्तारः संशयानां लोभग्रस्ताव्रजन्त्यधः ।
लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृताः ।१०४
अन्त क्षुरावाङ्कधुराः कृपाश्छन्नस्तृणेरिव ।
कुर्वंतेयेबहून्मार्गास्तान्हेतु बलान्विता ।१०५

यह एक लोभ ही महान् ग्राह है। इस लोभ से पाप प्रवृत्त हुआ करता है। लोभ से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। लोभ ही से काम समुत्पन्न होता है। लोभ से ही मोह, माया, मान स्तम्भ परेप्सुता, अविद्या, अप्रज्ञता से सभी एक मात्र लोभ से ही प्रवर्त्तित हुआ करते हैं ।९९-१००। पराये धनों का हरण, पराई स्त्रियों का अभिमर्दन, सभी प्रकार के साहसों का तथा अकार्यों की क्रियायें भी लोभ के ही कारण से हुआ करते हैं अतएव जीवात्मा पुरुष के द्वारा यही लोभ मोह के सहित जीत लेना चाहिए। दम्भ, द्रोह, निन्दा, पैशुन्य तथा मत्सरता में सभी अकृतात्मा लुब्धक पुरुषों को ही हुआ करते हैं। वह श्रु त लोग अर्थात् ऐसे पुरुष बहुत कुछ सुन रखा है बड़े-२ शास्त्रों को हृदय में धारण किया करते हैं। ये लोग सभी तरह के संशयों का छेदन करने वाले होते हैं किन्तु जब ये लोभ से ग्रस्त हो जाते हैं तो इनका आधा पतन हो जाया करता है। काम और क्रोध में प्रसक्त, शिष्ट पुरुषों के आचार से बहिष्कृत हुए--जिसका अन्तःकरण तो उस्तरे के समान कर्त्तन करने वाला होता है तथा वाणी बहुत मधुर हुआ करती है जिस तरह से कूप तृणों से समाच्छादित होवे। ऐसे लोग जो

होते हैं वे बल से समन्वित होकर उन-उन बहुत से मार्गों का किया करते हैं ।१०१-१०५।

सर्वंमर्गं विलुम्पन्ति लोभाज्जातिषु निष्ठुरा ।
धर्मावर्तंसका क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत् ।१०६
एतेऽतिपापिनोज्ञया नित्यं लोभसमन्वताः ।
जनको युवनाश्मश्वृषादर्भिः प्रसेनजित् ।१०७
लोमक्षयाद्दिवप्राप्तस्तथैवान्पे जनाधिपा ।
तस्मात्यजतियेलोभन्तेऽतिक्रामतिसागरम् ।१०८
संसाराख्यमतोऽन्ये ये ग्राहग्रस्ता न संशयः ।
अथ ब्राह्मणभेदांस्त्वमष्टौ विप्रावधारय ।१०९
मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रौत्रियश्च ततः परम् ।
अनूचानस्तथा भ्रूण ऋषिकल्प ऋषिमुनिः ।११०
एते ष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रतौ ।
तेषां परः श्रेष्ठोर्विद्यावृत्तिविशेषतः ।१११
ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रोयाभवेत् ।
अनुपेतः क्रियाहीनोमात्र इत्यभिधीयते ।११२

लोभ से जातियों में महान् निष्ठुर सभी मार्गों को विलुप्त कर दिया करते है। ये धर्मावतसक, क्षुद्रध्वजी लोग इस जगत् को ठगा करते हैं अर्थात् धोखे में डाल दिया करते हैं। इन लोगों का अत्यन्त अधिक पापी समझना चाहिए क्योंकि ये लोग नित्य ही लोभ से समन्वित रहा करते हैं। जनक, यवानाश्व, वृषादर्भि और प्रसेनजित् ने लोग लोभ के क्षय होने से ही दिवलोक को प्राप्त हो गये थे। इसी भाँति अन्य भी बहुत से जनाधियों ने एकमात्र लोभ का परित्याग करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की है। इसलिए जो लोग इस लोभ का परित्याग कर दिया करते हैं वे इस संसार रूपी सागर को पार करके तैर जाया करते हैं। यह संसार नाम वाला सागर है। जो अन्य पुरुष

ग्रस्त ही रहा करते हैं--इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। इसके अन-न्तर हे विप्रदेव ! आप अब आठ प्रकार के जो ब्राह्मणों के भेद होते हैं उनका अवधारण कर लो। मात्र ब्राह्मण, श्रोत्रिय, इसके आगे अनुचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि ये आठ ब्राह्मणों के भेद होते हैं जो कि ब्राह्मण समुदिष्ट किये गये हैं। श्रुतिमें प्रथम ही इनको बत-लाया गया है इन आठ प्रकार के भेदों में जो आगे-आगे बत-लाया गया है वह ही अधिक श्रेष्ठ होता है और विद्या तथा चरित्र से युक्त होने वाला विशेष रूप से श्रेष्ठ माना गया है। जो ब्राह्मणों के कुल में समुत्पन हुआ है और केवल जाति में ही जन्म ग्रहण करने वाला होता है तथा सब प्रकार से अनपेत एवं क्रिया से हीन हुआ करता है ब्राह्मण 'मात्र' इस नाम से कहा जाया करता है।१०६-११२।

एकौद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याऽचारवानृजः ।
स ब्राह्मणइतिप्रोक्तोनिर्भतः सत्यबाग्घृणो ।११३
एकां शाखां सकल्षड्भिरङ्गै रधीत्यवां ।
षट्कर्मनिरतो विप्र श्रोत्रियोमामधर्मवित् ।११४
वेदवेदांगतत्वज्ञ पापवर्जितः ।
श्रेष्ठः श्रोत्रियवान्प्राज्ञः सौऽचानइतिस्मृतः ।११५
अनूचानगुणोपेतोयज्ञस्दौध्याययन्त्रित ।
भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजीजितेन्द्रियः ।११६
वैदिकलौकिकं चैव सर्वज्ञानमाप्य यः ।
क्षाश्रमस्या वशीनित्यमृषिकल्प इतिस्मृतः ।११७
उर्ध्वरेता भवत्यग्न्यो नियताशों न संशयी ।
शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यमंधो भवेद्दषिः ।११८
निवृत्तः सर्वतत्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ।
ध्यानस्योनिष्क्रियो दान्तस्पुल्मुञ्चनोकञ्चनो मुनिः ।११९

एकोद्देश्य का अतिक्रमण करके जो वेद के आचार वाला होता हैं और परम सरल हुआ करता है वह 'ब्राह्मण' इस नाम से कहा गया है। जो परम निभृत, सत्य वचन बोलने वाला, घृणी तथा वेद की किसी एक शाखा को कल्प के सहित एवं छह अङ्गों से संयुत अध्ययन करके षट् कर्मों में जो धर्म का वेत्ता सदा निरत रहा करता है हे विप्र! उसको 'श्रोत्रिय' कहा जाता है।११३-११४। जो वेदों और वेदीके अङ्ग शास्त्रों के तत्वों का पूर्ण ज्ञाता होता है, शुद्ध आत्मा वाला, पापों से रहित, परम श्रेष्ठ, श्रोत्रियवान्, प्राज्ञ होता है वह 'अनुचान' कहा गया हैं। जो अनुचान में रहने वाले समस्त गुणों से सुसम्पन्न तथा यज्ञ और स्वाध्याय में यन्त्रित रहने वाला होता है उसको 'भ्रूण' इस नाम से शिष्टों के द्वारा कहा जाया करता है। जो शेष भोली इन्द्रियों को अपने वश में रखकर जीत लेने वाला वैदिक और लौकिक सभी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त कर लेने वाला, आश्रय में संस्थित, नित्य वशी अर्थात् सदा अपने आप पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाला होताहै वह 'ऋषिकल्प' इस नाम से कहा गया है। जो ऊर्ध्वरेता, अन्य नियत अशन करने वाला संशय से रहित तथा शाप देने में अनुग्रह करने में पूर्ण शक्ति रखने वाला, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला होता है वह 'ऋषि' इस नाम से कहा जाया करता है। जो सभी प्रकार की प्रवृत्तियों से निवृत रहने वाला, सब प्रकार के तत्वों का पूर्ण ज्ञाता है, काम और क्रोध से रहित है ध्यान में स्थिच रहने वाला, निष्क्रिय परम दमन शील तथा मिट्टी और सुवर्ण दोनों में समान भावना रखने वाला होता हैं वह 'मुनि'-- इस नाम से कहा जाया करता है।११५-११९।

एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छिताः।
त्रिशुक्लानाविप्रेन्द्राः पूज्यन्ते सवनादिषु।१२०
इत्येवं विधविप्रत्वमुक्तं श्रृणु युगादयः।
नवमी कार्त्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता।१२१

वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते ।१२२
माघे पञ्चदशींनाम द्वापरादिः स्मृताबुधैः ।१२३
त्रयोदशी नभयेच कृष्णासाहिकले स्मृता ।
एताश्चतसस्तिथयो यगाधा दत्तं हुत चाऽक्ष्यमाशु विद्यात् ।
युगे युगे वर्षशतेन दानं युगादिकाले दिवसेन तत्फलम् ।१२४
युगाद्याः कथिता ह्येता मन्वाद्या श्रृणु साज्यतम् ।
अव्ययुक्छक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।१२५
तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ।
फाल्गुनस्यत्वमावास्यापौषस्यैकार्शी तथा ।१२६

इस रीति से वंश और विद्या तथा चरित्र से जो समुच्छित होते हैं वे त्रिशुक्ल अर्थात् तीनों प्रकार से शुक्ल विप्रेन्द्र सवन प्रभृति में पूजा करने के योग्य हुआ करते हैं। इस तरह से विप्रों की किस्में मैंने आपको बतला दी हैं। अब युगादि के विषय में आप श्रवण करिये। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की जो नवमी तिथि होती है जिसको अक्षय नवमी कहते हैं वहीं कृतयुग के आदि का दिन कीर्त्तित किया गया है अर्थात् नवमी से ही कृतयुग का आरम्भ होना है। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की जो तृतीया तिथि है जिसको अक्षय तृतीया कहते हैं उसी दिन से त्रेता युग का आरम्भ होता है अर्थात् वही त्रेता का आदि दिन है। माघ मास की पञ्चदशी तिथि अर्थात् पूर्णिमा द्वापर युग का आदि दिवस है जिसको बुधों के द्वारा कहा गया है। नभस्य मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि कलियुग का आदि दिवस है। इस तरह से युगों के आदि दिवस बतला दिये गये हैं जो दिये हुए दानों के अक्षय करने वाले होते हैं ये चार तिथियाँ युगों के आदि दिन है। इन तिथियों में दिया हुआ दान, हवन शीघ्रही अक्षयता को प्राप्त हो जाया करता है-ऐसा जान लो। युग-युग में सौ वर्ष तक जो दानका फल

होता है वह युगों के आदि दिवस में दिये हुए दान का फल हुआ करता है। ये युगों के आदि दिवस तो कह दिए गये हैं। अब मनुओं के भी आदि दिवस सुन लीजिए। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तथा कार्त्तिक मास की द्वादशी, चैत्र मास की तृतीया तथा भाद्रपद मासकी तृतीया, फाल्गुन मास की अमावस्या और पौष मास की एकादशी ।१२०-१२६।

आषाढस्याऽपिदशमीधमासम्य स तमी ।
श्रावणस्याष्टवीकृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ।१२७
कार्तिकी फाल्गुनीचैत्रो ज्येष्ठंपञ्चदशीसिता ।
मन्वन्तरपादयश्चैतादत्तस्याक्षयकारका: ।१२८
यस्यां तिथौ रथं पूर्वं प्राप देवो दिवाकर: ।
सा तिथि: कथिता विप्रै मधियारथसप्तमी ।१२९
तस्या दत्त त्तं चेष्टं सर्वमेवाऽक्षयं मतम् ।
सददारिद्रयशमनं भास्करप्रीतये मतम् ।१३०
नित्योद्वे जेकमासुर्यं बुधास्त श्रृणुतत्वत: ।
यस्याचनिकोनित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम् ।१३१
उद्वे जयति भूतानि यथा चौरास्तथैव स: ।
नरकं यातिपापात्मानित्योद्वेगकरस्त्वसौ ।१३२
इहोपपत्तिमेम केन कर्मणा क्व च प्रयातव्यामियो मयेति ।
विचारयँ चैव प्रतिकारकारी बुधै: स चोक्तो द्विज ।
दक्षदक्षा ।१३३

आषाढ़ मास की दशमी, माघ मास की सप्तमी, श्रावण मास की अष्टमी, आषाढ़ी पूर्णिमा, कर्त्तिकी, फाल्गुनी, चैत्री और ज्येष्ठ मास की सिता पञ्चदशी ये सब तिथियाँ मन्वन्तरी की आदि तिथियाँ हैं। इन तिथियों में दिया हुआ दान अक्षय करने वाला होता है। जिस तिथि में सबसे पूर्व दिबाकर ने रथ की प्राप्ति की थी वह विप्रोंके द्वारा

मास में जो रथ सप्तमी होती है वही कही गयी हैं। उस तिथि का भी उड़ा अधिक महत्व होता है। उस रथ सप्तमी के दिन में दिया हुआ दान, हवन तथा अन्य भी इष्ट आदि की उपासना सभी कुछ अक्षय हो जाया करता है। यह समस्त प्रकार की दरिद्रता के गमन करने वाला होता है क्योंकि इसमें कुछ भी पुण्य कर्म करके भगवान् भास्कर देव परम प्रसन्न हुआ करते हैं। जिसको बुद्ध पुरुष नित्य ही उद्वेग उत्पन्न करने वाला कहा करते हैं उसके विषय में भी आप तात्विक रूप से श्रवण करिये। जो नित्य ही याचना करने वाला होता है वह कभी भी स्वर्ग प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हुआ करता है। यह समस्त भूतों को उद्विग्न किया करता है जिस तरह से चोर उद्वेजक होते हैं वैसे ही यह भी हुआ करता है। ऐसा व्यक्ति अत्यन्त पापात्मा होता है और नरक में गमन किया करता है क्योंकि यह नित्य ही उद्वङ्के करने वाला होता है। यहाँ संसार में मेरी किस कर्म के द्वारा उत्पत्ति होती और मुझे कहाँ पर प्रमाण करना चाहिए इस तरह से जो विचार करके प्रतिकार करने वाला पुरुष होता है बुधों के द्वार वही पुरुष हे द्विज ! दक्षों में भी परम दक्ष कहा गया है।१२७-१३३।

मासैरष्टभिरह्याचपूर्वेण वसयाऽयुषां ।
ताकर्म पुरुष: कुर्याद्य नान्तेसुखमेधते ।१३४
अर्चिधूंमश्च मार्गो द्वाचाहुर्वेदान्तवादिन: ।
अचिषा यातिमोक्षञ्च धूमेनाऽवर्तंतेपुन: ।१३५
यज्ञै रासाद्यते भूमो नैष्कर्म्येणाचिरांप्यते ।
एतयोरपरो माग: पाखण्ड इति कीर्त्यंते ।१३६
यो देवामन्यतेनैवक्षर्मांच्चअनुसूचितान् ।
नैतो सयातिपन्थानौतत्वार्थोऽय निरूपित: ।१३७
इतितेकीर्तिता प्रश्ना: शक्त्याब्राह्मणसत्तम ।
साधुवाऽसाधुवान्नू हिख्याप याऽमनमेव च ।१३८

पुरुष को आठ मास पूर्व, दिन वय और अपनी आयु के द्वारा वही कर्म करना चाहिए जिससे अन्त में सुख का लाभ होता है।१३४। वेदान्त वादी विद्वान और धूम ये दो मार्ग बतलाया करते हैं। अर्चि नामक मार्ग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति किया करता है और धूम मार्ग से पुनः आवर्त्तन किया करता है। यज्ञों द्वारा धूम प्राप्त किया जाता है और निष्कर्म्मता से अर्चि का समावादन किया जाता है। इन दोनों मार्गों से अतिरिक्त दूसरा मार्ग पाखण्ड कहा जाता है। जो पुरुष देवों को नहीं मानता है और अनुसूचित धर्मों को भी नहीं मानता है। वह इन दोनों मार्गों में नहीं जाया करता है-यही सबका तत्वार्थ निरूपित कर दिया गया हैं। इस रीति से ये सब आपके किये गए प्रश्नों का उत्तर दे दिया गया है। उत्तर साधु असाधु हैं-यह हमको बतला दो और अपने आपका भी परिचय प्रदान करो।१३५-१३८।

१६—शिवपूजनमाहात्म्यवर्णन

अथ ते तद्दशुः पार्थं संयमस्थं महामुनिम्।
क्रियायोग्समायुक्तं तपोमूर्तिधरं यथा।१
जठास्त्रिषवणस्नाकपिलाः शिरससातदा।
धारयन्तं लोमशाख्यमाज्यासिक्तमिवाऽनलम्।२
सव्यहस्तेतृणोघं च च्छायार्थे विप्रसत्तमम्।
दक्षिणे चाक्षमालां च विभ्रतं मित्रमार्गगम्।३
अहिंसयन्दुरुक्तादयैः प्राणिनो भूमिचारिणः।
यः सिद्धि मेति जप्येनसमंत्रोमुनिरुच्यते।४
ब्रक्रूपद्विजोलूगध्रकर्मा विलोक्य च।
नेमुः कलापग्रामे तं चिरन्तनपोनिधिम्।५
स्वागतासनसत्कारशामुनातेऽतिसत्कृताः।
यथोचित प्रतीतास्तमाहुः कार्यंहृदिस्थितम्।६

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा-हे पार्थ ! इसके अनन्तर उन्होंने संयम में संस्थित और क्रिया योग से समन्वित तपोमूर्ति को धारण करने वाले महामुनि का दर्शन किया था। उस समय में लोमश नाम वाले वेमुनिवर तीनों कालों में सन्ध्या के निर्मित्त किये जाने वाले स्नान से कपिल वर्ण वाली जटाओं को शिर में धारण करने वाले थे जो घृत से रिक्त अग्नि के ही तुल्य दिखलाई दे रहे थे। सव्ल हस्त में छाया के लिए तृण का समूह था, दक्षिण कर में अक्षों की माला धारण किये हुए थे तथा मैत्र मार्ग में गमन करने वाले विप्र श्रेष्ठ को देखा था।१-३। दुष्ट उक्तियों के द्वारा भूमि पर सञ्चरण करने वाले प्राणियों को हिंसित करते हुए जो जप्य के द्वारा सिद्धि की प्राप्ति किया करता है वह मैत्र मुनि कहलाता है। वक, भूष, द्विज, उलूक, गृध्र और कूम सब उन चिरन्तन तपोनिधि को देखकर कलाप ग्राम में प्रणाम किया करते थे। स्वागत, आसन और सत्कार के द्वारा इस मुनि से वे सब अत्यार्त्रिक संस्कृत हुआ करते थे। यथोचित से समाश्वस्त होते हुए वे सब अपने हृदय में स्थित कार्य उस महा मुनीन्द्र से कहा करते थे।४-६।

इन्द्रद्युम्नोऽयमवनीपतिः सत्रिजनाग्रणी।
कीर्तिलोपान्निरस्तोऽय वेणुसानाकपृष्ठतः।७
मार्कण्डेयादिभिः प्राप्यकीर्त्युं द्धारं न सत्तम्।
नातकामयतेस्वर्गंपुनः पातादिभीषणम्।८
भवताऽनुगृहीतेऽयभिहेच्छति महोदयम्।
प्रणोद्यस्तदयंभूपः शिष्यस्ते भवन्मया।९
त्वत्सकाशमिहाऽनी ब्रूहि साध्वस्य याञ्छितम्।
परोपकारणं नाम साधूनां व्रतमाहितम्।
विशेषतः प्रणोद्याना शिष्यवृत्तिमुपेयुषा।१०

अप्रणोद्य षु पापेषु सायु प्रोक्तमसंशयम् ।
विद्व षं मरणं चाऽपि कुरुतेऽन्यतरस्य च ।११
अप्रमत्तः प्रणोद्य षु मुनिरेषु प्रयच्छति ।
तदेवेति भवानेवं धर्मं वेत्ति कुतो वयम् ।१२

कूर्म्म ने कहा-यह अपनी का स्वामी इन्द्रद्यु म्न स्त्री जनों में अग्रणी है किन्तु कीर्त्ति के लोप हो जाने से मेधा के द्वारा यह नाक (स्वर्ग) के पृष्ठ भाग से निरस्त कर दिया गया है । हे सत्तम् ! मार्कण्डेय आदि महर्षियों के द्वारा अपनी कीर्त्ति का उद्धार प्राप्त करके वह फिर पुनः पात आदि के होने के कारण अतीव भीषण स्वर्ग के पाने की कामना ही नहीं करता है । आपके द्वारा यह अनुगृहीत होना चाहिए कि यह यहाँ पर इस महान् उदय की इच्छा कर लेवे । इस राजा को ऐसी प्रे रणा देनी चाहिए । यह राजा आपका ही शिष्य है और मेरे द्वारा आपके समीप में लाया गया है । आप कृपा करके इसको साधु वांछित बोलिए दूसरों का उपकार कर देना ही साधु पुरुषों का व्रत हुआ करता है और विशेष रूप से शिष्य वृत्ति को प्राप्त हुए प्रणोद्यों का उपकार करना उनका आहित व्रत है । जो प्रे रणा करने के योग्य नहीं हैं ऐसे पापियों के विषय में विना संशय के साधु कहा है । अन्य तर का विद्व ष और मरण भी किया करते हैं । जो प्रणोद्य है उनके विषय में अप्रमत्त यह मुनि वह ही प्रदान किया करते हैं-आप ही इस प्रकार के पूर्ण धर्म्म को जानते हैं हम लोग इस विषय में अधिक क्या जानकारी रख सकते हैं ।७-१२।

कूर्मं युक्तमिदं मर्वं त्वयाऽमिहितमद्य नः ।
धर्मंशास्त्रोषनतंतस्मारिताः स्मपुरातनम् ।१३
ब्रू हि राजन्सुविश्रब्धं सन्देह हृदयस्थितम् ।
कस्ते किमब्रवीच्छेप वक्ष्याम्शहनसंशयः ।१४
भगवन्प्रथमः प्रश्नस्तावदेव ममोच्यताम् ।
ग्रीष्मकालेऽपि मध्यस्थेरवौकिनतवाश्रमः ।१५

कुटीमात्रोऽसि यच्छाया तृणै शिरसि पाणिगैः ।१६
मतंव्यमस्त्यदश्यं च कार्यं एष पतिष्यति ।
कस्याऽर्थे क्रियते गेहमनित्य भवमध्यगै ।१७
यस्य मृत्युदेर्यन्मित्रं पीतं वाऽमृतमुत्तमम् ।
तस्यैतदुचित वक्तुमिदमेश्वो भविष्यति ।१८
इदं युगसहस्रेषु भविष्यमभवद्दिनम् ।
तदप्यद्यत्वमापन्नं का कथा मरणावधेः ।१९
कारणानुगतं कार्यमिदं शुक्रादभूद्वपुः ।
कथं विशुद्धिमायाति क्षालिताङ्गारवद्वद ।२०
तदस्याऽपि कृते पाप शत्रुषड्वर्गं नर्जिताः ।
कथङ्कारं न लज्जन्ते कुर्वाणां नृपसत्तम् ।२१

महर्षि लोमशजी ने कहा--हे कूर्म्म ! आज बाप ने जो यह हमसे कहा है वह बहुत युक्त एवं समुचित है । आपने यह पुरातन धर्म शास्त्र से उपनत बात का हमको स्मरण दिला दिया । हे राजन् ! आप अपने हृदय में स्थित सन्देह को पूर्ण विश्रब्धा रूप से बोलिये । आपको किसने क्या दिया है ? शेष मैं आपको बतला दूँगा--इस में कुछ भी संशय नहीं है ।१३-१४। राजा इन्द्रद्युम्न ने कहा--हे भगवान् ! मेरा सबसे प्रथम प्रश्न तो यही है उसे आप बतलाइये कि इस घोर ग्रीष्म काल में भी जब कि रवि मध्य में स्थित हैं इस आपके आश्रम में यह क्यों नहीं है ? आपके अपने हाथ में रहने वाले तृणों से जो शिर पर हैं आपकी इस कुटी पर यह छाया कैसे है ? महर्षि लोमश जी ने कहा-मरना तो अवश्य ही है और यह काया अवश्य ही गिर जायेगी । इस अनित्य संसार के मध्य में गमन करने वालों के द्वारा किसके लिए घर किया जावे ? जिसका मृत्यु मित्र है चाहे उसने उत्तम अमृत ही क्यों न पिया हो उसको यही कहना उचित है कि यह मुझे कल ही हो जायेगी । सहस्रों युगों में होने वाला यह दिन हुआ है वह भी अद्यत्व

को प्राप्त हो गया है। इस मरण की अवधि के विषय में तो कहना ही क्या है।१५-१६। प्रत्येक कार्य कारण के ही अनुगत हुआ करता है। यह शरीर शुक्र (वीर्य) से समुत्पन्न हुआ है। आप ही बतलाइये, यह क्षालित अङ्गार की भाँति किस प्रकार से विशुद्धि को प्राप्त हो सकता हैं। सो ऐसे इस अनित्य एवं अविशुद्ध शरीर के ही लिए छह शत्रुओं के द्वारा निर्मित मनुष्य पाप किया करते हैं। हे नृपश्रेष्ठ ! इस तरह पाप कर्मों को करते हुए भी वे मनुष्य क्यों नहीं लज्जित हुआ करते हैं।२०-२१।

तद्ब्रह्मण इङ्गोत्पन्नः सिकताद्वयसम्भवः ।
निगमोक्तं पठञ्छृण्वन्निदं जीविष्यतेकथम् ।२२
तथापि वैष्णवी माया मोहयस्यविवेकिनम् ।
हृदयस्य न जानन्तिह्यपिमृत्यु शतायुषः ।२३
दन्ताश्चलाश्चला लक्ष्मीर्यौवनं जीवित नृप ।
चलाचलमती वेद दानमेव गृह नृणाम् ।२४
इति विज्ञाय संसारमसारं चलाचलम् ।
कस्यार्थे क्रियते राजन्कुटजादिपरिग्रहः ।२५
चिरायुर्भगवानेव श्रूयते भुवनत्रये ।
तदर्थंमहामायातस्तत्किमेव वचस्तव ।२६
प्रतिकल्प मच्छरीरादेकरामपरिक्षयः ।
जायते सर्वनाशे च मम भुवि प्रमाणम् ।२७
पश्य जानुप्रदेशं मे प्रव्यङ्गुलं रोमवर्जितम् ।
जात वपुस्तद्विभेमिमर्तव्यसति किं गृहैः ।२८

यहाँ पर उस ब्रह्मा के सिकता द्वय से उत्पन्न हुआ है--नियम के द्वारा कथित इसको पढ़ते एवं श्रवण करते हुए कैसे जीवित रहेगा ? तो भी यह वैष्णवी माया ऐसी अद्भुत है कि विवेकहीन पुरुष को मोहित कर दिया करती है। मनुष्य सौ वर्ष की आयु वाले भी

अपने हृदय में, स्थित भी मृत्यु का ज्ञान नहीं रखा करते हैं ये शरीर में रहने वाले दाँत चलायमान अर्थात् अस्थिर होते हैं--यह लक्ष्मी भी चलायमान अर्थात् कभी भी एक के पास स्थिर रहने वाली नहीं है यह यौवन और वह जीवन भी चल हैं अर्थात् स्थिरता से रहित ही होते हैं हे नृप ! यह संसार में रहने वाले सभी कुछ चलाचल हैं अतएव मनुष्यों का दान हीं गृह होता है। यही ज्ञान प्राप्त करके इस संसार को चला चल एवं असार समझकर हे राजन् ! कुटज आदि का परिग्रह किसके लिए किया जावे ।२२-२५। इन्द्रद्युम्न ने कहा-इस भुवन त्रय में एक आप ही चिरायु है-ऐसा ही सुना जाता है। इसलिए मैं यहाँ पर समायात हुआ हूँ सो आपका यह वचन क्यों हैं ? ।२६। महर्षि लोमश जी ने कहा-प्रत्येक कल्प में इस मेरे शरीर से एक रोम का परिक्षय होता है। सर्वनाश होने पर मेरा यह भावी होने वाला प्रमापण होता है आप मेरे इस जानुओं के भाग को देखो-यह दो अंगुल तक रोमों से रहित है। मेरा यह शरीर जब ऐसा हो गया है तो मैं डरता हूँ कि मरना ही है तो फिर गृहों से अपना क्या प्रयोजन है ।२७-२८।

इत्थं निशम्यतद्वाक्यसप्रवस्याऽतिविस्मितः ।
भूपालरतस्य पप्रच्छकारणताहृशायुषः ।२९
पृच्छामि त्वामहं ब्रह्मन्यदायुरिदमीदृशम् ।
तव दीर्घप्रभावोऽसौनस्यतपसोऽथवा ।३०
श्रृणु भूप प्रवक्ष्यामि पूर्वजन्मसमुद्भवाम् ।
शिवधर्मयुतां पुण्यांकथां पापप्रणाशनीम् ।३१
अहमासं पुरा शूद्रो दरिद्रोऽतीवभूतले ।
भ्रमामि बसुधापृष्ठे ह्यशनापीडितो भृशम् ।३२
ततो मया महल्लिङ्गं जालिमध्वगत तदा ।
मध्याह्नेऽस्य सलाधारो हृष्टश्चैवाऽविदूरतः ।३३

ततः प्रविश्य तद्वारि पीत्वा स्नात्वा च शाम्भवम् ।
तल्लिङ्ग स्नापित पूजा विहिता कमलैः शुभैः ।३४
अथ क्षुत्क्षामकण्ठोऽहं श्रीकण्ठ तं नमस्य च ।
पुन. प्रचलितो मार्गे प्रमीतोनृपसत्तम् ।३५

देवर्षि नारदजी ने कहा इस रीति से लोमश महर्षि के उस वचन का श्रवण करके वह राजा हँसकर अत्यन्त ही विस्मय से युक्त हो गया था । फिर उस राजा ने उनसे तरह की आयु का कारण पूछा था इन्द्रद्युम्न ने कहा- ब्रह्मन् ! मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आपकी यह आयु कैसे है ! क्या आपके परम विशाल दान अथवा तपका यह महान् प्रभाव है ! महर्षि लोमश जी ने कहा--हे राजन्! अब मैं आपसे पापों के प्रणाम करने वाली शिव धर्म से युक्त, पूर्व जन्म में होने वाली परम पुण्य कथा का वर्णन करूँगा उसे आप श्रवण कीजिए । मैं पहिले शूद्र था और इस भूतल में अत्यन्त ही दरिद्र था । मैं इस भूमि के पृष्ठ पर भोजन के लिए भी अत्यन्त पीड़ित होकर भ्रमण किया करता था । इसके उपरान्त उस समय में मैंने जलि के मध्य में स्थित एक महान् शिव लिङ्ग का दर्शन प्राप्त किया था । मध्याह्न के समय में इसका जलाधार समीप में ही मैंने देखा था । इसके पश्चात् उसके द्वार मे मैंने प्रवेश किया था । वहाँ पर मैंने शम्भु भगवान् के परम पवित्र जल पान किया था तथा स्नान किया था फिर उस शिव लिंग का भी स्नान कराया और परम शुभ कमल के पुष्पों के शिव लिंग की अर्चना की थी । हे नृपश्रेष्ठ ! इसके अनन्तर क्षुधा से क्षाम कण्ठ वाला मैं भगवान् श्री कन्ठ को नमस्कार कर फिर प्रमीत होता हुआ मार्ग में चल दिया था ।२९-३५।

ततोऽहं ब्राह्मणगृहे जातो जातिस्मरः सुतः ।
स्नापिनाच्छिवलिङ्गस्यसक्तत्कमलपूजनात् ।३६

स्मरन्विलसितं मिथ्या सत्याभासमिदं जगत् ।
अविद्यामयमित्येव ज्ञात्वा मूकत्वमास्थितः ।३७
तेन विप्रेण वार्धक्ये समाराध्य महेश्वरम् ।
प्राप्तोऽहमिति मे नामईशानइतिकल्पितम् ।३८
ततः स विप्रो वात्सल्यादगदान्सुबहून्मम ।
चकारः व्यपनेष्यामि मूकत्वमितिनिश्चयः ।३९
मात्रवादान्बहून्वैद्यानुपायानपरानपि ।
पित्रोस्तथा महामायासम्बद्धमनुसस्तथा ।४०
निरीक्ष्य मूढतां हास्यमासीन्मनसिमेतदा ।
तथा यौवनमासाद्यनिशिहित्वानिजं गृहम् ।४१
सम्पूज्य कमलैः शम्भुं ततः शयनमभ्यगाम् ।
ततः प्रमीते पितरि मूढइत्यहमुज्जितः ।४२

इसके पश्चात् भगवान शिव के स्नापन कराने से तथा केवल एक ही बार कमल के पुष्पों के द्वारा पूजन करने से मैं एक ब्राह्मण के घर में जातिस्मर का पुत्र होकर समुत्पन्न हुआ था मैंने इस सांसारिक विलास की पूर्णतया मिथ्या स्मरण करते हुए तथा इस असत्य जगत् को सत्य का आभास मात्र जानकर और यह सब अविद्यामय ही है-- ऐसा ज्ञान प्राप्त करके मूकत्व में समास्थित होगया था अर्थात् मैं किसी से भी न बोलकर एकदम गूँगा बन गया था । उस ब्राह्मणने वृद्धावस्था में भगवान महेश्वर की समाराधना करके ही मुझे प्राप्त किया था । इस लिए मेरा नाम 'ईशान'-वह कल्पित किया गया था । इसके अनन्तर उस विप्र ने वात्सल्य भाव होने के कारण से मेरी बहुत सी औषधियाँ की थीं और उनका ऐसा निश्चय हो गया था कि इस बालक की इस मूकता को मैं दूर कर दूँगा ।३६-३९। महामाया से सम्बद्ध मन वाले उन माता-पिता के मन्त्र वादों, बहुत से वैद्यों और दूसरे उपायोंको देख कर महा मूढ़ता से परिपूर्ण थे उस समय में मेरे मन में हास्य हो गया

था इसके उपरान्त मैं अपनी यौवन की अवस्था पर पहुँच गया था और उस समय में रात्रि में अपने गृह का त्याग करके बाहिर चला गया तथा कमल पुष्पों से शम्भुदेव का पूजन करके पुनः शयन पर प्राप्त हो गया था। इसके उपरान्त पिता के प्रतीत होने पर मुझे 'मूढ' यह कहकर त्याग दिया था।३०-४२।

सम्बन्धिभिः प्रतीतोऽथ फलाहारमवस्थितः।
प्रतीतः पूजयामीशमब्जंबंहुविधंस्तथा।४३
अथ वर्ष शतस्याऽन्ते वरदः शशिशेखरः।
प्रत्यक्षो याचितो देहि जगमरणंसंक्षयम्।४४
अजरामरता नास्ति नामरूपभृती यतः।
ममाऽपि वेहपात स्यादवधि कुरु जीविते।४५
इति शम्भोर्वच: श्रुत्वा मया वृतमिदंतदा।
कल्पान्ते रोमपातोऽस्तु मरण सर्वेसक्षये।४६
ततस्तव गणो भूयामिति मेऽभीप्सितो वरः।
तथेत्यक्त्वा स भगवान्सरश्चऽदर्शन गतः।४७
अहं तपसिनिष्ठश्च ततः प्रभृति चाऽभवम्।
ब्रह्महत्यादिभिः पापमुंच्यत शि पूजनात्।४८
व्रध्नाब्जैरितरैर्वाऽपिकमलैर्नाऽत्रसंशयः।
एवकुरु महाराजत्वमप्याप्स्यसिवांछितम्।४९

समस्त सम्बन्धियों के द्वारा मेरी मूढ़ता की प्रतीति हो गई थी और मेरा परित्याग भी कर दिया गया था। इसके पश्चात् में फलों के आहार पर ही अवस्थित हो गया था। मैं पुर्णतया प्रतीत होकर बहुत तरह के कशलों से ईश की पूजा किया करता था। इसके अनन्तर जब सौ वर्ष पूरे हो गये तो भगवान् शशि शेखर वरदान देने वाले मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गये थे। मैंने भी उनसे जरा मरण का भली भांति क्षय प्रदान करो-ऐसी ही याचना की थी भगवान ने कहा--नाम और

रूप को धारण करने वाले की अजरता और अमरता नहीं हुआ करती है क्योंकि मेरे देह का पात होगा इसीलिए जीवन की कोई अवधि करो। इस प्रकार भगवान शम्भु के वचन का श्रवण करके उस समय में मैंने यही वरदान मांगा था कि कल्प के अन्त में मेरे एक रोम का पात होवे और जब सबका संशय हो जावे तो मरण होवे। इसके अनन्तर मैं फिर आपका गण हो जाऊँ--यही मेरा अभीप्सित वरदान है। तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होगा-कह कर भगवान हर अदर्शन को प्राप्त हो गये थे।४३-४७। तभी से तपश्चर्या में निष्ठा वाला हो गया था। भगवान् शिव के पूजन से ब्रह्महत्या आदि महापापों से मनुष्य छुटकारा पा जाया करता है। बकनाब्जों के द्वारा अथवा इतर कमलों के द्वारा हे महाराज ! इस प्रकार से आप भी शिव का पूजन करें। आप अपना अभिवांछित अवश्य ही पा लेंगे–इसमें कुछ भी संशय नहीं है।४८-४९।

हरभक्तस्य लोकस्य त्रिलोक्यां नास्ति दुर्लभम्।
बहिः प्रवृत्ति स गुह्य ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च।५०
शयः सदाशिवे नित्क्षमन्तर्योगोऽयमुच्यते।
दुष्करत्वात्बहिर्योगर्शिव एवं स्वयज्ञगौ।५१
पंचभिश्चाऽर्चनं नूतंविशिष्टफलदं ध्रुवम्।
क्लेशकर्मविपाकाद्यै राशयश्चाऽप्यसंयुतम्।५२
ईशानमाराध्यं जपन्प्रणव मुक्तिमाप्नुयात्।
सर्वपापक्षये जाते शिवे भयति भावना।५३
पापोपहतबुद्धीनां शिवै वार्ताऽपि दुर्लभा।
दुर्लभ भारते जन्म दुर्लभं शिवपूजनम्।५४
दुर्लभं जाह्नवीस्नानं शिवे भक्तिः सुदुर्लभा।
दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूजनम्।५५
अल्पपुण्यैश्च दुष्प्रापं पुरुषोत्तमपूजनम्।५६

भगवान् हर के भक्त के लिए इस त्रिलोकी से कुछ भी दुर्लभ नहीं है । वह बहि प्रवृत्ति का तथा ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों का ग्रहण करके नित्य ही भगवान् सदाशिव में लय को प्राप्त हो जाता है यह अन्तयोग कहा जाता है । यह भगवान् शिव ने ही स्वयं पान किया था क्योंकि बहियोग अत्यन्त दुष्कर होता है । पाँचों भूतों द्वारा जो अर्चन किया जाता है वह निश्चय ही विशिष्ट फल प्रदान करने वाला होता है। क्लेश कर्म विपाकादि आशयो से असंयुत ईशान का समाराधन करके तथा प्रणव का जाप करता हुआ मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है । समस्त प्रकार के पापों के क्षय हो जाने पर भगवान् शिव की भावना उत्पन्न करती है ।जिनकी बुद्धि पापों के कारण उत्पन्न होती है उन मनुष्यों को ही शिव के विषय में वार्त्ता करना भी परम दुर्लभ होता है । इस महा पुण्यमय भारत देश की भूमि में जन्म ग्रहण करना ही अत्यन्त दुर्लभ होता है उसमें भी भगवान् शिव का पूजन करने का अवसर प्राप्त करना परम दुर्लभ होता है । प्रभामयी पापों के प्रणाम करने वाली जाह्नवी में स्थान दुर्लभ है और भगवान् शिव में भक्ति करना भी महान दुर्लभ हुआ करता है ब्राह्मण को दान देना तथा वह्निदेव का पूजन करना इस संसार में दुर्लभ है । अत्यल्प पुण्यों के द्वारा पुरुषोत्तम प्रभु का अर्चन करना दुर्लभ होता है ।५०-५६।

लक्षण धनुषां योवस्तदर्द्धन हुताशनः ।
पात्रं शतसहस्रेण रुद्रश्च षष्टिभिः ।५७
इतोदमुक्तमखिलं मया तव महीपते ।
यथायुरभवद्दीर्घं सगाराध्य महेश्वरम् ।५८
न दुर्लभं न दुष्प्रातं न चाऽनाध्यंमाहात्मनाम् ।
शिवभक्तिकृतांपुंसां त्रिलोक्यामितिनिश्चितम् ।५९

नन्दीश्वरस्य तेनैव ऋयुषा शिवपूजनात् ।
सिद्धिमालोक्यो याजन्छङ्कर न नमस्यति ।६०
श्वेतस्य च महीपस्य श्रीकण्ठ च नमस्यतः ।
कालोऽपिप्रलययातः कस्तलीत्रं न पूजयेद् ।६१
वदिच्छयाविश्वमिदं जायते व्यवष्टिते ।
तथा सल्लीयतेचान्ने कस्तं न शरण व्रजेद् ।६२
एतद्रहस्यमिदमेव नृणां प्रधानं
कर्तव्यमत्र शिवपूजनमेव भूप ।६३
यस्याऽन्तरायपदवीमुपयान्ति लोकाः ।
सद्यो नरः शिवनतः शिवमेति सत्यम् ।६४

एक लक्ष धनुषों से योग होता है उसके अर्ध भाग से हुताशन तथा शत सहस्र से पात्र और साठ से रेवा और रुद्र हुआ करता है । हे महीपते ! मैंने आपके आगे यह सब कहकर बतला दिया है । जिस प्रकार से आयु दीर्घ हुई है वह महेश्वर भगवान् के समाराधन के करने से ही हो गई है ।५७-५८। भगवान् शिव की भक्ति करने वाले महात्मा पुरुषों के लिए इस संसार में क्या त्रिलोकी में भी कुछ भी दुर्लभ दुष्प्राय और असाध्य नहीं है-यह परम निश्चित ही है ।५६। नन्दीश्वर की उसी शरीर से भगवान् शिव के पूजन करने से सिद्धि को देखकर हे राजन् ! ऐसा कौन सा पुरुष है जो शङ्कर को नमन नहीं करेगा ? भगवान् श्री कण्ठ को नमस्कार करने वाले श्वेत महीप काल भी प्रलय को प्राप्त हो गया था ऐसे उस ईश का कौन पूजन नहीं करेगा ? जिसकी इच्छा से ही सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न होता है, विशेष रूप से अवस्थित रहा करता है यथा अन्तंलय को प्राप्त हुआ करता है ऐसे उस ईश्वर की शरणागति में कौन जाकर प्राप्त नहीं होगा ? हे भूप ! यह एक परम रहस्य है और मनुष्यों के लिए परम प्रधान हैं । यहाँ पर भगवान् शिव का पूजनही करना चाहिए जिसकी अन्तरात्मा पदवीको लोक

प्राप्त हुआ करते हैं। मनुष्य शिव की गमन करने वाला तुरन्त ही भगवान् शिव की सन्निधि को प्राप्तकर लिया करता है-यह सत्य है।६०-६४।

विविध शिव क्षेत्रों का शक्ति सहित वर्णन

स्थानं त्वया मुने पृष्टमस्ति माहेश्वराग्रणि।
चराचराणां सर्वेषां भूतानांहितकाम्यया।१
प्रकल्पित हि देवेन तद्यत्कर्मानुगुण्यतः।
शरीरभाजां जननं तासतास्वपि योनिष।२
त्वयाशुश्रुषितं तेषां हिताय महते ह्यलम्।
अन्यथा संसृतेर्हानिः कल्पकोटिशतैर्नहि।३
स्वल्पैर्हि कर्मभिर्ज्ञानैरपि प्राप्ता पुनः पुनः।
घटीयन्त्रनयाज्जन्ममरणेनैव शाम्यत।४
कथं तु विरतो देहीगर्भमोकसमागमात्।
विश्रान्तये प्रकल्पेत विशुद्धज्ञायतो विना।५
प्रदेशाः कथिताः पूर्वं प्रसङ्गवशतो मया।
ऋषिभेदादिकं तेषु निवासः कृत्तिवाससः।६
केचित्तीरेषु गङ्गायाः केचित्सारस्वतेतटे।
कालिन्दीतीरयोरन्येकतिचिच्छोणरोधसि।७

नन्दीश्वर ने कहा--हे मुने! आप तो महेश्वर भगवान् भक्तों में अग्रणी हैं। इन समस्त चराचर भूतों के कल्याण के लिये जो अपने स्थान पूछा है। देव ने उन समस्त कर्मों के आनुगुण्य से शरीर धारियों का जन्म उन-उन योनियों में प्रकल्पित किया है।१-२। आपने उनके महान हित के लिए पर्याप्त शुश्रुषा की अन्यथा इस संसृति की हानि हो जाती जो सैकड़ों करोड़ कल्पों से भी पूर्ण नहीं होती।३। स्वल्प कर्मों तथा स्वल्प ज्ञानों से भी पुनः पुनः प्राप्त ये घटी यन्त्र के न्याय से ये जन्म तथा मरण कभी भी शम को प्राप्त नहीं होते हैं।४।

गर्भ के मीक के समागम से विरत हुआ यह देहधारी विशुद्ध ज्ञानके बिना कैसे विश्रान्ति के लिए प्रकल्पित हो सकता है ? पहले मैंने प्रसङ्ग वश होने के कारण ये प्रदेश कठिन कर दिये गये हैं । ऋषि भेदादिक और उनमें कृत्तिवास (शिव) का निवास होता है ।उनमें कुछ तो भागी-रथी गङ्गा के तीरों में निवास किया करते हैं—कुछ सरस्वती नदी के तटों पर रहते हैं—अन्य कालिन्दी (यमुना) के तीरों पर और कुछ योग के तट पर निवास किया करते हैं ।५-७।

अपरे नर्मदातीरे परे गोदावरीतटे ।
कतिचिद्गोमतीरेष्वन्ये हैमवतीतटे ।८
समुद्रपार्श्वेष्वितरे द्वीपेष्वन्ये सरस्वतीम् ।
मुखेषु केचित्सिन्धुना सम्भेदेष्वपि केचन ।६
कृष्णवेणीतटे केचित्तुङ्गभद्रान्तिके परे ।
उपवेण्याँ कतिपये परे शक्यापगन्तिके ।१०
काबेरीतीर इतरे केचिद्वेगवतीतटे ।
अन्ये तु ताम्रपर्ण्याश्च कतिचिस्मुरलातटे ।११
केचिदिरावतीतीरे त्वितरे याथुकाङ्क्षिके ।१२
कन्यातटेषु कतिचित्कतिचित्कुमारीतीरे
परे च तमसावरुणान्तिकेऽन्ये ।
मन्दाकिनीसविथयोरितरे परेऽपि
शिप्रातटे परिसरेषु परिसरग्वाः ।१३
विपासाभ्याश इतरे शतरे अतद्रुतितटे परे ।
चर्मण्वन्युपकण्ठे ऽन्ये केचिद्भीमरथींतटे ।१४

दूसरे नर्वदा के तट पर, कुछ गोदावरी के तीर पर, कुछ गोमती नदी के तट पर और अन्य हेमवती नदी के तट पर निवास करते हैं ।८। इधर समुद्र के पार्श्व से और अन्य सरस्वती के द्वीपों में रहते हैं । कुछ सिन्धुओं के मुखों में तथा कुछ सम्भेदों में भी निवास करते हैं । कुछ

कृष्ण देवी के तट पर, दूसरे तुङ्ग भद्रा के समीप रहा करते हैं। कतिपय उपवेणी में दूसरे शक्त्वगण के समीप में निवास करते हैं। इतर कावेरी के तट पर, कुछ वेगवती के तीर पर, अन्य ताम्रपर्णी के तट पर और कुछ मुरला नदी के तीर पर रहा करते हैं।९-११। कुछ ऐरावती के तीर पर, इतर यातुका के समीप है, कतिचित् कन्या के तट पर, कुछ कुमारों के वीर पर अन्य और वरुणा के तटों पर ही रहा करते हैं। उत्तर मन्दाकिनी के समीप वाले स्थलों में दूसरे शिप्रा के तट पर एवं सरयू से परिसरों में निवास किया करते हैं।१२-१३। इतर विपाशा के समीप में रहते हैं और दूसरे शतद्रु नदी के तट पर निवास किया करते हैं। कुछ चर्मण्वती के उपकण्ठ में और अन्य भीम रथी नदी के तीर पर रहते हैं।१४।

केचिद्बिन्दुसपोऽभ्यर्णेपरेपम्पासरस्तटे ।
अभ्यर्णकेऽपिभैरव्याःकतिचित्कौशिकीतटे ।१५
अपरे मालिनीतीरेऽपरे गन्धवतीतटे ।
कतिचिन्मानसोपान्ते केचिदच्छोदरोधसि ।१६
इन्द्रद्युम्नसरस्यन्य एके तु मणिकर्णिके ।
परे तु वरदातीरे ताप्त्यां कतिचनाऽपरे ।
पातालगंगासविधे शरवत्यन्तिके परे ।१७
लौहित्याकूलयोः केचित्कतिचित्कालमातटे ।
वितस्तोपान्तिके त्वन्ये चन्द्रभागान्तिके परे ।१८
सुरलोपान्तिकं केचित्पयोष्णीतीरयो परे ।
केचिन्मधुमतीतीरेकेवनाऽनुपिनाकिनीम् ।१९
उक्तवाराणसीक्षेत्रं क्रोशपञ्चकपावनम् ।
देवस्तत्राऽविमुक्ताख्योविशालाक्ष्यासमर्चितः ।२०
कपालमोचनं यत्रयत्राऽऽस्तेकालभैरवः ।
मृतानां यत्र रुद्रत्व काशीविद्धि हि तां मुने ।२१

कुछ बिन्दुसर के समीप में, दूसरे पम्पा सरोवर के तट पर, कतिपय भैरवी के निकट में और कतिचित् कौशिकी नदी के तट पर रहते हैं। दूसरे मालिनी नदी के तीर पर, कुछ गन्धवती के तट पर, कुछ मानस के उपान्त में और कतिपय शोध के तार पर रहा करते हैं कुछ अन्य इन्द्रद्युम्न के नाम वाले सर पर अन्य मणिकर्णिक, पर, दूसरे वरक्षा के तीर पर तथा दूसरे कुछ तापी नदी पर रहा करते हैं। कुछ पाताल गङ्गा के समीप में, दूसरे कुछ शरावती के समीप में, कुछ लोहिती के कूलों पर, कुछ कालमा के तट पर अन्य वितस्ता के उपान्तिक में तथा दूसरे चन्द्रभागा नदी के समीप है निवास किया करते हैं ।१५-१८। कुछ सुरला के समीप में दूसरे पयोष्णी नदी के तटों पर रहते हैं। कतिपय मधुमती नदी के तीर पर कुछ पिनाकिनी नदी के साथ-साथ रहते हैं। इस प्रकार से वाराणसी का क्षेत्र पांच कोस का परम पावन क्षेत्र कह दिया है। वहाँ पर त्रिशालाक्षी के द्वारा समर्चित अविमुक्त नामधारी देव विराजमान रहते हैं। कपाल मोचन जहाँ पर है और जिस क्षेत्र में काल भैरव रहा करते हैं। हे मुने ! जहाँ पर मृत हुए प्राणियों को रुद्रत्व की प्राप्ति हुआ करती है उसको काशी समझना चाहिए ।१९-२१।

गयाप्रयागपिते कथितौ सर्वसिद्धिदौ ।
यत्र पिण्डप्रदानेन तुष्यन्ति पितरः किलः ।२२
आर्कणितं च केदारं यस्मिन्महिषरूपधृक् ।
देवोऽपि च हृतोदेव्यासर्वश्रेयस्करोनृणाम् ।२३
सर्वसिद्धिकरं पुंसां क्षेत्रं बदरिकाश्रमम् ।
यत्राऽस्ते त्र्यम्बका देव्यानरनारायणर्चितः ।२४
श्रुतं हि नैमिषं क्षेत्रं त्वया यत्र महेश्वरः ।
देवदेवाभिधःपुण्यो देवी सारङ्गधारिणी ।२५

अमरेशमिति स्थान प्रोक्तं स्वार्थं साधकम् ।
ॐ कारनामातत्र शस्चण्डिकाख्यामहेश्वरी ।२६
पुष्कराख्यं महास्थानं श्रुतं ते कथितं मया ।
पत्र देवी रुजोगन्धि पुरुहूतां महेश्वरीम् ।२७
आषाढीनाम ते स्थानं पावनं कथितं मया ।
आषाढंशो हरस्तत्र रतीशा परमेश्वरी ।२८

सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले वे गया और प्रयोग भी कथित कर दिए गये हैं जहाँ पर पिण्डों के प्रदान करने से पितृ गण परम तुष्ट हुआ करते हैं । केदार का भी समाकर्णन किया है जिसमें महिष के स्वरूप को धारण करने वाले देव भी देवी के द्वारा निहत हुए हैं जो मनुष्यों के सब तरह के श्रेय को करने वाले हैं ।२२-२३। बदरिकाश्रम क्षेत्र पुरुषों की सभी सिद्धियों का करने वाला है जहाँ पर नर-नारायण के द्वारा समर्चित देवी का त्र्यम्बक प्रभु विराजमान हैं । आपने नैमिष क्षेत्र का श्रवण किया ही होगा जहाँ पर देवदेव नामधारी पुण्य रूप भगवान महेश्वर हैं और सारङ्ग धारिणी देवी विराजमान हैं ।२४-२५। अमरेश नाम वाला एक स्थान है जो सभी अर्थों का साधक कहा गया है वहाँ पर ॐकार नाम वाले ईश विराजमान हैं और चण्डिका नाम धारिणी महेश्वरी है ।२६। पुष्कर नाम वाला एक महान स्थान हैं जिसे मेरे द्वारा आपने श्रवण किया ही होगा जहाँ पर रजोगन्धि देव हैं और पुरुहूता नाम वाली देवी महेश्वरी हैं । आषाढ़ी नाम वाला एक पावन स्थान है जो आपको मैंने कहा है वहाँ पर आषाढ़ेश विराजमान हैं और रतीशा नाम वाली परमेश्वरी है । ।२७-२८।

दण्डिमुण्डी समाख्यां च स्थानं ते कथितं मया ।
यत्र मुण्डीमहादेवो दण्डिका परमेश्वरी ।२६
लाकुलनमि ते स्थानं संशुद्धं कथितं मया ।
लाकुलीशो हरोयस्मिन्ननङ्गा सर्वमङ्गला ।३०

भारभूतिरितिस्थान भवतोऽभिहियंमया ।
यत्र भाराभिध: शम्भुर्भू त्याख्याभूधरात्मजा ।३१
अरालकेश्वरनाम स्थानं ते कथितंमथा ।
यत्र सूक्ष्माभिध: शूलीक्ष्माख्याशैलनन्दिनी ।३२
गयानात महाक्षेत्रं तव प्रस्तावितं मया ।
मङ्गलाख्या शिवा यत्र शङ्कर: प्रपितामहः ।३३
कुरुक्षेत्रमिति स्थानं भवते विनिवेदितम् ।
यत्र स्थाणुप्रियादेवीदेव: स्थाणुसमाह्वय: ।३४
वक्त कनखल नाम मया ते स्थानमुत्तमम् ।
उग्रो यत्र पुरारातिरुपा गिरिवरात्मजा ।३५

मैंने आपको दण्डी-मुण्डी नाम वाला एक स्थान वतलाया था जहाँ पर मुण्डी नाम वाले श्री महादेव हैं और दण्डिका नाम वाली देवी परमेश्वरी विराजमान रहा करती हैं ।२६। मैंने आपको एकलाकुल नाम वाला परम संशुद्ध स्थान बतलाया था जिस स्थान में लाकुलीश श्री हर हैं और सर्वमङ्गला अनङ्गा देवी हैं ।३०। भारमूति-इस नाम वाला एक स्थान है जो मैंने आपको वतलाया है जहाँ पर भार नाम वाले शम्भु हैं और भूति नाम वाली भूधरात्मजा देवी हैं ।३१। एक अरालकेश्वर इस नाम वाला स्थान है जिसको मैंने आपको पहले ही वतला दिया है जहाँ पर सूक्ष्म नाम वाले भगवान शूली हैं तथा सूक्ष्मा नाम धारिणी देवी शैल नन्दिनी विराजमान रहती हैं । गया नाम वाला एक महा क्षेत्र है मैंने जिसके विषय में प्रस्ताव किया है जिस क्षेत्र में मङ्गला नाम वाली देवी शिवा है और प्रपितामह भगवान शङ्कर विराजमान हैं । एक कुरुक्षेत्र नाम वाला स्थान है जिसके बावत मैंने आपसे पहले निवेदन किया था जहाँ पर स्थाणु प्रिया नाम वाली भगवती देवी हैं और स्थाणु नामधारी भगवान् देव विराजमान रहते हैं । मैंने आपसे एक कनखल नाम वाले परमोत्तम स्थान के विषय में भी

कहा था जिस स्थान में उग्र नाम वाले भगवान पुराराति विद्यमान रहा करते हैं और उग्रा नामधारिणी साक्षात् गिरिवरात्मजा देवी विराजमान हैं।२३-३५।

तालकाख्यं महाक्षेत्रो मार्कण्डेयमयोदितम्।
देवो स्वायम्भुवो यत्र स्वयम्भूः परमेश्वरः।३६
अट्टहासमिति प्रोक्तं महास्थानं सायं तव।
यत्राऽर्कं पूजयित्वेशमासोत्पूर्णमनोरथः।३७
कृत्तिवासाभिधं क्षेत्रमुक्तं तेवेदवित्तम।
यः कैलासादपिश्लाघ्योनिवासः कृतिगाससः।३८
भ्रमराम्बिया देव्या महेशो मल्लिकार्जुना।
श्रीशैलेसृष्टिसिद्ध्यर्थंपूजितः परमेष्ठिना।३९
सुवर्णमुखरीतीरे कालहस्तितीति शङ्करः।
व्यासेनाराधितो भृङ्घमुखरालकयाऽम्बया।४०
काञ्च्यामेकाम्रमूलस्थः कामाक्ष्या कांक्ष्या कामशासनः।
तपस्यन्त्याऽभिसंश्लिष्टोबलयेनाऽङ्कितोऽभवत्।४१

तालक नाम वाला एक महाक्षेत्र है। हे मार्कण्डेय ! मैंने इसको भी आपको बतलाया है क्षेत्र में स्वायम्भुवी देवी हैं और स्वयम्भू परमेश्वर हैं। मैंने एक अट्टहास नाम वाला महान स्थान आपको कहा था जहाँ पर भगवान् भास्कर ने इसका पूजन करके अपना मनोरथ पूर्ण किया था ।३६।३७। वेदों के वेत्ताओं में परमश्रेष्ठ ! मैंने आपकी सेवा में एक कृत्तिवास नाम वाले क्षेत्र की चर्चा की थी जो कैलासगिरि से भी अधिक प्रशंसनीय है और कृत्तिवास प्रभु का निवास स्थान है। वहाँ पर भ्रमणम्बिका नाम वाली देवी के सहित मल्लिकार्जुन महेश्वर की श्री शैल से सृष्टि की सिद्धि के लिए परमेष्ठी ब्रह्माजी के द्वारा पूजा की गयी थी। सुवर्ण मखरा तीर पर कालहस्ती--इन नाम वाले भगवान् शङ्कर जिनकी भृङ्ग मुखरालका देवी के सहित श्री व्यास देव

ने आराधना की थी ।३८-४०। काञ्ची में कामाक्षी के साथ एकामूलस्थ काम शासन प्रभु विराजमान रहते हैं जो तप करती हुई के द्वारा अभि संश्लिष्ट होते हुए वलय से अङ्कित हो गये थे ।४१।

अस्ति व्याघ्र परनामतिल्लिकाननमध्यगम् ।
यत्र वृत्यन्तमीशान पर्युपास्ते पतञ्जलिः ।४२
श्वेतारन्यमिति स्थानमुक्त तव मया पुरा ।
भग्नमैरादतोदन्त भेजे यत्रषिवार्चनात् ।४३
सेतुव धमिति स्थानमवोच तत्र राघवः ।
रामनाथाख्यया देवमहोध्न प्रत्यतिष्ठिपत् ।४४
गतप्रत्याह्लस्थानं विद्यते वृषभध्वजः ।
यत्र जम्बूरोमूले जगद्रक्षार्थमाक्षिः ।४५
मणिमुक्तानदीमन्वक्क्षेत्रे वृद्धांचलाह्वये ।
नित्य सन्निहितो देव इत्याकर्णित एव ते ।४६
श्रीमन्मध्याजुंन नाम श्रुतं स्थानमनुत्ततम् ।
यस्मिन्वरप्रदो नित्यं गौरोसहचरोहर ।४७
आस्थितं सोमतीर्थंत्वया श्रुतम् ।
यत्र त्यक्तवतां देहं न भूयो भवबन्धनम् ।४८।

तिल्ली नामक जङ्गल के मध्य में व्याघ्रपुर स्थान है जहाँ पर नृत्य करते हुए ईशान की पतञ्जलि ने पर्युपासना की थी ।४२। एक श्वेतारण्य स्थल है जिसके विषय में मैंने पहले ही आपको बतलाया था जिसमें भगवान शिव के करने से ऐरावत ने अपना भग्न हुआ दन्त प्राप्त कर लिया था ।४३। एकसेतु गन्ध नामक स्थान है किसको मैंने आपको बोला था वहाँ पर श्री राघवेन्द्र प्रभु ने रामनाथ--नाम से पापों के नाशक देव की प्रतिज्ञा की थी जो रामेश्वर नाम से अब विख्यात है। एक गत प्रत्याह्वय नामक स्थान विद्यमान है जहाँ पर वृषभ ध्वज प्रभु जम्बु (जामुन) तरु के शूल में इस जगत् की रक्षा करने के लिए आश्रय ग्रहण करके विराजमान

रहते हैं ।४४-४५। वृद्धाचल नाम वाले क्षेत्र में मणि-मुक्ता नदी के साथ देव नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं--यह तो आपने सुना ही है। श्री मन्मध्यार्जुन नाम वाला अतीज उत्तम स्थान आपने श्रवण किया ही होगा जहाँ पर नित्य ही भगवती गौरी के साथ संचरण करने वाले भगवान हर वरों के प्रदान करने वाले होते हैं। भगवान् सोमनाथ के द्वारा सरान्वित सोम तीर्थ आपने सुना ही है जिसकी ऐसी महिमा है कि जो प्राणी उस स्थान पर अपनी देह का त्याग किया करते हैं उसको फिर इस संसार का बन्धन नहीं है ।४६।४८।

आर्कणितहि भवताक्षेत्रं सिद्धवष्टाह्ययम् ।
यत्र सिद्धाः समचेन्तिज्योतिर्लिङ्गमनुत्तमम् ।४९
अश्र वि खलु ते क्षेत्रं कमलालयस्य कम् ।
बल्मीकेशाचं नाल्लेभेय त्रश्रीर्जीविता हरेः ।५०
श्रुतवानसि कङ्काद्रि यत्र सन्निहितौ हरः ।
इदानीमप्युपासते मोक्षाय ब्रह्मकेशवौ ।५१
श्रीमद्द्रोणपुर वेत्सि यस्मिन्कलियुगक्षये ।
नौकामारूढ़वानब्धोक्षुभिते पार्वतीपति ।५२
श्रुतं ब्रह्मपुरकाम क्षेत्र यत्रेन्द्रजित्पुरा ।
आर्यपुष्करिणीतीरे स्थापयामास धूर्जटिम् ।५३
श्रीकोटिकाख्य ज्ञानाभिक्षेत्र यत्रेन्दुशेखरः ।
समाराधयतां पुसां पापकोटीर्व्यपाहात ।५४
आर्कणित च गोकर्णं शिवं यत्सन्निधानतः ।
आरिराधयिषुः स्वर्गं जामवग्नो न काङ्क्षति ।५५

आपने सिद्ध वट नामक क्षेत्र के विषय में श्रवण किया ही होगा जहाँ पर सिद्ध पुरुष सर्वोत्तम भगवान ज्योति लिंग का समार्चन किया करते हैं। आपने कमलालय संज्ञा वाले क्षेत्र के विषय में भी श्रवण किया ही होगा गया जिसमे भगवान् बल्मिकेशकी अर्चनासे श्री हरि की

जीविका का लाभ प्राप्त किया था ।४६।५०। आपने कङ्काद्रि को सुना होगा जहाँ पर सन्निहित भगवान् हर की ब्रह्मा और केशव आज भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए उपासना किया करते हैं ।आज श्रीमान द्रोणसुर को जानते ही हैं जिसमें कलियुग के क्षय पर समुद्र के क्षोभ से युक्त होने पर पार्वती के पति भगवान् शम्भु नौका पर समाधि रूढ़ हुए थे। ब्रह्मपुर नामक क्षेत्र के विषय में आपने श्रवण किया ही होगा जहाँ पर पहले इन्द्रजीत ने आर्य पुष्करिणी के तट पर भगवान् धूर्जटि की स्थापना की थी ।५१।५३। श्री कोटिक नाम वाला ज्ञान का अभिक्षेत्र हैं जहाँ पर भगवान् चन्द्र शेखर समाराधन करने वाले पुरुषों के पापों को कोटि का विदारण कर दिया करते हैं ।५४। आपने गोवर्ण नामक स्थान को सुना ही होगा जहाँ पर आराधना करने वाले जामदग्न्य ऋषि शिव के सन्निधान में रहते हुए वहाँ से स्वर्ग जैसे परमोत्तम स्थान में जाने की भी आकांक्षा नहीं किया करते ।५५।

त्रिपुरान्तकमुक्तं ते क्षेत्रं यत्रत्रियम्बकः ।
निराकरोति नियाद्भयं दृष्टवतां नृणाम् ।५६
उक्तं कायाञ्चनं क्षेत्रं यद्वासीकालकन्धरः ।
निर्वापयन्ति भक्तानां घोरसंसारसंज्वरम् ।५७
प्रियालवणमाख्यातं क्षेत्रं यत्राऽम्बिकापतिः ।
पयोऽथिनेपयः सिन्धुं वितताारोमन्यवे ।५८
क्षेत्रं प्रभासमुक्तं ते यत्र खण्डेन्दुशेखरः ।
पूजितः गोरिसीरिभ्यां दत्तवानक्षयः फलम् ।५९
वेदारण्य विजानीषंयस्मिन्प्रमथनायकः ।
अभ्यर्थितोऽभून्मोक्षार्थदक्षेणप्राक्कृतागसा ।६०
हेमकूटं त्वमश्रौषी, स्थानविषमचक्षुषः ।
पुंसा तवस्यतां यत्र पुनर्जननयो न भीः ।६१

क्षेत्रं वेणुवननाम विद्यते पापनाशकम् ।
यत्र वंशलतागर्भाज्जाही मुक्तमाणि: शिवा ।६२
जालन्धरमिति स्थानमधारेत्त्वयाश्रुतम् ।
लेभे गणपतां तत्र तपस्याभिर्जालन्धर: ।६३

मैंने त्रिपुरान्तक क्षेत्र के विषय में आपसे कहा था जहाँ पर त्र्यम्बक भगवान दर्शन प्राप्त करने वाले मनुष्यों का नरक से भय का निराकरण कर दिया करते हैं । मैंने आपसे कालाजान नाम वाले क्षेत्र के विषय में आपको बतलाया था जिस क्षेत्र में काल कन्धर प्रभु निवास किया करते हैं और अपने भक्तों के घोर संसार के सज्वर को निर्धारित कर दिया करते हैं मैंने प्रिया लवण नामक क्षेत्र के विषय में आपको कहा था जहाँ पर अम्बिका पति प्रभु ने पय के अर्थी उपमन्यु के लिए पय: सिन्धु विस्तार कर दिया था ।५६।५७।५८। प्रभास नामक क्षेत्र के बावत मैंने आपको बतलाया था जिस क्षेत्र मे खण्डेन्दुशेखर भगवान् शिवाशौरि और सीरि इन दोनो भाइयों के द्वारा पूजित होकर इनको अक्षय फल प्रदान किया था ।वेदारण्य नामक स्थल को आप भली भाँति जानते ही हैं जिसमें प्रथमहा नामक प्रभु की पहले किए हुए अपराध वाले प्रजापतियों दक्ष ने मोक्ष की प्राप्ति के लिए अभ्यर्थना की थीं।५६-६०। आपने हेमकूटके विषयमें श्रवण किया ही होगा जो स्थान अचछुका विष है और जहाँ तपश्चर्या करने वाले पुरुषों का पुनर्जन्म धारण करने का भय सर्वथा रहता ही नहीं है ।६१। एक वेणु वन नाम वाला उत्तम क्षेत्र है जो समस्त पापों के नाश करने वालाहै जहाँ पर वशलताके गर्भ से मुक्तामणि शिवा समुत्पन्न हुआ था ।६२। एक जालन्धर नामक स्थान है जो अन्धकार में है आपने इसके विषय में सुना होगा । वहाँ पर जलन्धर ने घोर तपश्चर्य्या के द्वारा गणों के पति का पद प्राप्त कर लिया था ।६३।

ज्वालामुखमिति स्थानमज्ञासीः कथितं मया ।
यत्र ज्वालामुखी देवी कालरुद्रपूजयत् ।६४
अस्ति भद्रवटोनाम क्षेत्रमुक्तं श्रु तं त्वया ।
त्र्यम्बकं यत्र हेरम्बः सम्पदे पर्यंतूनयत् ।६५
न्यग्रोधारण्यमुक्त ते यत्रोग्रोमिर्ममे किल ।
उच्चण्डताताण्डवकाल्यसाकसंघर्षमैयिवान् ।६६
गन्धमादनसञ्ज्ञं तत्क्षेत्रमाकर्णितं त्वया ।
आञ्जनेयेन रचित यत्र मृत्युञ्जयार्चनम् ।६७
गोपर्वतमिति स्थानशम्भोः प्रख्वातिर्तमया ।
यत्रपाणिनिनालेभेवैताकाग्रय ।६८
वीरकोष्ठमिति क्षेत्रस्थानं नन्ववधारित्तम् ।
यत्र प्रचेतसा लेभे तपसा कविमुख्यता ।६९
महातीर्थमिति प्रोक्तं जानीये यत्र शम्भुना ।
अध्यापितारतुपर्वाणः सर्वेऽपिद्रु हिणादयः ।७०

एक ज्वालामुखी नाम वाला स्थान है । मैंने इसके बाद तभी कहा था आप इसका ज्ञान रखते ही होंगे जिस क्षेत्र में ज्वालामुखी देवी ने कालरुद्र का पूजन किया था ।६४। एक भद्र वट नाम वाला क्षेत्र है । मेरे द्वारा कहा हुआ आपने इसके बावत अवश्य ही श्रवण किया होगा । जहाँ पर हेरम्ब ने भगवान त्र्यम्बक की सम्पदा की प्राप्ति के लिए अर्चना की थी ।६५। न्यग्रोधारण्य नामक उत्तम क्षेत्र है । यहाँ मैंने आपको बतला दिया है जहाँ पर उग्र ने ही निर्माण किया है । वहाँ प्रभु कालों के साथ उच्चण्ड ताण्डव करते हुए परम संघर्ष को प्राप्त हो गये थे ।६६। एक गन्धमादन संज्ञा वाला क्षेत्र है जिसको आपने सुन रक्खा है जहां पर आजनेञ्जय ने भगवान् मृत्युञ्जय का अर्चन कियाथा ।६७। एक गौ पर्वत स्थान भगवान् शम्भु का है जिसको मैंने प्रख्यापित किया था जिस पर महान विद्वान् पाणिनी महर्षि ने व्याकरण शास्त्र के

विद्वानों में प्रमुखता प्राप्त की थी। एक वीर कोष्ठ नामक क्षेत्र स्थान है इसका आपने अवधारण किया ही होगा। जिस पर प्रचेता ने तपश्चर्या के द्वारा कवियों में प्रधानता प्राप्त की थी। महातीर्थ यह कहा गया है इसे आप जानते ही हैं जहाँ पर भगवान् शम्भु ने सुवर्पाओं और समस्त द्रुहिणादि को अध्यापित किया था।६८-७०।

मयूरपुरमुक्तं ते क्षेत्रं माहेश्वर मया।
लेभे यत्र व्रतस्थेन वेगह्लादिनी वज्रपाणिना।७१
श्रीसुन्दरमिति क्षेत्रमुक्तं वेगवतीतटे।
कलावपि युगे यस्मिन्देवदेवेन दीप्यते।७२
कुम्भकोणमिति स्थान शम्भोर्वेत्सि हि यत्र सा।
गंगाऽपि माघे सान्निध्य कुरुते स्वाघशान्तये।७३
अनुगौशावरींतीरं त्र्यम्बकनाम ते श्रुतम्।
शक्ति यत्र गुहो लेभे तारकासुरघातिमीम्।७४
श्रीपटले व्याघ्रपुरमाख्यात वेदवित्तम।
त्रिशङ्कुना जातिशुद्ध्यै यत्र गङगाधरोऽर्चितः।७५
वत्कृतेयत्रशूलेन कृतान्तशम्भुरक्षिणीत्।७६
अविनाशाख्यमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र वृषध्वजः।
सान्निध्य पङिकण्ठायवितताप्रसेदिवान्।७७

मैंने स्वयं माहेश्वर मयूर पुर क्षेत्र के विषय में आप से कहा है जहाँ पर व्रत में अवस्थित होने वाले वज्रपाणि इन्द्रदेव ने ह्लादिनी के प्राप्त करने का लाभ किया था।७१। श्री सुन्दर इस नाम वाला क्षेत्र वेगवती के तट पर बताया जा चुका है जिसमें इस महा घोर कलियुग में भी देवों के देव दीप्यमान हुआ करते हैं।७२। कुम्भ कोण नामक एक शम्भु का स्थान है जिसे आप जानते ही हैं जहाँ पर वह गङ्गाजी माघ मास में अपने पापो की शान्ति के लिए सान्निध्य किया करती हैं

।७३। गोदावरी नदी के तट पर त्र्यम्बक नाम का स्थान है जो आपने सुना ही होगा जहाँ पर भगवान् गुह्य ने तारकासुर के घात करने वालों ने शक्ति का लाभ किया था ।हे वित्तम! श्री पटल में व्याघ्रपुर आख्यात है जहाँपर त्रिशङ्कुने अपनी-अपनी जातिकी शुद्धिके लिए भगवान् गंगा-धर का समार्चन किया था। एक कदम्बपुरी नामक क्षेत्र है जिसका अव धारण किया ही होगा जहाँ पर आप ही के लिए शूल के द्वारा भगवान् शम्भु ने कृतान्त को क्षीण किया था। आपको मैंने एक अविनाश क्षेत्र बतलाया था जहाँ पर भगवान वृषध्वज ने प्रसन्न होकर पङिकण्ठ के लिए सान्निध्य को स्थापित किया था ।७४-७७।

रक्तकाननमाख्यातं मया क्षेत्रं तवाऽनघ ।
मित्रावरुणयोर्यत्र रुद्रोऽजनि वरप्रदः ।७८
श्रीहाटकेश्वरं क्षेत्रं पातालस्थं त्वया श्रुतम् ।
यत्र वैरोचनिर्देव स्वपदप्राप्तयेऽर्चक्तितः ।७९
देत्सि शम्भोः प्रियावासंकैलासंदित्यसेवकः ।
यत्रयक्षे श्वरत्र्यक्षमभ्यर्चंययतिभतिः ।८०
स्थानानिखण्डपरशोरित्युक्तानिमयापुरा ।
त्वयाप्यवमतान्येवकिम्भूय, श्रोतुमिच्छसि ।८१
इत्यूचिवानेषाशिलादनन्दनो
मुनेर्मृकण्डस्तनयं मुनीश्वरम् ।
भक्त्यानमन्तं पदयोः करेण ।
पस्पर्श मौलौ करुणारमार्द्रः ।८२

हे अनघ ! मैंने आपको एक रक्त कानन नामक क्षेत्र बतलाया था जहाँ पर भगवान रुद्र ने मित्रा वरुण के लिए वरदान दिया था। ।७८। श्री हाटकेश्वर नाम वाला एक क्षेत्र है जो पाताल लोक में स्थित है। आपने उसके विषय में श्रवण किया ही है जिस क्षेत्र

में वैरोचनि अपने पद की प्राप्ति के लिए देव की अर्चना किया करताहै। आप भगवान शम्भु के परम प्रिय आवास स्थान कैलास को भली-भाँति जानते ही हैं जहाँ पर नित्य ही सेवा करने वाला महेश्वर भक्ति की भावना से भगवान यक्ष की अभ्यर्चना किया करता है। मैंने पहले खण्ड पर शुभ स्थान बतला दिये थे और आपने भी अच्छी तरह से इनका अवधारण कर लिया था। अब पुनः इनके श्रवण करने की क्यों इच्छा कर रहे हो? इस प्रकार से शिलादन ने मृकण्ड मुनि के पुत्र मुनीश्वर से कहा था जो भक्ति भाव से चरणों में नमन कर रहे थे। इसके अनन्तर करुण रस में आर्द्र होकर उसने अपने कर से शिर में स्पर्श किया ।७६।८२।

१८—अरुणाचलस्यरहस्यस्थानवर्णनम्

भगवन्वञ्चनेनाऽलं त्वदेकप्रवणेमयि ।
किमाशोऽस्तितेशिष्यस्तत्कृपैवाऽत्रसाक्षिणी ।१
स्थानेषु प्राक्त्वदुक्तेयु फलानिचपृथक्पृथक् ।
यत्र सर्वंफलप्राप्तिः स्थानं तद्वदमेंविभो ।२
चराचराणां भूतानां जानतामप्यजानताम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण मुक्तिस्तद्वद देशिक ।३
पश्यतेन मयैकेन भगवान्ननुरोध्यसे ।
सर्वं रप्येतदर्थं हि मुनिभिः परिवायसेः ।४
पुलहेन पुलस्त्येनं वशिष्ठेन मरीचिना ।
अगस्त्येन दधीचेननक्र ुणा भृगुणाऽत्रिणा ।५
जाबालिना जेमिनिना धौम्येन जमदग्निना ।
उपयोजेन याजेन भरतेनार्नरोवता ।६
रिप्लादेन कण्वेन कुमुदेनोपमन्युना ।
कुमुदाक्षेण कुत्सेन वत्सेन वरतन्तुना ।७

महर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा--हे भगवान् आपके चरणों में ही एक मात्र प्रवण होने वाले मेरे विषय में वचन न कीजिये । यह आपका शिष्य किस प्रकार का है । उसकी तो एक मात्र साक्षिणी यहाँ पर उसकी कृपा ही है।१। आपके द्वारा पहले कहे हुए स्थानों में पृथक्-२ फल होते हैं । हे विभो ! जिस स्थान पर सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है वही स्थान आप कृपया बतलाइये ।२। हे देशिक ! चर और अचर प्राणियों को जो जानते हैं और जो सर्वथा ज्ञान ही नहीं रखते हैं । उनको जिसके केवल स्मरण से ही मुक्त हो जाया करती मैं उसे ही अब बतलाइये ।३। आप देखिये, वह मेर एक के ही द्वारा भगवान की आराधना नहीं की जा रही है । इस आराधना करने के लिए सभी मुनियों के द्वारा ऐसा अनुरोध किया जा रहा था ।४। उन सब मुनियों के नामों का परिगणनाकर के बतलाता हूँ--पुलह के द्वारा पुलस्त्य, वसिष्ठ मरीचि अगस्त्य के द्वारा, दधीच नक्रु, भृग, अत्रि, जावालि, जैमिनि धौम्य के द्वारा तथा जमदग्नि के द्वारा, उपयाज, याज, भरत, अवंरीवान, पिपिलाद, कण्व, कुमुद, उपमन्यु, कुमुदाक्ष, कुत्स, वत्य और वरतन्तु के द्वारा भी इन समाराधना के विषयमें ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया जा रहा था ।५-७।

विभाण्डकेन व्यासेन कण्ठवरोषेण कण्डुना ।
माण्डव्येनततडगे नकुक्षिणामाण्डकर्णिना ।८
चण्डकौशिकशाण्डिलशाकटायनकौशिकैः ।
शातातपमधुच्छन्दोदगर्गसौभरिरोमशैः ।९
आपस्तम्बपृथु तम्बभार्गवोदङ्क पर्वतैः ।
भारद्वाजेन दाल्भ्येनदान्तेंन श्वेतकेतुना ।१०
कौण्डिन्थपुण्डरीकाभ्यां रैभ्येणतृणबिन्दुना ।
वाल्मीकिना नारदेन वह्निनाहृढमन्युना ।११

बोधायनसुबोधाभ्यां हारीतेन मृकण्डुना ।
दुर्वाससातितीक्ष्णेन जलपादेन शक्तिना ।१२
कांक्वार्येण न दन्तेन देवदत्तेन न्यङ्कुना ।
सुश्रुता चाऽग्निवेश्येन गालवेन मरुत्वता ।१३
लौकाक्षिणा विश्रवसा सैन्धवेन समन्तुना ।
शिशुपायनमौद्गस्यपथ्यचावनमातुरैः ।१४

विभाण्ड, व्यास, कण्वरीय, कण्डु, माण्डव्य, मतङ्ग, कुक्षि, मण्डकर्णि, चन्ड, कौशिक, शाण्डिल्य, शाकटायत, कौशिक, शातातप, मधुच्छन्द, गर्ग, सौभरि, रोमश, आपस्तम्ब, पृथुस्तम्ब, भार्गव, उदङ्क, पर्वत, भरद्वाज, दाल्भ्य, दान्त, श्वेत केतु के द्वारा भी ऐसा ही अनुरोध किया जा रहा है ।८-१०। कौण्डिल्य, पुण्डरीक रैभ्य, तृणाविन्दु, वाल्मीकि, नारद, वह्नि दृढ़सन्यु, सुबोधायन, सुबोध, हरीत, मृककुण्डु, दुर्वासा अति तीक्ष्ण, जलपाद, शक्ति, कांक्वर्य, नदन्त, नदन्त, देवदत्त, न्यंकु, सुश्रुत, अग्निवेश्य, गालय, मरुत्वान्, लोकाक्षि, विश्रवा, सैन्धव, सुमन्तु, शिशुपायन, मौद्गल्य, पथ्य, चावन और मातुर इन सबके द्वारा इसी के ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया जा रहा है ।११-१४।

ऋष्यश्रृङ्गै कपात्क्रौञ्चहृडगो मुखदेवलैः ।
अङ्गिरोवामदेवौर्वपतञ्जलिकपिञ्जलैः ।१५
सनत्कुमासरसनकसनन्दनसनातनैः ।
हिरण्यनाभत्याख्यवाताशनसुहोतृभिः ।१६
मैत्रेयपुष्पजित्यतपः शालीष्यशशिरैः ।
निदाचोतथ्यसम्वर्त्त शौल्कायनिपराशरैः ।१७
वैशम्पायनकौशल्यशाद्वतकपिध्वजैः ।
कृशस्वार्चिककैवल्याज्ञवल्क्याश्वलायनैः ।१८
कृष्णातपोत्तमानन्तकरुणामलकप्रियैः ।
चरकेण पवित्रेण कपिलेन कर्णाशिना ।१९

नरनारायणाभ्यां च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिः ।
मत्प्रश्नोत्तरशुश्रूषातत्परैः प्रत्यवेक्ष्यसे ।२०
माहेश्वराग्रण्यस्त्वं समस्यागमपारगः ।
व्याप्तश्च सर्वलोकेषु यस्मात्तदनुसाधि नः ।२१

ऋष्य भृङ्ग एक पात्, क्रौञ्च, दृढ़, गोमुख, देवल, अंगिरा वाग-देव, पतंजलि, कपिजंल, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, हिरण्य-नाभ सत्याख्य, वाताशन, सुहोता, मैत्रैय, पुष्पजित्, सत्य, तपः शालीष्य, शैशिर, निदाघ, उतथ्य, सम्वर्त्त, शौल्कायनि, पराशर, वैशम्पायान, कौशल्य- शारद्वत, कपिध्वज, कुश, स्वार्चिक, कैवल्य, याज्ञवल्क्य, अश्य-लायन, कृष्णा तप, उत्तम अनन्त करुणामलक प्रिय, चरक पवित्र कपिज, कणाशी, नर, नारायण और अन्य दिव्य महर्षियों के द्वारा ऐसा ही अनुरोध किया जा रहा है । ये सभी मेरे प्रश्नोत्तर की शुश्रूषा में तत्पर होकर प्रत्यवेक्षण कर रहे हैं। आप तो महेश्वर के परम भक्तों में अग्रगण्य हैं और समस्त आगमों के पारगामी विद्वान् महापुरुष हैं । आप समस्त लोकों में भी व्याप्त हैं, इसी कारण से आप सबको अनुशासित कीजियेगा ।१५-२१।

त्वन्मुखादेव भगवन्वयमेते सुशिक्षिता ।
पर्वमेवत्वया देव किं वाऽन्यदुपपद्यते ।२२
दिव्यागमपुराणानि द्रष्टव्यः परमेश्वरः ।
कात्यायनोवास्कन्दोवाभगवांन्वाथवाभवान् ।२३
त्वयि यद्यस्ति नो भक्तिर्दया चाऽस्मासु ते यदि ।
रहस्यमिदमुद्घाटय प्रसादं कर्तुमर्हसि ।२४
ग्रन्थं मृकण्डुतनयेनस नन्दिकेशो ।
विज्ञापितः सविनय स्मयमानवक्त्रम् ।२५
तं प्राह चोन्नतरं शिवभक्तिमत्सु ।
प्राग्भक्तितोषितशिवाप्तशरीरसिद्धम् ।२६

हे भगवान् ! हम सब लोग आपके ही मुख से निकले वचनामृत के के द्वारा सुशिक्षित होंगे। हे देव ! आपसे पहले ही हमको शिक्षा प्रदान की है अथवा कुछ अन्य उत्पन्न होता है। दिव्य आगम, पुराण, परमेश्वर, कात्यायनी अथवा स्कन्द या भगवान् किम्वा आप कौन देखने के योग्य हैं ? आपके चरणों में यदि हम सबकी भक्ति है और यदि हम सबके ऊपर आपका दयाभाव है तो इस परम गोपनीय रहस्य का उद्घाटन करके हम सबके ऊपर आप प्रसन्नता करने के योग्य होते हैं। इस प्रकार से महर्षि मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय के द्वारा जब विनयपूर्वक विज्ञापित किये गये थे तो विनीत भाव से समन्वित स्मयदान मुख वाले तथा शिव की भक्ति वालों में परम उन्नत और प्रथम भक्ति के द्वारा सन्तुष्ट किये हुए भगवान् शिव समस्त शरीर की सिद्धि वाले मार्कण्डेय ऋषि नन्दीश्वर ने कहा था।२२।२६।

१६—अरुणाचलस्थानमाहात्म्यवर्णनम्

मुनेमनः परीक्षार्थं तथात्वं भाषितामया ।
तवचेन्नभिधास्यवान्यस्थकथ्यते ।१
त्वाहृगन्योऽस्तिकिलोकेशिवधर्मपरायणः ।
येनस्वल्पायुषाऽप्येनायुक्तोधर्मेणभक्तितः ।२
कस्यान्यकृतेदेव स्वस्यैवाज्ञाकरं यमम् ।
क्रुद्धो नियन्त्रयामास चरणाङ्गुष्ठोडितम् ।३
त्वमेत्रशङ्करान्थमान्सर्वान्विद्धिपहस्यतः ।
योऽग्रं ऽसिकालवद्भ्रान्तः परिक्वाऽसिचेतसा ।४
त्वयंवाऽन्येनकेनाऽहमेश्रू षितश्चिम् ।
त्वयीवकस्मिन्नन्यस्मिन्मापिप्रोतिरोहशी ।५
उपदेक्ष्यामिते क्षेत्रं गुप्तं तद्धर्मशासनः ।
भक्त्याऽवधारणीयंयद्भक्तिकैवल्यकाङ्क्षिभिः ।६

आदरादनुयुं जानशिष्ययोर्देशिचः स्वयम् ।
उपदेशेन सन्तुष्टं न करोति स किं गुरुः ।७

नन्दिकेश्वर ने कहा--हे मुने ! मैंने आपके मन की परीक्षा करने के ही लिए इस प्रकार से आपसे बातचीत की थी । यदि ऐसा ही रहस्य मैं आपको ही बतलाऊँगा तो फिर अन्य ऐसा कौन है जिससे यह कहा जा सकता है ।१। इस लोक में आपके तुल्य शिव के धर्म में परायण अन्य कौन है जो अपनी स्वल्प आयु वाला होकर भी इस नित्य धर्म से भक्ति-भाव पूर्वक युक्त हो गया था । किस अन्य के लिए देव ने क्रुद्ध होकर चरण के अंगुष्ठ से पीड़ित अपनी ही आज्ञा को करने वाले यम को नियन्त्रित किया था ।२-३। आप ही एक रहस्यपूर्वक सम्पूर्ण शङ्कर धर्मों का ज्ञान रखते हैं । जो आगे काल के समान भ्रान्त है वह चित्त से परिपक्व हो ।४। अन्य किसी ने भी नहीं केवल आपने ही इस प्रकार से चिरकाल पर्यन्त मेरी सुश्रूषा की है । आपके समान अन्य किसमें मेरी भी प्रीति होगी अर्थात् आपके अतिरिक्त ऐसी प्रीति अन्य किसी में भी नहीं हो सकती है । मैं आपको उस क्षेत्र का उपदेश दूँगा जो उस धर्म के शासनों के द्वारा भी गुप्त हैं । भक्तिसे ही कैवल्य की इच्छा रखने वालों की भक्ति की भावना ही से उसका अवधारण करना चाहिए ।५-६। आदर से अयुनुजान शिष्य को जो आचार्य स्वयं उपदेश के द्वारा सन्तुष्ट नहीं किया करता है वह कुत्सित ही गुरु होता है ।७।

समाहितमनाभूत्वा विश्वास कुरु शाश्वतम् ।
जयोपदिश्यमानेऽस्मिन्नहस्ये परमेश्वरे ।८
स्मर स्मरान्तक देवं वन्दस्वाध्याय शांकरीम् ।
उपांशूच्चारयोङ्करं श्रेयस्ते महदागतम् ।९
अस्ति मुक्षिणादिग्भागे द्राविडेषु तपोधन ।
अरुणाख्य महाक्षेत्र तरुद्यन्दुशिखामणेः ।१०

योजन्त्रयविस्तीणुमुपास्य शिवयोगिभिः ।
तद्भूमेर्हृदय विद्धिशस्य हृद्धयङ्गमम् ।११
तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकरतां गतः ।
अरुणाचलसञ्ज्ञावानस्तिलोकहितावहः ।१२
आवासः सर्वसिद्धानांमहर्षीणांरूपर्वणाम् ।
विद्याधराणांयक्षणांगन्धर्वाप्मरसामपि ।१३
सुमेरोरपि कैलासादप्ययौ मन्दरादपि ।
माननीयो महर्षीणां यः स्वयं परमेश्वरा ।१४

समाहित मन वाला होकर शाश्वत विश्वास करो । जो मेरे द्वारा यह परमेश्वर रहस्य उपदिश्यमान हैं इसमें पूर्ण विश्वास करना चाहिए ।८। कामदेव को भस्मीभूत करने वाले देवेश्वर का स्मरण करो और अध्याय शाङ्करी की वन्दना करो । उपांशु होकर ओङ्कार का उच्चारण करो, आपको महान श्रेय समागत ही है ।६। हे तपोधन ! दक्षिण दिशा के भाग में द्राविड़ देशों में एक अरुण नाम वाला महान क्षेत्र है जोतरुणोन्दु शिखा मणिका का ही क्षेत्र है।१०। यह क्षेत्र तीन योजन के विस्तार से युक्त है और शिव के यौगियों के द्वारा उपासना करने के योग्य है । यह इस भूमिका हृदय ही जान लो तथा भगवान् शिव के हृदयङ्गम है वहाँ पर देव व शम्भु स्वयं ही एक पर्वत के आकार को प्राप्त हुए हैं । यह 'अरुणाचल'--संज्ञा वाला है और लोकों के हित का आह्वान करने वाला है । यह सिद्धों का निवास स्थान है और इसमें सब सुपर्वा तथा महर्षिगण का आवास होता है । यह विद्याधरों, यक्षों, गन्धर्वों और अप्सराओं का भी स्थल है । यह सुमेरु से भी, कैलास से भी और मन्दराचल से अधिक मानवीय है तथा महर्षियों का भी मानवीय है क्योंकि यह तो स्वयं ही साक्षात् परमेश्वर हैं ।११-१४।

स्पृहयन्तिदीयेभ्योऽविदिवौकसः ।
अयत्नलभ्यमुक्तिभ्यौदिवावासप्रवञ्छिताः ।१५
न कल्पवृक्षाः सदृशा अय त्यानाम्महीरुहाम् ।
पत्रपुष्पफलैर्नित्यं येऽच्चयन्तिगिरोहमम् ।१६
हिंसैकरुचयो व्याधा अपि रूपानुसारतः ।
अनन्ता यत्र देवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम् ।१७
यदुद्देशचरामेघाः शिखराण्यभिबन्धकाः ।
गंगावती हिमवतोऽप्यधिकम्वं विजानते ।१८
कलारावाः खगा यत्र क्वणन्ते कीचका अपि ।
यक्षकिन्नरगन्धर्वं लभ्यतेदुर्लभं पदम् ।१९
स्मरन्तो यत्र खद्योताः कृष्णपक्षेनिशायमे ।
आरार्तिकप्रदातृणा देवस्याऽश्नुवते पदम् ।२०
निष्प्रत्यूहू कृताश्लेषा नित्य यत्तिष्ठिनीरुहाः ।
सौभाग्यवतो देवोभपर्णामिवन्मते ।२१

इसमें सिवाय करने वाले क्षुद्र जन्तुओं से भी स्वर्ग के निवास करने वाले देवगण भी स्पृहा करते हैं क्योंकि यहाँ के सभी निवासी बिना ही किसी यत्न के मुक्ति का लाभ प्राप्त करने वाले हैं। देवगण तो यहाँ पर दिवा आवास से भी विंचित रहा करते हैं।१५। यहाँ पर रहने वाले वृक्षों से सदृश साक्षात् कल्प वृक्ष भी नहीं हैं क्योंकि जो वृक्ष नित्य ही अपने पत्र-पुष्प और फलों के द्वारा इस पर्वत में भगवान हर का अर्चन किया करते हैं। एकमात्र हिंसा करने की रुचि रखने वाले व्याध भी रूपों के अनुसार अनन्त है जहाँ पर देव के प्रादक्षिण्य फल के आस्पद (स्थान) होते हैं। जिसके उद्देश में संचरण करने वाले मेघ जो शिखरों के अभिवन्धक हैं वे गंगा वाले और हिमवान ये भी अधिक अपने आपको समझा करते हैं? जहाँ पर कीचक भी (बाँस भी) कल ध्वनि वाले खगों जैसी ध्वनि वाले क्वणन किया करते है। यक्ष

किन्नर गन्धर्वों के द्वारा दुर्लभ पद का लाभ प्राप्त किया जाता है। जहाँ पर कृष्ण पक्ष में निशा के आगमन होने पर स्मरण करते हुए खद्योत देव की आरती देने वाले लोगों के पद का अशन किया करते हैं। जहाँ के तटिनी रह बिना किसी विघ्न तथा अड़चन आश्लेप करने वाले होते हैं। ये अपने सौभाग्य के गर्व से देवी अपर्णा का भी अवमानना किया करते हैं।१६-२१।

यस्योत्तुङ्गस्य शृङ्गाग्रमाङ्गमार्पितारिकाः।
आत्मनोलब्धसामाज्यश्चचन्द्रेण बहुमन्वते।२२
मृगाः सर्वेऽपि सतत्तं चरन्तो यत्र सानुषु।
पाणिप्रणयिनं शम्भोरेणयप्यवजानते।२३
यस्य पादान्तिकचरैः प्रायेण शबरैरपि।
निकुम्भकुम्भसादृश्यमयत्नादुपयभ्यते।२४
किं बहूक्त्याभ्यसुयन्ते द्वै मातुरकुमारयोः।
वदङ्गरूढास्तरवस्तिर्यञ्चः शर्वरा अपि।२५
सिंहव्याघ्रद्विपायस्मिन्कालुत्यक्तकलेवराः।
वासप्रदत्वान्मान्यन्तेघ्र्‌ुवंशीणाद्रिशम्भुना।२६
अस्यभास्करनामाद्रिः पूर्वस्यां दिशि दृश्यते।
यत्रस्थितः सदावज्रीसेवतेशोणपर्वतम्।२७
प्रचीच्यां दिशि दण्डाद्रिरिति कश्चिन्महीधरः।
प्राचेतस्तदगगः सेवतेऽरुणपर्वतम्।२८

जिस उन्नत गिरि के शृंग (चोटी) के अग्रभाग के साथ में संगम प्राप्त करने वाले भी तारे सामान्य रूप से इसको प्राप्त करते हुए अपने आपको चन्द्रमा से भी अधिक मानते थे। जिस गिरिपर चोटियों में निरन्तर चरण करने वाले मृग भी शम्भु के पाणि का प्रणयी जो मृग था उसको भी अवमानित किया करते थे अर्थात् अपने आपको उससे किसी भी दशा में कम नहीं समझा करते थे। जिन गिरि के पाद

के समीप में सञ्चरण करने वाले शवरों ने भी बिना ही किसी प्रयत्न के निकुम्भ कुम्भ की सदृशता को प्राप्त कर लिया था। अधिक कथन से क्या लाभ है। इस गिरि के अङ्क में समारूढ़ होने वाले तरुवृन्द तिर्यक् योनि वाले प्राणि वर्ग और शवर भी भगवान शिव से साक्षात् पुत्र गणेश और स्वामी कार्तिकेय को भी कुछ नहीं समझा करते हैं। जिस गिरि में काल के प्राप्त होने पर अपने कलेवरों के त्याग करने वाले सिंह व्याघ्र और हाथी उस गिरि में वास के प्रदान होने के कारण से शोणादि शंभु के द्वारा ध्रुव माने जाया करते हैं ।२२-२६। भास्कर नाम वाला पर्वत इस गिरि की पूर्व में दिखलाई दिया करता है जहाँ पर सदा अवस्थित हुआ वज्री (इन्द्र) शोण पर्वत का सेवन किया करते हैं। इसकी पश्चिम दिशा में कोई दण्डाद्रि नाम वाला पर्वत स्थित है। उसकी शिखर पर समवस्थित होकर प्राचेनस अरुण पर्वत की सेवा किया करते हैं ।२७-२८।

दक्षिणस्यां च शोणाद्रेरद्रिरुत्यमारांचलः।
कालः शोणाद्रिसेवार्थमध्यास्ते तदधित्यकाम ।२९
उत्तरेऽस्मिन्हरिद्भागे सिद्धाध्यासितकन्दरः।
विरातेत्रिशूलार्द्रिः श्रोदेनपरिपालितः ।३०
तत्पर्यन्तप्रभूतानामन्येषामपि भूभुताम्।
तटकेष्वपरे चैव दिक्पालाः पर्युपासते ।३१
धारिया येन सततं सर्वेऽपि धरणारुहाः।
आराधनाध्यधिकमधिगच्छति वैभवम् ।३२
यस्मिन्गिरोशेसंहृष्टे मेनातुहिनभूभृतोः।
समानसम्बन्ध तया प्रमोदो वर्द्धतेतराम् ।३३
तरुपल्लवलक्षेण लक्ष्यमाणजटाधरा।
स्थायरोऽयं स्वयं शम्भरिहेश इव जङ्गमः ।३४

ज्योतिः मत्तोयत्तङ्गस्य द्विपाश्वेस्वेभास्करः ।
ज्यनक्ति स्वस्य लोकेभ्तस्तेजस्त्रितयनेत्रताम् ।३५
वर्षासुखिरराधस्तादभिनोबलाहकः ।
विराजते यः कण्ठेन कालकूटमिवोद्वहन् ।३६

शोणिद्रि की दक्षिण दिशा में एक अमराचल ! नाम वाला अद्रि है । काल इसकी अधित्य का में शोणाद्रि का सेवन करने को विराजमान रहा करता है ।२६। इसके अनन्तर दिशाके मार्ग में सिद्धों के द्वारा अध्यासित कन्दराओं वाला श्रीद के द्वारा परिपालित त्रिशूलाद्रि विराजमान हैं । इसके पर्यन्त भाग में होने वाले अन्य जो पर्वतों के तटदेशों में दूसरे दिक्पाल उपासना किया करते हैं । जिसने निरन्तर सभी धारणी रुहों का धारण किये हैं वे आराधना से भी अधिक वैभव को प्राप्त किया करते हैं । भगवान् गिरीश के द्वारा जिसके देखे जाने पर समान सम्बन्ध होने के कारण सेना और हिमवान् पर्वत का प्रमोद और अधिक बढ़ जाया करता है तरुओं के पल्लवों के लक्ष से लक्ष्यमाण जटाबर स्थावर यह शम्भु स्वयं जहाँ पर जङ्गम देश की भाँति विराजमान हैं । ज्योति से संयुत तोय शृंग के दोनों पार्श्व भागो में स्थित चन्द्र और भास्कर वाला उसका अपना तेज लोकों के लिए तीन नेत्रों का होना व्यक्त किया करता है । वर्षा काल के अवसरों में इसके शिखर के नीचे के भाग में अभोनील बलाहक विराजमान रहा करता है, जो कण्ठ के द्वारा कालकूट विष की ही उद्वहन करने वाला प्रतीत हुआ करता है ।

सहस्रणदः सहस्रशीर्षो यः पर्वतेश्वरः ।
उक्तो न केवल श्रुगा साक्षादप्युपएक्ष्यते ।३७
शियोलीनामरसरिष्स्त्रोताः प्रागिति नाद्भुतम् ।
गिरोशोऽद्याऽपि यः शृङ्गलींनानेकसरिद्गशः ।३८
आजादितापकटकः शारदैर्यं पयोधरैः ।
विडम्वयति गोश्रेष्ठमारूढवृषपुङ्गवम् ।३९

यत्र शृङगाग्रलंलग्ननीललोहितः ।
स्थाणुत्वं स्थावरत्वेन गहनत्वेन भीमताम् ।४०
सुदुर्गमत्वादुयत्वायपि धत्ते न नायतः ।
क्षुद्रा सरीसृपा यत्र कटकेषु कृतास्पदाः ।४१
तक्षकानन्तसर्पार्द्धैः स्पर्शः तभजगेश्वरैः ।
अष्टाभिर्योऽभितः कोणैराविभूतोविभूतिभिः ।४२

सहस्रपादों और सहस्र शीर्षों वाला जो यह पर्वतेश्वर है वह श्रुति के द्वारा ही नहीं कहा गया है यहाँ पर यह साक्षात् सुरक्षित हुआ करता है। अमरों की सरिता भागीरथी भगवान शिव के शिर में लीन है और पहिले स्तोत्र भी थे—यह बात कुछ भी अ:भु त नहीं है। आज भी गिरीश जो है उनके अङ्गों में अनेक सरिताओं के समुदाय लीन हैं। ।३७-३८। जरत्काल के मेघों से जो आसादित अपकटक वाला होता है वह समारूढ़ वृषों में वरिष्ठ गोश्रेष्ठ की ही विडम्बना किया करता है ।३९। जिसमें अङ्गों के अग्रभाग में नील लोहित संलग्न रहते हैं उस समय स्थावरता होने से स्थाणुत्व और गहनता हीन से भीमता और सुदुर्गम होने के कारण उग्रता को यह धारण किया करता है। केवल नाम से ही रहीं प्रत्युत वस्तुतः इसका स्वल्प उग्र हो जाया करता है। जहाँ पर क्षुद्र सरी सृप (सर्प) कटकों मे आस्पद बनाने वाले हैं जो कि भुजगेश्वर तक्षक एवं अनन्त सर्प आदि के साथ स्पर्धा किया करते हैं। जो दोनों ओर आठ कोणों से और विभूतियों से आविर्भूत रहा करता है ।४०-४२।

सुस्पष्टं विशिरष्टीव स्वकीयामष्टमूर्तिताम् ।
आद्या शक्तितरङ्गिण्योरिडापिङ्गलयोः स्वयम् ।४३
शिवस्यशृङ्गतो मध्येसुषुम्नाकमलापगा ।
ज्योतिः स्तम्भस्वरूपस्यमूलाग्रेयस्यवीक्षतुम् ।४४

कोलहंसाकृतीवालब्रह्माविष्णुबभूवतुः ।
ताभ्यांघप्रार्थितः शम्भुस्तस्मिन्सांनिध्यवानभूत् ।४५
अरुणाचलनाथाख्यः प्रपन्नः प्रमदैः समम् ।
गौतमस्तत्र योगीन्द्र सहस्रं परिवत्सरान् ।४६
तप्त्वा तमांसि यीव्राणिसाक्षाच्चक्रे सदाशिवम् ।
प्रालेयशैलकन्यापितत्रकृत्वातपः पुरा ।४७
अलब्धवामदेहार्द्धं तस्मथारेः प्रसेदुषः ।
गौर्या प्रतिष्ठितं तत्र प्रवालावीशनराभिधम् ।४८
लिङ्गं सोगप्रद पुसां कैवल्याय प्रकल्पते ।
तत्र गौरीनिदेशेन दुर्गा महिषमर्दिनी ।४९

बहुत ही स्पष्ट रूप से यह अपनी अष्ट मूर्तियों वाला होना मानो प्रकट किया करता है। आद्या शक्ति तरंगिनी से दोनों स्वयं इडा और पिंगला हैं। शिव के शृंग से मध्य में कमला आपगा (नदी) सुषुम्ना है। जिस ज्योतिः स्तम्भ स्वरूप के मूलाग्र में देखने के लिये हैं ।४२-४४। वहाँ पर चील और हँस की आकृति वाले ब्रह्मा तथा विष्णु हुए थे। उनके द्वारा प्रार्थना किये हुए भगवान शम्भु ने उसमें सान्निध्य किया था ।४५। वहाँ पर योगीन्द्र गोतम ऋषि प्रमदों के साथ अरुणाचल नाथ धाम वाले प्रभु के चरण में सहस्र परिवत्सर तक प्रसन्न हुआ था। इस ने अति तीव्र तपश्चर्या करके सदाशिव प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त किया था। वहाँ पर पहिले हिमवान् पर्वत की कन्या ने तप करके समवस्थित काम के नाशक शिव के वामदेह के अर्थ भाष को प्राप्त था। वहाँ पर प्रवाल से ईश्वर नामधारी की गौरी ने प्रतिष्ठा की थी। यह भगवान् शिव का लिंग पुरुषों की भोगों का प्रदान करने वाला था और कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति के लिये भी प्रकल्पित होता है। वहाँ पर गौरी के निर्देश से दुर्गा महिषासुर के दमन करने वाली हुई थी ।४६-४९।

साक्षाद्भूय सतां दत्ते मन्त्रसिद्धिमविघ्नतः ।
खंगतीर्थमितिख्यातं तत्र गौर्याश्रमेनवम् ।५०
सकृन्निमज्जनान्नृणां पञ्चपातकनाशनम् ।
दुर्गया चार्चितं लिङ्गं पापनाशननामकम् ।५१
सत्कृत्प्रणामतात्रेण सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र वज्रांगो राजा वित्तसारो व्यतिक्रमात् ।५२
पुनस्तद्भक्तिमाहात्म्याच्छिवसायुज्यमाप्तवान् ।
तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरौ ।५३
विद्याधरेश्वरौ मुक्तौ दुर्वासः शापबन्धनात् ।
नास्ति शोणाद्रितः क्षेत्रं नास्ति पञ्चाक्षरान्मुनः ।५४
नास्ति माहेश्वराद्धर्मो नास्ति देयो महेश्वराद् ।
नास्ति ज्ञानं शिवज्ञानान्नास्ति श्रीरुद्रतः श्रुतिः ।५५
नास्ति शैवाग्रणीर्विष्णोर्नास्ति रक्षा विभूतितः ।
नास्ति भक्तेः सदाचारो नास्ति रक्षाकराद्गुरुः ।५६

यह देवी साक्षात् होकर सत्पुरुषों को बिना किसी विघ्न बाधा के मन्त्रों की सिद्धि प्रदान किया करती है। वहाँ हर उस गौरी के आश्रय में नूतन खंग तीर्थ इस नाम से विख्यात हुआ था ।५०। वहाँ पर एक ही बार निमज्जन करने से मनुष्यों के पाँच पाप को का विनाश हो जाया करता है दुर्गा देवी के द्वारा अर्चन किया हुआ वह लिंग पाप नाशन नाम वाला होता है। एक ही बार प्रणाम कर देने मात्र से यह सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला होता है। वहाँ पर वज्राङ्गद राजा चित्तसार व्यक्तिक्रम से फिर उनकी भक्ति के माहात्म्य से भगवान शिव की सायुज्य को प्राप्त करने वाला हो गया था। उनकी प्रदक्षिणा से ही कान्तिशाली और कलाधर में दोनों विद्या धरेश्वर दुर्वासा के शाप थे बन्धन से मुक्त हो गये थे। शोणाद्रि अधिक उत्तम कोई भी क्षेत्र नहीं है और पंचाक्षरी (ओं नमः शिवाय) मन्त्र से अधिक कोई भी

अन्य मन्त्र नहीं है ।५१-५३। माहेश्वर से अधिक उत्तम अन्य कोई भी धर्म नहीं है। और महेश्वर से बड़ा अन्य कोई भी देव नहीं है। शिव के ज्ञान से बड़ा अन्य कोई भी ज्ञान नहीं है और श्री रुद्र से बड़ा अन्य कोई भी श्रुति नहीं है ।५३। विष्णु से वड़ा अन्य कोई अग्रणी शैव नहीं है और विभूति से अधिक कोई भी रक्षा नहीं है। भक्ति से बड़ा कोई अन्य सदाचार नहीं हैं और रक्षा करने वाले से वड़ा कोई अव्यगुरु नहीं ।५५-५६।

नास्ति रुद्राक्षतो भूषा गास्ति शास्त्रं शिवागमात् ।
नास्ति विरुवदलात्पत्रं नास्ति पुष्पं सुवर्णकात् ।५७
नास्ति वैराग्यतः सौख्यं नास्ति मुक्तेः परं पदम् ।
गारुणादे समो मेरुर्न कैलासो न मन्दर. ।५८
ते f वासा गिरिव्याप्ताः सोऽयन्तु गिरीशः स्वयम् ।५९
इयि वर्दति शिलानन्दन मुदितमनाः स मृकण्डुनन्दनः ।
पुनरपि बहुशः प्रणम्य तं चकितमना भवतो व्यजिज्ञपत् ।६०
किं किं नृणां कसं भवाय जायते
कथं नु तत्तन्नकाय श्रूयते ।
तेषां च तेषां कथं प्रतिक्रिया
कथं न तत्तन्मय कष्यतामिति ।६१

रुद्राक्ष के समान अन्य कोई भी भूषा (आभूषण) नहीं है और शिव के आगम से अधिक बड़ा कोई भी शास्त्र नहीं है। विल्व दल से अधिक महिमाशाली कोई भी हत्र नहीं है और सुवर्णक से अधिक कोई महान पुष्प नहीं है ।५७। इस जगत् में वैराग्य से अधिक अन्य कोई भी सुख नहीं है और जन्म-मरण के बारम्बार आवागमन से छुटकारा दिलाने वाली मुक्ति से बड़ा अन्य कोई परम पद नहीं है। उस अरुण पर्वत के समान न मेरु है, न कैलाश है और न मन्दराचल ही हैं ।५८। वे सभी पर्वत भगवन् गिरीश के निवास स्थान होने के कारण इतने

अधिक महत्वशाली हुए हैं और यह अरुणाचल तो स्वयं ही साक्षात् गिरीश हैं ।५६। इस तरह से शिला नन्दन के यह कहने पर यह मृकन्डु के पुत्र अत्यन्त ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे और फिर भी उनको बहुत बार प्रणाम करके चकित मन वाले होते हुए उनसे मार्कन्डेय मुनि ने जिज्ञासा की थी ।६०। हे भगवन् ! कौन-कौन से कर्म ऐसे हैं जो मनुष्यों को संसार के बन्धन में जल देने वाले होते हैं और कौन से कर्म ऐसे होते हैं जो मनुष्यों को उन-उन नरकों में डाल दिया करते हैं। उन कर्मों की क्या-क्या प्रतिक्रियायें होती हैं जिनके करने से उन समस्त घोर कष्टों से मनुष्यों का छुटकारा हुआ करता है—यह सभी आप महती कृपा करके मुझे बतलाइये ।६१।

॥ माहेश्वर खण्ड समाप्त ॥

—×—

स्कन्द पुराण

वैष्णव खण्ड

३०–वेंकटाचल माहात्म्य

पावनेनैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः ।
चक्रिरे लोकरक्षार्थं सत्र द्वादशवार्षिकम् ।१
तानभ्यगच्छतत्कथो व्यासशिष्यो महामतिः ।
मुनिरुग्रश्रवा नाम रोमहर्षणसम्भवः ।२
सम्यगभ्यर्चितस्तेषांसूतः पौराणिकोत्तमः ।
कथयामास तद्दिव्यपुराणस्कन्दनामकम् ।३
सृष्टिसंहारवंशानांवशामुचरितस्य ।
कथांमन्वन्तराणां च विस्तरात्स न्यवेदयत् ।४
कथास्तीर्थप्रभावाणां श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः ।
ऊचरे वशिनंसूतंकथाश्रवणकाङ्क्षया ।५
रोमहर्षण सर्वज्ञ पुराणार्थविशारदः ! ।
माहात्म्यंश्रोतुमिच्छामोगिरीन्द्राणां महीतले ।६
ब्रूहि त्वं नो महाभाग ! के प्रधाना महीधराः ।
एतदेव पुरा प्रश्नपृच्छं जाह्नवीतटे ।
व्यासं मुनिवरश्रेष्ठं सोऽब्रवीन्वे गुरुत्तमः ।७

लोकों की रक्षा के लिये बारह वर्ष में पूर्ण होने वाला एक सत्र किया था ।१। उनके समीप में श्री व्यास देव का शिष्य महान् मति-

मान् कथायें कहने वाले, रोमहर्षण से समुत्पन्न उग्रश्रवा मुनि समागत हुये थे ।२। पौराणिकों में परम श्रेष्ठ सूतजी उनके बहुत अधिक अभ्यर्चित हुये थे । फिर उन श्रीसूतजी ने अत्यन्त दिव्य स्कन्द नामक पुराण को कहा था ।३। सृष्टि, संहार, वंशों का वर्णन तथा वंशों के अनुचरित का कथन और मन्वन्तरों का विस्तार पूर्वक वर्णन उनने निवेदित किया था ।४। मुनि पुंगवों ने तीर्थों के प्रभावों की कथा का श्रवण करके उन वशी श्री सूतजी से विशेष रूप से श्रवण करने की इच्छा से यह कहा था ।५। ऋषि वृन्द ने कहा—हे रोमहर्षण, आप तो सर्वज्ञ हैं और पुराणों के अर्थ के ज्ञान के महान मनीषी है । हम लोग सब इस महीतल में गिरीन्द्रों के माहात्म्य को श्रवण करने की इच्छा करते हैं । हे महाभाग ! आप हमको यह बतलाइये कि कौन से महीधर प्रधान हैं ? श्री सूतजी ने कहा पहिले जाह्नवी नदी के तट पर यह ही प्रश्न मुनिवरी में परम श्रेष्ठ श्री व्यास देवजी से पूछा था । उन गुरुदेव ने मुझसे कहा था ।६-७।

पुरा देवयुगे सत नारदो मुनिसत्तमः ।
सुमेरुशिखरं गत्वा नानारत्नसुशोभितम् ।८
तन्मध्येविपुल दीप्त ब्रह्मणो दिव्यमालयम् ।
हवष्टा तस्योत्तरे देशे पिप्पलद्रुममुत्तमम् ।९
सहस्रयोजनोच्छ्राय विस्तीर्णं द्विगुणतथा ।
तन्मूलदण्डदिव्यंनानारत्नहर्मान्वितम् ।१०
पद्मरागमणिस्तम्भैः सहस्रैः समलंकृतम् ।
वैडूर्यंनुक्तातणिभिः कृतस्वस्तिकमालिकम् ।११
नवरत्नसमाकीर्णं दिव्यतोरणशोभितम् ।
मृगपक्षिभिराकीणं नवरत्नमयैः शुभैः ।१२
पुष्परागमहाद्वारं सप्तभूमिकगोपुरम् ।
सन्दीप्रवज्रसुक्रतकवाटद्वयशोभितम् ।१३

प्रविश्याऽसौ दतशन्तिर्दिव्यमौक्तिकमण्डपम् ।
वैडूर्यवैदिकं तुरङ्गमारुरोह महामुनिः ।१४

महर्षि व्यास जी ने कहा था—हे सत् ! पुरातन समय में मुनिगण में परम श्रेष्ठ देवर्षि नारद ने उस देव युग में नाना भाँति सुन्दर रत्नों से सुशोभित सुमेरु पर्वत की शिखर पर जाकर उसके मध्य में विशाल एवं दोप्तिमान ब्रह्माजी का एक दिव्य आलय देखा था। उसके उत्तर दिग्भाग में एक उत्तम पीपल का द्रुम था उस पीपल के वृक्ष की ऊँचाई एक सहस्र योजन थी तथा इससे दुगुना उसका विस्तार था। उस वृक्ष के मूल भाग में एक परम दिव्य मण्डप था जो अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त था वह मण्डप सहस्रों ही पद्मभाग मणियों से भली-भाँति अलङ्कृत था और वैदूर्य मणि मुक्ताओं से उस की स्वस्तिक मालिका की रचना हुई थी ।८-११। नौ प्रकार के रत्नों से वह समाकीर्ण था और दिव्य तोरणों से परम शोभा युक्त था। नवरत्नों से परिपूर्ण अति शुभ मृग और पक्षियों से भी वह संकुल था ।१२। पुष्प-राग मणियों से उसका महाद्वार निमित्त हो रहा था और उसका गोपुर सप्तभूमिक था। भली भाँति से युग वज्र (हीरा) के अच्छे सुरचित दो किवाड़ों से वह भी शोभा वाला था ।१३। उन्होंने अन्दर प्रवेश करके परम दिव्य मौलिक मण्डप को देखा जिसमें वैदूर्य मणियों से एक वेदिका बनी हुई थी। उस उच्च स्थान पर महामुनि चढ़ गये थे ।१४।

तन्मध्ये तुंगमतुल मष्टदविराजितम् ।
ददर्श मुक्तासंकीर्णं सिंहासनं महाद्युति ।१५
तन्मध्ये पुष्करं दिव्यं सहस्रदलशोभितम् ।
श्वेतचन्द्रसहस्राभकर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।१६
तस्य मध्ये समासीनं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ।
कैलासपर्वताकार सुन्दरं पुरुषाकृतिम् ।१७

चतुर्हुर्वाभुदाराङ्गं वराहवदनं शुभम् ।
शंखचक्राभयवरान्बिभ्राणं पुरुषोत्तमम् ।१८
पीताम्बरधरं देव पुण्डरीकाक्ष लक्षणम् ।
पूर्णेन्दुसौम्यवतनं धूपगन्धिमुखाम्बुजम् ।१६
सामध्वनि यज्ञमूर्ति स्रुक्तुण्ड स्त्रुवनासिकम् ।
क्षीरसागरमङ्काश किरीटोज्ज्वलिताननम् ।२०
श्रीवत्सवक्षसं शभ्रयज्ञसूत्रविराजितम् ।
कौस्तुभश्रीमसुद्द्योतं समुन्नतमहोरसम् ।२१

उसके मध्य भाग में आयुच्च, अतुल, मुक्ताओं से संकीर्ण, महान द्युति से सुसम्पन्न आठ पादों से विराजित एक सिंहासन देखा था। उस के मध्य में एक सहस्र दलों से शोभा वाला परम दिव्य पुष्कर था जो सहस्र श्वेत चन्द्रों की आभा के सदृश आभा वाला था और कर्णिका की केसरों से अतीव समुज्ज्वल था। उसके भव्य आवृत पूर्ण चन्द्रों की प्रभा से युक्त, कैलास पर्वत के सदृश आकार वाले, परम सुन्दर पुरुष के तुल्य आकृति वाले को समासीन देखा था। उनके चार बाहुयें थी—परम उदार अङ्ग था और परम शुभ वराह के जैसा मुख था। शंख, चक्र और अभय दान के वर को धारण करने वाले परम उत्तम पुरुष थे। ।१५-१८। वह महापुरुष पीताम्बर धारी थे और वह देव पुण्डरीक (कमल) के समान विशाल नेत्रों वाले थे। पूर्ण चन्द्र और तुल्य सौम्य मुख से युक्त तथा धूप की गन्ध से समन्वित मुख कमल वाले थे ।१६। सामवेद की ध्वनि से युक्त, यज्ञ मूर्त्ति, स्रुक् तुण्ड वाले और स्रुवा के समान नासिका वाले थे। क्षीरसागर के समान तथा किरीट में समुज्ज्वलित आनन (मुख) वाले थे। उनके वक्षः स्थल पर श्रीवत्स शुभ चिह्न था और अतीव शुभ यज्ञ सूत्र से शोभायमान थे। कौस्तुभ मणि की थी उसकी ज्योति से सम्पन्न थे तथा समुन्नत एवं महान उरःस्थल वाले थे। ।२०-२१।

जाम्बूनदमयैर्दिव्यैः सुरत्नाभरणैर्युतम् ।
विद्युन्मालापरिक्षिप्तशरन्तेघमिवोज्ज्वलम् ।२२
वामपादतलाक्रान्तरादपीठविराजितम् ।
कटकांगदकेयूरकुण्डलोज्ज्वलित सदा ।२३
चतुर्मुखवसिष्ठत्रिमार्कण्डेमुनीश्वरैः ।
भृग्वादिभिरनेकैश्च सेव्वमानमहर्निशम् ।२४
इन्द्रादिलोकपालैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
सेवितं देवदेवेश प्रणिप्रत्याऽभिगम्य च ।२५
दिव्यैरुपनिषद्भागैरभिष्टय धराधरम् ।
नारदः परमप्रीतः स्थितो देवस्य सन्निधौ ।२६
एतस्मिन्नन्तरेचाभूद्दिभ्यदुन्दुभिनिः स्वनः ।२७

जाम्बूनद (सुवर्ण) से पूर्ण, परम दिव्य और सुन्दर स्त्री रत्नों वाले आभरणों—शोभा वाले थे उस समय उनकी शोभा ऐसी ही हो रही थी जैसे विद्युन्मालाओं से परिक्षिप्त शरत्काल का उज्ज्वल मेघ ही विराजमान हो। वामपाद से समाक्रान्त पादपीठ पर विराजमान थे और सर्वदा सुवर्ण रचित कठक, अंगद, केयूर और कुन्डलों से समुज्ज्वलित थे। ब्रह्मा, बसिष्ठ, अत्रि और मार्कण्डेय मुनीश्वरों से तथा भृगू आदि अनेक महापुरुषों के द्वारा अहर्निश सेव्यमान थे। इन्द्र प्रभृति लोकपालों के द्वारा तथा गन्धर्व और अप्सराओं के गणों के द्वारा वे देवों के भी देवेश्वर सेवित थे जो उनको बारम्बार अभिगमन करके प्रणाम कर रहे थे। उन धराधर देव को देवर्षि नारद जी ने दिव्य उपनिषद् भाग से स्तवन किया था। वह परम प्रसन्न होते हुए उन देव को सन्निधि में ही स्थित हो गये थे। इस बीच में परम दिव्य दुन्दुभियों की ध्वनि वहाँ पर हुई थी।२२-२७।

ततस्समागता देवी धरणी सखिसंयुता ।
सरत्नसागराकादिव्याम्बरसमुज्ज्वला ।२८

सुमेरुमन्दराकारस्तनभावारनामिता ।
नवदूर्वादलश्यामा सर्वाभरणभूषिता ।२९
इला वै पिंगलया सखीभ्यां च समन्विता ।
ततस्ताभ्यां समानीतं पुष्पाणां निचयं मही ।३०
श्रीमद्धराहदेवस्य पादमूले विकीर्य च ।
प्रणम्वदेवदेवेशं कृताञ्जलियुता स्थिता ।३१
तां देवीं श्चीयराहोऽपि ह्यालिङ्मयाऽङ्के निधाय च ।३२
पप्रच्छ कुशल पृथ्वीं प्रीतिप्रवणनानन: ।३३
त्वां निवेश्यमहीदेवि ! शेषशीषसुखावहे ।
लोकंत्वयिनिवेश्यचत्वसह:यान्धराधरान् ।
इहाऽगतोऽस्म्यहं देवि ! किमर्थं त्वमिहाऽऽगता ।३४

इसके अनन्तर वहाँ पर सखियों से समन्वित धरणी देवी समागत हुई थी जो रत्नों के सहित सागर के समान आकार वाली तथा दिव्य अम्वरों से समुज्ज्वल वेष वाली थी। सुमेरु और मन्दर पर्वतों के आकार वाले स्तनों के भार से वह धरणी देवी अब नमित हो रही थीं। नवीन दूर्वा दल के समान वर्ण वाली श्यामा और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित थी ।२०-२९। इला और पिंगला नामधारिणी दो सखियों के साथ थी। इसके अनन्तर वह मही उन दोनों सखियों के द्वारा पुष्पों के विनय के समीप में प्राप्त हो गई थी अर्थात् सखियों के द्वारा पुष्पों का समूह उस धरणी देवी के उपस्थित किया गया था उस पुष्पों के समूह को धरणी देवी ने श्रीमान् वराह के चरणों के मूल में विकीर्ण कर दिया था और उन देवों के देवेश्वर प्रभु को वह प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़कर वहीं पर स्थित हो गई थी। श्री वराह देव ने भी उस देवी का समालिंगन करके उसको अपनी गोद में बिठा लिया था। फिर परम प्रीति मन वाले देवेश्वर ने उस धरणो से कुशल पूछा था। श्री वराह देव ने कहा—हे देवि ! परम सुखावह शेष

के मस्तक पर निवेशित करके और तेरे ऊपर लोक को निवेशित करके तथा तेरे सहायक धराधरों को निदेशित करके हैं देवि ! भी यहाँ पर समागत हो गया हूँ। अब आप किस प्रयोजन से आई हैं।३०—३४।

मां समुद्धत्य यातालात्सहस्त्रफणशोभिते ।
रत्नपीठं इवोतु गे सरत्येऽनन्तमूर्धनि ।
कृत्वा मां सुस्थिरां देव ! भूधरान्संनिवेश्य च ।३५
मद्धारणक्षमान्पुण्यांस्त्वन्मयान्पुरुषोत्तम ।
तेषु मुख्यान्महावाहो मदाधारान्वदस्व मे ।३६
सुमेरुहिमवान्विध्योवन्दरो गन्धमादनः ।
शालग्रामेश्चित्रकूटौ ताल्यवान्पारियात्रकः ।३७
महेन्द्रो मलयः मह्यः सिंहाद्रिरपि रैवतः ।
मेरुपुत्रोऽञ्जनो नाम शैलः स्वर्णमयी महान् ।३८
एते शैलवराः सर्वे त्वदाधारा बसुन्धरे ।
ये मया देवसंघैश्च ऋषिसंघैश्च सेविताः ।३९
एतेषु प्रवरान्वक्ष्ये मत्वतः शृणु माधविः ! ।
शालाग्रामाश्चसिंहाद्रिश्शैलेन्द्रोगन्धमादनः ।४०
एते शैयवरा देवि दिशं हेमवतीं श्रिताः ।
दक्षिणस्यां प्रतीनांस्तु वक्ष्येशैलान्वसुन्धरे ।४१
अरुणाद्रिहंस्तिशैलो गृध्राद्रिर्घटिकाचलः ।
एते शैलवरा सर्वे क्षीरनद्यास्समीपगाः ।४२

पृथिवी ने कहा—आपने मुझको पाताल से समुद्भूत करके सहस्रों फलों से शोभा वाले रत्न निर्मित्त पीठ की भाँति अति अत्तुङ्ग (उन्नत) रत्न सहित अनन्त के मस्तक पर हे देव ! आप मुझको सुस्थिर करके तथा भूघरों को मेरे ऊपर निवेशित कर चुके हैं। हे पुरुषोत्तम ! ये भूधर परम पुण्यमय है—मेरे धारण करने के सक्षम हैं और आपसे

परिपूर्ण है। हे महाबाहो ! उनमें अब आप मेरे आधार भूत मुख्य जो भी हो उनको मुझे बतलाने की कृपा कीजिए।३५-३६। श्री बराह देव ने कहा—हे वसुन्धरे ! सुमेरु, हिमदान्, विन्ध्य, मन्दर, गन्धमादन, सालग्राम, चित्रकूट, माल्यवान्, परियात्रिक, महेन्द्र, मलय, सह्य, सिंहाद्रि रैवत, मेरुपुत्र, अंजन नाम वाला शैल जो स्वर्णमय और महान् हैं। ये सब परम पवित्र शैल है जो कि आपके आधार हैं। ये वे शैल है जिसका सेवन मैंने स्वयं तथा दोनों एवं ऋषियों के समूह ने किया है। हे माधवि ! इनमें भी जो परम प्रवर हैं उनको मैं तात्विक रूप से बतलाऊँगा, उनका आप श्रवण करो। सालग्राम सिंहादि और गन्धमादन शैलेन्द्र हैं। हे देवि ! ये वरिष्ठ शैव हैं जो हेमवती दिशा में स्थित है। हे वसुन्धरे ! दक्षिण दिशा में जो प्रतीत होता है उन शैलों को भी बतलाता हूँ—अरुणाद्रि, हस्ति शैल गृन्नाद्रि, घटिकाचल ये सब श्रेष्ठ शैल हैं जो क्षीर नदी के समीप में गमन करने वाले हैं।३७—४२।

हस्तिशैलादुतरतः पञ्चयोजनमात्रतः
सवर्णमुखरीनाम नतीनाम्प्रवरा नदी।४३
तस्या एवोत्तरे तोरे कमलाख्य सरोवरम्।
तत्तीरे भगवानास्ते शुक्रस्य वरदो हरिः।४४
बलभद्रेश संयुक्तः कृष्णोभक्तातिनाशनः।
वैखानसैर्मुनिगणैर्नित्यमाराधितोऽमलैः।४५
कमलाख्यससरत उत्तरे कालेनोत्तमे।
क्रोशद्वयाधमात्रेतु हरिचन्दनशोभिते।
श्रीवेङ्कटाचलो नाम वासुदेवालयो महान्।४६
सप्तयोजनविस्तीर्णः शैलेन्द्रोयोजनोच्छितः।
अस्तिस्वर्णमयोदेविरत्नसानुभृदायतः।४७
इन्द्राद्या दैवतगणा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः।

सिद्धाः साध्याश्चमरुतोदानवादैत्यराक्षसः ।
रम्भाका अप्सरः संघा वसन्ति नियत धरे ।४८

हस्ति शैल से उत्तर दिशा में पाँच योजन परिमाण वाली सुवर्ण मुखरो नाम वाली नदियों में वरिष्ठा एक नदी है। उसी नदी के उत्तर तट पर एक कमल नाम वाला सरोवर हैं उसके तीर पर शुक्र को वरदान करने वाले हरि भगवान हैं। बलभद्र संयुक्त भक्तों की आर्त्ति का नाश करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वे वहाँ पर नित्य ही सन्यासी और परम विमल मुनिगणों के द्वारा समाराधित होते हैं। उस कमलाख्य सरोवर के उत्तर दिग्भाग वाले उत्तम वन में केवल ढाई कोश की दूरी पर हरि चन्दन वृक्षों से सुशोभित वन में श्री वेङ्कट अचल शुभ नाम वाला एक महान् भगवान् वासुदेव का आलय है ।४३-४६। वहाँ पर सात योजन विस्तार वाला और एक योजन ऊँचा एक शैलेन्द्र है। हे देवि ! यह परम आयल रत्नों की शिखरों से समन्वित वह स्वर्गमय है। हे धरे ! वहाँ पर इन्द्र आदि देवगण, वसिष्ठ प्रभृति, मुनिगण-सिद्ध, साध्य, मरुतगण, दानव, दैत्य, राक्षस, रम्भा आदि अप्सराओं के समुदाय ये सब नियत रूप से वहाँ पर निवास किया करते हैं ।४७-४८।

तपश्चरन्ति नागाश्च गरुडाः किन्नरास्तथा ।४९
एतैराधष्ठितास्तत्रसरितः पुण्यदर्शनाः ।
सरांसिविविधान्यत्रसन्ति दिव्यानिमाधवि ।
तीर्थानाञ्चैव सर्वेषां शृणुष्व प्रवणानि वै ।५०
चक्रतीर्थं देवतीर्थं वियद्गङ्गा तथैव च ।
कुमारधारिका तीर्थम्पापनाशनमेव च ।
पाण्डव नामतीर्थञ्च स्वामिपुष्करणी तथा ।५१
सप्तैतानि वराण्याहुर्नारायणगिरो शुभे ।
एतेषु प्रवरा देवि स्वामिपुष्करिणी वुभा ।५२

अयास्तु पश्चिमे तीरे निवसामि त्वया सह ।
आस्तेऽन्या दक्षिणे तीरे श्रीनिवासो जगत्पतिः ।५३
गङ्गाद्यैः सकलैस्थीर्थैः समासासागराम्बरे ।
त्रैलोक्येयानितीर्थानिसरांसिसपितस्तथा ।
तेषां स्वामित्वमापन्न धरे ! स्वामिसरोवरे ।५४
स्वातिपुष्करिणीपुण्यांसेवितु दिव्यभूधरे ।
वसन्तिसर्वेतीर्थोनितेषांसंख्यावदामिते ।५५
षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्येऽस्मिन्भूधरोत्तमे ।
तेषु चा यन्तमुख्यानि षट् तीर्था न बसुन्धरे ।५६
पञ्चानां तीर्थराजानां तुम्बोगर्भं समोमहान् ।
गर्भवासभयध्वंसी स्नातानाम्भूधरोत्तमे ।५७

वहाँ पर नाग, गरुड़ तथा किन्नर गण तपश्चर्या किया करते हैं । इनसे अधिष्ठित वहाँ पर परम पुण्य दर्शन वाली सरितायें है । हे माधवि ! वहाँ पर अनेक दिव्य सरोबर है । हे देवि ! अब समस्त तीर्थों में जो परम श्रेष्ठ हैं उनका भी श्रवण कर लो ।४६-५०। चक्र, तीर्थ, देव तीर्थ, विषद गङ्गा, कुमार धारिका, में तीर्थ पापी के नाश करने वाले हैं । पाण्डव नाम वाला तीर्थ तथा स्वामि पुष्करिणी—ये सात उस शुभ नारायण गिरि में अति श्रेष्ठ तीर्थ हैं । हे देवि ! इन सब में भी परम शुभा एवं प्रवर स्वामि पुष्करिणी तीर्थ हैं । इसके पश्चिमी तट पर मैं तुम्हारे साथ निवास किया करता हूँ । इनके दक्षिण तीर पर जगत के पति श्रीनिवास निवास किया करते हैं ।५१-५२। वह गङ्गा आदि समस्त तीर्थों के समान सागराम्बर में हैं । इस त्रिलोकी में जो भी तीर्थ सरोवर और सरितायें हैं हे धरे ! स्वामी सरोवर में उन सब का स्वामित्व प्राप्त हो गया है अर्थात् इसने सम्पूर्ण तीर्थों के स्वामी होने का पद प्राप्त कर लिया है । हे दिव्य भूधरे ! परम पुण्य स्वरूपिणी स्वामि पुष्करिणी की सेवा करने के लिए सभी तीर्थ वहाँ पर

निवास किया करते हैं। अब मैं उनकी संख्या भी आपको बतलाता हूँ। इस परम पुण्यमय मधरोत्तम में छियासठ करोड़ तीर्थ हैं। उनमें भी जो अत्यन्त मुख्य है वे हे वसुन्धरे ! केवल छै ही तीर्थ है ।५४-५६। हे भूधरोत्तमे ! इन पाँच तीर्थराजों तुम्ब महान् गर्भ के समान है। इसमें जो स्थान करने वाले मनुष्य हैं उनके गर्भवास के भय को ध्वंस करने वाले हैं ।५७।

षट्तीर्थानिमहाबाहो ! त्वयोक्तानि महीधरे ।
माहात्म्यंवदतेषांमे यथाकालयथाविधि ।५८
फलानि तेषु स्नातानां नराणाम्वद भू धर ! ।
नारायणाद्रिमाहात्म्यं वदामि शृणु माधवि ।५९
देवाश्चऋषयश्चैव योगिनः सनकादयः ।
कृतेञ्जनाद्रिन्त्रतायां नारायणगिरि तथा ।६०
द्वापरे सिहशैलंच कली श्रीवेङ्कटाचलम् ।
प्रवदन्तीह विद्वांसा परमात्मालयगिरिम् ।६१
योजनानां ससस्रान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा ।
यो नमेद्भूधरेन्द्रंतद्दिश्यमुद्देश्यशक्तितः ।६२
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।
तस्मिन्षट्तीर्थमाहात्म्यं यथा कालेवदामि ते ।६३

धरणी ने कहा—हे महाबाहो ! महीधर पर आपने छह तीर्थ बतलाये हैं। काल और विधि के अनुसार उन छह तीर्थों का मुझे माहात्म्य बतलाने की कृपा कीजिये ।५८। हे भूधर ! छह प्रमुख तीर्थों में जो मनुष्य स्नान किया करते हैं उनको क्या फल प्राप्त होते हैं यह भी आप कृपा करके मुझे बतलाइये ।५९। श्री वराह भगवान् ने कहा—हे माधवि ! मैं अब नारायणाद्रि का माहात्म्य तुमको बतलाता हूँ उस का श्रवण करो। समस्त देवगण, सब ऋषि वृन्द, सम्पूर्ण योगीजन और सनक आदि कृतयुग में अञ्जनादि को, त्रेता में नारायण गिरि को,

द्वारा में सिंह शैल को और कलियुग में श्री वैंकटाचल को बतलाया करते हैं। यहाँ पर विद्वान् लोग गिरि को परमात्मा का आलय कहते हैं एक सहस्र योजनों के भी अन्त में तथा अन्य द्वीप में भी रहते हुए जो कोई उस भूधरेन्द्र को उसकी दिशा मात्र का उद्देश्य ग्रहण करके भक्ति भाव से नमस्कार किया करता है वह समस्त पापों से विनिमुक्त होकर सीधे विष्णु लोक को चले जाया करते हैं। उनमें छह तीर्थों का माहात्म्य भी मैं यथाकाल आपको बतलाऊँगा।६०-६३।

शृणुष्वावहिताभद्रसर्वंपापप्रणाशनम् ।
कुम्भसंस्थेरवौमाधे पौर्णमास्याम्महातिथौ ।६४
मघानक्षत्रयुक्तायां भूधरेन्द्र वसुन्धरे ।
कुमारधारिकानाम जरसी लोकपावनी ।६५
यत्रास्तेपार्वतीसूनुः कार्त्तिकेगोऽग्निवम्भवः ।
दैवसेनाससायुक्तः श्रीनिवासार्चकोऽमले ।६६
तस्यां यः स्नातिमध्याह्नेवस्यपुण्यफलश्शृणु ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यः स्नातिनयमाद्धरे ।६७
द्वादशाव्दं जगद्धात्रि ! तत्फलं समवाप्नुयात् ।
योऽत्रं ददाति तत्तीर्थे शक्त्या दक्षिगयान्वितम् ।
स तावत्फलमाप्नोति स्नाने तूक्तं फलं यथा ।६८
मीनसंस्थे सवितरि पौर्णमासीतिथौ धरे ।
उत्तराफाल्गुनी युक्ते चतुर्थे कालउत्तमे ।६९
पञ्चानामपि तीर्थानां तुम्बेऽथ गिरिगह्वरे ।
यः स्नाति मनुजो पुनर्गर्वे न जायते ।७०

हे भद्र ! अब आप वहुत ही सावधान होकर श्रवण करो जो सब प्रकार के पापों का विनाश कर देने वाला है। हे वसुन्धरे ! भूधरेन्द्र में कुम्भ राशि पर रवि के स्थित होकर, मास में, पूर्णिमा महातिथि में जो कि मघा नक्षत्र से समन्वित हो ऐसे सुयोगों के प्राप्त

होने पर कुमार धारिका नाम वाली सरसी परम लोक पावनी हैं।६४-६५। जहाँ पर पार्वती के पुत्र, अग्नि से सम्भूत होने वाले कार्त्तिकेय विराजमान रहा करते। देव सेना से समायुक्त होकर हे धमले ! यह भगवान् श्रीनिवास की प्रशंसा करने वाले हैं। उनमें जो भी मध्याह्न के समय स्नान किया करता है उसके पुण्य-फल का आप अब श्रवण करो। हे धरे ! गंगा आदि समस्त तीर्थों में जो, नियम पूर्वक स्नान किया करता है हे जगद्धात्रि ! जो वारह वर्ष तक स्नान करता है उसी फल को यह प्राप्त कर लेता है। जो कोई इस तीर्थों में दक्षिणा युक्त अन्न का दान किया करता है और अपनी शक्ति के अनुसार करता है वह भी उतना ही फल प्राप्त किया करता है जो फल हमनें स्नान करने का बतलाया है ।६६-६८। हे धरे ! सूर्य मीन राशि पर संस्थित हो जाने पर पौर्णमासी तिथि में जो कि उत्तरा फाल्गुनी से युक्त हो चतुर्थ उत्तम काल में पाँचों तीर्थों में प्रमुख गिरि ग्रह्य में तुम्ब तीर्थ में जो स्नान किया करता है हे देवि ! मनुष्य पुनः गर्व से नही जाया करता है ।६९-७०।

अग्निवाहस्थितौ भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते ।
पूर्णिमाख्यतिथौपुन्ये प्रातः कालेतथैवच ।७१
आकाथगंगासरितिस्नातो मोक्षमाप्नुयात् ।७२
वृषभस्थे रवौ राधे द्वादश्यांरविवासरे ।
शुक्लेवाप्यऽथवा कृष्णे पक्षेभौमसन्विते ।७३
शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे भानुवारेण संयुते ।
पुष्यनक्षत्रसंयुक्त हस्तर्क्षेण युतेऽपिवा ।७४
तीर्थे पान्डवदाम्न्यत्र संगमे स्नाति यो नरः ।
नेहदुःखमवाप्नोति परत्र सुखमश्नुते ।७५
शुक्ले पक्षेऽथवा कृष्ण पाऽर्कवारेण सप्तमी ।
पुण्यनक्षत्रसंयुक्ताहस्तर्क्षेणयुसापिवा ।७६

तस्यां तिथौ महाभागे मामनाशनसंज्ञके ।
तीर्थेय: स्नाति नियमात्भूधरेन्द्रस्य मस्तके ।
कोटिजन्मार्जितै: पापैर्मुच्यते स नरोत्तम: ।७७

अग्नि वाह (मेष) राशि पर सूर्य के आ जाने पर हे धरे ! चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा परम पुण्य तिथि में प्रात: काल के समय में जो आकाश गंगा सरिता में स्नान किया करता है, यह मनुष्य निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है ।७१-७२। वृषभ राशि पर सूर्य के संस्थित होने पर अनुराधा नक्षत्र में रविवार से युक्त द्वादशी तिथि शुक्ल पक्ष हो अथवा कृष्ण पक्ष हो, सोमवार से युक्त शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष में रविवार से युक्त में, अथवा पुण्य या हस्त नक्षत्र से युक्त पाण्डव नाम वाले तीर्थ में सङ्गम में जो मनुष्य स्नान किया करता है वह यहाँ लोक में किसी भी तरह का कोई दु:ख नहीं प्राप्त किया करता है और मृत्यु के पीछे परलोक में भी वह सुखों का ही उपभोग करता है । शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो जो रविवार से युक्त सप्तमी तिथि हो और वह पुण्य या नक्षत्र से समन्वित हो तो उस तिथि में हे महाभागे ! इस पापों के विनाश करने वाले तीर्थ में जो भी स्नान कर लेता है और भूधरेन्द्र के मस्तक में नियम से स्नान किया करता है वह नरों में परम श्रेष्ठ करोड़ जन्मों में अर्जित किये पापों में बिमुक्त हो जाता है ।७३-७७।

शृणु देवि परङ्ग ह्यमनन्ताख्ये महागिरौ ।
मद्दिव्यालयबान्ये शिखरे गिरिगह्वरे ।
देवतीर्थमितिख्यातं तटाकमतिशोभनम् ।७८
तस्मिन्पुण्यतमे देवि ! स्नानकाजम्बदामिते ।७९
गुरुपुष्ये व्यतीपाते सोमश्रवणके तथा ।
दिनेष्वेतेषु य: स्नाति तस्यपुण्यफलं शृणु ।८०

यानि कानीह पापानिज्ञाताज्ञातकृतानिच ।
तानि सर्वाणिनश्यन्ति देवतीर्थेऽतिपावने ।८१
पुण्यान्यपि च वर्धन्ते देवतीर्थनिमज्जनात् ।
दीर्घमायुरवाप्नो पुत्रपोत्रसमन्वित: ।
अन्ते स्वर्गं सागमाद्य चन्द्रलोके महीयते ।८२
तद्दिनेष्वन्नदो देवि यावज्जीवान्नदो भवेत् ।
अतिगुह्यतमं देवी प्रोक्तन्तुभ्यं बसुन्धरे ।८३
श्रुत्वाऽथ पथिवी प्रीतिप्रवणमानसा ।
इष्टाभिर्वाग्भिरतुलं तुष्टाव धरणीधरम् ।८४

हे देवि ! अब आप परम गोपनीय विजय का श्रवण करो। इस अनन्त नाम वाले महान गिरि में मेरे इस दिव्य आलय के वायव्य कोण वाले शिखर में गिरि गहवर में एक देवतीर्थ विख्यात है। वहाँ पर एक अति शोभा से युक्त तड़ाग हैं। हे देवि ! उस परम पुण्य में जो स्नान करने का काल हैं उसे मैं आपको बतलाता हूँ ।७८-७६। गुरुवार युक्त पुरुष क्षेत्र में व्यतीपात में, सोमवार से समन्वित श्रवण नक्षत्र, इन दिनों में जो भी कोई मनुष्य इस तीर्थ में स्नान किया करता है उसके पुण्य-फल का अब श्रवण करो—जो भी कोई पाप होते हैं चाहे वे ज्ञान पूर्वक किये गये हों या अज्ञान से किये गये हों वे सभी पाप उस अति पावन देव तीर्थ में नष्ट हो जाया करते हैं। इस देव तीर्थ निमज्जन करने से केवल पापों का ही विनाश नहीं होता प्रत्युत पुण्यों की भी वृद्धि हुआ करती है। मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करने से पुत्र गौओं से समन्वित होकर दीर्घ आयुकों भी प्राप्ति किया करता है। इस संसार को छोड़कर मृत्यु होने पर अन्त में स्वर्ग लोक में पहुँच कर फिर चन्द्र-लोक में प्रतिष्ठित हो जाया करता है ।८०-८२। हे देवि ! उपर्युक्त दिनों में जो अन्न का दान करने वाला है वह यावज्जीवन अन्न का दाता होता है। हे देवि ! मैंने यह अत्यन्त गुह्यतम आपको हे बसुन्धरे !

बतला दिया है ।८३। श्री व्यास देव जी ने कहा—इसके अनन्तर इसका श्रवण करके पृथिवी देवी प्रीति से परम श्रवण मन वाली हो गई थी। फिर धरणी ने उन अतुल धरणीधर देव का इष्ट वाणियों के द्वारा स्तवन किया था ।८४।

नमस्ते देवदेव ! वराहवदवाऽच्युत ।
क्षीरसागरसङ्काश वज्रश्रृङ्ग ! महाभुज ! ।८५
उद्धृतास्मि त्वया देव ! कल्पादौ सागराम्भसः ।
सहस्रबाहुना विष्णो ! धारयामि जगन्त्यहम् ।८६
अनेकदिव्याभरणयज्ञसूत्रविराजित !
अरुणारुणाम्बरधर दिश्यरत्नविभूषित ।८७
उद्यतद्भानुप्रतीकाश पादपद्मे नमोनमः ।
बालचन्द्राभ दष्टाग्रमहाबल पराक्रम ! ।८८
दिव्यचन्दनलिप्ताँ तप्तकाञ्चकुण्डल !
इन्द्रानीलमणिद्योति हेमांगदविभूषित ! ।८९
वज्रदंष्ट्राग्रनिभिन्न हिरण्याक्ष महाबल।
पुण्डराकाभिरामाक्ष ! सामस्वनमनोहर ।९०
श्रतिसीमन्त मृषात्मन्सर्वात्मंश्चारुविक्रम !
चतुरानशम्भुभ्यां वन्दिताऽऽयतलोचन ।९१

धरणीदेवी ने कहा—हे देवों के भी देवेश्वर ! आपको नमस्कार है आप वराह समान मुख वाले हैं। हे अच्युत ! आप क्षीर सागर के तुल्य वर्ण वाले हैं। हे वज्रश्रृङ्ग ! आप महान् भुजाओं वाले हैं। हे देव आपने ही मेरा उद्धार किया था जब कि कल्प के आदि काल में मैं सागर के मन में निमग्न थी। हे विष्णो ! आप तो सहस्र बाहुओं वाले हैं। मैं अब इन जगतों को धारण करती हूँ ।८५-८६। आप अनेक दिव्य आभरणों तथा यज्ञ सूत्र से शोभा सम्पन्न होकर विराजमान है, आप अरुण वर्ण वाले वस्त्रों के धारण करने वाले हैं परम दिव्य रत्नों

से विभूषित हैं। आप उदीयमान सूर्य्य के सदृश से युक्त हैं आपके चरण कमलों में बारम्बार नमस्कार है आप बाल चन्द्रमा की आभा के तुल्य आभा वाले हैं और आप अपनी दाढ़ के अग्र भाग में महान बल और पराक्रम से युक्त हैं। आपका अङ्ग परम दिव्य चन्दन से लिप्त हैं तथा आप तप्त सुवर्णों के निमित्त कुण्डलों को धारण करने वाले है। आपके अङ्ग की दीप्ति इन्द्र नील मणि के तुल्य हैं। हे देव ! आप सुवर्ण रचित अङ्गदों की शोभा वाले हैं। आपने वज्र के तुल्य दाढ़ के अग्रभाग से हिरण्याक्ष को निभिन्न कर दिया। महाबल ! आपके नेत्र पुण्डरीक (कमल) के समान परम सुन्दर हैं और आप सामवेद की ध्वनि से परम मनोहर हो रहे। हे श्रुति सीमान्त भूषात्मन् ! आप सभी की आत्मा हैं, आपका विप्रम अतीव सुन्दर है। ब्रह्मा और शम्भु इन दोनों के द्वारा आपकी वन्दना की गई है। आपके परम विशाल नेत्र हैं।८७-९१।

सर्वविद्यामयाकार शब्दातीत नमो नमः।
आनन्दविग्रहाऽनन्त कालकाल नमोनमः।९२
इति स्तुत्वाऽचला देवी ववन्दे पादयोर्विभुम्।
वन्दमानां समुद्वीक्ष्य देवोफुलविलोचनः।९३
उद्धृत्य धरणीं देवींमालिलिङ्गेऽथवाहुभिः।
आघ्रण्यधरणीवक्त्रंवामाङ्केसन्निवेश्यच।९४
आरुह्य गरुडेशानं जगाम वृषभाचलम्।
मुनीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानो महीपतिः।९५
स्वामिपुष्करिणीतीरे पश्चिमे लोकपजिते।
आस्ते वराहवदकोमुनीन्द्रैस्तत्रपूजितः।
वैखानसैर्महाभागैर्ब्रह्मतुल्यैमहात्मभिः।९६
तं दृवष्टा नारद सूतं ! मुनीनामुक्तवान्पुरा।
तदेतदहमश्रौषं तत्र वै मुनिससदि।९७

यत्पृष्टोऽहं त्वयासूतमाहत्म्यधरणीभृताम् ।
मया तूक्तं यथावत् नारदाच्चपुराश्रुतम् ।६८

हे भगवन् ! आप समस्त विद्याओं से सम्पूर्ण आकार वाले हैं और शब्दों से परे की वस्तु हैं अर्थात् शब्दों के द्वारा आपका वर्णन नहीं किया जा सकता है । आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार हैं । आपका कोई भी अन्त नहीं है और आपका यह विग्रह पूर्ण आनन्दमय है । आप इस महान् काल के भी काल हैं। आपको पुनः पुनः मेरा प्रणाम हैं ।६२। इस प्रकार से उस अचला देवी ने देवेश्वर वराह भगवान् की स्तुति करके फिर विभु के चरणों में वन्दना की थी । उस वन्दना करती हुई धारणी देवी को देखकर भगवान् वराह देव के लोचन प्रफुल्लित हो गये थे ।६३। फिर वराह भगवान् ने उस देवी को अपनी बाहुओं से उठा कर उसका समालिगन किया था । वाराहेश्वर ने धरणी के मुख का आघ्राथ करके उसे अपने ही बाद भाग की गोद में बैठा लिया था । इसके अनन्तर वह गरुड़शान पर समारूढ़ होकर वृषभाचल को चले गये थे । नारद आदि महा मुनीद्रो के द्वारा स्तवन किये गये यथा मुनि-गणों के द्वारा होते हुए वराह समान मुख वाले मही के स्वामी लोकों के द्वारा पूजित उस पश्चिम दिग्भाग वाले स्वामि पुष्करिणी के तट पर विराजमान हैं । वहाँ पर बड़े-बड़े वैखानस, महाभाण ब्रह्मा के तुल्य महात्माओं के द्वारा वे पूजित होते हैं।६४-६६। श्रीव्यास जी ने कहा— हे सुत ! देवर्षि नारदजी ने पहिले मुनियों से यह कहा था । वहीं पर मुनियों की सभा में यह मैंने भी श्रवण किया था ।६७। हे सूर्य ! तुमने जो मुझसे धरणी धारण करने वाले पर्वतों का माहात्म्य पूछा था वह मैंने जो पहिले नारद जी से श्रवण किया था यथावत् सब तुमको बतला दिया है ।६८।

य इदं धर्मसम्वादमावयोः सूत ! पावनम् ।
पठेद्वा देव यूरतो ब्रह्माणानां पुरस्तपा ।६६

सर्वेषामपिवर्णानांश्रृण्वतांभक्तिपूर्वकम् ।
स प्रतिष्ठामवाप्नोति पुत्रपौत्रैः समन्वितः ।१००
श्रृण्वतामपि सर्वेषा यदिष्टं तद्भविष्यति ।१०१
इति मे भगवान्व्यासः प्रोवाच मुनिसेवितः ।
यथाश्रुतं मया पर्वं कृष्णद्वैपायनाद्गुरोः ।१०२
ततथासर्वमेवाऽत्र मयाप्युक्तंमुनीश्वराः ।
श्रुत्वासूतवचस्त्वित्थेते प्रीतमनसोऽभवन् ।१०३
सूत ! त्वयोक्तं भुवि पर्वतेषु
पुण्येषु पुण्यस्य महीधरस्य ।
माहात्म्यमस्माकमहीन्द्रनाम्नः
पापमहं मोक्षफलप्रदायकम् ।१०४
ततो वृषादि सम्प्राप्य वराहोधरणीयुतः ।
किमुक्तवान्धरण्यै स तन्नो ब्रूहि महासते ।१०५

हे सूत ! हमारे आपके दोनों के इस धर्म सम्वाद को जो कि परम पावन है जो कोई अथवा ब्राह्मणों के आगे पढ़ेगा या सभी वर्णों के द्वारा भक्ति भाव के साथ श्रवण करेगा वह पुत्र-पौत्रों से समन्वित होकर परम प्रतिष्ठा को प्राप्त किया है । जो इसको सुना करत हैं उन सबको भी उनके अभीष्ट की प्राप्ति हो जाया करती हैं ।९९-१०१। श्री सूतजी ने कहा—यह सब मुनियों के द्वारा सेवित भगवान व्यासदेव ने कहा था । मैंने जैसा भी श्रवण किया है पहिले अपने गुरुदेव कृष्ण द्वैपायन व्यासजी से यह सभी उस प्रकार से हे मुनीश्वरों ! मैंने कहकर आपको बतला दिया है। इस भाँति सूतजी के वचन को सुनकर समस्त मुनीश्वर परम प्रसन्न मन वाले हो गये थे । ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! आपने इस भूमण्डल में परम पुण्यमय पर्वतों में भी अत्यधिक पुण्यशाली महीधर का जिसका महीन्द्र नाम है माहात्म्य कहा है । यह माहात्म्य पापों को दूर कर देने वाला और मोक्ष

के फल को प्रदान करने वाला है ।१०२-१०४। हे महामते ! इसके अनन्तर फिर वे भगवान् वराह देव धरिणी से युक्त होकर वृष पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने धरणी देवी से क्या कहा था वह आप हमको बतलाने की कृपा करे ।१०५।

२१—श्री बाराह मंत्राराधन विधि वर्णन

शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथाम्पुण्यां पुरातनीम् ।
वैवस्वतेऽन्तते पूर्वं कृते पुण्यतमे युगे ।१
नाराणादौ देवेशं निवसन्तं क्षमापतिम् ।
वाराहरूपिणं देवं धरणी सखिभिर्वृता ।२
प्रथम्य परिपप्रच्छ रक्तपद्मायटेक्षणम् ।३
आराध्यः केन मन्त्रेणभवान्प्रीतिभविष्यति ।
तं मे वद त्वां देवेश थः प्रियो भवतः सदा ।४
जपतां सर्वसम्पत्तिकारकं पुत्रपौत्रदम् ।
सार्वभौमत्वचैव कामिना कामदं सदा ।५
अन्ते यस्त्वत्पदप्राप्ति ददाति नियमात्मनाम् ।
एवम्भूतं वद प्रीत्यामयिवाराहमानद ।६
इति पृष्टस्तया भूम्या प्राह प्रीतिस्मितानन: ।७

सूतजी ने कहा—हे मुनिगणों ! अब आप सब लोग परम पुरातनी पुण्यमयी कथा का श्रवण कीजिये । पहिले परम पुण्यतम कृत युग में वैवस्वत में नाराग्रण नामक पर्वत में निवास करने वाले भूमि के स्वामी वाराह रूपधारी देवेश्वर ने जिनके नेत्र रक्त-आयत और पद्म के तुल्य थे सखियों से परिवृत धरिणी देवी ने विनय पूर्वक प्रणाम करके पूछा था ।१-३। धरणी ने कहा—हे भगवान् ! किस मन्त्र के द्वारा आधारित होकर आप परम होंगे ? हे देवेश्वर ! जो आपको सदा परम प्रिय हो उसी मन्त्र का जाप मुझे बतला दीजिए । यह ऐसा मन्त्र

होना चाहिए जिसके जाप करने वाले मनुष्यों को वह सम्पत्ति कर देने वाला हो, पुत्र, पौत्रों को देने वाला हो, सार्वभौमत्व के पद को प्रदान करने वाला हो और जो कामी हो उनकी सदा कामना के देने वाला हो। नियत आत्मा वाले पुरुषों का अन्त समय सम्प्राप्त होने पर आपके ही चरणों के पद की प्राप्ति करने वाला हो। हे मान के प्रदान करने वाले ! हे वाराह देव ! मुझ पर परम प्रीति करके इस प्रकार के मन्त्र को बतलाइये।४-६। श्री सूतजी ने कहा—इस रीत से धरणी देवी के द्वारा पूछे गये भगवान वराहदेव ने प्रीति से स्मितयुक्त मुख वाले होते हुए कहा था।७।

शृणु देवि परं गुह्यं सद्यः सम्पित्तकारकम्।
भमिदं पुत्रदं गोप्यमप्रकाश्यकदाचन।८
किं च शुश्रूषवे वाच्यं भक्ताय नियतात्मने।९
ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धरणाय च।
वह्निजायापमायुक्तः सदाजप्योमृमुक्षुभिः।१०
अयं मन्त्रो धरादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकः।
ऋषिः सङ्कर्षणः प्रोक्तोदेवता त्वहमेव हि।११
छन्दः पङ्क्तिः समाख्याता श्रीबींजः समुदाहृतम्।
चतुर्लक्षं जपेस्मन्त्रं सत्गुरोर्लब्धतन्मनुः।१२
जुहुयात्पायसान्नम्वैक्षौद्रसर्पिः समन्वितम्।
अथध्यानम्प्रवक्ष्यामिमनः शुद्धिप्रदायकम्।१३

श्री वराह भगवान् ने कहा—हे देवि ! परम गोपनीय, तुरन्त, ही सम्पत्ति के कर देने वाले, भूमि प्रदान करने वाले, पुत्र देने वाले मन्त्र का श्रवण करो किन्तु यह अत्यन्त ही गुप्त रखने के योग्य है और किसी भी समय में प्रकाशित करने के योग्य नहीं है। जो परम श्रद्धा से श्रवण करने वाला, आत्मा वाला और भक्त हो उसी को बतलाना चाहिए।८-९। जो मुक्ति की प्राप्ति करने के इच्छुक हों उन्हें परम

समायुक्त होकर सदा—"ॐ नमः श्री बराहाय धरण्युद्धरणाय बह्निजाय"—इस मन्त्र का जाप करना चाहिए। हे धरादेवि ! यह मन्त्र सब तरह की सिद्धियों का प्रदान करने वाला है इस मन्त्र के ऋषि संकर्षण कहे गये हैं और इनका देवता मैं ही हूँ। इसका छन्द पंक्ति है और श्रीं इसका बीज है। इस मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिये और किसी सद्गुरु से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करे ।१०-१२। शहद जो घृत से युक्त पायसान्न (खीर) का हवन करे। इसके उपरान्त मैं इसका ध्यान बतलाता हूँ जो मन की शुद्धि का प्रदायक होता है ।१३।

शुद्धस्फटिकशैलाभं रक्तपद्मदलेक्षणम् ।
वराहवदनं सोम्यञ्चतुर्बाहु किरीटिनम् ।१४
श्रीवत्सवक्षस चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम् ।
वामोरुस्थितयायुक्तं त्वया मां सागराम्बरे ।१५
रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम् ।
श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषमूर्ध्यब्जसंस्थितम् ।१६
एव ध्यात्वा जपेन्मत्रं सदा चाऽष्टोत्तर शतम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षञ्च व्रजेद् ध्रुवम् ।१७
प्रोक्तंमया ते धरणियत्पृष्टोऽहत्वयाऽमले ।
अतः किन्ते व्यवसितम्ब्रूहि तद्विमलानघे ।१८
एतच्छ्रुत्वा ततो भूमिः पप्रच्छपुनरेवतम् ।
केनवाऽनुष्ठितन्देव पुराप्राप्तम्फलञ्च किम् ।१९
इयं पृष्ठः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवौ ददम् ।
पुरा कृतयुगे देवि धर्मोनाम मनुर्महान् ।२०
ब्रह्मणोऽमुं मनुं लब्ध्या जप्त्वाऽस्मिन्धरणीधरे ।
मांच द्रष्टा वरंवब्ध्वा प्राप्तोऽभून्मामकम्पदम् ।२१

विशुद्ध स्फटिक के शैल की आभा के सदृश आभा से युक्त रक्त कमल के दल के तुल्य नेत्रों वाले, वराह के मुख के समान मुख वाले, चार बाहुओं से सम्पन्न, किरीट, धारी, परम सौम्य वक्षः स्थल में श्रीवत्स का चिह्न धारण करने वाले, चारों हाथों में शंख, चक्र, अभय और अम्वुज ग्रहण किये हुए, वाम उरू पर स्थित तुम से युक्त सागराम्वर में विराजमान, पीताम्बरधारी, रक्त वर्ण के आभरणों से भूषित श्री कूर्म के पृष्ठ के मध्य में स्थित शेषकी मूर्ति एवं अब्जपर समवस्थित मेरा इस प्रकार से ध्यान करके सदा ही एक माता अष्टोत्तरशत का जप करना चाहिए। ऐसा करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है और अन्त समय में मोक्ष को प्राप्त हो जाया करता है। यह निश्चित ही है। हे अमले ! धरणि ! आपने जो मुझसे यह पूछा है यह मैंने तुम को बतला दिया है। हे विमलानने ! इसलिये अब तुमने क्या निश्चय किया है यह मुझे बतला दो।१४-१८। श्री सूतजी ने कहा—यह श्रवण करके इसके पश्जात् उस भूमि ने फिर भी उससे पूछा था–हे देव ! इस का अनुष्ठान किसने किया था और पहिले इसका क्या फल प्राप्त किया था ? इस भाँति पुनः पूछे गये वेद वर श्री वरास ने यह कहा था—हे देवि पहिले कृतयुग में धर्म नाम वाला एक महान् मनु था। उसने ब्रह्मा जी से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करके दीक्षा प्राप्त करके इस धरणी धर पर उसका जाप किया था। इसका फल उसे यह मिला था कि उस ने मेरा दर्शन प्राप्त किया, वरदान प्राप्त किया और अन्त में वह मेरे ही स्थान को प्राप्त हो गया था।१९-२१।

इन्द्रोदुर्वाससः शापात्पुराभ्रष्टास्त्रिविष्टपात्।
अनेनेष्टावऽत्र मां देव पुनः प्राप्तस्त्रिविष्टपम्।२२
अन्येऽपि मुनयो भूमे ! जप्त्वा प्राप्ताः परांगतिम्।
अनन्तः पन्नगाधीशो ह्यमुं लब्ध्वाऽथ कश्यपात्।२३

श्वेतद्वीते जपित्वैव बभूव धरणीधरः ।
तस्माज्जप्वः सदा चेह मद्रष्यैश्च धराक्षिभिः ।२४
एतच्छुत्याऽथ सुप्रीता पुनः प्राह धराधरम् ।२५
वैंकटाख्येमहाशैले श्रीनिवासोजगत्पतिः ।
कदाह्यायातिदेवेश श्रीभूमिसहितोऽमलः ।२६
कथं कल्पान्तरस्थायी भविष्यति जनार्दनः ।
एतन्ब्रूहि वराहात्मन्महत्कौतुहलं मम ।२७

पुरातन समय में एक बार इन्द्र दुर्वासा ऋषि के शाप से त्रिविष्टय (स्वर्गासिन) से भ्रष्ट हो गया था। हे देवि ! इस इन्द्र ने यहाँ पर मेरा यजन करके पुनः अपने स्वर्गासन को प्राप्त कर लिया था। हे भूमे ! अन्य भी मुनिगणों ने इस मेरे मन्त्र का जाप करके परम गति को प्राप्त किया है। यह पन्नगों का अधीश्वर अनन्त ने भी इस मन्त्र की दीक्षा कश्यप ऋषि से ग्रहण की थी और श्वेत द्वीप में उसने इसका जप किया था और धरणीधर हो गया था। इसलिए इस मन्त्र का सदा ही जाप करना चाहिए। जो मनुष्य धरा की चाहना करने वाले हैं उनको यहाँ अवश्य अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए इस मन्त्र का जप करना चाहिए। श्री सूतजी ने कहा--यह श्रवण करके वह धरणी परमाधिक प्रसन्न हुई थी और वह फिर धरा के धारण करने वाले प्रभु से बोली--धरणी ने कहा--हे देवेश ! जगत् के स्वामी श्री निवास श्री भूमि के सहित अमल स्वरूप वाले वेंकट नाम धारा शैल पर कब आया करते हैं और कैसे वहाँ पर कल्पान्तर पर्यन्त स्वामी भगवान् जनार्दन होगे ? हे वराह स्वरूपधारी प्रभो ! आप मुझे यह बतलाइये मेरे हृदय में इसको जानने के लिये महान् कौतूहल हैं।२२-२७।

२२–रामानुजाख्यद्विजवृत्तान्तवर्णन

भोभोस्तपोधनाः सर्वंनैमिषारण्यवासिनः ।
आकाशगङ्गातीर्थस्यमाहात्म्यप्रवदाम्यहम् ।१
आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रर्थपारगः ।
रामानुजः इतिख्यातोविष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।२
तमश्चकार धर्मात्मवैखानसपतेस्थितः ।
ग्रीष्मेपश्चाग्निमध्यस्थोयिष्णुध्यानपरायण ।३
जपदष्टाक्षरं मन्त्रं ध्यायन्हृदि जनार्दनम् ।
वर्षास्वाकाशगो नित्यं हेमन्तेषु जलेशयः ।४
सर्वभनहितोदन्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
वर्षाणिकतिचित्सोऽयंजीर्णपर्णाशनोभवत् ।५
कञ्चित्कालं जलाहृरो वायुभक्ष कियत्समाः ।६
अथ तत्तपसा तुष्टोभगवानन्भक्तवत्सलः ।
प्रत्यक्षतामगात्तस्य शंखचक्रगदाधरः ।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—नैमिषारण्य के निवास करने वाले तपोधन तपस्वियों ! अब मैं आकाश गङ्गा नाम वाले तीर्थ का माहात्म्य आप लोगों को बतलाता हूँ ।१। आकाश की गङ्गा के निकट में सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों का पारगामी महान् विद्वान् रामानुज इस नाम से विख्यात द्विज ने तप किया । यह विप्र परम विष्णु का भक्त था और जितेन्द्रिय था । यह धर्मात्मा वैखानस गत में स्थित रहा करता था । ग्रीष्म ऋतु में भी पाँच अग्नियों के मध्य में सम-वस्थित होकर यह भगवान् विष्णु के ध्यान से परायण रहा करता था । "श्री कृष्ण शरणं नमः"—इस आठ अक्षरों वाले मन्त्र का जप करता हुआ अपने हृदय में जनादन प्रभु का ध्यान किया करता था । वर्षा के काल में नित्य ही खुले के नीचे रहता था और

था और हेमन्त ऋतु में जल में स्थित होकर तपश्चर्या किया करता था। यह समस्त प्राणियों के हितमें रति रखने वाला, परम शान्त और सब प्रकार के द्वन्द्वों से रहित था। इस रीतिसे वह कितने ही वर्ष तक जीर्ण पत्तों के आसन करने वाला रहा था। कुछ समय तक केवल जल का ही आहार करके रहा था कुछ वर्षों तक सिर्फ वायु का ही भक्षण करके इसने तप किया था। इसके अनन्तर भक्तों पर वात्सल्य रखने वाले प्रभू इस पर परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गये थे। फिर शंख और चक्र धारण करने वाले भगवान् ने प्रत्यक्ष होकर उसको दर्शन प्रदान किया था।२-७।

विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ।
बिनतानन्दनाऽऽरूढश्छत्रमरशोभितः ।८

हारकेयूरमुकुटः कटकादिविभूषितः ।
विष्ववसेनसुनन्दादिकिंकरः परिवारितः ।६

वीणावेणमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः ।
गोयमानः सुविभवः पीताम्वरविराजित ।१०

लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघनिभच्छविः ।
सनकादिमहायोगिसेवितः पार्श्वयोद्धयोः ।११

मन्द स्मितेन सकलं मोहयन्भुवनत्रयम् ।
स्वमासा भासयन्सर्वादिशोदश विराजयन् ।१२

सुभक्तसुलभो देयो वेङ्कटेशो दयानिधिः ।
पुनः सन्निदधे तस्य रामानुजमहामुनेः ।१३

आविर्भूतं तदा दृष्ट्वा श्रीनिवासं कृपानिधम् ।
पीताम्बरधरं देवं तुष्टि प्राप महामुनिः ।१४

भक्त्या युक्तस्तुष्टाव जगदीश्वरम् ।१५

विकसित कमल के दल के समान उनके परम सुन्दर एवं विशाल नेत्र थे, करोड़ों सूर्यों की प्रभा के तुल्य उनकी प्रभा थी, वितता के पुत्र गरुड़ पर वे समारूढ़ थे और छत्र एवं चामरों से सुशोभित थे। हार केयूर और मुकुट धारण किये हुये थे। उनके करों में सुन्दर कटक विराजमान थे। उनके साथ में विष्वक्सेन और सुनन्द आदि पार्षद विद्यमान थे। वीणा, वेणु, मृदङ्ग प्रभृति वाद्यों के बजाने वाले नारद आदि द्वारा उनके गुणगणों का मान किया जा रहा था। सुन्दर विभव से सम्पन्न, पीताम्बर धारण करने वाले थे। जिनके उर स्थलमें लक्ष्मी देवी विराजमान थी। नीलमेघ के तुल्य छवि से युक्त थे। उनके दोनों पार्श्व भागों में प्रभृति महान् योगीजन सेवा कर रहे थे।८-११। भगवान् के मुख पर ऐसी मन्द मुस्कराहट थी जिससे तीनों भवनों को मोहित कर रहे थे। अपने अङ्ग की दिव्य कान्ति से सभी दिशाओं को प्रकाश युक्त करते हुए ऐसे प्रतीत होरहे हों। दयाकी खान भगवान् वेंकटेश देव सुन्दर भक्तों को ही सुलभ होने वाले हैं। इसके अनन्तर वे रामानुज महामुनि के सन्निकट में प्राप्त हुए थे।१२-१३। महामुनि रामानुज ने कृपा के बिधि, पीताम्बरधारी श्री निवास देव का दर्शन प्राप्त किया तो उसको अत्यधिक तुष्टि हुई थी और परम शक्ति से युक्त होकर उसने जगदीश्वर प्रभु की स्तुति की थी।१४-१५।

नमो देवाधिदेवाय शंखचक्रगदाभृते।

नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः।१६

तमो भक्तर्ऽतिहन्त्रेते हव्यकव्यस्वरूपिणे।

नमस्त्रिमर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे।१७

नमः परेशाय नमोऽतिभूम्ने नमोऽस्तु लक्ष्मी तये विधात्रे ।
नमोऽस्तु सूर्येन्दुविलोचनाय नमो विरिञ्चद्यभिन्दिताय ।१८
यो नाम जात्यादिविकल्पहीन समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ।
समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशकाय ।१६
वेदान्तवेद्याय रमेश्वराय वृषादिवांसाय विधातृपित्रे ।
नमोनमः सर्वजनार्तिहारिणे नारायणायाऽमितविक्रमायः ।२०
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ।
भूयोभूयो नमस्तुभ्यं वेंकटाद्रिनिवासने ।२१

रामानुज ने कहा—शंख और चक्र के धारण करने वाले देवों के भी अधिदेव की सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है । नित्य, शुद्ध वेंकटेश भगवान् आपके लिये मेरा बारम्बार प्रणाभ है ।१६। भक्तों की आर्त्ति के हनन करने वाले, हव्य, कव्य के स्वरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार हैं । इस विश्व की सृष्टि, स्थित और संहृति के करने वाले त्रिभूतिधारी आपके लिए नमस्कार है । परेश को नमस्कार है, अतिभूमा प्रभु को नमस्कार है और लक्ष्मी के स्वामी विधाता को सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है । सूर्य और चन्द्र के नेत्रों वाले आपके लिये प्रणाम है । ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा अभिवन्दित आपको मेरा नमस्कार है ।१७-१८। जो जाति विकल्पों से रहित है और सभी प्रकार के दोषों से जी वर्जित हैं उग समस्त संसार के भयों के हय हरण करने वाले तथा दैत्यों के विनाशकारी भगवान् के लिये मेरा प्रणाम समर्पित हैं ।१६। वेदान्त के द्वारा जानने के योग्य रमादेवी के स्वामी के लिये, वृष आदि पर वास करने वाले के लिये तथा परमेष्ठी विधाता के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार हैं । अपरिमित बल, विक्रम वाले तथा समस्त भक्त जनों की आर्त्ति के हरण करने वाले भगवान् नारायण के लिए मेरा नमस्कार है। शार्ंगधारी, वेंकट अद्रि पर

निवास करने वाले भगवान् वामदेव आपके लिए मेरा नमस्कार है। ।२०-२१।

इतिस्तुत्वावेंकटेशं श्रीनिवासजगद्गुरुम् ।
रामानुजोमुनिस्तूष्णीमास्तेविप्रवरोत्तमः ।२२
श्रुत्वा स्तुतिं श्रु तिसुखा स्तुतस्तस्य महात्मनः ।
अगापपरमंतोषं वेंकटाचलनायकः ।२३
अथालिङ्ग्य मुनिं शौरिश्चतुर्भिर्वाहुभिस्तदा ।
वभाषे प्रीतिसंयुक्तोवरं वैव्रियतामिति ।२४
तुष्टोऽस्म तपसा तेऽद्यस्तोत्रेणाऽपिमहामुने ।
नमस्कारेणचप्रतोवरदोऽहन्तवागतः ।२५
नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय ।
जनार्दन जगद्धाम गोबिन्द नरकान्तक ।२६
त्वद्दशनाष्कृतार्थोऽस्मिवेकयाद्रिशिरोमणे ! ।
त्वां नमस्यन्ति धर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः ।२७
यं न वेत्ति भवोव्रह्मायनवेत्तित्रयीतथा ।
त्वांवेद्मपरमात्मानं किमस्मादधिक परम् ।२८

वह विप्रवरों में परम वरिष्ठ रामानुज मुनि इस प्रकार से जगत् के गुरु श्री निवास भगवान वेंकटेश की स्तुति करके चुप हो गया था। उस महान आत्मा वाले के द्वारा की गई कानों को परम सुख प्रदान करने वाली स्तुति का श्रवण करके भगवान् वेंकटाचल के नायक को परम सन्तोष प्राप्त हुआ था। उस समय में भगवान् शौरि ने अपनी चारों-वाहुओं से मुनि का आलिंगन करके परम प्रीति से समन्वित होकर 'वरदान मांग लो'—यह बोले थे। आज मैं तुम्हारा इस परमोग्र तपश्चर्या से बहुत सन्तुष्ट हूँ। हे महामुने ! आपके स्तोत्र से भी मुझे परम तोष प्राप्त हुआ है। मैं आपको नमस्कार से भी अत्यधिक प्रसन्न हो गया। इस समय मैं तुमको वरदान प्रदान करने के लिए ही

तुम्हारे समीप समागत हुआ हूँ ।२२-२५। रामानुज ने कहा—हे नारायण ! हे रमा स्वामिन् ! हे श्री निवास ! आप जगन्मय हैं। हे जनों को पीड़ा अर्दन करने वाले ! आप इस जगत् के धाम हैं। हे गोविन्द ! आप तो नरकों के अन्त कर देने वाले हैं। ।२६। हे वेंकट पर्वत के शिरोमणि ! मैं तो आपके दर्शन से ही कृतार्थ हो गया हूँ। आपको तो जो वसिष्ठ लोग होते हैं न नमन किया करते हैं क्योंकि आप धर्म के पूर्ण-तथा परिपालन करने वाले हैं ।२७। जिन आपको भद (शिव) नहीं जान पाते हैं—जिन आपसे सच्चे स्वरूप को ब्रह्म नहीं पहिचान सकते हैं तथा वेदमयी भी आपको सही स्वरूप में नहीं जान पाती है परमात्मा आप को मैं जान सका हूँ—इससे अधिक और क्या वरदान होगा ।२८।

योगिनीयं नमस्यन्तियंनपश्यतिकर्मटाः ।
पश्यामिपरत्मानं किमस्मादधिकम्परम् ।२९

एतेन च कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटेश जगत्पते ! ।
यन्नंमस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपिच ।३०

मुक्तिं प्रमाति मनुजास्तं पश्यामि जनादितम् ।
त्वत्पदद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुभे ।३१

मयि भक्तिर्हनुतेऽस्तु रामानुजमहामते ! ।
शृणु चाऽप्यपरं वाक्यमुच्यतेते मया द्विज ।३२

मेषसङ् क्रमद्यभानोसित्रानक्षत्रसंयुते ।३३

पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानंकुर्मन्ति येजना। ।३४

ते यांति परमं धाम पुनरावृत्तिर्बजितम् ।
वियदगङ्गासमीपे त्वं बस रामानुज ! द्विज ! ।३५

जिन आप को योगीजन भी नहीं देख पाते हैं और जिन आप को कर्मठ लोग नहीं देख सकते हैं उन आपको मैं इस समय

में साक्षात् दर्शन प्राप्त कर रहा हूं—इससे अधिक और क्या बरदान होगा। हे जगत् के स्वामिन् ! हे वेंकटेश देव ! इतने ही से मैं तो परम कृतार्थ हो गया हूँ। जिसके नाम से स्मृति मात्र से ही महान् पातक करने वाले लोग भी मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं उन प्रभु को मैं इस समय में साक्षात् देख रहा हूँ। मैं तो आपकी सेवा में यही प्रार्थना करूंगा कि आपके चरण कमलों में मेरी निश्चल भक्ति हो जाये।२६-३०। श्री भगवान् ने कहा—हे महामति वाले रामानुज ! मुझमें तेरी परम दृढ़ भक्ति होगी। हे द्विज ! तुम श्रवण करो। मैं एक दूसरा वाक्य भी तुमसे कहता हूं—जो मनुष्य भानु के मेष राशि पर संस्क्रमण करने पर जब कि पूर्णमासी तिथि के दिन चित्रा नक्षत्र विद्यामान हो गगा में हे द्विज ! स्नान किया करते हैं वे सोम उस परमधाम को प्राप्त हो जाया करते हैं जहाँ पहुँचकर इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है। हे रामानुज द्विज ! अब तुम वियद्गंगा के समीप में ही निवास करो।३१-३५।

एतत्प्रारब्धदेहान्ते यत्स्वरूपअवाप्स्यसि।
वहुना किमिहोक्तेन वियद्गशंगाजले शुभे।३६
स्नान्तिये वै जनाः सर्वेते वै भागवतोत्तमाः।
भवयिमुनिशार्दूल ! नात्रकार्यविचारणा।३७
किंलक्षणा भागवता ज्ञायन्ते केन कर्मणा।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतुहलपरो यतः।
लक्ष्य भागवतातां तु श्रृणुष्व मुनिसत्तम !।३८
वक्तं तेषां प्रसावं तु शक्यते नाऽब्दकोटिभिः।३६
येहिताः सर्वजन्तूनांगतासूयामिमत्सराः।
ज्ञानियोनिः स्पृहाः शान्तास्तेवैभावतोत्तमाः।४०
कर्मणा मनसा वाचा परपीड़ां नकुर्वते।
अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः।४१

सत्कथाश्रवणे येषां वर्तंते सात्विकी गतिः ।
मत्पादांबुजभक्तायेतेवै भागवतोत्तमाः ।४२

इस प्रारब्ध देह के अन्त हो जाने पर जिस स्वरूप को तुम प्राप्त करोगे—इस विषय में बहुत अधिक कथन करना व्यर्थ ही हैं। इस परम शुभ वियद्गगा के जल में जो जल स्नान किया करते हैं ये सभी भगवती में परम उत्तम होते हैं। मुनि शार्दूल ! इस विषय में तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है।३६-३७। रामानुज ने कहा—भागवतों के क्या लक्षण हुआ करते हैं और वे किस कर्म के द्वारा जाने जाया करते हैं—यह मैं आपके ही श्री मुख से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ और मुझे इसमें बड़ा भारी कौतूहल होता है। भगवान् श्री वेंकटेश ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप भागवतों के लक्षण का श्रवण करो। जैसे भागवतों का जो प्रभाव होता है वह तो करोड़ों वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता है।३८-३९। जो समस्त जीवधारियों की भलाई करने वाले तथा चाहने वाले होते हैं—जिनके हृदय में असूया की भावना लेशमात्र भी नहीं करती है—जो मात्सर्य दोष से पूर्णतया रहित हुआ करते हैं, जो बिल्कुल निःस्पृह होते, जो ज्ञान वाले हैं, जो परम शान्त होते हैं, वे ही उत्तम कोटि के भागवत हुआ करते हैं भागवत जन, मन, कर्म और वचन से किसी भी प्रकार से दूसरों को पीड़ा नहीं दिया करते हैं। भागवत जन परिग्रह करने के स्वभाव वाले नहीं होते हैं, ऐसे जो पुरुष होते हैं, वही उत्तम श्रेणी से भागवत जन हुआ करते हैं। जिनकी सत्पुरुषों की कथा के श्रवण करने में सात्विकी मति होती है और मेरे चरण कमल में जिनकी सुदृढ़ भक्ति है वे ही उत्तम भागवत जन होते हैं।४०-४२।

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वंते ये नरोत्तमाः ।
ये तु देवार्चन रता ये तु तासाधका नराः ।
पूजां दृष्ट्वा तु मोदन्ते वै भागवतोत्तमाः ।४३

वर्णिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ।
परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमा: ।४४
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमा: ।
येगुणगृहिणो लोकेतेवैभावतोत्तमा: ।४५
आत्ववत्सर्वभूतिनी ये पश्यन्ति नरोत्तमा: ।
तुल्यां: शत्रुषु मित्रेषु तेवैभागवतो: ।४६
धर्मशास्त्रप्रवक्तार: सत्यवाक्यरताश्च ये ।
तेषां शुश्रषवो ये च ते वै भागवतोत्तमा: ।४७
व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि श्रृण्वन्ति ते तथा ।
तद्वक्तर्रि चभक्तायेतेवैभागतीत्तमा: ।४८
ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नरा: ।
तीर्थयात्रापरा ये च ते वे भागवतोत्तमा: ।४९

जो पुरुषों में परम श्रेष्ठ अपने माता-पिता की सेवा किया करते हैं और जो सर्वदा देवों के अर्चन में रति रखते हैं जो मनुष्य उनको साधना करने वालों में होते हैं और जो पूजा को देखकर प्रसन्न होते हैं वे भागवोत्तम हुआ करते हैं ।४३। वर्णों की तथा यतियों की परिचर्य्या करने में जिनकी रति हुआ करती है और सर्वदा तत्पर रहा करते हैं जो पराई निन्दा नहीं किया करते हैं वे भागवतोम हुआ करते हैं । जो उत्तम नर सभी के हित करने वाले वाक्य बोला करते हैं और जो इस लोक में गुणों के करने वाले होते हैं, वे ही पुरुष उत्तम कोटि के भागवत हुआ करते हैं । जो नरोत्तम सदा सभी प्राणियों को अपने ही समान देखा करते हैं और जो शत्रुता रखने वाले तथा मित्रों में तुल्य भावना रखते हैं वे ही भागवत कहे गये हैं । जो धर्मशास्त्र के प्रवक्ता होते हैं और जो सत्य वचनों में रति रखते हैं तथा जो उनकी सुश्रूषा करने वाले हुआ करते हैं वे ही भागवोत्तम हुआ करते हैं । जो पुराणों की व्याख्या किया करते हैं अथवा जो पुराणों का श्रवण किया करते

हैं तथा जो पुराणों के वक्ता पुरुषके भी भक्तिभाव रखते हैं वे ही उत्तम भागवत होते हैं जो गौ और ब्राह्मणों की शुश्रूषा सदा किया करते हैं और तीर्थाटन करने पर तत्पर रहते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं। ।४४-४६।

अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽफिनन्दंति मानवाः ।
हरिनातपरायेच ते वै भागवतोत्तमाः ।५०
आरामरोपणरतास्तटाकपरिक्षकाः ।
कासारकूपकर्तारस्ते वैभागवतोत्तमाः ।५१
ये वै तटाकर्तारो देवसद्मानि कुर्बते ।
गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।५२
येऽभिनन्वन्ति नामानि हरोः श्रुत्वाऽतिहर्षिताः ।
रोमाञ्चितशरीराश्चतेवैभागवतोत्तमाः ।५३
तुलसीकानन दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः ।
तत्काष्ठांकितकर्णा ये च ते वै भागवत्तोत्तमाः ।५४
तुलसीगन्धमाध्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये ।
तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै फागवतोत्तमाः ।५५
स्वाश्रमारनिरतास्तथैवाऽतिथिपूजकाः ।
ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै फागवतोत्तमाः ।५६

जो दूसरों का अभ्युदय देखकर हार्दिक अभिनन्दन किया करते हैं तथा जो केवल श्रीहरि के ही नाम में परायण होते हैं वे उत्तम भागवत जन कहे जाते हैं। जो उद्यानों के समारोपण करने की रति रखते हैं तथा तटाकों के जो परि रक्षक होते हैं एवं कासार और कुँओ के जो बनवाने वाले होते हैं वे भागवतोत्तम हुआ करते हैं। ।५०-५१। जो तटाकों के निर्माण कराने वाले एवं देवालयों को बनवाने वाले होते हैं और गायत्री मन्त्र में जो निरत रहा करते हैं वे ही भाग-

वतोत्तम होते हैं। जो श्री हरि के शुभ नामोंका अभिनन्दन किया करते हैं और भगवन्नाम का श्रवण कर जो अत्यन्त हर्षित होते हैं एवं श्रवण करके और उच्चारण करके जिसके अङ्ग पुलकित हो जाया करते हैं वे ही उत्तम भागवत हुआ करते हैं। जो तुलसी के वन को देखकर नमस्कार किया करते हैं और तुलसी से काष्ठ से जिनके कर्ण अंकित रहते हैं वे भागवतोत्तम होते हैं। जो तुलसी की गन्ध का घ्राण करके परम सन्तोष प्राप्त किया करते हैं जो तुलसी के मूल की मृत्तिका को मस्तक पर धारण किया करते हैं वे ही उत्तम भागवत हुआ करते हैं जो अपने आश्रम और आचार में निरत रहते हैं तथा तभी सर्वदा अतिथियों की पूजा एवं सस्कृति किया करते हैं और जो वेदों के अर्थों को बोला करते हैं वे ही उत्तम श्रेणी के भागवत हुआ करते हैं।५२-५६।

विदितानि च शास्त्राणि परार्थंप्रवदन्तिये।
सर्वत्र गुणभाजो ये तै वै धागतोत्तामाः।५७

पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये।
एकादशीव्रतपरास्तै वै भागवतोत्तमाः।५८

गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये।
मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः।५९

मन्मानवाश्च यद्भक्ता ये मद्भजनलोलुपाः।
मन्नमस्मरणसक्तास्तै वैं भागवतोत्तमाः।६०

बहुनाऽत्र किमुक्तेन संक्षेपात्ते ब्रवीम्यहम्।
सद्गुणायप्रवर्तन्ते वै भागवतोत्तमाः।६१

एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः।
ममाऽपि गदितुं शक्त्या नाऽब्दकोटिशतैरपि।६२

रामानुज! महाभाग! मद्भाक्तानां च लक्षणम्।
मयिभक्तेत्वयिप्रीत्यायुक्तंकिलमहामते।६३

एवं वः कथितं विप्राः शौनाकाद्यामहोजसः ।
वृषाद्रौचवियद्गङ्गातीर्थमहात्म्यमुत्तम ।६४

जो दूसरों को अपने जाने हुए शास्त्रों को बतलाया करते हैं और जो सर्वत्र गुणों का ही सेवन वाले होते हैं वे ही उत्तम भागवत पुरुष हुआ करते हैं ।५७। पानी के दान करने में जो निरत रहते हैं तथा जो अन्न के दान देने में रति रखने वाले हैं एवं एकादशी व्रत में जो तत्पर रहा करते हैं वे ही भगवतोत्तम होते हैं ।५८। जो गौओं के दान करने में रति रखते हैं तथा जो कन्याओं के दान करने में रत रहा करते हैं और सभी कर्म जो भी कुछ वे किया करते हैं वे सब मेरे ही लिए करते हैं अर्थात् मुझे ही अर्पण कर दिया करते हैं वे उत्तम भागवत जन कहे जाया करते हैं ।५९। जो सर्वदा मुझ में ही अपना मन लगाये रहने वाले हैं, मेरेही परम भक्त हैं तथा मेरेही भजन करने में लोलुप हैं एवं मेरे नामों के स्मरण करने में आसक्त रहते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं । इस विषय में अधिक क्या कहूँ, मैं संक्षेप में तुमको बतलाता हूँ जो सर्वदा सद्गुणों के प्राप्त करने के लिये प्रवृत्त रहा करते हैं वे ही उत्तम कोटि के भागवत् हुआ करते हैं। हे विप्रगण ! यहाँ पर मैंने कुछ भागवतों के विषय में लक्षण बतला दिये हैं। भागवतों के पूरे लक्षण तो मैं भी सैकड़ों वर्षों तक वर्णन करने पर भी मुझसे भी नहीं वतलाये जा सकते हैं ।६०-६२। हे रामानुज ! हे महाभाग ! मेरे भक्तों के लक्षण असीम एवं अपार है। हे महामते ! मेरे भक्त होंगे अत्यधिक प्रीति है ।६३। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! हे शौनक आदि महान ओज वाली ! मैंने आप लोगों को वृषाद्रिमें विद्यगंगा का जो तीर्थ है उसका उत्तम माहात्म्य बतला दिया है ।६४।

२३-श्रीवेंकटाचल सर्वपुण्यतीर्थार्थारत्ववर्णन

वेंकटाद्रौ महापुण्ये सर्वसंकटनाशने ।
सान्ति वे कति तीर्थानि सुतपौराणिकोत्तम ! ।१
तेषां मख्या च मे ब्रूहि कति मुख्यानितत्रवै ।
तत्राप्यत्यन्तमुख्यानिवदमेमुनिसत्तम ।२
सद्धर्म रतिदान्यत्र कति मुख्यानि तानि च ।
कानि ज्ञानप्रदान्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च ।३
मुक्तिप्रदानि कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत !
षट्षष्टिकोटितीर्थामि पुण्याव्यत्र नरोत्तमे ।४
अष्टोत्तरसहस्राणितेषु मुख्यानि सुव्रत ।५
सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाऽष्टात्तरं शतम् ।
सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्चतानि च ।६
भक्ति वैराग्यदान्यत्र षष्ठिरष्टोत्तरे शते ।७

ऋषिगण ने कहा—हे पौराणिकों में सर्वोत्तम सूत जी ! समस्त संकटों के नाश करने वाले, महान् पुण्य मय उस वेंकट पर्वत में कितने तीर्थ हैं ? उन तीर्थों की संखया आप हमको बतलाइये । उन समस्त तीर्थों से भी कितने तीर्थ प्रमुख कहे जाते हैं और उन प्रमुखों में भी अत्यन्त मुख्य कौन से हैं ? हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको आप कृपया हमको बतलायें ।१-२। संदर्भ में रति प्रदान कराने वाले उसमें कौन से परम प्रमुख तीर्थ और कौन से ऐसे परम प्रमुख हैं जो केवल ज्ञान के ही प्रदान करने वाले हैं तथा वैराग्य की कामना को उत्पन्न करा देने वाले प्रदान करने वाले हैं तथा वैराग्य की भावनाको उत्पन्न करा देने वाले हैं ! ऐसे कितने प्रधान तीर्थ हैं मानवों के हृदय में भक्ति की भावना पैदा करा देते हैं ? सुव्रत ! कौन से ऐसे तीर्थ हैं जो मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं ! आपको अब यह बतलाइये ।३-४। श्री सूतजी ने कहा—हे सुव्रत ! इस उत्तम अचल में छियासठ करोड़ परम पुण्यमय

तीर्थ हैं। उन सब में एक सहस्र आठ परम मुख्य तीर्थ हैं। इस पर्वतमें एक सौ आठ तो ऐसे तीर्थ हैं जो में रति उत्पन्न कर देने वाले हैं। ये उन एक सहस्रों से भी पृथक् परम मुख्य हैं। जो भक्ति और वैराग्य के प्रदान करने वाले हैं वे एक सौ साठ तीर्थ हैं।५-७।

मुक्तिदान्यत्र षट् चैववेङ्कटाचलमूर्धनि।
स्वामिपुष्करची चैव वियत्गङ्गा ततः परम्।८
पश्चात्पापविनाशं च पाण्डुतीर्थमत परम्।
कुमारधारिकातीर्थतुम्बोस्तीर्थमतः परम्।६
कुम्भमासे पौर्णमास्या महायोगी यदाभवेत्।
कुमारधारिका यान्ति सर्वतीर्थानि हे द्विजा !।१०
यत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफल लभेत्।
मुक्तिश्चभवितोतत्रनात्रकार्याविचारणा।११
अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः।
उत्तराफाल्गुनीयुदतशुक्लपक्षीयपर्वणि।१२
तुम्बीस्तीर्थं मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः।
अपराह्णेसमायान्तितत्रस्नातोन जायते।१३
मौञ्जीबन्ध विवाहं च कारयेद्द्रव्यदानतः।
मेषसङ्क्रमणे भानो चित्रनक्षत्रसंयुते।१४

इस वेङ्कटाचल की शिखर पर छह ऐसे तीर्थ हैं जो केवल मुक्ति के प्रदान करा देने वाले हैं। वे छह तीर्थ हैं—एक उनके स्वामि पुष्करिणी तीर्थ है। इसके पश्चात् वियद्गंगा तीर्थ हैं। फिर पाप विनाश नामक एक तीर्थ है। इसके आगे एक पाण्डु तीर्थ है। फिर कुमार धारिका नाम वाला तीर्थ है और उसके बाद में तुम्बी तीर्थ है। कुम्भ मास में पौर्णमासी तिथि में जिसमें मघा नक्षत्र का योग आकर पड़े उस अवसर हर सभी तीर्थ हे द्विजगण ! कुमारधारिका तीर्थ में जाया करते। हैं।८-९-१०। हे विप्रेन्द्रों ! उस अवसर पर

जो भी कोई वहाँ पर स्नान किया करता है वह राजयूस यज्ञ करने का पुन्य-फल प्राप्त कर लेता है। वहाँ पर मुक्ति तो अवश्य हो जाया करती है—इसमें कुछ भी विचारणा करने की आवश्यकता नहीं है।११। हे द्विज वृन्द ! उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से युक्त शुक्ल के पर्व दिन में वहाँ पर दक्षिणा के साथ अन्न के दान कर देने की विधि है। तुम्बी नामक तीर्थ से मीन राशि पर जब सूर्य सस्थित होते हैं सब समस्त तीर्थ सभी ओर के अपराह्न से समय में वहाँ पर समायत्त होते हैं। वहाँ पर उन समय में जो स्नान करता है वह फिर जन्म नहीं लिया करता है। मौन्जी बन्ध और विवाह द्रव्य के दान को देकर जो कहा करता है। जब कि मेघ राशि पर सूर्य का संक्रमण हो और चित्र नक्षत्र से संयुत हो इससे भी पुनर्जन्म नहीं होता है।१२-१४।

पौर्णमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गां तथैव व ।
तत्र स्नात्वानरः सक्तः शतक्रतुफलंलभेद् ।१५

सुवर्णं तत्र दातव्यं कन्यादानं विशेषतः ।
वृषभस्थे रवौ विप्रा द्वादश्वां हरिवासरे ।१६

शुक्ले वाऽप्यथं कृष्णे वा भौमेन ऽपि समन्विते ।
पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये ।१७

तत्र स्नात्वाच गोदत्वामुच्यतेप्रतिवन्धकात् ।
अश्वयुक्छुक्लपक्षेचसप्तम्यांभानुवासरे ।१८

उत्तराषाढयुक्तायां तथा पापविनाशनम् ।
उत्तराभाद्रयुक्ताष्टां द्वादश्यां वा समागतः ।१९

शालग्रामशिलां दत्वा स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ।
मुच्यतेसर्वंपापैश्चन्मकोटिशतोद्भवैः ।२०

धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये ।
आयन्तिसर्वंतीर्थानिस्वामिपुष्करणाजले ।२१

पौर्णमासी तिथि के दिन समस्त तीर्थ वियद्गंगा में आया करते हैं। उस अवसर पर वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य तुरन्त ही सौ ऋतुओं के करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। वहाँ पर सुवर्ण का दान और विशेष कर कन्या का दान करना चाहिए। वृष राशि पर सूर्य के समायात होने पर हे विप्रो ! द्वादशा तिथि के हरिवासर में चाहे वह शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो किन्तु भौम वार से समन्वित होना चाहिए। उस अवसर पर जगत्त्रय में गंगा आदि समस्त तीर्थ पांण्डु सोम में आया करते हैं। उस पर वहाँ स्नान और गौ दान करके मानव प्रति बन्धन से मुक्त हो जाया करता है। आश्वयुक् शुक्ल में सप्तमी तिथि में तथा रविवार में जबकि उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से युक्त हो पाप विनाशन को भी उसी प्रकार से सब तीर्थ आया करते हैं। अथवा उत्तरा भाद्रपदानक्षत्र से युक्त द्वादशी में समागत हो। वहाँ पर शालग्राम शिला का दान करके तथा विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य सैकड़ों करोड़ ग्रन्थों में किए हुए सब प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है। धनुर्मास में, शुक्ल पक्ष में, द्वादशी तिथि में, अरुणोदय के समय में वहाँ पर सम्पूर्ण तीर्थ आते हैं और उस स्वामि पुष्करिणी के जल में आकर एकत्रित हुआ करते हैं।१५-२१।

तत्र स्नात्वां नरः सद्योमुक्तिमेति न संशयः।
यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवार्ऽजित पुरा।२२
तस्य स्नानं भवेद्विप्रा नान्यस्य त्वकृतात्मनः।
विभावागुण दान कार्यंतत्रयथाविधि।२३
शालिग्रामशिलादानं गां दद्यच्च विशेषतः।२४
ये शृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम्।
ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि।२५
यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम्।
मुहूर्त वातदर्धवाक्षणवाविष्णुसत्कथाम् २६।

यः शृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि ।२६
यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ।
सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विदन्ते नरः ।२७
कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवाणादृते ।
नाऽस्ति धर्मः पुंसा नाऽस्तिमुक्तिप्रदंपरम् ।२८

उस अवसर पर उस तीर्थ में स्नान करके तुरन्त ही मुक्ति को प्राप्त कर लिया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जिसके पहिले सहस्रों जन्मों में पुण्य ही अर्जित किया हुआ हो। हे विप्रो ! उसी का वहाँ पर स्नान हुआ करता है और अन्य अकृतात्मा का स्थान कभी नहीं हो सकता है। वहाँ पर अपने वैभव के अनुसार यथा विधि दान करना चाहिए ।२२-२३। शालग्राम की शिला का दान और विशेष रूप से गौ का दान वहाँ देवे ।२४। जो लोग भगवान् विष्णु की परम-पावनी का श्रवण किया करते हैं। एक मुहूर्त मात्र, इससे भी आधे समय तक अथवा सम मात्र भी जो श्री विष्णु को सत्कथा को सुनता है और सदा इस भुवन पावनी कक्षा के श्रवण करने में असमर्थ रहता है तथा भक्ति से एक क्षण भी सुन लेता है तो उस मनुष्य को कभी दुर्गति नहीं हुआ करती है ।२५। जो विष्णु भगवान् की सदा ही भुवन पावनी कथा को सुनते हैं, वे इस मनुष्य लोक में विष्णु के भक्त हुआ करते हैं ।२६। जो फल सभी यज्ञों के करने में होता है और जो पुण्य-फल सभी प्रकार के दानों के देने में होता है वही पुण्य फल मनुष्य एक ही बार पुराणों के श्रवण करने पर प्राप्त कर लिया करता है। विशेष करके इस कलियुग में पुराण श्रवण के विना पुरुषों का परम धर्म है ही नहीं जो कि मुक्ति के जैसे परम पद का प्रदान करने वाला होता है ।२७-२८।

पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसङ्कीर्तनं परम् ।
उभे एवं मनुष्याणां पुण्यद्रुममहाफले ।२९

पिवन्नेवाऽमृत यत्नादेक: स्यादजराऽमरः ।
विष्णोः कथाद्यतंकुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ।३०
बालो युवाऽथवृद्धोवादरिद्रेदुर्भगोऽपिवा ।
पुराणज्ञः सदावन्द्यः सम्पूज्या सुकृतात्मभि ।३१
नीचबुद्धि न कुर्वीतपुराणज्ञे कदाचन ।
यस्य वक्त्रोद्‌गतावाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ।३२
भवकोटिसहस्त्रे युभूत्वावसीदताम् ।
योददात्यपुनर्वृत्तिकोऽन्यस्तस्मात्परोगुरुः ।३३
ब्यासासनमाऽऽरूढो यदा पौराणिको द्विजः ।
आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ।३४
न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ।
देशे न द्यूनसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ।३५

पुराणों का श्रवण और विष्णु भगवान् का पर नाम संकीर्तन ये दोनों ही मनुष्यों के महान् फलों वाले पुण्य द्रुम हैं ।२९। एक इस यत्न से अमृत को पीता हुआ अजर और अमर हो जाया करता है । जो भगवान् विष्णु की कथा रूपी अमृत को ग्रहण किया करता है उसका तो पूर्ण कुल ही जरामर हो जाता है । बालक हो, युवा हो वृद्ध हो, दरिद्र हो अथवा दुर्गम भी क्यों न हो जो पुराणों का ज्ञाता हैं वह सुकृतात्मा पुरुषों के द्वारा सर्वदा पूज्य एवं वन्दना करने के योग्य होता है । जो पुराणों का ज्ञाता है उसमें कभी भी नीच बुद्धि नहीं करनी चाहिए । जिसके मुख से उद्‌गत हुई वाणी शरीर धारियों के किये कामधेनु के समान सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली हुआ करती है । सहस्रों करोड़ सांसारिक जन्मों में जन्म ले-लेकर उत्पीड़ित होते हुए पुरुषों को जो अपुनरा वृत्ति अर्थात् मोक्ष प्रदान किया करता है बतलाइये, उससे अधिक कौन गुरु है ? व्यास की गद्दी पर जब पौराणिक द्विज समारूढ़ होता है उस समय प्रस्तुत वर्णन किये जाने वाले प्रसंग की

समाप्ति पर्यन्त उसे किसी को भी नमस्कार नहीं करना चाहिए चाहे भले ही वहाँ गुरुदेव ही क्यों न उपस्थित हो गये होवें ।३०-३४। सुधी पुरुष का कर्तव्य है कि जो स्थल दुर्जनों से समाकार्ण हो तथा शूद्रों और श्वापदों से समावृत्त हो एवं जो द्यूत क्रीड़ा का घर हो वहाँ पर कभी भूलकर पुराणों की परम पुण्यमयी कथा को न कहे ।३५।

सुग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये ।
पुण्ये वाऽथ नदीतीरे वदेत्पुण्यकर्णासुधी. ।३६
श्रद्धालक्तिसमायुक्ता नाऽन्यकार्येषु लालसाः ।
वाग्यताः शुचयोव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ।३७
अभक्त्या ये कथां पुण्यां श्रृण्वन्ति मनुजाधमाः ।
तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दुःख जन्मनि जन्मानि ।३८
पुराण ये तु सम्पूज्यताम्बूलाद्य रुपायनैः ।
श्रृण्वन्ति च कथां भक्त्यानदरिद्रानपापिनः ।३९
कथायां कथ्यमानायायेगच्छन्त्यन्यतोनराः ।
भोगांन्तरेप्रणश्यन्तितेषांदाराश्चसम्पदः ।४०
सोष्णीषमस्तका ये च कथां श्रृण्वन्ति पावनीम् ।
ते बालकाः प्रजायन्ते पापिनी मनुजाधमाः ।४१
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथांश्रृण्वन्तिपावनीम् ।
श्वविष्टांभक्षयन्त्येतेनरकेचपतन्तिहि ।४२

जो अति सुन्दर ग्राम हो और जो स्थल सृजन पुरुषों से समाकीर्ण हो, सुन्दर क्षेत्र या देवालय हो अथवा कोई परम पुण्य नदी का तट हो वहीं पुराणों को पुण्य कथा को कहना चाहिए। जो श्रवण करने वाले श्रोतागण श्रद्धा एवं भक्ति से समायुक्त हों और जिनकी लालसा अन्य सांसारिक कार्यों में नहीं होवे, वाग्यत (मौन या कम बोलने वाले), शुचिता से पूर्ण व्यग्रता से रहित होते हैं वे परम पुण्य के भोगी हुआ

करते हैं ।३६-३७। जो अधम मनुष्य विना ही भक्ति की भावना के पुण्य कथा का श्रवण किया करते हैं उनको कोई भी पुण्यफल नहीं हुआ करता है और जन्म-जन्म में दुःख ही होता है ।३८। जो ताम्बूल आदि उचित अर्चना के उपचारो के द्वारा पुराण को भली-भाँति पूजा किया करते हैं और फिर भक्ति पूर्वक उनकी कथा का श्रवण करते हैं वे कभी दरिद्र एवं पापी नहीं होते हैं। कथा के कथ्यमाय होने पर अर्थात् आरम्भ हो जाने पर जो मनुष्य कहीं उसे छोड़ कर अन्यत्र चले जाया करते हैं उनके भोगान्तर में दारायें और सम्पत्तियों विनष्ट हो जाया करती है । जो मस्तक पर उष्णीय (पगड़ी आदि) धारण किये हुए पावनी कथा का श्रवण करते हैं वे महामूढ़ बालक महान् पापी और मनुष्यों के परम अधम हुआ करते हैं ।३९-४१। ताम्बूल का भक्षण करते हुए जो पावनी कथा को सुनते हैं वे कुत्ते की विष्ठा का भक्षण करते हैं और नरक में जाकर गिरा करते हैं ।४२।

ये च गङ्गासमारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ।
अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भयन्त्येव वायसाः ।४३
ये च वीरासनारूढा ये च सिंहासनस्थिताः ।
शृण्वन्तिसत्कथातेवैभवन्त्यर्जुनपादपः ।४४
असम्प्रणम्य शृण्वन्तोविषवृक्षाभवन्तिहि ।
तथाशयानाः शृण्वन्तोभवन्त्य जगराहिते ।४५
यः शृणोति कथां वक्ता समानासनसंस्थितः ।
गुरुतल्पसमपापं सम्प्राप्यनरकव्रजेत् ।४६
ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथांपापहारिणीम् ।
तेवैजन्मशतमर्त्या शुनकास्चभवन्तिहि ।४७
कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ।
तेयर्दभाः प्रजायन्तेकृ[illegible]लासास्ततः परम् ।४८

कदाचिददि ये पुण्यां नशृण्वन्तिकथांनराः ।
ते भुक्त्वानरकान्धोरान्भवन्तिवनसूकराः ।४६

जो मानी पुरुष ऊँचे किसी आसन पर विराजमान होकर परम दाम्भिक कथा का श्रवण किया करते हैं वे अक्षय नरकों को भोग कर अन्त में वायस (कौआ) की योनि प्राप्त किया करते हैं ।४३। जो वीरासन पर समारूढ़ पर सिंहासन पर बैठकर सत्कथा का श्रवण किया करते हैं ये अर्जुन पादप होते हैं । जो कथा को प्रणाम न करके ही श्रवण करते हैं वे दूसरे जन्म में किसी विष के वृक्ष होकर उत्पन्न होते हैं । जो शयन करते हुए कथा को सुनते रहा करते हैं । वे अग्रसर की योनि प्राप्त करते हैं । जो वक्ता के समान आसन पर ही संस्थित होकर कथा सुना करते हैं उनको गुरुवल्य के गमन के समान ही पाप होता है और वे पारगामी हुआ करते हैं, जो पुराणों के ज्ञाता पुरुष की निन्दा किया करते हैं तथा पापों के हरण करने वाली सत्कथा की निन्दा किया करते हैं वे मनुष्य सौ जन्मों तक शुनक हुआ करते हैं । कथा के कीर्त्य मान होने पर अर्थात् कथा के कहे जाने पर दुरुत्तर कहा करते हैं वे पहिले गधे को योनि प्राप्त करते हैं और फिर कृकलास होते हैं । जो नर कभी भी पुण्य का श्रवण नहीं किया करते हैं वे घोर नरकों को भोगकर अन्त के वन से (जङ्गली) सूअर हुआ करते हैं ।४४-४६।

कथायाँ कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये नराः ।
कोटयव्दं नरकान्भक्त्वा भवन्ति ग्रामशूकराः ।५०
येकथामनुमोदन्तेकीर्त्यमानानरोत्तमाः ।
अश्रृण्वन्तोऽपि तेय़ान्तिशाश्वतंपदमव्ययम् ।५१
ये श्रावयन्तिमनजाः पुण्यांपोराणिकींकथाम् ।
कल्पकोटिशतसाग्रतिष्ठन्तिब्रह्मणः पदैः ।५२
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ।
कम्बलाजिनवासांसि तथाञ्चकमेववा ।५३

स्वर्गलोकं समासाद्यभुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु हृदं यान्ति निरामयम् ।५४
पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सत्रं नव वरम् ।
भोगिनो ज्ञानसम्पन्नस्तेभवन्तिभवेंभवे ।५५
ये महापातकैयुक्तर्ा ह्यु पपातकिनश्च ये ।
पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमम्पदम् ।५६
वेंकटादेस्तु माहात्म्यंश्रुत्वातेऋषयस्ततः ।
व्यासप्रसादसम्पन्नंसूतपौराणिकोत्तमम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं प्रहर्षमतुलं गताः ।५७

पौराणिक कथा के कीर्त्यमान होने पर जो मनुष्य उसमें विघ्न उत्पन्न किया करते हैं वे एक करोड़ वर्षों तक नरकों की यातनाओं को भोगकर अन्त में ग्राम सूकर की योनि में जन्म लिया करते हैं। जो उत्तम कर कीर्त्यमान कथा का अनुमोदन किया करते हैं वे कथा का श्रवण न करते हुई भी अव्यय शाश्वत् पद को प्राप्त किया करते हैं। जो मनुष्य परम पुण्यमयी पौराणिकी कथा का श्रवण कराया करते हैं वे ब्रह्मा के पद पर जो साग्र एवं परमोत्तम हैं शतकोटि कल्पों तक स्थित रहा करते हैं। जो मनुष्य पुराणों के विद्वान् के लिये आसन के वास्ते कम्बल, अजित और वस्त्र समर्पित किया करते हैं तथा मञ्चक ही दान में देते हैं ये स्वर्गलोक को प्राप्त कर यथोप्सित भोगों के सुख का उपभोग करके तथा ब्रह्मादि लोकों में स्थित होकर फिर निरामय पद को प्राप्त किया करते हैं।५०-५४। जो पुराण ग्रन्थ के लिए नूतन एवं परमोत्तम सूत्र प्रदान किया करते हैं वे जन्म-जन्म में भोगी और ज्ञान से समुत्पन्न हुआ करते हैं ? जो महा पालकों से युक्त होते हैं तथा जो उपपात की हुआ करते हैं वे केवल पुराणों के श्रवण करने से ही परम पद को प्राप्त कर लिया करते हैं ।५५-५६। इसके अनन्तर वे समस्त ऋषिगण वेंकटाद्रि के माहात्म्य का श्रवण करके फिर श्री व्यास देव जी के प्रसाद

से सम्पन्न पौराणिकों में परम, श्रेष्ठ सूतजी का उन सबने पूजन किया था जैसा कि शास्त्रोक्त विधान है फिर वे सब परम हर्ष को प्राप्त हो गये थे ।५७।

१४–ब्रह्मा की प्रार्थना पर विष्णु का प्रकट होना

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयत् ।१
भगवन्सर्वशास्त्र ! सर्शतीर्थमहत्ववित् ।
कथितं यत्वया पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने ।
पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं पावनम् ।२
यत्राऽऽस्ते दारवतनुः श्रीशोमानुषलीलया ।
दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः ।३
तन्नो विस्तरतोब्रूहितत्क्षत्रं केर्नानिर्मितम् ।
ज्योतिः प्रकाशोभगवान्साक्षान्नरायणः प्रभुः ।४
कथं दारुमयस्तस्मिन्नस्ते परमपुरुषः ।
वद त्वं वदतांश्रेष्ठ ! सर्वलोकगुरो मुने ! ।५
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहल हि नः ।
शृणुध्वं मुनयः सर्वोपहस्यं परमं हि तत् ।६
अवैष्णवानां श्रवणे भक्तिस्तत्र नजायते ।
यस्य संकीर्ततादेव सकलं लीयते तमः ।७
यद्यव्येव जगन्नाथः सर्वगः सर्वभावनः ।
स्कन्देनकथितं पूर्वं श्रुत्वाशम्भोर्मुखाम्बात् ।
सन्ति क्षेत्राणि चाऽन्यानि सर्वपापहराणि वै ।८

भगवान् नारायण को प्रणाम करके फिर नरोत्तम नर को नमस्कार करे । देवी सरस्वती को प्रणाम करके श्री व्यास देव जी को नमन करे । इसके अनन्तर जव शब्द का उच्चारण करना चाहिए ।

मुनि वृन्द ने कहा—हे भगवन् ! आप तो समस्त शास्त्रों के ज्ञाता है और सम्पूर्ण तीर्थों के महत्व के भी वेत्ता है। तीर्थों के कीर्त्तन करने के प्रस्ताव के प्रस्तुत होने पर पहिले अपने पुरुषोत्तम नाम वाले परम पावन सुमहान् क्षेत्र के विषय में कहा था।१-२। जिस क्षेत्र में भगवान नारायण मानव लीला से काष्ठमयी मूर्त्ति धारण करके विराजमान है। उनके दर्शन मात्र से ही वे मुक्ति का प्रदान कर देने वाले हैं और साक्षात् समस्त तीर्थों के पुण्य-फल को देने वाले हैं।३। हे भगवन् ! कृपा करके उसे अब थोड़ा-सा विस्तार के साथ हमको बतला दीजिए कि उस क्षेत्र का निर्माण किसने किया था ? साक्षात् भगवान् नारायण प्रभु तो दिव्य ज्योति के प्रकाश स्वरूप हैं वह परम पुरुष वहाँ पर क्यों और किस रीति से दारुमथ होकर विराजभान हो रहे हैं ? आप तो इसके बतलाने वालों में परम श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ हैं और हे मुने ! आप सब लोकों के गुरु भी हैं अतः आप हमको यह बतलाइये। ब्रह्मन् ! हम सब सुनने की उत्कृष्ट इच्छा रखते हैं और हमारे हृदय में इसके स्रवण करने को बड़ा भारी कोतुहल होरहा है।३-५। महर्षि प्रवर जैमिनी ने कहा—हे मुनिगण। आप सब सुनिये, यह एक बड़ा भारी रहस्य है।६। जो लोग वैष्णव नहीं है उसको इससे श्रवण करने में भक्ति नहीं होती हैं। जिसके संकीर्तन करने मात्र से ही सब लीन हो जाया करता है। यद्यपि यह जगत् के नाम हैं—सर्वत्र गमन करने वाले और पर दया भाव रख ने वाले हैं। पहिले भगवान् शम्भू से श्रवण करके स्वामी स्कन्द ने कहा था। और भी समस्त पापों में हरण करने वाले क्षेत्र विद्यमान हैं।७-८।

एतत्क्षेत्रं परपञ्चाास्यवपुर्भतमहात्मनः।
स्वयंवपुष्मास्तज्ञास्तेस्वनाम्नाख्यापिहितत् ।९
तत्र ये स्थातुमिच्छन्ति तेपिसर्वेहतांहसः।
किंपुनस्तत्रतिष्ठन्तीयेपश्यन्तिगदाधरम् ।१०

अहोतत्परमक्षेत्रं विस्तृतं दशयोजनम् ।
तीर्थराजस्य सलिलादुत्थितं बालुकाचितम् ।११
नीलाचलेतमहतामध्यस्थेनविराजितम् ।
एकस्तनमिव पृथ्व्याः सुदूरात्परिभावितम् ।१२
वाराहरूपिणापूर्वं समुद्धृत्यवसुन्धराम् ।
सर्वतः सुसमां कृत्वापर्वतैः सुस्थिरीकृताम् ।१३
सृष्ट्वा चराचरं सर्वं तीर्थानि सरिदब्धिकान् ।
क्षेत्राणि च यथास्थानं सनिवेश्य यथा पुरा ।१४

यह क्षेत्र इन महान् पुरुष का वपुर्भूत अर्थात् शरीरधारी सर्वश्रेष्ठ है और वहाँ पर स्वयं वपुष्मान् विराजमान रहा करते हैं और अपने ही नाम से इस क्षेत्र को लोक में स्थापित भी किया है वहाँ पर जो भी स्थित होने की इच्छा किया करते हैं वे भी निष्पाप ही होते हैं और उनके विषय में तो कहा ही क्या जावे जो वहाँ पर अपनी स्थिति रखते और भगवान् गदाधर का नित्य दर्शन प्राप्त किया करते हैं। अहो। यह सर्वोत्तम क्षेत्र जो दश योजन के विस्तार से युक्त है। तीर्थराज के जल से यह उत्थित हुआ है जो वालुका सेवित है। मध्य में स्थित महान् नीलाचल से यह क्षेत्र विराजित है बहुत दूर से ही पृथ्वी देवी के एक स्तन के समान परिभावित होता है। पहिले वाराह के स्वरूप को धारण वाले भगवान् ने इस वसुन्धरा देवी का उद्धार करके इसे सभी ओर से सुनाम किया था और पर्वतों से इसको सुस्थिर बनाया था। सभी चर और अचर सृष्टि का सृजन करके समस्त तीर्थ, नदियाँ, समुद्र और क्षेत्रों को पहिले यथोचित स्थान पर सनिवेशित किया था।९-१४।

ब्रह्मा विचिन्तयामाससृष्टिभारनिपीडितः ।
पुनसेतां कियां गुर्वो नारभेयकथन्त्विः ।१५

तापत्रयाभिभूताहि मुच्यन्ते जन्तवः कथम्
एव चिन्तयमानस्यमतिरासीत्प्रजापतेः ।१६
मुक्त्येककारग विष्णुस्तीत्येऽहं परमेश्वरम् ।
नमस्ते जगदाधार ! शङ्खचक्रगदाधर ।१७

यन्नर्भिपंकजादेव जातोऽहं विश्वसृष्टिकृत ।
परमार्थं स्वरूपं ते त्वं वै वेत्सिजगन्मय ।१८
यन्मायया जगत्सर्वं निर्मितंमहबादिकम् ।
यन्निःश्वाससमुद्भूतं शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत् ।१९

उपजीव्यतदेवाऽहमभृजम्भवनानि वैः ।
त्वत्तोनाऽन्यः स्थूलसूक्ष्मदीर्घंह्रस्वादिकिञ्चन ।२०
विकारभेदैर्भगवांस्त्वमेवेदं चराचरम् ।
कटकादि यथा स्वर्णं गुणत्रयविभागशः ।२१

सृष्टि से भार से अत्यन्त पीड़ित ब्रह्मा ने विचार किया था कि इस बड़ी भारी क्रिया को पुनः कैसे आरम्भ करूँ। तीन प्रकार के तापों से जन्तुगण विचारे किस तरह से छुटकारा पायेंगे। इस तरह वेत्तिन्त में मग्न हो रहे थे कि अचानक प्रजापति के ऐसी मति समुत्पन्न हो गई थी कि मुक्ति का एक कारण तो भगवान विष्णु ही हैं अतएव मैं उसी परमेश्वर प्रभु का स्तवन करूँगा। ब्रह्माजी ने कहा—हे इस जगत् के आधार ! हे शंख, चक्र और गदा के धारक जिससे नाभि में स्थित कमल से ही मेरी उत्पत्ति हुई जो इस विश्व की सृष्टि को करने वाला है। हे जगन्मय ! आपके परमार्थ स्वरूप को आप ही जानते हैं। जिसकी माया से यह सम्पूर्ण जगत् तथा महत् आदि के निर्मित हुए हैं। जिसके निःश्वास से समुत्पन्न यह शब्द ब्रह्म तीन स्वरूपों वाला हो गया है। हे देव ! मैंने तो इन भुवनों की सृष्टि कर दी है आप इनकी उपजीव्य करिये। आपसे अतिरिक्त अन्य कोई भी

स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ, और, ह्रस्व, आदि नहीं है। विकारों के भेदों के द्वारा हे भगवन् ! यह सब चराचर आप ही स्वयं हैं। तीन गुणों के (सत्व, रज, तम) विभाग थे यह सभी कुछ आपका ही स्वरूप है, जैसे स्वर्ण कटक आदि के विभिन्न रूपों में रहता है।१५-२१।

स्रष्टामृज्यंत्वमेवाऽत्रपोष्टापोष्यञ्जगत्प्रभो ।
आधारी ध्रिगमाणश्च धर्ता त्वं परमेश्वर ।२२
त्वत्प्रेरितमतिः सर्वं श्वरते च शुभाऽशुभम् ।
ततः प्राप्नोति सदृशीं वृत्यैव विहितां गतिम् ।२३
जगतोऽस्य गतिर्भर्त्ता साक्षीं परमेश्वर ! ।
चराचरगुरो ! सर्वजीवभूतकृपामय ! ।
प्रसीदाऽऽद्यजगन्नाथ ! नित्यं त्वच्छरण्यस्य मे ।२४
एव संस्तुयमानश्च ब्राह्मणा गरुडध्वजः ।
नीलजीमूतसंङ्काशा शङ्खचक्रादिचिह्नितः ।२५
पतगेन्द्रसमारूढः स्फुरद्वदनपंकजः ।
आविरासोद् द्विजश्रेष्ठो विवक्षुः स्फुरिताधरः ।२६
यदर्थं मां स्तुषे ब्रह्मन्नशक्यः प्रतिमाति सः ।२७
अनाद्यविद्यामुदृढा दुश्छेद्याकर्मबन्धनैः ।
प्रभवन्त्यां कथं तस्यां ह्रीयंतेमृतिजन्मनी ।२८

हे प्रभो ! आप ही तो इस जगत् के सृजन करने वाले हैं और आप ही सृज्य अर्थात् करने के योग्य वस्तु जाते हैं। इस जगत् पोषण करने वाले तथा पोषण के योग्य भी आप ही हैं। इस जगत् के आधार और आधेय दोनों ही आप स्वयं ही हैं। हे परमेश्वर ! इसको धारण करने वाले भी आप ही है आपके द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके ही जो मति होती है उसी से सब शुभ और अशुभ कम किया करते हैं। इसके अनन्तर आपके द्वारा ही की हुई सदृश गति को प्राप्त किया करता है।२२-२३। हे परमेश्वर ! इस जगत् की आप ही गति हैं, आप ही

इसके भरण करने वाले हैं ओंर आप ही इसके साक्षी हैं। हे चराचर के गुरुदेव ! आप तो समस्त जीवभूत कृपामय है। हे जगन्नाथ ! अब आप प्रसन्न होइये। मैं नित्य ही शरण्य आपकी ही शरणागति में रहने वाला हूँ।२४। महर्षि जैमिनी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! इस रीति से ब्रह्मा के द्वारा स्तवन किये गये भगवान गरुड़ध्वज, नीलमेघ के समान कान्ति वाले, शंख, चक्र आदि के चिन्हों से युक्त (गरुड़) पर समारूढ़, स्फुरमाण मुख कमल वाले, स्फुरित अक्षरों से युक्त बोलने की इच्छा वाले वहीं पर आविर्भूत हो गये थे। श्री भगवान ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जिसके लिए आप मेरा स्तवन कर रहे हैं वह अशक्य हो प्रतीत होता है। यह अनाद्यविद्या परम सदृढ़ है और कर्म बन्धनों द्वारा यह छेदन करने के योग्य नहीं है। उसके होते हुए यह मृत्यु और जन्म कैसे क्षीण हो सकते हैं ?।२५-२८।

तथाऽपि चेदत्रकृतेव्यव्यवसायस्तवाऽनघ।
क्रमेण येन हि भवेत्तत्ते वक्ष्यामि कारणम्।२९
अहं त्वं त्वमहं ब्रह्मन्मन्मयञ्चाखिलञ्जगत्।
रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्यथेतिविचारय।३०
सागरस्योत्तरेतीरे महानद्यास्तु दक्षिणे।
स प्रदेशः पृथिव्यां हि सर्वतीर्थफलप्रदः।३१
तत्र ये मनुजा ब्रह्मान्निवसन्ति सुबुद्धयः।
जन्मान्तरकृतानाञ्च पुण्यानां फलभागिनः।३२
नाऽल्पपुण्याः प्रजायन्ते नाऽभक्ता मयिपद्मज।
एकाम्रकाननाद्यावद्दक्षिणोदधितीरभूः।३३
पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः कमात्परमपावनः।
सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मन्नजतं नीलपर्वतः।३४
पृथिव्यां गोपित स्थानं तव चाऽपि सुदुर्लभम्।
सुरासुराणा दुर्ज्ञेयं माययाऽच्छादिततंतम।३५

हे अनघ। तो भी इसके लिये आपका यदि व्यवसाय है तो जिसके द्वारा क्रम से यह हो जावे उस कारण को मैं आपको बतलाता हूँ मैं जो हूँ वही तुम हो और जो तुम हो वही मैं हूँ। यह पूर्ण जगत् मन्यय ही है। जहाँ आपकी रुचि है वही मेरी भी रुचि अवश्य ही है। इसमें अन्यथा कुछ भी नहीं हैं—इसे विचार लो। इस सागर के उत्तर तीर पर महा नदी के दक्षिण भाग में इस पृथिवी में ही वह प्रदेश विद्यमान हैं जो समस्त तीर्थों के पुण्य-फल का प्रदान करने वाला है। हे ब्रह्मन् ! जहाँ सर जो मनुष्य सुन्दर बुद्धि वाले निवास किया करते हैं वे दूसरे जन्मों में किए हुए पुण्यों के फल भागी हुआ करते हैं। वहाँ पर अल्प पुण्यों वाले उत्पन्न नहीं हुआ करते हैं और जो मुझमें भक्ति रखने वाले नहीं हैं वे वहाँ उत्पन्न नहीं होते हैं। एकाग्र कानन से से लेकर वहाँ तक दक्षिण सागर के तट की भूमि है पद से पद परम श्रेष्ठतम और इसी क्रम से वह परम पावन है। हे ब्रह्मन। सिन्धु तट पर जो नील पर्वत शोभा देता है वह पृथिवी में परम शोभित स्थान है और वह आपको परम दुर्लभ ही है। वह मेरी माया से सम्बन्धित है अतएव सुर तथा असुर सबके द्वारा न जानने के योग्य ही हैं ।२९-३५।

सवसङ्गपरित्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहभृत् ।
क्षराक्षरावविक्रम्य वर्त्तेऽहं पुरुषोत्तमे ।३६

सृष्टयालयेननाक्रान्तक्षेत्रम्मेपुरुषोत्तमम् ।
यथामाँ पश्यहिब्रह्मन्नू पचक्रादिचिह्निनतम् ।३७

ईदृशं तत्र गत्वैव द्रक्ष्यसे माँ पितामह ।
नीलाद्रेरन्तरभुवि कल्पन्यग्रोधमूलतः ।३८

वारुण्याँ दिशि यत्कुन्डं रौहिण नाम विश्रुतम् ।
तत्तोरे निवसन्तं पश्यन्तरचर्मचक्षुषा ।३९

तदम्भसाक्षीणपापा मम सायुज्यामाप्नुयुः ।
तत्र ब्रज महाभाग दृष्ट्वा माँ ध्यायतस्तव ।४०
प्रकाशं याल्यते तस्य क्षेत्रस्य महिमाऽपरः ।
आश्चर्यभूत. परमस्तवाऽपिचभविष्यति ।४१
श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं
मन्मायया तन्न हि कस्य गोचरम् ।
प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाऽधुना
प्रकाशमायास्यति सर्वगोचरम् ।४२
अर्हनिवासाल्लभतेऽत्र सर्वं निःश्वासवासात्खलु
चाऽऽश्वमेधिकम् ।४३
श्त्यादिश्य विधि विप्रास्तदाऽसौ पुरुषोत्तमः ।
पश्यतस्तस्य तत्रैव प्रभुन्तरधीयत ।४४

सब प्रकार के संग से परित्यक्त होकर मैं वहाँ पर देहधारी होकर स्थित रहा करता हूँ । क्षर और अक्षर को अतिक्रमण करके मैं पुरुषोत्तम में वर्तमान रहता हूँ । सृष्टि और लय से मेरा वह आक्रान्त पुरुषोत्तम क्षेत्र हैं । हे ब्रह्मन् ! जिस प्रकार से मुझको उस समय में चक्रादि से चिह्निन रूप आप देख रहे हैं । हे पितामह ! वहाँ पर जाकर भी आप ऐसा ही मुझको देखेंगे । नीलाद्रि के अन्तर भूमि में कल्प न्यग्रोध्र के मूल से वारुणी दिशा में जो 'रोहिणी' इस नाम से विख्यात है ऐसा एक कुण्ड है । उसके तट पर निवास करने वाले मुझको चर्म चक्षु से देखने वाले हैं उसके जल में क्षीण पापों वाले पुरुष मेरे सायुज्य को प्राप्त किया करते हैं हे महाभाग ! आप भी वही पर चले जाइये वहाँ पर मेरा दर्शन प्राप्त करके मेरा ध्यान करते हुए आप प्रकाश भी प्राप्त करेंगे । यह उस क्षेत्र की एक अपर महिमा है । वह परम आश्चर्य भूत वहाँ पर आपको भी होगा । समस्त श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणों में भी परम गोपित हैं और वह मेरी माया से किसी भी गोचर नहीं

होता है। मेरे प्रसाद से आपके इस स्तवन करने पर अब आपको यह प्रकाश सर्वगोचर हो जायगा।३६-४२। व्रतों में, यज्ञ और दोनों में जो विमलनात्मा वालों का पुण्य बताया गया है वह एक दिन निवास करने से यहाँ पर सब प्राप्त होता है। निःश्वास की वास से निश्चय ही अश्वमेध यज्ञ के करने का फल होता है। हे विप्रो ! उस समय में पुरुषोत्तम प्रभु तरह से ब्रह्माजी को इनका आदेश प्रदान किया था और फिर ब्रह्माजी को देखते-देखते ही प्रभु वही पर अन्तर्धान हो गये थे।४३-४४।

१५—रथनिर्माण वर्णन

इत्युक्ते नारदः सोऽथ यथाशास्त्रं विचार्य वै।
आलेख्यक्रमशः पत्रे राज्ञे तस्मै न्यवेदयत् ।१
राजाऽपि पत्रं तच्छ्रुत्वा दासोऽवधार्य पुनः पुनः।
प्रददौद्मनिधयेलिखितान्यत्रयानिवै ।२
सम्पादय पद्मनिधेशालाँ स्वर्णमयीं कुरु।
ब्रह्मणः सदनं दिव्यं ब्रह्मषाणाञ्चनिर्मलम् ।३
इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धानां मर्त्यवासिनाम्।
मुनीन्द्राणां निवासाय राज्ञां पातालवासिनाम् ।४
यथा च नागराजानां निधे ! त्रैलोक्यवासिनाम्।
यथायोग्यासनैर्युक्तं गृहंगृहमतन्द्रितः ।५
कारयाऽऽशु मिधे ! द्रव्यसम्भार यावदेवतु।
विश्वकर्माऽपिचतत्रसाहाय्यंरचयिष्यति ।६
इत्यादिशन्तं स मुनिरिन्द्रद्युम्नमुवाच वै।
सम्भारात्पृथगेतद्धि कर्तव्यं व्यवधानतः ।७

इतना कहने पर वह देवर्षि नारद ने शास्त्र के मधु सार इसके अनन्तर विचार करके आलेख्य के क्रम से रत में उस राजा से निवेदिन

किया था उस राजा ने भी पत्र को सुनकर और पुनः पुनः अवधारणा करके उसने इसमें जो लिखे हुए थे उनको पद्म निधि के लिये दे दिया था। हे पद्मनिधे। शाला का सम्पादन करो और उसको स्वर्णमयी कर दो। ब्रह्माजी का परम दिव्य सदन बना दो ब्रह्मर्षियों के लिए अति निर्मल सदन का निर्माण कर दो। इन्द्रादि देवों का, मर्त्यलोक में निवास करने वाले मुनीन्द्रों का निवास स्थान निर्मित करो तथा पाताल लोक में वास करने वाले राजाओं के निवास करने के लिये सदन बना दो ।१-४। हे निधे। उसी भाँति त्रैलोक्य में निवास करने वाले नागराजों के लिये सदन का निर्माण करो तुम अतेन्द्रित होकर यथा योग्य आसनों से युक्त गृह-गृह निर्मित करो। निधे ! द्रव्य का सम्भार जितना भी लगे इन सबका निर्माण अति शीघ्र कर दो। आपके इस कार्य के सम्पादन करने में विश्वकर्मा भी सहायता करेंगे। वह मुनि इस प्रकार से आदेश प्रदान करने वाले इन्द्रद्युम्न से बोले—सम्भारों को व्यवधान से इह पृथक ही करना चाहिए ।५-७।

स्वर्ण सुघटित साधुरथ त्रयमलङ्कृतम् ।
दुकूलरत्नमालाद्यैर्दहुमूल्यैर्दृढं महत् ।८
श्रीवामदेवस्य रभो गरुडध्वजचिह्नितः ।
पद्मध्वजः सुभद्राया नथमूर्द्धनि धार्यताम् ।९
रथः षोडशचक्रस्तु विष्णोः कार्यः प्रयत्नतः ।
चतुर्दश बन्लस्यैव सुभद्रास्तु द्वादशः ।१०
हइनषोडशविस्तारो रथश्चक्रधरस्य तु ।
चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रावास्तु द्वादश ।११
आसनं जगतां भूयः स्वयं स्वासनविग्रहः ।
यद्याने जगतां नाशस्ततो यानं न विद्यते ।१२

पश्येच्चराचरं विश्वं ज्ञानादथ सुनिर्मले ।
स्थितो हस्ततले नित्यं निर्मंज्ञस्तस्यदर्पणः ।१३
तलस्थत्वादसौ तालः सदा तेनाऽङ्कितः प्रभुः ।
मतः स एव शेषस्य बलभद्रावतारिणः ।१४

सुवर्णों से सुघटित अति सुन्दर समलंकृत तीन रथ बनाओ जो दुकूल (वस्त्र) और रत्नों की माला आदि से जो कि बेश कीमती हों उन्हें महान और परम सुदृढ़ बनाइये ।८। श्री वासुदेव भगवान् का रथ गरुड़ध्वज के चिह्न से युक्त करो । सुभद्रा के रथ के मस्तक पर पद्म ध्वज बनाओ अर्थात् धारण करो । भगवान् विष्णु का रथ सोलह पहिये वाला प्रयत्न पूर्वक बनाना चाहिए । बलराम जी का रथ चौदह पहियों वाला और सुभद्रा के रथ के बारह पहिय बनाने चाहिये । चक्रधर का रथ सोलह हाथों के विस्तार वाला होना चाहिए । बल के रथ का विस्तार चौदह हाथों का सुभद्रा के रथ का विस्तार बारह हाथों का होना चाहिए । अपने आसन के विग्रह वाले स्वयं जगतों के पुनः आसन हैं । उनके यान में जगतों का नाश होता है अतएव यान नहीं है ।९-१२। इस चराचर विश्व को ज्ञान से देखो । सुनिर्मल हस्ततल में उसका निर्मल दर्पण नित्य ही स्थित रहता है । तलस्थ होने से यह ताल है उससे महाप्रभु अङ्कित हैं । इसी से वही बलभद्रावतारी शेष का है ।१३-१४।

अथवासीरिणः कार्यंसीरमेवध्वजोत्तमम् ।
ध्वजः सुनिर्मलः कार्यस्तस्मातालध्वजोमतः ।१५
न वासितव्यौ देवोऽसाप्रतिष्ठे रथे नृप ।
प्रासादमण्डपे वातिपुरेतन्निष्फलंभवेत् ।१६
तस्मात्प्रतिष्ठा प्रथमं हरे कार्यारथस्य वै ।
सम्भारः क्रियतांतस्यह्यनुष्ठेयामयामयातुसा ।१७

इत्याज्ञांमत्यितुलब्ध्वा शीघ्रमगंगमहं नृप ! ।
तस्य तद्वचनंश्रुत्वाघटितस्यन्दनत्रयम् ।१८
निधिमम्पादितैर्द्रव्यैरेकाह्नाद्विश्वकर्मणा ।
स्वक्षं सुचक्रं सुस्तम्भं सुविस्तीर्णं सुतोरणम् ।१९
सुध्वज सुपताक च नानाचित्रमनोहरम् ।
विचित्रबन्धमिथुनं पुत्तलीवलयान्वितम् ।२०
अर्द्धहाटकनिव्यूढं साक्षाद्रविरथोपमम् ।
मेघगम्भीरनिर्घोष दृष्टवा कर्मगुणैर्युतम् ।
वातरंहोहयैर्युक्तं शतसङ्ख्यैः सितप्रभः ।२१

अथवा सीरि (बलभद्र) का सीर ही उत्तम ध्वज करना चाहिये । सुनिर्मल ध्वज करना चाहिए । इसलिए ताल ध्वज माने गये हैं । हे नृप ! यह देव अप्रतिष्ठ रथ में कभी भी निवास इनका नहीं करना चाहिए । प्रसाद मण्डप में अथवा पुर में भी नहीं करे क्योंकि वह निष्फल हो जायगा ।१५-१६। इस कारण से सर्वप्रथम श्रीहरि के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिये । उसका सम्भार सब तैयार करो । वह प्रतिष्ठा मेरे द्वारा ही करनी चाहिये यह आज्ञा मेरे पिता की मैंने प्राप्ति की है । हे नृप ! मैं शीघ्र ही आता हूँ । उसके इस वचन का श्रवण करके तीन स्यदन्न (रथ) घटित किए गये हैं ।१७-१८। विश्वकर्मा के द्वारा एक ही दिन में निधि से सम्पादित द्रव्यों से सुन्दर अक्षों वाला, मनोहर पहियों से समन्वित, अच्छे स्तम्भों से युक्त, सुन्दर विस्तार वाला सुतोरण सुध्वन, सुपताक और अनेक प्रकार के चित्रों से मनोहर, विचित्र नन्ध बन्ध वाली पुत्तलियों के जोड़ों और वलयों के सहित, अर्घ हाटक (सुवर्ण) से निव्यूढ़ साक्षात् सूर्य के रथ के तुल्य मेघ के गम्भीर निर्घोष वाले और कर्ष गुणों से युक्त देखकर जो वायु के समान वेग वाले, सित प्रभा से युक्त सौ संख्या वाले अश्वों से युक्त था ।१९-२१।

यथाशास्त्रविधानेन नारदेन प्रतिष्ठितम् ।
सुलग्ने सुमुहुर्त्ते च सुतिथौ ज्योतिषोदिते ।२२
भगवन्जैमिने ! ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ।२३
विधिना केन हि रथः प्रतिष्ठाप्योहयेरयम् ।
यथावद्वद नोयेननजानीमोविधिविस्तरम् ।२४
यथाप्रतिष्ठितं तेन नारदेन महात्मना ।
तद्वो वदिष्यामि विधि यथा दृष्टं पुरा मया ।२५
रथस्येशाद्वदिग्भागेशालाकृत्वासुशोभनाम् ।
तन्मध्यमण्डपकृत्वावेदितत्रसुनिर्मलाम् ।२६
चतुरस्रां चतुर्हस्तमितां हस्तोच्छ्रितां द्विजाः ।
प्रतिष्ठापूर्वदिवसेरात्रवुत्तरतः शुभे ।२७
मुहूर्त्ते स्वस्तिवीच्याऽथ कारयेदङ्कुरार्पणम् ।
द्वात्रिंशद्देवताभ्यश्चवयिदत्त्वायथाविधिम् ।२८

शास्त्र के विधान के अनुसार सुलग्न में, ज्योतिष में कहे हुए सुमूहूर्त में और सुतिथि में नारद ने प्रतिष्ठा की थी ! मुनिगण ने कहा—हे भगवान ! हे जैमिने ! अब आप हमको बतलाइये क्योंकि हम लोग तो आपको सर्वज्ञ ही मानते हैं । यह हरि का रथ किस विधि से प्रतिष्ठित करना चाहिए । आप इसको यथाविधि बतलाइये जिससे हम लोग इसकी विधि के विस्तार को जान लेवें ।२२-२३-२४। महर्षि जैमिनी ने कहा—जिस रीति से उन महात्मा नारदजी ने उसकी प्रतिष्ठा की थी उस विधान को मैं आपको बतलाता हूं जैसा कि मैंने पहिले देखा था । शाथ के ईशान दिशा के भाग मे एक परम शोभन शाला का निर्माण करके उसके मध्य भाग में मण्डप की रचना की गई थी जिसमें सुनिर्मल वेदी थी । वह वेदी चौकोर थी और चार हाथ विस्तार से युक्त एवं हे द्विजगण ! एक हाथ ऊंची थी । प्रतिष्ठा होने के एक दिन पूर्व रात्रि में उत्तर की ओर शुभ मुहूर्त्त में स्वस्ति वाचन करके अंकुरों

का अर्पण करना चाहिए। फिर बत्तीस देवों को यथाविधि बलि देनी चाहिए।२५-२८।

प्रातस्ततौ वेदिकायां मध्ये मण्डलमालिखेत्।
रद्मं वा स्वास्तिकं वाऽपि कुम्भं तत्र निधापयेत्।२९
पञ्चद्रुमकषायां च तन्मध्ये पूरयेत्सुधीः।
गङ्गादिपूण्योयानि पल्वान्स समृत्तिकाः।३०
सर्वगन्धान्पञ्चरत्नसवौषधिगण तथा।
पूरयित्वा विधानेन आचार्यः प्राङ्मुखमुचिः।३१
विष्णुं स्मरन्पञ्चगव्यं पञ्चादपि प्रपूरयेत्।
दुकूलवेष्टितकण्दे माल्यैगन्धैः सुशोभनैः।३२
फलपल्लवसयुक्तं कृतकौतुकमङ्गलम्।
पूरयेत्तत्र देवेश नरसिंहमनामयम्।३३
मन्त्रराजेन विधिवदुपचारेस्तथान्तरै।
प्रार्थयित्वाप्रसादायतस्मिन्नावाह्य तं हरिम्।३४
बाह्योपचारैविधैः पूजयेद्विधिवद्द्विजाः।
वायव्यांतस्यकुम्भस्यसमिदाज्यचरुं तथा।३५

इसके उपरान्त प्रातः काल के समय में उस वेदिका के मध्य भाग में मण्डल का आलिखन करे, पद्म, स्वस्तिक अथवा वहाँ पर कुम्भ निधापित करना चाहिए।२९। सुधी पुरुष को चाहिये कि पाँच द्रुमों का कषाय ग्रहण करके उसके मध्य में पूरित कर देवे। गङ्गा आदि के परम पवित्र, जल, पल्लव, मृत्तिका, सर्वगन्ध, पञ्चरत्न और सर्वोषधि गण को विधि-विधान से पूरित करके आचार्य को प्राङ्मुख अर्थात् पूर्व दिशा में मुख वाला तथा शुचि होकर वहाँ पर स्थित होना चाहिये। भगवान् श्री विष्णु का स्मरण करते हुए पीछे पञ्चगव्य की पूरित करे। वस्त्र से वेष्ठित करे। सुन्दर गन्ध वाले परम शोभन माल्यों से कण्ठ में वेष्टन करे। फल एवं पल्लवों से संयत, कृत कौतुक मङ्गल वाले देवेश

अनाभय नरसिंह को वहाँ पर पूरित करे। विधि मन्त्र राज के द्वारा तथा अन्तर उपचारों से प्रसाद के लिए प्रार्थना करके उन श्रीहरि का उसमें आवाहन करना चाहिए। हे द्विजगण ! विधि के सहित विविध बाह्य उपचारों के द्वारा उनका अर्चन करे। उस कुम्भ के वायव्य दिशा में समिधा, घृत और चरु स्थापित करे।३०-३५।

अष्टोत्तारसहस्त्रं च जुहुयाद्विधिवद्गुरुः।
सम्पातात्प्रापयत्तत्र कुम्भमध्य तदन्तरः।३६
रथं सुशाभनं कृत्वा पताकागन्धमाल्यकैः।
सर्वाङ्गकचयेत्तस्यगन्धचन्दनवारािभः।३७
धूपयेत्कालागरुणा शंखकाहालानिस्वनैः।
ध्वजे तस्य नृसिहस्य प्रतिष्ठाप्य समीरणम्।३८
पूजयित्वा विधानेन रक्तस्रगन्धमाल्यकैः।
इमं यन्त्रं समुच्चार्य सुपणम्प्राथयेत्ततः।३९
यो विश्वप्राणहेतुस्तनुरपि च हरेर्यकेतुस्वरूपो।
यं सञ्चिन्त्यैव सद्यः स्वयमुरगवधूगगर्भाः पिबन्ति।
चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपङ्काङ्कितास्य,
वन्दे छन्दोमय तं खगपतिममल स्वर्ण वर्णं सुपर्णम्।४०
ब्रह्मघोषैः शंखनादैर्नानावाद्यसुविस्तरैः।
रथमूर्ध्नि स्थापयत्तं चारुसूक्त समुच्चरन्।४१
त्तस्यापरिष्ठात्त कुम्भ समन्तात्प्लावयग्रथम्।
त्रिरुच्चरन्मन्त्रराज सेचयेद्ब्रह्मणा सह:।४२

गुरु का वहाँ पर कर्तव्य है कि एक सौ आठ बार विधि के सहित हवन करे। वहाँ पर उसके अस्त में कुम्भ के मध्य भाग में सम्पातों का प्राप्त करावे। परम शोभा से सुसम्पन्न पताका सुगन्धित माल्यों से रथ को सुसज्जित करके उसके सम्पूर्ण अङ्गों को गन्ध वाले चन्दन के जल से सेचन करना चाहिए। फिर शंख का हाल ध्वनियों के

सहित कालागुरु निर्मित धूप देवे उन भगवान नृसिंह के ध्वज में वायु को प्रतिष्ठित करके रक्त, स्रक् और गन्ध माल्यों से, विधिपूर्वक पूजन करके इस निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करके सुवर्ण देव की प्रार्थना करे ।३३-३९। जो विश्व के प्राणों का कारण भूत है और तनु होते हुए भी श्री हरि के यान का केतु स्वरूप वाला है—जिसका सञ्चितन करके ही तुरन्त ही स्वयं उरग वधुओं के समुदाय के गर्भ गिर जाया करते हैं, जो चंजत् चण्ड और ऊरु त्रुटित फणियों के बसा एवं रक्त के पङ्क से आप्लुत मुख वाले हैं उस छन्दोमय, स्वर्ण के समान वर्ण वाले, अमल खगों के स्वामी सुर्ण की मैं वन्दना करता हूँ ।४०। ब्रह्म घोषों से, शंखों की ध्वनियों से और अनेक भांति के सुविस्तार वाद्यों से उनको सुन्दर सूक्तों का समुच्चारण करते हुए रथ के मूर्धा पर स्थापित करे। उसके ऊपर उस कुम्भ को चारों ओर से रथ को सम्प्लावित करते हुए वेदों के तीन बार मन्त्रराज का उच्चारण करते हुए सेचन करना चाहिये ।४१-४२।

ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा ब्रह्मणेदक्षिणां ददेत् ।
आचार्यंदक्षिणांदद्याद्येनतुष्यतितद्गुरुः ।४३
ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते पाससैमधुसर्पिषा ।
द्वादशाक्षरमन्त्रेणबलभद्रस्य कारयेत् ।४४
लांगूलं च पविस्वन्मन्त्रः स्याल्लाङ्गलध्वजे ।
अथवाद्विषड्वर्णोपिमूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ।४५
लक्ष्मीसूक्तेनभद्रायाः प्रतिष्ठप्योरथस्तथा ।
नाभिह्रदान्मुरारेस्त्वंब्रह्माण्डबलिरूपधृक् ।४६
आसनंचतुरास्यस्य श्रियो वाम ! स्थिरो भव ।
इम मन्त्रं समुच्चार्यं ध्वजपद्मं समुच्छ्रयेत् ।४७
इयान्विशेषो हविषा त्रयाणां च पृथक्पृथक् ।
पञ्चपञ्चभिर्होतव्यमेकैकं तु विभागशः ।४८

इत्थं रथान्प्रतिष्ठाप्यसुवर्णं गांचवस्त्रकम् ।
धान्यंचक्षिणांदद्यात्सम्यग्देवस्यभक्तितः ।४९

इसके अनन्तर पूर्णाहुति समर्पित करके ब्राह्मण को दक्षिणा देवे । आचार्य्य को दक्षिणा देनी चाहिए जिससे वह सद्गुरु पूर्णतया सन्तुष्ट हो जावें । इस सब निधान के अन्त में मधु और घृत से संयुत पायसान्न से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । द्वादश अक्षरों वाले मन्त्र से वलभद्र का कराना चाहिए ।४३-४४। लाङ्गल ध्वज में लाङ्गल पविरवन् मन्त्र होता है अथवा द्विषड्वर्ण वाला भी मूलमन्त्र कीर्त्तित किया गया है । लक्ष्मी सूक्त के द्वारा भद्रा के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । मुरारि के नाभि रूपी ह्रद से आप इस ब्राह्मण के अधलि रूप को धारण करने वाले हैं । हे श्री के वास ! यह चतुरानन का आसन है इस पर आप स्थिर होंवें—इस मन्त्र का समुच्चारण करके ध्वज पद्म को समुच्छित करें ।४५-४७। इन तीनों में हवि से पृथक्-पृथक् यह इतना ही विशेष है । एक-एक दो विभाग से पाँच-पाँच के द्वारा हवन करना चाहिए । इस रीति से रथों की प्रतिष्ठा करके फिर सुवर्ण, वस्त्र, गौ, धान्य और दक्षिणा भली भाँति देव की भक्ति-भावना से देने चाहिये । ।४८-४९।

एवं प्रतिष्ठिते तत्र स्यन्दनेऽथ सुभूषिते ।
आरोप्य देवं विधिवद्ब्रह्मघोषपुरः सरम् ।५०
जयमंगलशब्दैश्च नानावाद्यपुरः सरैः ।
चामरान्दोलनंधूपैः पुष्पवृष्टिभिरेव च ।५१
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्नीयते स्म रथ प्रति ।
हयैः सुलक्षणैर्दन्तिर्बलीवर्दैरथापि वा ।५२
पुरुषैर्विष्णुभक्तैर्वा ने तव्या ह्यप्रमायतः ।
प्रीणयित्वा जनं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिलेपनैः ।५३

रथस्योपरि देवेभ्यो बलिमन्त्रेणभोद्विजाः ।
बलिंगृह्णन्तुभोदेवाआदित्यावसवस्यथा ।५४
मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगाः ।
असूरायातुधानाश्च रथस्थाश्चैव देवतः ।५५
दिक्पाला लोकपालश्चयेचविघ्नविनायकाः ।
जगतः स्वस्तिकुर्वन्तुदिव्यामहर्षयस्तथा ।५६

इस भाँति वहाँ पर सुप्रतिष्ठित रथ में जो अच्छी तरह से भूषित किया गया हो कि विधि पूर्वक ब्रह्म घोष के (वेद ध्वनि के) उसमें समारोपित करना चाहिए । जय मङ्गल घोषों से अनेक भाँति के वाद्यों से, चमरों के आन्दोलनों से, धूप देने से और पुष्पों की वृष्टियों से वह रथ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वेश्यों के द्वारा ले जाया जाता है अच्छे लक्षणों वाले अश्वों, दमनशील बली वेदों के द्वारा भी उस रथ का वहन किया जाता है । या विष्णु के परम भक्तजनों के द्वारा बिना प्रमोद के वे रथ वहन कर ले जाने चाहिए । भव्य भोजन और लेपन आदि के द्वारा सब जनों को प्रसन्न करके रथ के ऊपर हे द्विजगण ! बलि के मन्त्र के द्वारा देवों को बलि दे । हे देवगणो ! आदित्यो ! व गणो ! हे मरुद्गणो ! हे अश्विनीकुमारो ! रुद्रगणो ! सुपर्णों ! पन्नग गणो ! ग्रह गणों ! असुरो यायुधानों ! और रथ में स्थित देवताओं ! दिक्पालो ! लोकपालो ! विघ्न विनायको ! दिव्य महर्षि गणो ! आप सब लोग इस जगत् का स्वास्ति (कल्याण) करिये । ।५०—५६।

अविघ्नमाचरन्वेतेमा सन्तु परिपन्थिनः ।
सौम्या भवन्तुतृप्ताश्चदैत्याभूतगणास्तथा ।५७
ततस्तु नीयते देव समभूमौ समुच्चरन् ।
मन्त्रंवैष्णावगायत्रीं विष्णोः सूक्तंपवित्रकम् ।५८

वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोक्यै रथन्तरैः ।
ततः तुण्याहघोषेणकृतवादित्रनिः स्वनम् ।५६

शनैः शनैरथो नेयो रथः स्नेहात्तचक्रिणः ।
तत्रोत्पातान्प्रवक्ष्यामिरथेऽत्रद्विजसत्तमाः ।६०

ईषाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियक्षयः ।
तुलाभंगे वैश्यनाशः शम्या शूद्रभयंभवेत् ।६१

धुराभंगे त्वनावृष्टिः पीठभंगे प्रभाजयम् ।
परचक्रागमं विद्याचक्रभंगे रथस्य तु ।६२

ध्वजस्य पतने विप्रा नृपोऽन्यो जायतेध्रुवम् ।
प्रतिमाभंगतायांतुराज्ञोमरणमादिवेत् ।६३

हे विप्रो ! पर्य्यस्त रथ में ये परिपन्थी गण सब अविघ्नी की करे और सौम्य हो जावें । समस्त दैत्यगण और भूतगण तृप्त हो जावें । इसके उपरान्त समतल भूमि में देव को लाया जाता है । मन्त्र, वैष्णव गायत्री, पवित्र वैष्णव सूक्त, पवित्र वाम देव्यो, मनस्तोकों, रथन्तरों से और इसके उपरान्त तुण्याह घोष के द्वारा वादित्रों के निःस्वन पूर्वक भगवान् चक्री के रथ को स्नेह से धीरे-धीरे ले जाना चाहिए । हे द्विज सत्तमो ! यहाँ रथ पर जो उत्पात होते हैं उनको मैं बतलाता हूँ । इषा के भङ्ग हो जाने पर द्विजों को भय होता है, अक्ष के भङ्ग हो जाने पर क्षत्रियों को भय होता है । तुला के भङ्ग होने पर वैश्यों का नाश होता है, शमी के भङ्ग होने पर शूद्रों को भय होता है । रथ के धुरा के भङ्ग हो जाने पर अनावृष्टि होती है । पीठ के भङ्ग होने पर प्रजा को भय होता है । रथ के भंग होने पर चक्रागम जानना चाहिए । हे विप्रो ! ध्वज के चक्र के पतन होने पर निश्चय ही अन्य नृप हुआ करता है । प्रतिमा के भंग होने पर राजा का मरण हुआ करता है ।५७-६३।

पर्यंस्ते तु रथे विप्राः सर्वंजानपदक्षयः ।
उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वशुगेषु च ।६४
बलिकर्मपुनः कुर्याच्छान्तिहोम तथैवच ।
ब्रह्मणान्भोजयेम्भूयो दद्याद्दान्नानिचैवहि ।६५
पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याऽग्निं प्रकल्पयेत् ।
समिद्भिघृतमध्वाज्यमूलाग्राभिश्च होमयेत् ।६६
पलाशाभिद्विजश्रेष्ठा मन्त्रराजेन दीक्षितः ।
सोमायाऽग्नयेप्रजाभ्यः प्रजानां पतये तथा ।६७
ग्रहेभ्यश्च ब्रह्मणे च दिक्पालेभ्यस्तदन्ततः ।
यत्र यत्र रथे दोषास्तत्र तत्र चदीक्षितः ।६८
जहुयात्प्रतिष्ठामन्त्रेण विशेषः सर्वतो भवेत् ।
ब्राह्मणेः सहितः कुर्याद्धामान्ते शान्तिवाचनम् ।६९
स्वस्ति भवतु विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यशः ।
गोभ्यः स्तस्ति प्रजाभ्यस्तु भगतः शान्तिरस्तु वै ।७०
स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्य शान्तिरस्तु चतुष्पदे ।
शं प्रजाभ्यस्तथैवाऽतु शं तथाऽऽत्मनि चास्तु नः ।७१
शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुवः स्वः शिवं तथा ।
शान्तिरस्तु शिवं चाऽस्तु सर्वतः स्वस्तिरस्तु नः ।७२
त्वं देव ! जगतः सत्रष्टापोष्टाचैव त्वमेव हि ।
प्रजाः पालय देवेश ! शान्तिकुरु जगत्पते ।७३
यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते ! ।
दुष्टान्ग्रहांस्तु विज्ञायगृग्रहशान्ति मथाचरेत् ।७४

हे विप्रगणो ! अशुभों के उत्पन्न होने पर तथा इस तरह के उत्पातों के होने पर पर्यंस्त रथ में सम्पूर्ण जनपदों का क्षय हुआ करता है । अतएव पुनः बलि कर्म्म करना चाहिए तथा उसी भाँति शान्ति होम करे । फिर ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिये अथवा अन्नों

का दान करना चाहिये। रथ के पूर्वोत्तर दिग्भाग में अग्नि की प्रकल्पना करे। घृत, मधु और समिधाओं से होम करना चाहिये।६४-६५-६६। हे द्विज श्रेष्ठो ! मन्त्रराज की दीक्षा से संयुत होकर पलाश की समिधाओं से सोम के लिए अग्नि, प्रजाजन, प्रजाओं के पति, ग्रहगण, ब्रह्मा और दिक्पालों के लिए उसके अन्त में जहाँ-जहाँ पर रथ में दोष हों वहीं पर दीक्षित होकर प्रतिष्ठा मन्त्र से हवन करना चाहिए। सभी ओर विशेष होता है। ब्राह्मणों के सहित होम के अन्त में शान्ति वाचन करना चाहिये।६७-६८-६९। विप्रों का कल्याण होवे और नित्य ही राजा का मङ्गल होवे, गौओं का तथा प्रजा का कल्याण हो एवं सम्पूर्ण जगत् को शान्ति प्राप्त होवे।७०। द्विपदों में नित्य ही शान्ति होवे तथा चतुष्पदों में शान्ति हो उसी भाँति प्रजाओं को मङ्गल होवे और हमारी आत्मा में शान्ति होवे। देव को शान्ति होवे तथा भूर्भुवः स्वः शिव हो। शान्ति हो और शिव हो। हमारा सभी ओर मङ्गल होवे।७१-७२। हे देवेश्वर ! आप ही इस जगत् के स्रष्टा-पौष्टा हैं। हे देव ! आप इस प्रजा का पालन करें। हे जगत्पते ! आप शान्ति करें। हे भूपते ! जहाँ पर अकारण भूत पुरुष के दुष्टग्रह हों उन्हें जानकर ग्रह शान्ति का समाचरण करें।७३-७४।

३२—रथ यात्रा महोत्सव विधि कथन

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिमहावेदीमहोत्सवम् ।
अज्ञानतिमिरान्धोऽपि येनभास्वत्पदव्रजेत् ।१
वैशाखस्याऽमले पक्षे तृतीयापापनाशिनी ।
स्वयामाविष्कृताचैषाप्राजापत्यर्क्षसंयुता ।२
तस्यां संकल्प्य नृपतिराचार्यंवरयेच्छुचिः ।
एकं त्रीनथ तक्षाणां दृष्टकर्माणमादरान् ।३
वृणुयाद्धनयागायवस्त्रालङ्करणादिभिः ।
तष्णासार्द्धं वनं गत्वा साधुवृक्षगणाकुलम् ।४

तन्मध्ये बह्निमाधायमन्त्रराजेनमन्त्रिम् ।
अष्टोत्तरशतहुत्वासम्पाताज्यविमिश्रतम् ।५
आज्यं तरूणां मूलेतुप्रत्येकमभिघारयेत् ।
दिक्पालेभ्योवलिदत्त्वाक्षत्रपालपशूंस्तथा ।६
वनस्पतये जुहुयात्क्षीरोदमशताहुतिम् ।
ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै ।७

श्री जैमिनी महर्षि ने कहा—इसके आगे मैं महावेदी के महोत्सव का वर्णन करता हूँ जिससे अज्ञान के तिमिर से अन्धा भी पुरुष भास्कर के पर को प्राप्त कर लिया करता है। वैशाख मास के अमल (शुक्ल) पक्ष में तृतीया तिथि पापों के नाश करने वाली हुआ करती है। यह प्राजापत्य नक्षत्र से संयुत स्वयं ही आविष्कृत हुई है। उनमें सकल्प करके राजा आचार्य का वरण करे और परम शुचि होकर एक तीन कक्षाओं का भी वरण करे जिनका कि काम पहिले देख लिया गया हो। बहुत ही आदर के साथ वनयाग के लिए वस्त्र तथा अलंकार आदि से इनका वरण करना चाहिए। बहुत अच्छे वृक्षों के गण से संकुल वन में तक्षा के साथ गमन करे। उनके मध्य में मन्त्रवेत्ता को मन्त्रराज के द्वारा वह्नि का आधान करना चाहिए। वहाँ पर सम्पाताज्य से विमिश्रित आज्य की एक सौ आठ बार आहुतियाँ देवे। तरुओं के मूल में प्रत्येक को अभिधारण करे। दिक्पालों को बलि समर्पित करके तथा क्षेत्रपाल पशुओं को बलि देकर एक सौ आहुतियाँ क्षीरोदन की वनस्पति के लिये देवे। इसके अनन्तर वृक्षमूलों की दिशाओं में परशु ग्रहण करके गमन करना चाहिए।१—७।

आज्यसंस्कृतिदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन् ।
किञ्चित्किञ्चछेदंयेद्वै चिन्तयग्गरुडध्वजम् ।८
नदत्सु तूर्यघोषेषु गोतमङ्गलबादिषु ।
नियोज्य वर्द्धकिं तत्र आचार्यः स्वगृहं व्रजेत् ।९

अथवास्थानथानलब्धानिदारूणिरथकर्मणि ।
उक्तसंस्कारविधिनासंस्कुर्यात्कल्पितेऽनले ।१०
आरभेत रथं कृत्वा विघ्नराजमहोत्सवम् ।
षोडशारैः षोडशभिश्चक्रैर्लोहमयैर्दृढैः ।११
युक्तं विष्णो रथं कुर्याद्दृढाक्षं दृढकूवरम् ।
विचित्रघटनाकक्षपुत्तलीपरिवेष्टितम् ।१२
नानाविचित्रबहुलमिक्षखण्डविराजितम् ।
चतुस्तोरणसंयुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ।१३
नानाविचित्रबहुल हेमपट्टविराजितम् ।
द्वाविंशतिकरोच्छायं पताकाभिरलङ्कृतम् ।१४

आचार्य्य वर को आज्य से संस्कृति सम्पन्न दोनों में मन्त्र का उच्चारण करते हुए भगवान गरुड़ध्वज की चिन्ता करते हुए कुछ-कुछ छेदन करना चाहिए ।८। सूर्यों की ध्वनियों के वजने पर गीत मङ्गलों के होने पर वहाँ पर वर्द्धकि को नियुक्त करके आचार्य्य वर को अपने घर पर चले जाना चाहिए ।९। अथवा रथ के कर्म्म में स्थान में प्राप्त काष्ठों का उक्त संस्कार विधि से कल्पित अनल में संस्कार करे। रथ को बनाकर विघ्न राज के महोत्सव का समारम्भ करना चाहिए । सोलह अराओं वाले लोहमय अत्यन्त सुदृढ़ सोलह चक्रों (पहिए) वाले दृढ़ाक्ष और सुदृढ़ कूवर रथ भगवान् का बनवावे । वह रथ विचित्र घटना कक्ष और पुत्तलिकाओं से परिवेष्टित होना चाहिए । वह अनेक प्रकार की विचित्र बाहुल्यों से समन्वित तथा इक्षु दण्ड से शोभित होवे । चार तरङ्गों वाला, चार द्वार से युक्त, अत्यन्त शोभन नाना अद्भुत वस्तुओं की बहुलता से संयुत, हेम पट्टे विराजित बनवावे यह रथ बत्तीस हाथ ऊँचाई वाला और पताकाओं से समलङ्कृत होना चाहिए ।१०—१४।

गारुडं च ध्वजं कुर्याद्रक्तचन्दननिर्मितम् ।
दीर्घनासंस्थूलधेहकुण्डलाभ्यांविभूषितमू ।१५
चञ्च्वग्रष्टभुजगंसर्वालङ्कारभूषितम् ।
वितत्य पक्षतीग्गोम्निउड्डीयन्तमिवोदितम् ।१६
दैत्यदानवसङ्घस्य बलदर्पविनाशनम् ।
सर्वांग तस्य कनकैराच्चाद्य परिशोभयेत् ।१७
रथमेवं हरेः कुर्यात्स्वासनं सुपरिष्कृतम् ।
चतुर्दशरथगैस्तं रथं कुर्याच्च सीरिणः ।१८
चक्रैर्द्वादशभिः कुर्यात्सुभद्रायारथोत्तमम् ।
सप्तच्चदमयं कुर्यात्सोरिणालांगलध्वजम् ।१९
देव्याः पद्मध्वजं कुर्याष्पद्मकाष्ठविनिर्मितमू ।
विरचय्य रथरातजाप्रतिष्ठां पूर्ववच्चरुत् ।२०
यथामन्त्रं यथाशा त्रं बिश्वसेद्ब्राह्मणेषु च ।
ब्राह्मणाजगदीशस्यजंगमास्तनवः ।२१

रक्त चन्दन से निर्मित गारुड़ ध्वज करे, दीर्घ नासा वाले, स्थूल देह वाला और कुण्डलों से विभूषित होना चाहिए ।१५। यह गरुड़ ऐसा बनावे जो अपने पंखों को फैला कर आकाश में उड़ान भरता हुआ सा प्रतीत होता हो । दैत्य और दानवों के संघ से बल के दर्प को विनष्ट कर देने वाले उसके सर्वांग को सुवर्ण से समाच्चादित करके परिशोभित करे । जिसका अपना आसन सुपरिष्कृत हो ऐसा ही श्री हरि के रथ का निर्माण करावे । बलभद्र जी के रथ को चौदह रथांगों से युक्त निर्मित कराना चाहिए । सुभद्रा देवी के रथ को बारह चक्रों (पहियों) से युक्त बनवाना चाहिए । सीरी के लाङ्गल ध्वज को सप्तछिद्रमय बनवावे । देवी सुभद्रा के पद्म ध्वज को पद्म के काष्ठ से निर्मित कराना चाहिए इस तरह से इन तीनों रथों की विशेष रूप से रचना कराकर राजा का कर्त्तव्य है कि पूर्व की ही प्राप्ति इनकी प्रतिष्ठा करावे । मन्त्रों और

शास्त्रों के ही अनुसार ब्राह्मणों में विश्वास करे। ये ब्राह्मण भगवान् जगदीश्वर के साक्षात् जङ्गम शरीर ही बतलाये गये हैं।१६-१७-१८-१९-२०-२१।

इत्थ सुघटितं चक्रित्रयं देवत्रयस्यवै।
आषाढस्य सिते पक्ष दिने विष्णोः सुभदे।२२
प्रतिष्ठाप्य समृद्धेनविधिनापूर्ववद्द्विजाः।
रक्षणीयंतथातत्र नाऽऽनोहेत्कश्चाऽशुभः।२३
पक्षी वा मानुषो वाऽपि मार्जानिरकुलादयः।
ततो दिनत्रयादर्वाग्रथानामुत्तरे कृते।२४
मण्डपे उत्सवांगे वाप्रकुर्यादङ्कुरार्पणम्।
अद्भतेष्वध जातेषु शान्ति कुर्यात्पूरीदिताम्।२५
रथ्यामसंस्कृनाकार्यामहावेदींतथाव्रजे।
पार्श्वयोर्मण्डलंकुर्यात्पथिगुल्मादिभिः फलैः।२६
सुमनः स्तबकैर्माल्यैर्दुकलैश्चामरैस्तथा।
यथा सुपुष्पिताऽरण्यराजी तत्र विराजते।२७
भूमिः समः च कार्या वै निष्पङ्का सुखचारणा।
निर्मला च सुगन्धा च सुदूराद्वर्जितोत्करा।२८

इस रीति से भली भाँति निर्मित कराये गए तीन देवों के तीस रथ जब तैयार हो जावें तो आषाढ़ मास के सित पक्ष में भगवान् विष्णु के शुभ प्रद दिन में हे द्विजो! पूर्व की ही भाँति समृद्ध विधि से प्रतिष्ठा करके वहाँ पर पूरी सावधानी से रक्षा करनी चाहिए। उन पर कोई अशुभ समारोहण न करे। चाहे वह कोई पक्षी हो, मनुष्य हो, मार्जार हो अथवा न कुल प्रभृति कोई भी हो। इनके पश्चात् तीन दिन पहले ही रथों के उत्तर में किए हुए मण्डप में अथवा उत्सवांग में अङ्कुरार्पण करें। इसके अनन्तर अद्भुत होने पर पहिले वर्णित शान्ति करनी चाहिए। रथ्या को सुन्दर संस्कार से युक्त करे फिर महावेदी पर गमन

करे। दोनों पार्श्व भागों में मण्डल की रचना करे। मार्ग में गुल्मादि से, फलों से, पुष्पों के गुच्छों से, मालाओं से वस्त्रों से तथा चामरों से ऐसा बना देवे जैसे कोई सुन्दर पुष्पों से युक्त वन की राशि ही यहाँ विराजमान होवे। वहाँ की भूमि समतल, पङ्कसे रहित और सुख पूर्वक संचरण करने वाली बना देनी चाहिए जो एकदम निर्मल, सुन्दर गन्ध से युक्त और दूर तक कूड़े-कर्कट से पूर्णतया रहित होवे।२२-२८।

धूपपात्राण्यनुपदं दिशामोदकराणि च।
चन्दनाम्भः परिक्षेपो यन्त्रपातोत्करस्तथा।२९
बहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्पवृष्ट्यर्थमेव हि।
नटनर्त्तकमुख्याश्च गायका बहवस्तथा।३०
बहवो बहुधा तत्र पताकाश्चित्रितान्तराः।
ध्वजाश्च बहवस्तत्र स्वर्णराजतनिर्मिताः।३१
वैजयन्त्यो बहुविधाभूमिगाबहनास्तथा।
हस्तिनश्चहयाश्चैवसुसन्नद्धाः स्वलङ्कृताः।३२
एव सम्भूतसम्भारः क्षितिपालः शुचिव्रतः।
मुदा भक्त्या च परया युक्तः कुर्यान्महोत्सवम्।३३
आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीयापुण्यसंयुता।
अरुणोदयवेलां तस्यां देव प्रपूजयेत्।३४
ब्राह्मणैर्वैष्णवै सार्द्धं यतिभिश्च तपस्विभिः।
विज्ञापयेद्देवदेवंयात्रासंस्कृताञ्जलिः।३५

दिशाओं में आमोद देने वाले धूप पात्र अनुपद रहें चन्दन के जल का परिक्षेप हो और मन्त्रपात का उत्कर भी होवे। पुष्पों की वर्षा करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में ऋतु पुष्प रहने चाहिए। नट तथा नृत्य करने वाले प्रमुख जन और बहुत से गायन करने वाले जन भी वहाँ पर रहें। रूप लावण्य तथा अलङ्कारों से विभूषित एवं

यौवन के गर्व से समन्वित वेश्याऐं भी उस उत्सवमें रहें। अनेक प्रकार के वाद्य जैसे मृदंग, पणव, भेरी और ढक्का आदि वहाँ होवें। जिनके अन्तर चित्रित होवें ऐसी बहुत प्रकार की बहुत सी पताकाएं होनी चाहिए। सुवर्ण और रजत (चाँदी) से निर्मित की हुई वहाँ पर अधिक संख्या में ध्वजाएं होवें वैजयन्ती हों और अनेक तरह के भूमि में गमन करने वाले वाहन भी वहाँ पर रहने चाहिए। हाथी और अश्व सुसन्नद्ध एवं भली भाँति अलंकृत होवे। इस प्रकार से सम्भृत सम्भार वाले तथा शुचि व्रत से संयुत राजा को बड़ी ही प्रसन्नता और परा भक्ति साथ इस महोत्सव को करना चाहिए। आषाढ़ मास के शुक्ल-पक्ष में जब द्वितीया तिथि पुण्य नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन अरुणोदय की बेला में उसमें देव की प्रकट रूप से पूजा करे। ब्राह्मण, वैष्णवजन, यति वर्ग और तपस्वियों के साथ संस्कृताञ्जलि होकर यात्रा के लिए देवोंके भी देव प्रभू की सेवा में विज्ञापित करे।२९-३०-३१-३२-३३-३४-३५।

२७—भगवतः शयनोत्सवविधिवर्णनम्

अतः परम्प्रवक्ष्यामिशयनोत्सवमुत्तमम्।
आषाढीमवधि कृत्वा हरेः स्वापस्तुकर्कटे।१
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यावत्स्यात्कार्तिकी द्विजाः।
अयं पुण्यतमः कालीं हरेराराधनम्प्रति।२
काश्यां बहुयुगं वासान्नियमव्रतसंस्थितेः।
फलं यदुक्तं तद्विद्यात्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे।३
चातुर्मास्यदिनैकेन वसतः सन्निधौ हरेः।
वार्षिकाणांचतुर्णांतु यान्यहानिवसन्नयेत्।४
पुण्यक्षेत्रे जगन्नाथसन्निधौ निर्मलान्तरे।
प्रत्यक्षं वाजिमेधस्य सहस्रस्यलभेत्फलम्।५

स्नात्वासिन्धुजले पुण्ये दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
चातुर्मास्यव्रतेतिष्ठन्नशोचतिकुतश्चन ।६
चातुर्मास्ये निवसति क्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे ।
साक्षाद्दृष्टिर्भगवतस्तद्द्वयं मुक्तिसाधनम् ।७

महर्षि जैमिनि ने कहा—इससे आगे मैं भगवान् का अत्युत्तम शयनोत्सव का वर्णन करूँगा। आषाढ़ी अवधि को करके कर्कट में श्रीहरि का शयन होता है। हे द्विजगण ! ये वर्ष में चार मास होते हैं और जब तक कार्त्तिकी होती है तब तक ये मास हुआ करते हैं। यह भगवान श्रीहरि की आराधना करने का परम पुण्य काल हुआ करता है।१-२। नियमों और व्रतों की सस्थिति वाले पुरुष को काशी पुरी में बहुत युग पर्यन्त निवास से जो पुण्य फल होता है और बताया गया है वह इस श्री पुरुषोत्ताम क्षेत्र के निवास करने जानना चाहिये। चातुर्मास्यके एक ही दिन तक श्री हरि की सन्निधिमें निवास करने वाले को वार्षिक चारमासों के जितने दिन होते हैं उनमें वास करते हुए बिताने चाहिए। इस निर्मल अन्तर वाले परम पुण्य क्षेत्र में श्री जगन्नाथजी की सन्निधि में निवास करने वाले पुरुष को प्रत्यक्ष एक सहस्र अश्वमेघ यज्ञों का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है। सिन्धु के जल में स्नान करके जो परम पुण्य पूर्ण और श्री पुरुषोत्ताम प्रभू का दर्शन करके जो चातुर्मास्य व्रत में स्थित रहता है वह कहीं भी शोक से युक्त नहीं हुआ करता है। जो चातुर्मास्य में श्री पुरुषोताम क्षेत्र में निवास किया करता है उस पर भगवान् की साक्षात् दृष्टि होती है और वह मुक्तिका परम साधन होता।३-७।

तस्मात्सर्वाणि सन्त्यज्य श्रौतस्मार्त्तानि मानवः ।
प्रयत्नान्निवसेत्पुण्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।८
भोगिभोगासने सुप्तश्चातुर्मास्येषु वै प्रभुः ।
सर्वक्षेत्रेषुसान्निध्यनकरोति जगत्द्गुरुः ।९

अत्र साक्षान्निवसति यथा वैकुण्ठवेश्मनि ।
द्वादशस्वपि मासेषु भगवानत्र मूर्त्तिमान् ।१०
मुक्तिदश्चक्षुषा दृष्टश्चातुर्मास्ये विशेषतः ।
अष्टगानिवासेन दृष्ट्वा विष्णुं दिने दिने ।११
यदाप्नोति फलं तद्धि चातुर्मास्यदिनैकतः ।
चातुर्मास्यनिवासेन क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।१२
दिन दिन महापुण्यं सवक्षेत्रनिवासजम् ।
फल ददाति भगवान्क्षेत्रे वर्षनिवासतः ।१३
सर्वपापप्रसक्तोऽपि सर्वाऽऽचारच्युतोऽपि च ।
सर्वधर्मबहिर्भूतो निदसेत्पुरुषोत्तमे ।१४
चातुर्मास्यमथैक यः कुर्याद्ध पापकृन्नरः ।
विहाय सर्वपापानि बहिरन्तश्च निर्मलः ।
नरसिंहप्रसादेन वैकुण्ठभवनं व्रजेत् ।१५

इसलिए समस्त श्रौत और स्मार्त्त साधनों का परित्याग करके मनुष्य को चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक परम पुण्यमय श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में ही जाकर अपने कल्याण प्राप्त करने के लिए निवास करे ।८। शेषकी शय्या पर चातुर्मास्यों में शयन करने वाले प्रभू प्रगत् गुरु अन्य समस्त क्षेत्रों में सान्निध्य नहीं किया करते हैं । यही एक स्थल ऐसा है जहाँ पर वैकुण्ठ के घर की भाँति वे साक्षात् निवास किया करते हैं जहाँ वर्षा के बारहों मासों में भगवान् मूर्तिमान निवास किया करते हैं और अपने नेत्रों से दर्शन करने वाले को मुक्ति प्रदान करने वाले होते हैं और चातुर्मास्य में विशेष रूप से कृपा किया करते हैं । अन्य वर्ष के आठ मासों में प्रतिदिन विष्णु के दर्शन करने से जो फल प्राप्त होता हैं वह चातुर्मास्य के केवल एक ही दिन में दर्शन करने से हुआ करता है । श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में चातुर्मास्य के निवास से दिन-दिन में समस्त क्षेत्र में निवास से समुत्पन्न महा पुण्य हुआ करता है । वर्ष भर निवास

से क्षेत्र में भगवान् फल देते हैं। सब पापों से प्रमक्त भी, समस्त आचार से च्युत भी सब धर्मों से वहिर्भूत भी जो पापी मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में एक चातुर्मास्य में निवास करता है वह सब पापों को त्यागकर बाहिर भीतर से निर्मल होता नरसिंह के प्रसाद से वैकुण्ठ भवन में गमन किया करता है।९-१५।

तस्मान्नरः सर्वभावैर्विष्णोः शयनभाविताम् ।
वार्षिकांश्चतुरोमासान्निवसेत्पुरुषोत्तम् ।१६
कुर्यादन्यन्न वा कुर्याज्जन्मसाफल्यमृच्छति ।१७
आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वापमहोत्सवम् ।
मण्डपं रचयेत्तत्र शयनागारमुत्तमम् ।१८
देवस्य पुरतः शय्यारत्नपल्यङ्किकोपरि ।
स्वास्तीर्यैसोपधानांतु मृदुचीनोत्तरच्छदाम् ।१९
कर्पूर धूलिविक्षिप्तांसाध्रुचन्द्रातपांशुभाम् ।
सर्वतोवेष्टितांछिद्ररहितां चन्ददीक्षिताम् ।२०
साधद्वारां समां स्निग्धां नानाचित्रोपशोभिताम् ।
एकं स्वापगृहं कृत्वा निशीथे प्रतिमात्रयम् ।२१
एह्य हि शयनागारं सुखमत्र स्वप प्रभो ।
इति सम्प्राप्यं देवेशं स्वापयेत्पुरुषोत्तामम् ।२२
सुदृढंबन्धयेद्द्वारं विष्णोः शयनवेश्मनः ।
स्वापयित्वाजगन्नाथं लभते सुखमुत्तामम् ।२३
वार्षिकांश्चतुरोमासान्प्रसुप्ते वै जनार्दने ।
व्रतैरनेकैर्नियमैर्मासान्वै चतुरः क्षिपेत् ।२४

इसलिए मनुष्य को सब प्रकार के भावों से विष्णु के शयन से भक्ति वार्षिक चार मास तक उस श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करना चाहिए। अन्य कुछ करे अथवा न करे यदि मानव-जीवन की सफलता

चाहता है तो यह अवश्य ही करना चाहिए ।१६-१७। आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी में इस शयन के महोत्सव को करे। वहां पर मंडन की रचना करे और उत्तम शयनागार की रचना भी करनी चाहिए। देव के आगे एक रत्न निर्मित पल्यङ्किका के ऊपर शय्या रक्खे। उस पर सुन्दर आस्तरण बिछाकर उपवास रक्खे और अत्यन्त मृदु बारीक उत्तरच्छद रक्खे। यह शय्या कर्पूर की मूलि से विक्षिप्त करे तथा साधु चन्द्रातप वाली बनावे। सब ओर से वेष्ठित और छिद्रों से रहित एवं चन्दन से उक्षित करे। उस शय्यामें एक बहुत अच्छा द्वार बनावे। शय्या सम, स्निग्ध और अनेक चित्रों से उपशोभित निर्मित करावे। ऐसा एक शयन गृह बनाकर अर्ध रात्रि में तीनो प्रतिमाओ का शयन कराना चाहिए। वहाँ पर प्रार्थना करे—हे प्रभो ! इस शयनागार में आप पदार्पण कीजिये और यहाँ पर आप सुखपूर्वक शयन कीजिए। अच्छी तरह प्रार्थना करके देवेश श्रीपुरुषोत्तम प्रभू को वहाँ पर शयन करावे। वहाँ के द्वार को सुदृढ़ता से बन्धित कर देवे जिसमें कि भगवान विष्णु का शयन गृह हो। इस प्रकार से भगवान् जगन्नाथ को सुलाकर परमोत्तम सुख को मनुष्य प्राप्त किया करता है वर्ष में चार मास पर्य्यन्त भगवान् जनार्दन के प्रसुप्त हो जाने पर अनेक नियमों तथा व्रतों के द्वारा वहीं पर चार मासों को व्यतीत करना चाहिये। ।१८-२४।

कल्पस्थायीविष्णुलोकेनरोभक्तोभवेद्ध्रुवम् ।
नियमव्रतानि गदतः शृणुध्वंमुनयो मम ।२५
पञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेत्भक्तिमान्नरः ।
अनृतौ न व्रजेद्भार्यां मासं मधु परौदनम् ।२६
राजगोपयतीस्त्यक्त्वा नाऽऽरोहेच्चमंपादुके ।
वार्षिकांश्चतुरो मासानव्रतेन नयेद्यदि ।२७

जो ऐसा करता है वह मनुष्य विष्णु लोक में एक कल्प तक स्थित रहता है और वह नर निश्चित रूप से परम भक्त होता है। जो नियम एवं व्रत मैंने बतलाये थे उनको भी अब हे मुनिगण! मुझसे श्रवण कर लो भक्तिमान मनुष्य को मञ्च और खट्वा आदि का शयन चार मास पर्यन्त त्याग देना चाहिये। ऋतुकाल के बिना कभी भी भार्या का शयन न करे। मधु माँस और पराम्न को त्याग देवे। राज गोप यतियों का त्याग करके चमड़े के जूते न पहिने चार मास तक इसी तरह के व्रतों से रहना चाहिये।२५-२७।

तस्य पापस्य यान्त्यर्थं कार्तिके वा व्रती भवेत्।२८
नमः कृष्णाय हरये केशवाय नमोनमः।
नमोऽस्तु नारसिंहाय विष्णवे पापजिष्णवे।
सायम्प्रातर्दिवामध्ये कर्मान्तिषु च योजयेत्।२९
तस्य पापानि घोराणि चित्तानिबहुजन्मसु।
निर्दहत्येव सर्वाणितूलराशिमिवानलः।३०
एकाराहरोयताहारोविष्णुनिर्माल्यभोजनः।
आसाढीमवधिकृत्वाकार्त्तिक्यवधियोभवेत्।३१
नक्तभोजी भवेद्वाऽपि स्वर्गस्तस्याऽल्पकफलम्।३२

उस पाप की शान्ति के लिए अथवा कार्त्तिका मास में इस रीति से व्रतों वाला होकर रहे।२८। श्रीकृष्ण हरि केशव के लिए बारम्बार नमस्कार है। नरसिंह, विष्णु पापों को जीतने वाले प्रभू के लिए बार-म्बार नमस्कार है। इसको सांयकाल, प्रातःकाल और दिवा के मध्य में कर्मान्तों में इस मन्त्रका योजन करना चाहिए।२९। ऐसा करने वाले पुरुष को बहुत जन्मों में सञ्चित घोर पापों का भी निःशेष रूप से दहन हो जाया करता। ये समस्त ऐसे जलकर भस्म हो जाया करते हैं। जैसे रुई के ढेर को अग्नि जला दिया करता है। एक समय में

अआहार करे नियत भोजन करे, भगवान् विष्णु के निर्माल्य का ही भोजन करे। इस तरह से आषाढ़ मास की एकादशी की अवधि से कार्तिक मास की एकादशी की अवधि तक करना चाहिये अथवा केवल एक ही बार रात्रि में भोजन किया करे तो उस पुरुष के लिए स्वर्ग का वास प्राप्त होना तो बहुत ही स्वल्प फल होता है।३०-३२।

२८—भगवत् प्रसादनिर्माल्यादिमाहात्म्यवर्णनम्

समस्तजगदाद्याश्रीः सृष्टिस्थितिविनाशकृत्।
वैष्णवीशक्तिरतुलाविष्णुदेहार्द्धं हारिणी।१
सुधोपमं सुपक्वान्नं भुङ्क्ते नारायणः प्रभुः।
तदुच्छिष्ठोपभोगो हिसर्वाघक्षयकारकः।२
नताहृशसमंयुण्यवस्त्वस्तिपृथिवीतले।
प्रायश्चित्तशेषाणाम्पापानापरिकीर्तितम्।३
भगवत्पादपद्मानुप्रेक्षणोपासनादिभिः।
पापसंस्कार कर्तृणा सम्पर्कात्तु न दुष्यति।४
पद्मायाः सन्निधानेन सर्वं तेशुचयः स्मृताः।
विष्णवालयगततद्धिनिर्माल्यपतितादयः।५
स्पृशन्त्यत्रंन दुष्टंतद्यथाविष्णुस्तथैव तत्।
व्रतस्थाविधवाश्चैवसर्वेवर्णाश्रमास्तथा।६

समस्त उस जगत् की आद्या और सृष्टि, स्थिति और विनाश के करने वाला, अतुला वैष्णवी शक्ति भगवान् विष्णु के देहार्ध को धारण करने वाली हैं।१।

प्रभू सुधा के समान और सुपच्च अन्न को खाया करते हैं। उनके उच्छिष्ट का उपयोग ही समस्त अघों के क्षय को करने वाला होता है। सब पृथिवी में उसके समान पुण्य वस्तु अन्य नहीं है। यह श्रीभगवान् के प्रासाद का सुपभोग समस्त पापों का प्रायश्चित कहा गया है।२-३। श्री भगवान के चरण कमलों का अनुप्रेक्षण और उपासना आदि पापों के संस्कार करने वालों को सम्पर्क से भी कोई दोष नहीं लगा करता है।४। भगवती पद्मा के सन्निधान से वे सब शुचि ही कहे गये हैं। भगवान् विष्णु के आलय में रहने वाला वह निर्म्माल्य है उसको जो पतित आदि पुरुष स्पर्श किया करते हैं वह अन्न दुष्ट नहीं होता है और विष्णु है वैसा वह भी होता है। व्रतों में स्थित चाहे विधवा हों या किसी भी वर्ण में स्थित रहने वाले तथा किसी भी आश्रम में स्थित हो उस प्रसाद के खाने से पवित्र हो जाया करते हैं।५-६।

तत्प्राशनेन पूयन्ते दीक्षिताश्चाग्निहोत्रिणः।
द्ररिद्रः कृपणो वाऽपि गृहस्थः प्रभुरेवया।८
स्वदेश्याः परदेश्या वा सर्वेतत्रसमागताः।
नाभिमानंप्रकुर्वीरन्विष्णोर्निर्माल्यभक्षणे।९
भक्त्या लोभात्कौतुकाद्वा क्षुधासंशमनेनवा।
आकण्ठभक्षितंतद्धि पुनाति सकलांहसः।१०
सर्वरोगोपशमनं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्।
दारिद्र्यहरण श्रेष्ठं विद्यायुः श्रीप्रद शुभम्।११
पक्षपातो महांस्तत्रविष्णोरमिततेजसः।
निन्दन्ति ये तदमृतं मूढा पण्डितमानिनः।१२
स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते ताऽपराधिनः।
येषामन्नं स दण्डश्चेद्ध्रुवातेषांहि दुर्गतिः।१३

कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे।
न विक्रयः क्रयो वाऽपि प्रशस्तस्तस्य भो द्विजाः ।१४
निर्माल्यं जगदीशस्य नाऽशित्वाऽश्नामि किञ्चन।
इति सत्यप्रतिज्ञो यः प्रत्यहं तच्च भक्षयेत् ।१५
सर्वपापविनिर्मुक्तः शुद्धान्तः करणो नरः।
स शुद्धं वैष्णवस्थानं क्रमाद्यातिन संशयः ।१६

उस महा प्रसाद के प्राशन करने से दीक्षित और अग्नि होत्री पवित्र हो जाते हैं। दरिद्र हो या कृपण हो, गृहस्थ हो या प्रभू हो, अपने देश के रहने वालेहों या किसी दूसरे देश के निवासी हों, सभी वहां पर समागत हुए हैं वहाँ पर विष्णु के निर्म्माल्य के भक्षण करने में अपने जाति वर्ण और पद आदि अभिमान नहीं करना चाहिए ।८-६। महा प्रसाद की भक्ति से, उदर पूर्त्ति के लोभ से अथवा क्षुधा के निवारण करने के कारण से किसी भी तरह से कण्ठ पर्यंन्त भक्षण किया हुआ वह महा प्रसाद (जगन्नाथ जी का प्रसादी भात) सब प्रकार के पापों से मुक्त कर पवित्र कर दिया करता है। यह सब रोगोंका उपशयन करने, वाला, पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाला, दरिद्रताको दूर भगा देने वाला, विद्या, आयु और श्री को प्रदान करने वाला परम श्रेष्ठ एवं शुभ होता है।१०। अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का वहाँ पर महान पक्ष, पात है। जो लोग उस अमृत की निन्दा किया करते हैं वे महान् मूढ़ और पण्डित भावी हुआ करते हैं। स्वयं उनके लिए प्रभू दण्ड धर होते हैं और उनके अपराधों को वे सहन नहीं किया करते हैं। जिनको यहां पर तो वह दण्ड होता है और उसकी निश्चित ही दुर्गति हुआ करती हैं।११-१२। वे लोग अत्यन्त घोर कुम्भी पाक नायक नरक में जो अत्यन्त दारुण होता है यातनाएं भोगा करते हैं। हे द्विजगण ! उस महा प्रसाद का क्रम अथवा विक्रय भी प्रशस्त नहीं हुआ करता है। जगदीश के निर्माल्य को अशन करके अन्य कुछ भी नहीं खाऊँगा—इस

तरह से सत्य प्रतिज्ञा वाला जो होता है और जो प्रतिदिन उसका ही, भक्षण किया करता है वह शुद्ध अन्तःकरण वाला मनुष्य सभी तरह के पापों से विनिर्मुक्त हो जाता है तथा वह क्रम से परम शुद्ध वैष्णव स्थान को गमन किया करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१३।।१४-१५।

चिरस्थमापि संशुष्कं नीतं वा दूरदेशतः ।
यथातथोपयुक्तं तत्सर्वं पापापनोदनम् ।१६
कुक्कुरस्य मुखाद्भ्रष्टं तदन्नं पतितं यदि ।
व्राह्मणेनाऽपि भोक्तव्यमितरेषांतुकाकथा ।१७
उपोष्य तिष्ठता वाऽपि नोपवास च कुर्वता ।
अशुचिर्वाप्यनाचारोमनसापापामाचरन् ।
प्राप्तमात्रेत्रण भोक्तव्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ।१८
नैवेद्यान्न जगद्भत्तुर्गाङ्गं वारि सम द्वयम् ।
दृष्टेः स्वर्गादिमम्प्राप्तभंक्षणाच्चाऽघनाशनम् ।१९
तगद्धात्र्या हि यत्पक्व वैष्णवेऽग्नौ सुसंस्कृते ।
धुञ्ना क्तेन्वहं छक्रपाणियुंगमन्वन्तरादिषु ।२०
सप्तदीपधराध्ये सान्निमध्यं नेदृश हरेः ।
यादृशंनीलगोत्रेऽस्मिन्व्याजमानुषचेष्टितम् ।२१

बहुत अधिक समय तक रहा हुआ, भली भाँति सूखा हुआ दूर देश से लाया हुआ और जैसे-तैसे भी प्राप्त होने वाला वह भी जगदीश भगवान का महा प्रसाद सब पापों का अपनोदन करने वाला होता है। यदि वह अन्न कुक्कुर के मुख से भी भ्रष्ट होकर पतित हो गया हो तो भी उसका ब्राह्मण के द्वारा खा लेना चाहिए अन्यों की तो बात ही क्या है। उपवास करके स्थित रहने वाले तथा उपवास न करने वाले को उसका भक्षण करना चाहिए। अशुचि हो अथवा आधार से हीन हो तथा मन से पापों का समाचरण करने वाला हो कैसी भी दशा में क्यों न स्थित हो जैसे ही श्री जगदीश प्रभू का महा प्रसाद प्राप्त हो

वैसे ही तुरन्त ही उसका भक्षण कर डालना चाहिए—उसमें तनिक भी विचार नहीं करे।१६-१७-१८। जगत् के स्वामी का नैवेद्यान्न और गङ्गा का जल ये दोनों ही समान होते हैं। इनके दर्शन मात्र से स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति होती है। और इनके भक्षण करने से अघों का नाश हुआ करता है।। संस्कृत वैष्णव अग्नि में जिसको जगत् की धात्री के द्वारा पक्व किया गया है और युग मन्वन्तरादि में जिसको भगवान् चक्रमाणि स्वयं खाते हैं। इस सात द्वीपों वाली धरा के मध्य में ऐसा श्री हरि का सान्निध्य नहीं है जैसा कि इस नील गोत्र में भगवान् का व्याज मानुष वेष्टिक है अर्थात् मानव शरीर धारण करके एक बहाने से जैसे लीलाएँ यहाँ पर की हैं।१६-२०-२१।

दारुरूपं परंब्रह्म सर्वचाक्षुषगोचरम् ।
प्रकाशते भो मुनयो न दृष्टं नश्रुतं क्वचित् ।२२

तस्मै प्रवृत्तिरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
प्रवृत्तिरूपा शक्तिः श्रीः प्रवर्तयति यद्धविः ।२३
तदश्नाति जगन्नाथस्तच्चतछेष दुरितापहम् ।
किमत्र चित्रं भो विप्रायदुक्तं मुक्तिकारणम् ।२४

नाऽल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते ।
वेदचारप्रधानेषु युगेष्वेतत्प्रकीर्तितम् ।२५
महिमानं न वे दास्य विशेषाच्चछ्रूयतां कलौ ।
घोरे कलियुगे तस्मिंस्त्रिपादो धर्मविप्लवः ।२६
धर्मः स्यादेकपादरतुक्वचित्तस्य भयाच्चरेत् ।
सर्वेऽनृतप्रधानाहि दाम्भिकाः शठवृत्तयः ।२७
प्रायश्च धर्मविमुखा जिह्वोपस्थपरायणाः ।
न ध्यायन्ति तपस्यन्तिव्रतयन्तिकदाचन ।२८

हे मुनि गणो ! दारु (काष्ठ) के स्वरूप में साक्षात् पर ब्रह्म यहाँ पर सबके चक्षुओं के द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन देने वाले हैं और प्रकाश

वाले हो रहे हैं ऐसा कहीं पर भी न कभी देखा ही है और न कहीं पर श्रवण ही किया है।२२। उस प्रवृत्ति के स्वरूप वाले परमात्मा ब्रह्म के लिए प्रवृत्ति स्वरूप वाली शक्ति श्री जिस हविको प्रवृत्त किया करती है। उसी को श्री जगन्नाथ प्रभू अशन किया करते हैं। उसका जो शेष है वह, पापों को अपहरण करने वाला है। हे विप्रगण ! इसमें क्या अद्भुत बात है जिसको मुक्ति प्रदान कर देने वाला कारण कहा गया है। जो अति स्वल्प पुण्य वाले पुरुष होते हैं उनका उसमें विश्वास ही नहीं हुआ करता है। वेदोचार प्रधान युगों में यह प्रकीत्तित है। इस कलियुग में इसकी महिमा नहीं जानते हैं और विशेष रूप से सुनिये। इस महान् घोर कलियुग में विषाद धर्म का विप्लव होता है अर्थात् धर्म के तीन पाद होते हीं नहीं हैं।२३-२४-२५-२६। धर्म केवल एक ही पाद वाला है सो भी विचारा उस के भय से कहीं पर चरण किया जाता है। इस कलियुग में सभी लोग मिथ्या की प्रधानता वाले हैं—दम्भ से परिपूर्ण हैं और एक दम शठता की वृत्ति वाले हैं। इस युग में प्राय: मनुष्य धर्म से विमुख रहने वाले होते हैं और वे केवल जिह्वा के स्वाद के लालची तथा उपस्थ (जननेन्द्रिय) के रसास्वादन करने में तत्पर रहा करते हैं। न तो ये लोग कभी कुछ ध्यान ही किया करते हैं, न कुछ तपश्चर्या करने को और उनका थोड़ा सा भी झुकाव होता है और न ये कोई व्रत एवं नियमों के ही पालक होते हैं। ।२७-२८।

अधर्मं वहुला: सर्वे हिंसका लोलुपा: परम् ।
परेषां परिवादेंन तुष्यन्ति स्वकृतंविना ।२९
प्रसङ्गात्कौतुकाद्वऽपि निध्नन्ति परकमं वै ।
क्षुद्रकार्याशयात्स्वस्यपरकार्यप्रबाधका: ।३०
धर्मलब्धाँ स्त्रिय रम्यामवज्ञाय स्ववेश्मनि ।
परयोषिति निन्द्यायाँ प्रसक्ता: पशुचेष्टिता: ।३१

अग्निहोत्रादिकं वाऽपि व्रतं नाक्न्यत्क्वत्क्वचित् ।
जीविका तद् द्विजातीनां येषां वा पारलौकिकम् ।३२
अव्रताधीतवेदेन अन्यायाऽऽप्तधनेन च । ·
वित्ताशाठ्येन च कृतं न तथा फलदायि तत् ।३३
प्रायं कलियुगे भुपाः प्रजाजनपराङ्मुखाः ।
करादानपरानित्यं पापिष्ठाश्चौर्यवृत्तयः ।३४
वर्णसङ्करिणः सर्वे शूद्रप्रायाः कलौयुगे ।
हर्तारः पार्थिवाः एव शूद्राश्च नृपसेवकाः ।३५

सभी लोग अति अधर्म करने वाले हैं, सब हिंसक, परम लोलुप और स्वकृत के बिना दूसरों की निन्दा करके ही सन्तुष्ट होने वाले हैं। प्रसङ्ग अथवा कौतुक से ही दूसरे के कर्मों का हनन करने वाले हैं। आपने बहुत ही तुच्छ कार्य के सिद्ध करने के विचार से दूसरों के बड़े-बड़े कार्य के बाधक हो जाया करते हैं। धर्म विधि से प्राप्त हुई सुन्दर स्त्री का अपने घर में अपमान करके पराई निन्दनीय स्त्री में प्रसक्ति करने वाले पशु के समान चेष्टा वाले हैं। अग्निहोत्र आदि व्रत तथा अन्य कहीं-कहीं पर नहीं हैं, यही उसकी जीविका है जिनका पारलौकिक भी नहीं है। बिना व्रत वाले और बिना वेदों के अध्ययन वाले के द्वारा तथा अन्याय से प्राप्त किये हुए धन वाले के द्वारा और वित्त शाठ्य वाले के द्वारा जो किया गया है वह फलदायी नहीं हुआ करता है। बहुधा इस कलियुग में राजा लोग अपनी प्रजा के मनुष्यों के विमुख ही हुआ करते हैं। नित्य ही वे करों के वसूल करने में तत्पर, महा पापी और चोरों की वृत्ति वाले होते हैं। कलियुग में वर्णशङ्कर और प्रायः शूद्र ही होते हैं। राजा लोग हरण करने वाले हैं और नृपों के सेवक भी सब शूद्र होते हैं।२९-३५।

श्रौतस्मार्तादिकं कर्म न तथासदनुष्ठितम् ।
युगे चतुर्थे भो बिप्राः परलोकायकल्पिते ।३६

दानधर्मः परो ह्येष नाऽन्योधर्मः प्रशस्यते ।
कर्मणा मनसा वाचा हितविच्छेद् द्विजन्मनाम् ।३७
इतिहोवाचभगवान्ब्राह्मणोनामकीर्तनुः ।
ब्राह्मणायस्यसन्तुष्टाः सन्तुष्टस्यचाप्यहम् ।३८
उभयत्र समो भूयाद्ब्राह्मणे च जनार्दने ।
यद्वदन्तिद्विजावांक्य तत्स्वयं भगदान्वदेत् ।३९
यथा तथा वर्तमानो वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
भगवानपि देवेशः सः साक्षाद् ब्राह्मणमप्रियः ।४०
सदाऽवतारं कुरुते ब्राह्मणार्थं जनादनः ।
तत्पालनार्थं दुष्टान्वै निगृह्णाति युगे युगे ।४१
ससर्जब्राह्मणानग्रे सृष्ठ्यादौ स चतुर्मुखः ।
सर्वे वर्णाः पृथक्पश्चात्तेषां वंशेषु जज्ञिरे ।४२

हे विप्रो ! जो परलोक के लिये कल्पित हैं वे श्रौत और स्मार्त्त आदिक कर्म उस प्रकार से भली भाँति अनुष्ठित नहीं होते हैं यह चौथा युग कलियुग ऐसा ही है । यह दान का धर्म ही सबसे परम है और अन्य धर्म कोई भी प्रशस्त नहीं माना जाता है । मन-वचन और कर्म से द्विजन्माओं के हित की इच्छा करनी चाहिए ।३६-३७। भगवान् ने यही कहा था कि ब्राह्मण मेरा ही शरीर होता है । जिस पुरुष से ये ब्राह्मण सन्तुष्ट होते हैं उसमें मैं भी परम सन्तुष्ट रहा करता हूँ दोनों के प्रति अर्थात् ब्राह्मण तथा भगवान् जनार्दन में सम भाव वाला होना चाहिए । जो वचन ब्राह्मण लोग कहा करते हैं यह समझना चाहिए कि उसे स्वयं भगवान् ही कह रहे हैं । जैसा-तैसा भी वर्त्तमान रहने वाला ब्राह्मण सब वर्णों का गुरु होता है । देवेश्वर भगवान् भी साक्षात् ब्राह्मणों से प्यार करने वाले होते हैं । भगवान् जनार्दन इन ब्राह्मणों के ही हित सम्पादन करने के लिए ही सदा अवतार ग्रहण किया करते हैं । उनके पालन करने के लिए ही युग-युग में प्रभू दुष्टों का निग्रह

किया करते हैं। चतुर्मुख ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि काल में आगे ब्राह्मणों का ही सृजन किया था। अन्य सब वर्ण पीछे पृथक इन्हीं के वंशों में समुत्पन्न हुये थे।३८-४२।

तस्मात्कलियुगे तस्मिन्ब्रह्मणो विष्णुरेव च।
उभौ गतिश्च सर्वेषां ब्राह्मणानां हरिर्गतिः।४३
हरिरेबाऽत्र सर्वेषांगतिः प्राप्तेकलौयुगे।
शालग्रामादिके क्षेत्रे स्मर्यंतेकीर्त्यंतेऽपि च।४४
तस्मन्नीलाचलेपुण्ये क्षेत्रे क्षेत्रे क्षेत्रज्ञवर्ष्मणि।
जीवभूतः स सर्वेषां दारुव्याजशरीरभृत्।४५
कलिकल्मषनाशाय प्रायो दुष्कृतकर्मणाम्।
दर्शनस्तवनोच्छिष्टभोजनैर्मुक्तिदायकः।४६
उच्छिष्टेन सुरेशस्य व्याप्तंयस्यकलेवरम्।
तदाहारस्तदात्माहिलिप्यते न सपातकैः।४७
निवेदनीयमन्यासु मूर्तिष्बीशस्य वर्तते।
पावनं तदपि प्रोक्तमुच्चिचष्टं तु विमोचकम्।४८
भुङ्क्ते त्वत्रैवभगवान्पश्यत्यन्यत्रक्षुषा।
पुराऽयप्रार्थितो देवो योगिभिः परिवेष्टितः।४९
निर्माल्योच्छिष्टभोगेन तव मायाँ जयेमहि।
अत्यन्तस्तिंमताक्षाणामनासेन मुक्तिदः।५०

इसीलिए इस कलियुग में ब्राह्मण ही साक्षात् विष्णु हैं। सबकी ये दोनों ही गति होते हैं अर्थात् उद्धार करने वाले हैं और ब्राह्मणों की भगवान श्री हरि हुआ करते हैं।४३। इस कलियुग के प्राप्त होने पर सबकी गति यहाँ पर श्री हरि ही हुआ करते हैं। शालग्राम आदि क्षेत्र में श्री हरि का स्मरण तथा कीर्त्तन किया जाया करता है। उस पुण्य मय क्षेत्र नीलाचल में जो क्षेत्रज्ञ का धर्म है। उसमें वह दारु के व्याज से शरीर को धारण करने वाले सबको जीव भूत हैं। कलि के

कल्मषों के नाश के लिए जो कि बहुधा दुष्कृत कर्मों वाले मनुष्यों होते हैं वह भगवान् अपने दर्मन, स्तवन, उच्छिष्ट भोजनों के द्वारा मुक्ति प्रदान करने वाले होते हैं ।४४-४५-४६। सुरेश प्रभू के उच्छिष्ट से जिस मानव या प्राणी का शरीर व्याप्त रहता है। उसी महा प्रसाद के आहार करने वाला तथा उसी में अपनी आत्मा के ध्यान को लगाने वाला पुरुष पातकों से कभी भी लिप्त नहीं हुआ करता है। अन्य मूर्त्तियों में जो निवेदनीय होता है वह भी ईश को ही होता है। उनको भी परम पावन कहा गया है और वह उच्छिष्ट भी विमोचन करने वाला होता है। भगवान् यहीं पर भोजन किया करते हैं और चक्षु के द्वारा अन्यत्र देखते हैं। पहिले योगियों के द्वारा परिवेष्टित यह देव प्रार्थित किये गये थे—हे भगवान् हम लोग आपके निर्माल्य उच्छिष्ट भोज के द्वारा ही आपकी इस माया पर विजय प्राप्त किया करते हैं। यह अत्यन्त स्तिमित नेत्र वालों को अनायास से ही मुक्ति देने वाला होता है ।४७-४८-४९-५०।

२९—बदरिकाश्रमस्यसर्वतीर्थाधिकत्ववर्णनम्

सूततसूतमाहाभाग ! सर्वधर्मविदाम्बर ! ।
सर्वशास्त्रर्थतत्वज्ञ ! पुराणे परिनिष्ठित ।१

व्यासः सत्यवतीपुत्रोभगवान्विष्णुरव्ययः ।
तस्ययत्प्रियशिष्यस्त्वं त्वत्तोवेत्तानकश्चन ।२
प्राप्ते कलियुग घोरे सर्वधर्मबहिष्कृते ।
जना वै दुष्टकर्माणः सर्वधर्मविर्वजिताः ।३
क्षुद्रायुषः क्षुदप्राणबलवीयतपः क्रियाः ।
अधर्मनिरताः सर्वे वेदशास्त्रविर्वजिताः ।४
तीर्थाटनतपोदानहरिभक्तिविर्वजिताः ।
कथमेषामल्पाकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः ।५

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा ।
मुमुक्षूणां कुतः सिद्धिः कुत्रवाऋषिसञ्चयः ।६
कुत्रवाऽल्पप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिदाः ।
कुत्र वा वसतिश्रीमाञ्जगतामीश्वरेश्वरः ।
भक्तानामतुरक्तानासनुग्रहकृपालयः ।७

शौनक जी ने कहा—हे महाभोग सूत जी ! आप तो समस्त धर्मों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं। आप सभी शास्त्रों के अर्थों के तत्वों को जानने वाले हैं। आप पुराणों में परिनिष्ठित विद्वान हैं।१। सत्यवती के पुत्र भगवान अव्यय विष्णु श्री व्यास देव है। उन व्यास जी के आप परम प्रिय शिष्य हैं। आपसे अधिक ज्ञाता अन्य कोई भी नहीं है।२। समस्त धर्मों से बहिष्कृत इस अत्यन्त घोर कलियुग में मनुष्य अत्यन्त दुष्ट कर्म्मों के करने वाले हैं और सब धर्म्मों से रहित होते हैं। क्षुद्र, आयु, प्राण, बल, वीर्य, तप और क्रिया वाले मनुष्य होते हैं। अधर्म में निरत रहने वाले और सब वेद तथा शास्त्रों के ज्ञान से हीन होते हैं। तीर्थों का अटन, तपस्या, दान और श्री हरि को भक्ति से वर्जित मनुष्य होते हैं। इन अल्पकों विचारों का उद्धार अल्प प्रयत्न से कैसे होगा ? ।३-४-५। तीर्थों में अतीव उत्तम तीर्थ तथा क्षेत्रों में अत्यन्त उत्तम क्षेत्र कौन है ? जो मुक्ति के इच्छुक जन हैं उनको सिद्धि कहाँ पर है अथवा ऋषियों का सजग कहाँ पर है ? कहाँ पर अत्यन्त प्रयत्न से तप और मन्त्र सिद्धि के प्रदान कर देने वाले होते हैं और वह कौन-सा क्षेत्र है जहाँ पर जगतों के ईश्वरेश्वर श्रीमान् स्वयं निवास किया करते हैं।६-७।

एतदन्यश्च सर्वं मे परार्थंकप्रयोजनम् ।
ब्रूहि भद्राय लोकनामनुग्रहविचक्षण ! ।८
साधुसाधुमहाभाग ! भवान्परहिते रतः ।
हरिभक्तिकृताशक्तिप्रक्षालितमनोमलः ।९

अथ मे देवकीपुत्रो हृत्पद्ममधिरोहती ।
प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे ! दुर्ल्लभः साधुसङ्गमः ।१०
हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमल तनुते तनुमानिनाम् ।
अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः ।११
हरति हृदयबन्ध कर्मपशार्दितानां
वितरति पदमुच्चैरल्पकल्पैकभाजाम् ।
जन्ममरणकर्मश्रान्तविश्रन्तिहेतुस्त्रिजगति
मनुजानां दुर्ल्लभः सत्प्रसङ्गः ।१२
अयं प्रश्नः पुरासाधो ! स्कदेनाऽकारिसर्वतः ।
कैलाशशिखरेम्येऋषीणांपरिश्रृण्वताम् ।
पुरतो गिरिजाभर्तुः कर्तुं निःश्रेयसं सताम् ।१३

अनुरक्त भक्तों के उपर अनुग्रह एवं कृपा के जो स्वयं आलय हैं उनके निवास का क्षेत्र कौन-सा है ? हे भगवान् ! आप तो लोकों पर अनुग्रह करने में परम विचक्षण हैं। भद्र अर्थात् कल्याण के लिए दूसरों का अर्थ ही जिसका एकमात्र प्रयोजन हैं। ऐसे इन सबको मुझे आप बतलाइये ।८। श्री सूतजी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छी बात है कि आप दूसरों के हित करने में रति रखने वाले हैं और श्रीहरि भगवान की भक्ति में आसक्ति होने के कारण से आपने अपने मनके मल को प्रक्षालित कर दिया है। इसके अनन्तर भगवान् देवकी नन्दन मेरे हृदय रूपी पद्म में अधिरोहण किया करते हैं। हे विप्रर्षे ! प्रसङ्ग से आपका साधु-सङ्गम दुर्लभ है ।९-१०। इस जगत् में साधु पुरुषों का समागम अत्यन्त ही दुर्लभ हुआ करता है जो दुरितों के संचय को हरण कर दिया करता है और तनुमानियों की गति को अलंकृत कर दिया करता है। यह अवशात्माओं के अत्यधिक पुण्यों से ही होता है ।११। इस जगत् के सत्पुरुषों का सङ्गम मनुष्यों को बहुत ही दुर्लभ हुआ करता है। यह सत्पुरुषों का समागम कर्मों के पाश में अर्दित पुरुषों के हृदय

के बन्धन का हरण कर देता है और जो अत्यन्य अल्प-जल्प करने वाले मनुष्य हैं उनको उच्च पद वितरण कर देने वाला होता हैं। संसार में बारम्बार जन्म ग्रहण करने और मृत्यु प्राप्त करने के कर्म में जो परम श्रान्त हैं उनको विश्रान्ति प्रदान करने का हेतु होता है ।१२। सूतजी ने कहा—हे साधो ! पहिले यही प्रश्न परम रम्य कैलास पर्वत के शिखर पर समस्त ऋषि वृन्दों के श्रवण करते हुए श्री गिरिजा पति के सामने सत्पुरुषों का निःश्रेय करने के लिए स्वामी स्कन्द ने किया था।१३।

भगवन्सर्वलोकानांकर्त्ता हर्त्ता पिता गुरुः ।
क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसेकृतनिश्चयः ।१४
कलिकाले ह्यनुप्राप्ते वेदशास्त्रविवर्जिते ।
कुत्र वा वसति श्रीमान्भगवान्सात्वतांपतिः ।१५
क्षेत्राणि कानि पुण्याणि तीर्थानसरितस्तथा ।
केनवाप्राप्यतेसाक्षाद्भगवान्मधुसूदनः ।
श्रद्दधानाय भगवन्कृपया वद ते पितः ! ।१६
वहूनि सन्ति तीर्थाणिक्षेत्राणि च षडानन ! ।
हरिवास निवासैपराणि परमार्थिनाम् ।१७
काम्यानि कानिचित्सन्ति कानिचिन्मुक्तिदान्यपि ।
इहाऽमुत्रार्थदान्येव वहूपुण्यप्रदानि वे ।१८
गङ्गा गोदावरीरेवाताप्तीयमुनासरित् ।
क्षिप्रा सरस्वतीपुण्या गौतमीकौशिकीतथा ।१९
कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा ।
चित्रोत्पला वेत्रवती सरयूः पुण्यवाहिनी ।
चर्मण्वती शतद्रूश्च पयस्विन्यसम्भवा ।
चण्डिका बाहुदा सर्वाः पुण्याः सिन्धुः सरस्वती ।२०
भुक्तिमुक्तिप्रवाश्चैतः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अयोध्याद्वारिका काशी मथुराऽवन्तिका तथा ।२१

कुरुक्षेत्रं रामतीर्थं काञ्ची च पुरुषोत्तमम् ।
पुष्कर दर्दुरं वाराहं विधिनिर्मितम् ।२२
वदय्याख्य महापुण्यं क्षेत्र सर्वार्थसाधनम् ।२३

स्कन्दजी ने कहा था—हे भगवन् ! आप समस्त लोकों की रचना करने वाले पिता गुरु और संहार कर देने वाले हैं। समस्त जन्तुओं के कल्याण करने के लिए ही आप तपश्चर्या करने को निश्चय करने वाले हैं। इस महान घोर कलि काल के सम्प्राप्त होने पर जो कि वेदों और शास्त्रों से एकदम रहित है श्रीमान् सात्वतों के स्वामी भगवान् कहाँ पर निवास किया करते हैं ? कौन से परम पुण्यतम क्षेत्र हैं तथा कौन से तीर्थ एवं ऐसी सरितायें हैं तथा किसके द्वारा भगवान श्री मधुसूदन की प्राप्ति की जाया करती है ? हे पिताजी ! मुझे इसके जानने की अत्यधिक श्रद्धा है अतएव हे भगवन् ! आप मुझे कृपा करके यह बतला दीजिए ।१४-१५-१६। श्री महादेव जी ने कहा था—हे षडानन ! परामार्थियों के लिए श्री हरि के वास, निवास में एक ही परायण बहुत से तीर्थ और क्षेत्र विद्यमान हैं। उनमें कुछ तो कामनाओं के ही पूर्ण कर देने वाले हैं। कुछ मानवों को जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले हैं। कुछ इस लोक और परलोक दोनों के अर्थों के प्रदान करने वाले हैं तथा अत्यधिक पुण्यों के देने वाले हैं ।१७-१८। सर्व प्रथम उन पुण्यमयी सरिताओं के नाम मैं बताता हूँ। गङ्गा, गोदावरी, तपती यमुना, क्षिप्रा, सरस्वती, पुण्या, गोमती, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, नेत्रवती, सरयू, पुष्यवाहिनी, चमावती, शतद्रू, पयस्विनी, क्षत्रि सम्भवा, गण्डिका, वाहुदा, सिन्धु, सरस्वती—ये सब सरितायें परम पुण्यमयी हैं और ये भुक्ति (सांसारिक सुखों का उपभोग) और मुक्ति (वारम्बार संसार में आवागमन से छुटकारा) दोनों को प्रदान करने वाली हैं जबकि इन नदियों का पुनः पुनः सेवन किया जावे। अब कतिपय पुण्यमय क्षेत्रों

को बतलाता हूँ—अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन) कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, काञ्ची, पुरुषोत्तम, पुष्कर, दर्दुरक्षेत्र, वाराह, विधि निर्मित्त बदरीनाथ बोला महान् पुण्य क्षेत्र है। जो सभी अर्थों का साधन करने वाला है।१९-२३।

अयोध्यां विधिदृष्ट्वा पुरीं मुक्त्येकसाधनीम् ।
सर्वपापीविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ।२४
विविधविष्णुनिषेवणपूर्वकाचरितपूजननर्तनकीर्तनाः ।
गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाज्जितगृहार्जितमृत्युपराक्रमा ।२५
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्टवा रामायण शुचिः ।
न तस्यकृत्यंपश्यामिकृतकृत्योभवेद्यतः ।२६
द्वारिकायां हरिः साक्षात्स्वालयं नैव मुञ्चति ।
अद्यापिभवनकश्चित्पुण्यवद्भिः प्रदृश्यते ।२७
गोमत्यां तु नरः स्नात्त्वा दृष्टवा कृष्ण मुखाम्बुजम् ।
मुक्तिः प्रजायते पुंसां विना साङ्ख्य षडानन ! ।२८

इस अयोध्या पुरी का विधि पूर्वक दर्शन करे जो कि मुक्ति का एकमात्र साधक कराने वाली है। इसका दर्शन करने वाले मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पाकर श्री हरि के मन्दिर में प्रणाम किया करते हैं ।२४। अनेक प्रकार से भगवान् विष्णु का सेवन पूर्वक समाचरण, पूजन, नर्त्तन और कीर्तन करने वाले, अपने घर का त्याग करके श्रीहरि का चिन्तन करने से जिन्होंने गृह में अर्जित मृत्यु को जीत लिया है ऐसे पराक्रमी पुरुष होते हैं ।२५। स्वर्ग द्वार में मनुष्य स्नान करके परम शुचि होकर जो श्रीराम के आलय का दर्शन किया करता है उसका तो फिर शेष रहने वाला कोई भी कृत में नहीं देखता हूँ क्योंकि इसी से वह मानव कृतकृत्य हो जाया करता है ।२६। द्वारका पुरी में साक्षात् श्री हरि निवास किया करते हैं और वहाँ पर अपने आलय का कभी भी त्याग नहीं करते हैं। आज भी कुछ पुण्यात्मा जनों के द्वारा उनका भवन

वहाँ पर देखा जाया करता है। गोमती नदी में मनुष्य स्नान करके तथा श्री कृष्ण भगवान् के मुख कमल का दर्शन करता है हे षडानन ! उस पुरुष की बिना ही सांख्य के मुक्ति हो जाया करती है।२७-२८।

असीवरणयोर्मध्ये पञ्चक्रोश्यां महाफलम् ।
अमरा मृत्युमिच्छन्तिकाथाइतरेजना ।२९
मणिकर्ण्यां ज्ञानवाप्यांविष्णपादोदकेतथा ।
ह्लदे पञ्चनदेस्नात्वावानमातुः स्तनपोभवेत् ।३०
प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यांषडानन ! ।
मुक्तिः प्रजायतेपुंसांजन्ममृत्युविवर्जिता ।३१
बहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षत्रसमं क्वचित् ।
तपोपवासनिरतो मथुरायां षडानन ! ।
जन्मस्थानं समासद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।३२
विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ।
पितृनुम्घृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रयगच्छति ।३३
यदि कुर्यात्प्रमादेनदातकं तत्र मानवः ।
विश्रान्तेस्नानमासाद्यभस्मीभवति तत्क्षणात् ।३४
अवन्त्यां विधिवत्स्नात्वाशिप्रायांमाघवेनराः ।
पिशाचत्वनपश्यन्तिजन्मांतरशतैरपि ।३५

असी और वरणा के मध्य में पञ्चकोशी में महान फल होता है। वहाँ पर देवगण भी अपनी मृत्यु होने की कामना किया करते हैं। अन्य दूसरों की तो बात ही क्या कही जावे। मणिकर्णी, ज्ञासवापी, विष्णु-पादोदक और पञ्चनदह्लद में जो मानव स्नान कर लेता है वह फिर दूसरा इस संसार में जन्म ग्रहण करके माता का स्तन कभी भी नहीं पिया करता है। हे षडानन ! काशीपुरी में किसी अन्य प्रसङ्ग के वश होकर भी जो भगवान् विश्वनाथ जी का दर्शन प्राप्त कर लेता है ऐसे पुरुषों की जन्म और मृत्यु से रहित मुक्ति हो जाया करती है। अत्यधिक

हम क्या कथन करें केवल यही कथन पर्याप्त है कि इसके समान कहीं भी अन्य कोई क्षेत्र नहीं है। हे षडानन ! क्या और उपवासों में निरत रहने वाला पुरुष मथुरा पुरी में भगवान के जन्म स्थान को प्राप्त करके समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है ।२९-३०-३१-३२। जहाँ पर कंस को वध कर भगवान ने विश्राम लिया है उस विश्रान्ति तीर्थ में (यमुना में) विधि-विधान के साथ स्नान करके तिलोदक जो देता है वह मानव अपने पितरों को नरकों से उद्धृत कर दिया करता है और स्वयं सीधा विष्णुलोक में गमन किया करता है ।३३। यदि कोई मनुष्य वहाँ पर प्रमाद से पातक करता है तो वह विश्रान्त पर स्नान करने से अपने पातक को तुरन्त ही भस्मीभूत कर दिया करता है ।३४। अवन्तिका पुरी में जो मनुष्य माधव मास में शिप्रा-में विधि पूर्वक स्नान करता है वह सैकड़ों जन्मान्तरों में भी पिशाचत्व नहीं देखा करता है ।३५।

कोटितीर्थे नरः स्नात्वाभोजयित्वाद्विजोत्तमान् ।
महाकालं हरंदृष्ट्वासर्वपापैः प्रमुच्यते ।३६
मुक्तिक्षेत्रमिदं साक्षान्मन लोकैकसाधनम् ।
दानाद्दरिद्रताहन्तिनिहलोके परत्र च ।३७
कुरुक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्त्वा स्वशक्तितः ।
सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्ति भाग्भवेत् ।३८
ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लोभवशङ्गताः ।
पुरुषत्वं न तेषा वैकल्पकोटिशतैरपि ।३९
हरिक्षेत्रें हरिंदृष्टवा स्नात्वा पादोदके जनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिणा सह मोदते ।४०
खगगणा विविधा निबसन्त्यहो ऋषिगणा फलमूलाशनाः ।
पवनसंयमनक्रमनिर्जितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्विह ।४१

विष्णुकांच्यां हरिः साक्षाच्छिवकाँच्यां शिवः स्वयम् ।
अभेदादुभयोवत्याया मुक्तिः करतले स्थिता ।
विभेदजनात्पुंसा सां जायते कुत्सिता गतिः ।४२

उस अवन्तिका पुरी में मनुष्य कोटि तीर्थ में स्नान करके उत्तम श्रेणी वाले द्विजों को भोजन करावे और महाकालेश्वर शिव का दर्शन करे तो सभी तरह के पापों से छुटकारा पा जाया करता है। यह मेरे लोक के प्राप्त करने का एकमात्र साधन साक्षात् मुक्ति का क्षेत्र है। दान करने से दरिद्रता की हानि इस लोक और परलोक में हुआ करती है ।३६-३७। कुरुक्षेत्र में राम तीर्थ में अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य ग्रहण के अवसर पर विधि पूर्वक सुवर्ण का दान करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेने का पूर्ण अधिकारी हो जाया करता है। जो मनुष्य लोभ के वश में आकर वहाँ पर दान ग्रहण किया करते हैं, उनको सैकड़ों करोड़ों कल्पों में भी पुरुषत्व नहीं हुआ करता है ।३८-३९। हरि क्षेत्र में श्री हरि का दर्शन प्राप्त करके और पादोदक में जो स्नान करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर भगवान श्रीहरि के साथ ही आनन्द प्राप्त किया करता है ।४०। अहो ! यहाँ पर अनेक पक्षीगण निवास किया करते हैं और फल, मूल तथा पत्रों का अशन करने वाले ऋषिगण भी रहते हैं। पवन के संयमन के क्रम से निर्जित इन्द्रियों वाले तथा पराक्रमशील मुनिगण भी यहाँ पर निवास किया करते हैं ।४१। विष्णु काञ्ची में साक्षात् श्रीहरि विराजमान रहते हैं और शिव काञ्ची में स्वयं भगवान् शिव विराजते हैं। दोनों में अभेद भाव जो भक्ति होती है उससे मनुष्य के करतल में ही मुक्ति देवी स्थित रहा करती है। जब इन दोनों देवों में विभेद की भावना उत्पन्न हो जाती है तो बहुत बुरी कुत्सित गति हो जाती है ।४२।

संकृद्दृष्टवा जगन्नाथं मार्कण्डेयहृदे प्लुतः ।
विनाज्ञानेन योगेन न मातुः स्तनपोभवेत् ।४३

रोहिण्यामुदधौ स्नात्वा वन्द्रद्युम्नहृदेतथा ।
भुक्त्वानिवेदितविष्णोर्वैकुण्ठेवनतिलभेत् ।४४
दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रशंखोपरि स्थितम् ।
चतुर्भुजत्वमायान्तिकीटाअपिनसंशयः ।४५
कात्तिक्यां पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणम् ।
भोजयित्वा द्विजान्भवत्या ब्रह्मलोके महीयते ।४६
सकृत्स्नात्वाह्लदे तस्मिन्यूयं दृष्टवासमाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तोजायते द्विजसत्तमः ।४७
षष्टिवर्ष सहस्त्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ।
सौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा हरिं शुचिः ।४८
सप्तजन्मकृतं पाप तत्क्षणादाव नश्यति ।
तीर्थराज महापुण्य सर्वतीर्थनिषेवितम् ।४९

एक ही बार भगवान् जगन्नाथ जी के दर्शन करके तथा मार्कण्डेय ह्रद में निमञ्जन करने वाला पुरुष बिना ही ज्ञान और याग के फिर दूसरा जन्म ग्रहण कर अपनी माता के स्तन पान नहीं किया करता है। रोहिणी में उदधि में स्नान करके एवं इन्द्रद्युम्न ह्रद में स्नपन करके तथा भगवान विष्णु देव के निवेदित महाप्रसाद का अशन करके मानव वैकुण्ड में निवास किया करता है ।४३-४४। दश योजन के विस्तार वाला क्षेत्र शंख के ऊपर स्थित है। वहाँ पर कीट भी चतुर्भुज रूप को प्राप्त जाया करते हैं। कात्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर में स्नान करके दक्षिणा से युक्त स्राद्ध करे तथा भक्ति की भावना से द्विजों को भोजन करावे। फिर यह व्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होजाता है।४५-४६। हे द्विजसत्तम ! स्रेष्ठ द्विज एक बार ह्रद में स्नान करके तथा समाहित होकर यूप का दर्शन जो करता है वह सब पापों से विनियुक्त हो जाया करता है ।४७। साठ हजार वर्ष तक योगाभ्यास करने से जो पुण्यफलं प्राप्त होता सौकर में विधि पूर्वक स्नान करके और परम शुचि होकर

श्रीहरि का पूजन करके सात जन्मों में किया हुआ पाप उसी क्षण में नष्ट हो जाता है। तीर्थराज महान पुण्यशाली है और समस्त तीर्थों के द्वारा निवेषित होता।४८-४९।

कामिनां सर्वजन्तूनामीप्सितं कर्मभिर्भवेत् ।
वेण्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कृत्वामाधवदर्शनम् ।
भुक्त्वा पुण्यवतां भोगानन्ते माधवतां व्रजेत् ।५०
माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेण्या भक्तिभावितः ।
बदरीकीर्तनात्पुनात्पुण्यं तत्समाप्नोति मानवः ।५१
दशाश्वमेधिक तीर्थे दशयज्ञफलप्रदम् ।
संक्षेपात्कर्तिं पुत्र ! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।५२
बदर्याख्य हरेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
क्षेत्रस्यं स्मरणादेव महापातकिनो नराः ।
विमुक्तकिल्वषाः सद्यो मरणान्मुक्तिभागिनः ।५३
अन्यतीर्थे कृतं येन तपः परमदारुणम् ।
तत्समा बदरीयात्रा मनसाऽपि प्रजायते ।५४
बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमौ रसातले ।
बदरीसदृशं तीर्थं न भूतं नभविष्यति ।५५
अश्वमेधसहस्राणिवायुभोज्येचनत्फलम् ।
क्षेत्रान्तरे विशालायांतन्फलंक्षणमात्रतः ।५६

वेणी में स्नान करके परम शुचि होकर श्री माधव का दर्शन करे तो कामनायें रखने वाले पुरुषों के कर्मों से समस्त जन्तुओं का अभीष्ट सिद्ध हुआ करते हैं। पुण्यवान् पुरुषों के सुखोपभोगों को भोगकर अन्त में श्री माधव के स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं।५०। माघ मास में भक्ति से त्रिवेणी में स्नान करके मानव बदरी कीर्त्तन से उस पुण्य को समाप्त कर दिया करता है।५१। यह तीर्थ दश अश्व-

मेघों के दश यज्ञों के फलों प्रदान करने वाला होता है। हे पुत्र ! हमने यह अति सूक्ष्म रीति से आपको बतला दिया है। अब आगे फिर तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? श्रीस्कन्द प्रभु ने कहा—श्रीहरि की बदरी नाम वाला क्षेत्र तीनों लोकों में परम दुर्लभ है। इस क्षेत्र के केवल स्मरण करने मात्र से महान पातकों के करने वाले नर भी तुरन्त ही विमुक्त पापों वाले हो जाया करते हैं और अन्त समय में मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं ।५२-५३। अन्य तीर्थ में जिसने परम दारुण तपश्चर्या की है उसके तुल्य तो मन से भी की गई बदर्याश्रम की यात्रा हो जाती है। दिवलोक, भूमण्डल और रसातल में बहुत से तीर्थ हैं किन्तु इस बदरी के सदृश कोई भी तीर्थ न तो अब तक हुआ और न होगा अश्वमेध सहस्रों के तथा वायु भोजन में जो फल होता है और अन्य क्षेत्रों में जो परम विशाल है जो पुण्य का फल होता है वह यहाँ पर एक क्षण मात्र में ही हो जाया करता है ।५४-५५-५६।

कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा ।
विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः ।५७
स्थूलसूक्ष्मशरीरंतुजीवस्य वसतिस्थलम् ।
तद्विनाशय त ज्ञानाद्वशालातेनकथ्यते ।५८
अमृतं स्रवते या हि बदरीतरुयोगतः ।
बदरी कथ्यते प्राज्ञैऋषीणां यत्र सञ्चयः ।५९
त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे ।
बदरीं भगवान्विष्णुर्न मुञ्चति कदाचिन ।६०
सर्वतीर्थविगाहेन तपोयोगसमाधितः ।
तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदर्शनाद् गुह ! ।६१
षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ।
वाराणस्यां दिनैकेन तत्फलंबदरींगतौ ।६२

तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानांव सतिस्तथा ।
ऋषीणां वसतिर्यत्र बिशालातेनकथ्यते ।६३

कृतयुग में मुक्ति के प्रदान करने वाली बताई गई है, त्रेतायुग में भोगों की सिद्धियों के प्रदान करने वाली कही गई है। द्वापर युग में परम विशाला होती है और इस कलियुग में वह बदरिकाश्रम ही होता है ।५७। जीव का स्थूल, सूक्ष्म शरीर स्थल में बसता है। वह ज्ञान से विनाश को प्राप्त हो जाता है। इसी से विशाला कही जाती है। जो बदरी तरु के योग से अमृत का स्रवण किया करती है इसीलिए प्राज्ञ पुरुषों के द्वारा इसको बदरी कहा जाता है जहाँ पर ऋषियों का सञ्चय होता है ।५८-५६। युग-युग और काल-काल में समस्त तीर्थों का त्याग कर देते हैं किन्तु भगवान विष्णु बदरी का कभी त्याग नहीं किया करते हैं ।६०। हे गृह ! जो अन्य समस्त तीर्थों के अवगाहन करने से बदरी के दर्शन मात्र से हो जाया करता है ।६१। साठ हजार वर्ष तक योग के अभ्यास से जो फल होता है वह वाराणसी में एक दिन में और बदरी में गमन मात्र में ही हो जाया करता है। जहाँ पर तीर्थों का निवास है तथा देवों की जो वसति है एवं ऋषियों का जो आवास स्थल है इसी से यह विशाला कही जाती है ।६२-६३।

३०—कार्त्तिकमासव्रतप्रशंसनवर्णनम्

नारायण नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।१
सूत ! नः कतिम्पुण्य माहात्म्यमाश्विनस्य च ।
भूयोऽञ्च्छोतुमिच्छामः कार्त्तिकस्य च वैभवम् ।२
कलौ कलुचित्तानां नराणांपापकर्मणाम् ।
संसाराब्धौनिमग्नानामनायासेनकागतिः ।३

को धर्मः सर्वं धर्माणामधिकोमोक्षसाधकः ।
इहाऽमि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वंकथय प्रभो ! ।४
भवद्भिर्यदह पृष्ठप्तदेतत्पृस्वान्मुनिः ।
नारदो ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्माण तु जगद्गुरुम् ।५
तथैवसत्तभामाच श्रीकृष्णजगदीश्वरम् ।
अपृच्छत्कार्तिकस्यैव वैभव श्रवणोत्सुका ।६
बालखिल्लैश्च ऋषिभिर्दयुक्तमृषीससदि ।
श्रीसूर्यरुणसवादरूपेणाऽनिमनोहरम् ।७

भगवान् नारायण के चरणों में नमस्कार करके तथा नरोत्तम नर को प्रणाम करके एवं देवी सरस्वती को प्रणाम करके जप शब्द का उच्चारण करना चाहिए (मङ्गला चरण श्लोक है) ऋषिगण ने कहा—हे श्री सूतजी ' आपने परम पुण्यतम आश्विन मास का माहात्म्य हमारे सामने वर्णन किया था । अब फिर हम लोग सब कात्तिक मास का वैभव आपके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहते हैं ।१-२। इस महान घोर कलियुग में कलुषित चित्तों वाले पाप कर्मों में निमग्न मनुष्यों की जो इस संसार में डुबकियाँ खा रहे हैं उनकी बिना ही परिश्रम के क्या गति होती है ? ऐसा कौन सा समस्त धर्मों में भी अधिक धर्म है जो मोक्ष का साधक हो ? हे प्रभो ! जो इस लोक में भी मुक्ति प्रदान करने वाला हो उसे ही आप अब तात्विक रूप वर्णन कीजिए बड़ी कृपा होगी ।३-४। श्रीसूतजी ने कहा—आपने जो मुझसे पूछा है यही ब्रह्माजी के पुत्र देवर्षि श्री नारद जी ने जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी से पूछा था । इसी प्रकार से सत्यभामा देवी ने जगदीश्वर प्रभु श्रीकृष्ण से पूछा था क्योंकि वे इस कार्तिक मास के वैभव के श्रवण करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थी । बालखिल्य ऋषियों की सभा में श्री सूर्य और अरुण के सम्वाद के रूप से जो अत्यन्त मनोहर कहा था ।५-६-७।

कैलासे शङ्करेणैवकार्तिकस्यच वैभवम् ।
वर्णित षण्मुखस्याऽगे नानाख्यानसमन्वितम् ।८

पृथम्प्रतिनारदेनकथितचमाहात्म्यकम् ।
कार्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वाब्रह्ममुखात्पुरा ।६
एकदा नारदोयोगी सत्योकमुपागतः ।
पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम् ।१०
पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्यच भूरिथः ।
को वह्निर्दहते ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हसि ।११
नाऽज्ञातंत्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डांतर्गतस्ययत् ।
विद्यतेतवदेवेशत्रिविधस्यसुनिश्चितम् ।१२
मासानाम्प्रवरो मासो देवानामुत्तमोत्तमः ।
तोर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह ! ।१३
मासानां कार्त्तिकः श्रेष्ठो देवानाम्मधुसूदनः ।
तीर्थंनारायणाख्यं हि त्रितययंदुर्लभं कलौ ।१४

कैलास पर्वत पर भगवान षण्मुख के सामने अनेक आख्यानों से समन्वित कार्त्तिक मास का वैभव को भगवान् शङ्कर को वर्णित किया है। हे विप्रेन्द्रगण ! ब्रह्माजी के मुख से स्रवण कर सर्वप्रथम स्री नारद जी ने कार्त्तिक मास का माहात्म्य पहिले कहा है। एक बार योगीराज नारद जी भ्रमण करते हुए सत्यलोक में प्रास हो गये थे। उस सत्य-लोक में पितामह से उन्होंने परम विनय के भाव से पूछा था ।८-६। ।१०। देवर्षि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अधिकांश में शुष्क और आर्द्र (भीगे हुए) घोर पाप रूपी ईंधन को कौन सी वह्नि है जा जलाकर भस्म कर सकती है ? इसे आप कृपा करके हमको बतलाने के योग्य हैं। हे देवेश ! तीनों लोकों में ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीन प्रकार के आपको जो सुनि-श्चित है वह अज्ञात नहीं है अर्थात् सभी जानते हैं। हे पितामह ! सब मासों में जो प्रकट मास हो तथा सब देवों में जो उत्तमोत्तम देव हो

और जो भी श्रेष्ठ तीर्थ उन्हें आप बतला दीजिए ।११-१३। स्रीब्रह्मा जी ने कहा—समस्त मासों में कार्त्तिक मास स्रेष्ठ होता है और सब देवों में भागवत मधुसूदन देव परम श्रेष्ठ देव हैं तथा नारायण नाम वाला तीर्थ सर्वस्रेष्ठ तीर्थ है । ये तीनों ही इस लोक में कलियुग में परम दुर्लभ है ।१४।

भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवल्लभः ।
वैष्णवान्ब्रूहि मे धर्मान्सर्वज्ञोऽस्मि पितामह ! ।१५
आदौकर्त्तिकमाहात्म्यंवक्तुमर्हसिमेप्रभो ! ।
दीपदानस्यमाहात्म्यंनांव्रतिनांनियमांस्तथा ।१६
गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो ! ।
धात्र्याश्चैव च माहात्म्यं विधि स्नानादिकस्य च ।
व्रतारम्भः कदा कार्या उद्यापनविधिस्तथा ।१७
यत्किञ्चिद्वैष्णावंधर्मं तत्सर्वंवक्तुर्महसि ।
येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम् ।१८
इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ।
राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाचतनुजम्प्रति ।१९
साधुपृष्टं त्वया पुत्र ! लोकोद्धरणहेतवे ।
कथयामि न सन्देहः कार्त्तिकस्य च वंभवम् ।२०
एकतः सर्वतीर्थानिसर्वेयज्ञा सदक्षिणाः ।
कार्त्तिकस्यतुमासस्यकलांनार्हन्तिषोडशीम् ।२१

स्री नारद ने कहा—मैं तो आपका दास हूँ और स्रीहरि भगवान का प्रिय भक्त हूँ । हे पितामह ! आप तो सर्वज्ञ हैं । मुझे सब वैष्णव धर्म बतलाइये ।१५। हे प्रभो ! सबसे आदि में कार्त्तिक मास का माहात्म्य आप बतलाने के योग्य होते हैं । दीपदान का माहात्म्य तथा व्रत धारियों के नियमों को भी बतलाने की कृपा कीजियेगा ।१६।

हे विप्रो ! गोपी चन्दन तथा तुलसी का माहात्म्य भी बतलाइये । धात्री (आंवला) का माहात्म्य और स्नान आदि करने का विधान भी बतलाइये । इस व्रत का आरम्भ कब करना चाहिये तथा इसके उद्यापन करने की विधि क्या होनी है ? जो कुछ भी वैष्णवों का धर्म हो वह सभी कुछ आप वतलाने के योग्य हैं । जिससे आपके प्रसाद से मैं अनामय पद को प्राप्त कर लूँगा ।१७-१८। स्त्री सूतजी ने कहा इस तरह के अपने पुत्र नारद के वचन को सुनकर ब्रह्माजी परम हर्ष से संयुत हो गये थे । फिर भगवान् स्त्री राधा दामोदर जी के चरणों का स्मरण करके ब्रह्माजी ने अपने पुत्र से कहना आरम्भ किया था ।१६। स्त्री ब्रह्मा जी ने कहा—हे पुत्र ! तुमने परम सुन्दर प्रश्न किया है । यह तुम्हारा प्रश्न तो समस्त लोगों के उद्धार का हेतु है । मैं इस कात्तिक मास के वैभव को कहूँगा—इसमें तनिक भी सन्देह मत करो ।२०। एक ओर समस्त तीर्थ और दक्षिणा से समन्वित सभी यज्ञ हो और दूसरी ओर कात्तिक मास का माहात्म्य हो तो वे सब इस मास के वैभव को सोलहवीं कला को भी प्राप्त करने योग्य नहीं होते हैं ।२१।

एकतः पुष्करेवासः कुरुक्षेत्रे हिमालये ।
एकतः कार्तिकः पुत्र सर्वपुण्याधिको मतः ।२२

स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानिचैवतः ।
एकतः कात्तिको वत्स ! सर्वदाकेशवप्रियः ।२३

यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कात्तिके ।
तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्तं तत्र नारद ! ।२४

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यंप्राप्तदुर्लभम् ।
तथाऽऽत्कानसावद्या भ्रश्येतयथापुनः ।२५

दुष्प्राप्यं प्राय मानुष्यंकार्क्तिकोक्तंचरेन्नयः ।
धर्मं धर्मभूतांश्रेष्ठ ! समातापितृघातकः ।२६

कार्त्तिक: खलुनै मास: सर्वमासेषु चोत्तमः ।
पुण्यानाम्परमं पुण्यं पावनानाञ्चपावनम् ॥२७
अस्मिन्मासेत्रयस्त्रिंशदद्वा: सन्निहिता मुने ।
अत्रानानिदानामिभोजनानिव्रतानिच ॥२८

हे पुत्र ! एक ओर तो पुष्कर में निवास तथा कुरु क्षेत्र में और हिमालय में निवास और दूसरी ओर कार्त्तिक मास का पुण्य हो तो यह कार्त्तिक सबसे अधिक पुण्य वाला होता है । सुमेरु पर्वत के समान सुवर्ण का राशि (ढेर) और अन्य समस्त प्रकार के दान सब एक ओर हैं तथा एक ओर हे वत्स ! सर्वदा भगवान् केशव का परम प्रिय कार्त्तिक मास है । कार्त्तिक मास में भगवान् विष्णु का उद्देश्य ग्रहण करके जो कुछ भी पुण्य किया जाना है हे नारद! यह मैंने तुमको बतला दिया है कि यह कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं हुआ करता है ऐसा मैं देख रहा हूँ ।२२-२३-२४। इस परम दुर्लभ मनुष्य जीवन को प्राप्त करके यह स्वर्ग का एक प्रकार का सोपान जैसा ही है । यह आत्मा को उस प्रकार से दे दिया करता है जहाँ से फिर कभी भ्रंश होता ही नहीं है ।२५। इस अति दुष्प्राप्य मनुष्य जीवन को प्राप्त करके कार्त्तिक मास में वतलाये हुए व्रतों एवं नियमों का जो समाचरण नहीं किया करता है हे धर्म धारियों में परम वरिष्ठ ! वह माता-पिता का घातक ही हुआ करता है । यह कार्त्तिक मास सभी अन्य मासों में अत्युत्तम मास होता है । यह पुण्यों में परम पुण्य है और पावनों में परम पावन होता है । हे मुने इस मास में तेतीस करोड़ देवता सन्निहित हुआ करते हैं । इस मास में स्नान, दान, भोजन और व्रत सभी परम श्रेष्ठतम हुआ करते हैं ।२६-२७-२८।

तिलधनुं हिरण्यञ्च रजतं भूमिवाससी ।
गो प्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद ! ॥२९

तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः ।
यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र ! तपश्चैव तथा कृतम् ॥३०
तदक्षयफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
पापानाँमोक्षणञ्चैवकार्त्तिकेमासिनस्यते ॥३१
तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र ! कार्त्तिके मासि दीयते ।
यत्किंतित्कार्त्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिश्य मानवैः ॥३२
तदक्षयं हि लभते अन्नदान विशेषतः ।
यथा नदीनाम्विप्रेन्द्र शलालानाञ्चैव नारद ॥३३
उदधीनाञ्छ विप्रर्षे ! क्षयोनैवोपपद्यते ।
दानं कार्त्तिकमासेतु यत्किचिद्दीयते मुने ॥३४
न तस्याऽस्तिक्षयोविप्र ! पापयातिसहस्रधा ।
सम्प्राप्तंकार्तिकं दृष्ट्वामरान्नंयस्तुवर्जयेत् ॥३५

हे नारद इस महान पुण्यमय मास में तिल, धेनु, सुवर्ण रजत (चाँदी) भूमि, वस्त्र, गो इनका सर्व भाव से दान किए जाते हैं । इन किये हुए दानों को विधि के सहित देवगण ग्रहण किया करते हैं । हे विप्रेन्द्र ! जो कुछ भी इस मास में दिया गया है वह उस प्रकार का परम तप ही किया हुआ समझना चाहिए ।२९।३०। इसका प्रभु विष्णु श्री विष्णु भगवान ने अक्षय फल बतलाया है । समस्त पापों का मोक्षण कार्त्तिक मास में ही प्रशस्त बतलाया जाता है । हे विप्रेन्द्र ! इसीलिए यत्न पूर्वक कार्त्तिक मास में विष्णु का उद्देश्य करके अर्थात् उन्हीं को समर्पण करने की बुद्धि रखते हुए मनुष्यों को जो कुछ भी हो दान करना चाहिए । वह अक्षय लाभ किया करता है विशेष रूप से अन्न का दान परम अक्षय होता है । हे नारद ! हे विप्रेन्द्र ! जिस प्रकार से नदियों शैलों और हे विप्रर्षे ! सागरों का कभी क्षय नहीं हुआ करता है । वैसे ही हे मुने ! कार्त्तिक मास में जो कुछ भी दिया जाता है हे विप्र! उसका कभी क्षय नहीं होता है और पाप सहस्रों

टुकड़े होकर नष्ट हो जाया करता है। कार्त्तिक मास को प्राप्त हुआ समझकर जो पराये अन्न का ग्रहण करना छोड़ देता है वह परम पुण्य किया करता है ।३१-३५।

दिने दिनेऽतिकृच्छस्य फलम्प्राप्नोत्ययत्नतः ।
न कार्त्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम् ॥३६
न वेदसदृशं शस्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ।
न चाऽन्नसदृशं दानं न सुखंभार्य्यासमम् ॥३७
न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं दुर्लभं दानकांक्षिणाम् ।
दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थे च प्रतिपादनम् ॥३८
कार्त्तिके मुनिशार्दूल ! शालग्रामशिलार्चनम् ।
स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणां ॥३९
एतादृशं कार्त्तिकञ्च अकृतेनैव यो नयेत् ।
पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम् ॥४०
अशक्तेन कथं कार्यं कार्त्तिकव्रतमुद्यमम् ।
येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह ! ॥४१

दिन-दिन में उस दूसरे के अन्न को त्याग कर देने वाले पुरुष को अतिकृच्छ्र महा व्रत करने का पुण्य फल प्राप्त हो जाता है और कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। इस कार्त्तिक के समान अन्य कोई भी मास नहीं है और कृतयुग के तुल्य कोई युग नहीं है ।३६। वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है और गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं है, अन्न के सदृश कोई अन्य दान नहीं है और भार्या के सदृश कोई दूसरा सुख नहीं होता है। न्याय से उपार्जित द्रव्य दान करने वालों को परम दुर्लभ होता है। मर्त्य धर्म वालों को तीर्थ में प्रतिपादन करना भी दुर्लभ है ।३७-३८। हे मुनिशार्दूल ! कार्त्तिक मास में शालग्राम शिला का अर्चन और भगवान वासुदेव का स्मरण पाप भीरु मनुष्य को अवश्य ही करना चाहिए। ऐसे कार्त्तिक मास को जो अकृत से व्यतीत करता

है वह पूर्व में किए हुए पुण्य का विना संशय के प्राप्त किया करता है ।३९-४०। श्री नारद जी ने कहा-हे पितामह ! जो अशक्त हो उसे इस उत्तम कार्त्तिक का व्रत कैसे करना चाहिए जिससे कि वह उस फल की प्राप्ति कर लेवे, कृपा करके अब आप यही मुझे बतलाइए ।४१।

अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत् ।
अन्यस्मैद्रविण दत्वाकारयेत्कार्त्तिकव्रतम् ।।४२
तस्मात्पुण्यप्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम् ।
द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवर्षिसत्तम ! ।४३
तदा तेन प्रकर्तव्यं पानं तीर्थजलस्य च ।
तत्राऽप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्य हरेर्मुदा ।।४४
स्मरणं च प्रकर्तव्यं नाम्ना नियमपूर्वकम् ।
अखण्डितं तदा तेन कार्त्तिकव्रतजं फलम् ।।४५
विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ।
शिवविष्ण्वोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वापि ।।४६
दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि दाऽऽपद्गतो भवेत् ।
कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि ।।४७
विष्णुनामप्रबन्धानां गायनंविष्णुसन्निधौ ।
गोसहस्रप्रदास्य फलमाप्नोतिमानवः ।।४८
वाद्यकृष्पुरुषश्चाऽपि वाजपेयफल लभेत् ।
सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ।।४९

श्री ब्रह्माजी ने कहा--जब मनुष्य अशक्त एवं सामर्थ्यं से हीन हो तो उसको इस व्रत का इस प्रकार से आचरण करना चाहिए कि किसी अन्य को धन देकर इस कार्त्तिक मास के व्रत करावे ३२। उनसे दान और सङ्कल्प पूर्वक इस व्रत पुण्य को स्वयं ग्रहण कर लेवे। हे देवर्षि सत्तम् ! जब अशक्त भी हो तो भी द्रव्य दान से इसको किया जा सकता है यदि द्रव्य देने की भी सामर्थ्यं न हो तो उस समय में

उसको केवल तीर्थ के जल का पान ही करना चाहिए। यदि यह करने में भी अशक्त हो तो उसको प्रसन्नता से नित्य श्रीहरि का स्मरण नियम पूर्वक नाम से करना चाहिए।४३-४४। तभी यह कार्त्तिक मास का व्रत का फल उससे अखण्डित होता है। भगवान विष्णु अथवा भगवान् शिव के आलय में हरि जागरण करना चाहिए। शिव तथा विष्णु के आलय के अभाव होने पर सभी देवों के आलयों में भी यह अवश्य ही करे। ।४५-४६। दुर्गाटवी में स्थित यदि वा आपद्गत हो तो किसी अश्वत्थ्य (पीपल) के मूल में या तुलसी के वनों में इसे कर लेवे ।४७। भगवान विष्णु की सन्निधि में विष्णु के नाम के प्रबन्धों का गायन करने से यह मानव एक सहस्र गौओं के प्रदान करने का फल प्राप्त किया करता है। वाद्यों के करने वाला पुरुष भी वाजपेय यज्ञ करने का पुण्य फल प्राप्त करता है। जो नृत्य करने वाला वहाँ पर नर्त्तक होता है वह भी सब तीर्थों के अवगाहन करने के पुण्य-फल की प्राप्ति कर लिया करता है।४८-४९।

सर्वमेतल्लभेत्पुण्यमेतेषां द्रव्यदः पुमान्।
श्रवणाद्दर्शनाद्वाऽपि षड़शं फलमाप्नुयात् ॥५०
अपाद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः।
व्याधितो वाऽथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम् ॥५१
उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥५२
अशक्तो दीपदानाय परदीप प्रबोधयेत्।
तस्य वा रक्षण कुर्याद्वानादिभ्यः प्रयत्नतः ॥५३
श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीधात्रिपूजनम्।
सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवमपि।
तस्याऽप्यभावे मनसि विष्णोविष्णोर्नामाऽनुकीर्तनम् ॥५४
ब्रह्मन्! ब्रूहि विशेषेण धर्मान् कार्त्तिकसम्भवान् ॥५५

इन सब कर्मानुष्ठानों को करने वालों को जो द्रव्य देने वाला है वह पुरुष इनके सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त कर लिया करता है। इनके दर्शन तथा श्रवण करने से भी छटवां भाग फल प्राप्त होता है। आपत्ति ग्रस्त पुरुष कहीं पर भी जिस समय में जल की प्राप्ति नहीं किया करता है अथवा वह किसी व्याधि से युक्त हो तो उसको चाहिए कि भगवान् विष्णु के नामों का उच्चारण कर मार्जन मात्र ही कर लिया करे। ।५०-५१। जो कोई मनुष्य व्रत में स्थित होकर उसके उद्यापन की विधि के सम्पादन करने में असमर्थ हो तो उसको व्रत की सम्पूर्त्ति के लिए पीछे ब्राह्मणों का भोजन करा देना चाहिए। यदि दीपदान करने की भी शक्ति न रखता हो तो पराये दीपों को ही प्रबोधित कर देना चाहिए। अथवा दूसरों के द्वारा जलाये हुए दीपों की बायु आदि से प्रयत्न पूर्वक सुरक्षा करनी चाहिए कि वे बुझने न पावें। यदि भगवान् विष्णु के पूजन का अभाव ही हो तो केवल तुलसी अथवा धात्री (आँवला) का पूजन करना चाहिए। यदि सभी का अभाव, हो तो व्रती को ब्राह्मणों का एवं गौओं का अर्चन करना चाहिए। यदि कोई ऐसा ही स्थल हो जहाँ इन सभी का अभाव हो तो केवल मन में विष्णु के नामों का कीर्त्तन कर लेवे। देवर्षि प्रवर नारद जी ने कहा--हे ब्रह्मन् ! विशेष रूप से कार्त्तिक मास में होने वाले धर्म्मों को बतलाइये ।५२-५५।

३१-सर्वशाखमासप्रशंसनं तथा स्नानमाहात्म्यवर्णनम्

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१
भूयोऽत्यङ्गभुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छत ॥२
सर्वेषामपि मसानात्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा ।
श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन्यदाचोक्तं तदात्वया ॥३

वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् ।
इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च ॥३
श्रोतुं कौतूहल ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियोह्यसौ ।
के च विष्णुप्रियाधर्मामासेमाधवल्लभे ॥४
तत्राऽप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभः ।
किं दान किं फलं तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान् ॥५
कैर्द्रव्यै पूजनीयोऽसौ माधवौ माधवागमे ।
एतन्नारद ! विस्तार्यं मह्य द्धावतेवद ॥६
मया पृष्टः पूरा ब्रह्मामासधर्मान्पुरातनान् ।
व्याजहारपुरोक्तं यच्छ्रियै परमात्मना ॥७
ततो मासा विशिष्योक्ताः कार्त्तिको माघ एव च ।
माधवस्तेषु वैशाखं मासामुत्तमं व्यधात् ॥८

मङ्गलाचरण भगवान नारायण को नमस्कार करके तथा नरोत्तम नर, देवी सरस्वती एवं व्यास को प्रणाम करके जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए। श्री सूतजी ने कहा--राजा ने फिर भी परमेष्ठी ब्रह्माजी के अङ्गभू (तनय) श्री नारदजी से परम पुण्यमय श्री माधव का माहात्म्य पूछा था। राजा अम्बरीष ने कहा--हे ब्रह्मन् ! सभी मासों का माहात्म्य अचानक ही पहिले मैंने आपसे सुना था। जिस समय में आपने कहा था उस समय में कहा था कि इन समस्त मासों में वैशाख मास सबसे प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ है--ऐसा निश्चित है। हे ब्रह्मन् ! यह सुनने का बड़ा भारी हृदय में कोतूहल है कि यह विष्णु का प्रिय कैसे है ? इस माधव प्रिय मास में भगवान विष्णु के प्रिय वे धर्म्म कौन से हैं ? वहाँ पर इसको कौन से विष्णु के बल्लभ धर्म करने के योग्य हैं। क्या दान है और उसका क्या फल है और इन सबका समाचरण किसका उद्देश्य लेकर करना चाहिए ।१-५। माधव के आगम में किन द्रव्यों से यह भगवान माधव पूजन के योग्य होते हैं ? हे नारद! यह सब बिस्तार

के साथ श्रद्धावान मुझको आप कृपाकर के बतलाइये ।६। देवर्षि प्रवर नारद जी ने कहा–पहिले मेरे द्वारा ब्रह्माजी पुरातन मासों के धर्मों के विषय पूछे गये थे। परमात्मा श्री नारायण ने जो श्री देवी से पहिले बतलाया था वह कहा था। इसके अनन्तर विशेष करके कार्त्तिक और माघ ये दो मास बताये गये थे। उनमें माधव ने वैशाख को मासों में उत्तम कहा था ।७-८।

मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्ट प्रदायकः ।
दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ।।६
धर्मयशक्रियासारस्तेषां सारः सुरार्चितः ।
विद्यानां लेदविद्येव मन्त्राणाँ प्रणवोयथा ।।१०
भूरुहाणाँ सुरतरुर्धेनूनां कामधनुवत् ।
शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ।।११
देवानां तु यथाविष्णुर्वर्णामाँब्राह्मणो यथा ।
प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येवसुहृदां यथा ।।१२
आपगानां यथा गङ्गा तेजसातुरविर्यथा ।
आयुधानाँ यथा चक्रं धातूनांकाञ्चनंयथा ।।१३
वैष्णवानांयथारुद्रोरत्नानांकौस्तुभोयथा ।
मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा ।।१४

जैसे समस्त जीवों की माता हुआ करती है उसी भाँति सर्वदा अभीष्ट वस्तु का प्रदान करने वाला यह वैशाख मास हुआ करता है। इसकी ऐसी महिमा है कि यह दान, व्रत और स्नानों के द्वारा समस्त पापों का विनाश करने वाला है ।६। यह मास धर्म यज्ञ और क्रियाओं का सार स्वरूप है तथा तपस्या का सार है और सुरों के द्वारा समर्चित है। समस्त विद्याओं में वेद विद्याके समान ही है। सम्पूर्ण मन्त्रोंमें जैसे परम प्रधान प्रणव होता है वैसेही यह समस्त मासोंमें प्रमुख है। तरुओं में कल्प वृक्षके तुल्य तथा धेनुओं में कामधेनु के सहश यह मास सब में

श्रेष्ठ माना गया है। सब नागों में शेष और पक्षियों में गरुड़ की भाँति होता है। सब देवों में जैसे भगवान् विष्णु हैं--समस्त वर्णों में जिस तरह ब्राह्मण हैं वैसे ही वह मास होता है। प्रियतम वस्तुओं में प्राण के समान और हित के चिन्तक सुहृदों में भार्या के सदृश यह होता है। नदियों में भागीरथी गङ्गा जैसे सर्वश्रेष्ठ है तथा तेजस्वियों में जिस प्रकार से रवि होते हैं-आयुधों में सुदर्शन चक्र, धातुओं में सुवर्ण, वैष्णवों में रुद्रदेव, रत्नों में कौस्तुभ होता है ठीक उसी भाँति धर्म हेतु मासों में वैशाख हुआ करता है ।१०-१४।

नाऽनेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ।
वैशाखस्नाननिरते मेषे प्रागर्यमोदयात् ॥१५
लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्करोत्यलम् ।
जन्तूनांप्रीणनंयद्वदन्नेनैवहिजायते ॥१६
तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयम् ।
वैशाखस्नाननिरतान्दृष्ट्वाऽनुमोदते ॥१७
तावतापिविमुक्तोऽघैर्विष्णुलोकेमहीयते ।
सकृत्स्नात्वामेषसंस्थेसूर्येप्रात कृताह्निकः ॥१८
महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि ॥१९
अथवाकूटचित्तस्तुकुर्यात्सङ्कल्पमात्रकम् ॥२०
सोऽपिक्रतुशतंपुण्य लभेदेव न संशयः ।
यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषगते रवौ ॥२१
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च ॥२२

इसके समान लोक में भगवान् विष्णु की प्रीति का विधायक अन्य कोई भी मास नहीं है। अर्यमा (सूर्य) के उदय होने से पूर्व मेष

के सूर्य के समय में जो पुरुष वैशाख मास में स्नान में निरत रहा करता है उस पर लक्ष्मी देवी के साथ भगवान अत्यधिक प्रीति किया करते हैं जिस तरहसे जन्तुओं की प्रसन्नता एवं सन्तृप्ति अन्न ही से हुआ करती है उसी प्रकार से वैशाख मास के स्नान से निःसंशय भगवान् विष्णु प्रसन्न एवं तृप्त हुआ करते हैं। जो वैशाख मासके स्नानमें निरत रहने वाले पुरुषों को देखकर अनुमोदित होता है उतने मात्र के करने से भी मनुष्य पापों से विमुक्त हो जाया करता है और अन्त में विष्णु लोक जाकर प्रतिष्ठित होता है एक बार मेष राशि पर संस्थित सूर्य के रहने के समय स्नान कर प्रातःकाल में जो अपना आह्निक कृत्य करता है वह पापों से विमुक्त होकर भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लिया करता है। वैशाख मास में स्नान करने के लिए यदि एक कदम भी चरण करता है तो वह पुरुष दस हजार अश्वमेघ यज्ञों का फल प्राप्त कर लिया करता हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। अथवा कूट चित्त वाला होकर ऐसा करने का सङ्कल्पभार कर लेता है वह भी सौ क्रतुओं के करने का पुण्य फल प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो मेष राशि पर सूर्यके आने पर स्नान करने के लिए धनुर्धाम जाता है वह इस आवागमन के सग के बन्धन से विमुक्त होकर विष्णू भगवान् का सायुज्य प्राप्त कर लेता है। त्रैलोक्य में जो भी तीर्थ है और जो इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीर्थ हैं हे राजेन्द्र ! वे सभी वाह्य थोड़े से जल में होते हैं।१५-२२।

तानि सर्वाणि राजेन्द्र ! सन्नि बाह्यऽल्पके जले।
तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने ॥२३
यावन्न कुरुते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि।
तीर्थादिदेवताः शर्वा वैशाखेमासिभूमिप ! ॥२४

बहिर्जलं समाश्रित्यसदासन्निर्हितनृपः ।
सूर्योदयं समारभ्यं यावत्षड्घटिकावधि ।।२५
तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ।
तावन्नागच्छतां पुसां शाप दत्वा सुदारुणम् ।
स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र ! तस्मात्स्नं समाचरेत् ।।२६

उतने समय तक यमराज के शासन में स्थित एवं लिखित पाप अपनी गर्जना किया करते हैं जब तक जीव वैशाख मास में जल में स्नान नहीं करता है । हे राजन् ! हे भूमिपालक ! तीर्थादि के समस्त देवगण वैशाख मास में जल के बाहर समाश्रय लेकर सदा सन्निहित रहा करते हैं और वे सूर्य के उदय से लेकर जब तक छह घड़ियों की अवधि होती है तब तक भगवान् विष्णु की आज्ञा से मनुष्यों की हित करने की कामना से ही वहाँ पर स्थित रहते हैं । उतने समय तक भी जो नहीं गमन करते हैं उनको वे सुदारुण शाप देकर हे राजेन्द्र ! अपने-अपने स्थान को प्रस्थान कर जाया करते हैं । इसलिए सूर्योदय से पूर्व ही अवश्य वैशाख मास में स्नान करना चाहिए ।२३-२६।

३२—ज्ञानस्वरूपनिरूपणम्

अथज्ञानस्वरूपं तेवच्मिसङ्ख्येननिश्चितम् ।
क्षेत्रादिज्ञायतेयेन यज्ज्ञानंहिनिरुच्यते ।।१
वासुदेवः परं ब्रह्म वृहत्यक्षरधामनि ।
आदावेकोऽद्वितीयोऽभून्निगुणो दिव्यविग्रहः ।।२
सकार्यमूलप्रकृतिः सकलाऽक्षरतेजसि ।
प्रकाशोऽर्कस्वरात्रीव तिरोभूता तदाऽभवद् ।।३
सिसृक्षाऽथाभवत्तस्यब्रह्मामाण्डानांयदातदा ।
सकालाविर्बभूवादौ महामायाततोहिसा ।।४

तां कालशक्तिमादाय वासुदेवोऽक्षरात्मना ।
सिसृक्षयैक्षत यदा सा चुक्षीभ तदैर्वाह ॥५

तस्याः प्रधानपुरुषंकोटयोजज्ञिरे मुने ! ।
युज्यन्तो स्म प्रधानैस्तो पुरुषाश्चेच्छयाप्रभोः ॥६

पुमांसोनिदधुर्गर्भास्तेषु तेभ्यश्चजज्ञिरे ।
ब्रह्माण्डानिह्यसङ् ख्यानितत्रैकतुविविच्यते ॥७

भगवान् श्री नारायण ने कहा--साङ्ख्य दर्शन के द्वारा जो निश्चित किया गया है उस ज्ञान के स्वरूप को मैं तुमको बतलाता हूँ । क्षेत्र आदि का जिसके द्वारा प्राप्त होती है वही ज्ञान अब बतलाया जाता है । इस बृहती अक्षर ध्यान में वासुदेव परम ब्रह्म है । आदि काल में निर्गुण और दिव्य विग्रह वाला एक ही अद्वितीय हुआ था । ।१-२। वह समस्त कार्यों की मूल प्रकृति सकल अक्षर तेज से युक्त सूर्य के प्रकाश में राशि के समान उस समय में तिरोभूत हो गई थी ।३। अनन्तर जिस समय में उसको ब्रह्माण्डों के सृजन करने की इच्छा हुई थी उस समय में आदि में फिर वह महामाया आविर्भूत हो गई थी । ।४। भगवान वासुदेव ने अक्षरात्मा के द्वारा उस काल शक्ति को लेकर जिस समय में सृजन करने की इच्छा से देखा था उसी समय में उसने क्षोम किया था ।५। हे मुने ! उससे करोड़ों प्रधान पुरुष समुत्पन्न हो गये थे और वे प्रभु की इच्छा से पुरुष प्रधानों से युक्त हो गये थे ।६। पुमानों ने उनमें गर्भों को धारण किया था और उनसे समुत्पन्न हुए थे । असङ्ख्य ब्रह्माण्ड हुए थे उनमें से अब एक की विशेष विवेचना की जाती है ।७।

आदौ जज्ञे महांस्तस्मात्पुंसो वीर्याद्धिरण्मयात् ।
अहङ्कारस्ततस्माद्गुणाः सत्वादयस्त्रयः ॥८

तमसः पञ्च तन्मात्रा महाभूतानि जज्ञिरे ।
दशेन्द्रियाणि रजसो बुद्ध्यासहमंहानसुः ॥९

सत्वादिन्द्रियदेवाश्च जायन्ते स्म मनस्तथा ।
सामान्यतस्तत्वसञ्ज्ञा एते देवाः प्रकीर्त्तिताः ॥१०
प्रेरिता वासुदेवे स्वस्वांशैरैश्वरंवपुः ।
अजीजमविराट् सञ्ज्ञ ते चराचरसंश्रयम् ॥११
स च वैराजपुरुषः स्वसृष्टास्वप्स्वशेत यत् ।
तेन नारायणइतिप्रोच्यते निगमादिभिः ॥१२
तन्नाभिपद्माद् ब्रह्माऽऽसीद्राजसोऽथ हृदम्बुजात् ।
जज्ञ विष्णुःसत्वगुणो ललाटात्तामसो हरः ॥१३
एतेभ्यएवस्थानेभ्यस्तिस्त्रआसंश्चशक्तयः ।
तत्रासीत्तामसीदुर्गासावित्रीराजसीतथा ।
सात्विकी श्रीश्चेति सर्वा वस्त्राऽलङ्कारशोभिताः ॥१४

आदि में उस पुरुष के हिरण्मय वीर्य्य से महान् उत्पन्न हुआ था। उससे अहङ्कार और फिर उस अहङ्कार से सत्व, रज और तम ये तीन गुण समुत्पन्न हुए थे ।८। तम से पञ्च तन्मात्राऐं पञ्च महाभूत समुत्पन्न हुए थे । रज से दश इन्द्रियाँ और बुद्धि के साथ महान असु उत्पन्न हुए थे ।९। सत्व गुण से इन्द्रियों के देवता तथा मन की समुत्पत्ति हुई थी । सामान्य रूप रूप से ये सब देव तत्व संज्ञा वाले थे । ऐसा कीर्त्तित किया गया है ।१०। भगवान वासुदेव के द्वारा प्ररित होकर अपने-अपने अंशों से ईश्वरीय वायु को उत्पन्न किया था और वे चर और अचरों के संश्रय विराट् संज्ञा वाले थे ।११। और वह वैराज पुरुष अपने द्वारा समुत्पन्न किये हुए जल में शयन करते थे उसी से निगम आदि के द्वारा वह नारायण इस नाम से कहे जाया करते हैं । -१२। इसके अनन्तर उसके हृदय के अम्बुजसे राजस ब्रह्मा समुत्पन्न हुए थे, सत्व गुण विशिष्ट विष्णु हुए और ललाट से तमोगुण युक्त हर की उत्पत्ति हुई थी ।१३। इन्हीं स्थानों से ये तीन शक्तियाँ हुई थीं । वहाँ

पर तामसी देवी दुर्गा थी, राजसी भगवती सावित्री थी और सात्विकी महालक्ष्मी हुई थीं ये सभी वस्त्र और अलङ्कारों से विभूषित थीं ।१४।

ता वैराजाज्ञया त्रींश्च ब्रह्मादीन्प्रतिपेदिरे ।
दुर्गा रुद्रश्च सावित्री ब्रह्माण विष्णुमन्तिमा ।।१५
चण्डिकाद्याश्च दुर्गाया अनाऽऽसन्सहस्रशः ।
त्रयीमुख्याश्च सावित्र्याः शक्तयोऽशेन जज्ञिरे ।
दुस्सहाप्रमुखाश्चासन्नंशेनैव श्रियो मुने ! ।।१६
तत्रादितो यौ ब्रह्माऽऽसीद्वै राजनाभिपद्मतः ।
एकार्णवेतदब्जस्थः सकञ्चिदशि नैक्षत ।।१७
विसर्गबुद्धिमप्राप्तोनात्मानञ्चविवेदसः ।
कोऽहं कुत ध्यायन्नदिहक्षत्कआश्रयाम् ।।१८
नाऽलं प्रविश्याऽधो यातुस्तन्मूलञ्चविचिन्वतः ।
सम्वत्सरशसतं यातं तस्य नाऽन्तं तु सोऽलभत् ।।१९
उर्ध्वं पुनरुपेत्याऽथ श्रान्तश्च निषसाद सः ।
अदृश्यमूर्तिर्भगवानूचे तपतपेति तम् ।।२०
तच्छ्रुत्वा तत्प्रवक्तारमदृष्ट्वा च स सर्वतः ।
गुरूपदिष्टवत्तपे दिव्यं वर्ष सहस्रकम् ।।२१

उनने वैराज की आज्ञासे तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनको प्राप्त किया था दुर्गा देवी ने रुद्रदेव को प्राप्त किया था, सावित्री ने ब्रह्मा को प्राप्त किया था और महालक्ष्मी ने भगवान विष्णु का समाश्रय ग्रहण किया था ।१५। चण्डिका आदि अन्य सहस्रों स्वरूप दुर्गा देवी के ही अंश से समुत्पन्न हुए थे । त्रयीमुख्य सावित्री के अंश से उत्पन्न हुए थे । हे मुने ! दुस्सहा प्रमुख श्री देवी के अंश से हुए थे ।१६। वहाँ पर आदि में जो ब्रह्मा थे वह वैराज की नाभि देश में समुत्पन्न कमल से हुए थे । उस समय में यह सम्पूर्ण विश्व एकार्णव स्वरूप था अर्थात् सर्वत्र एक मात्र समुद्र ही था । उस समय में कमल में स्थित ब्रह्माजी

ने कुछ भी नहीं देखा था।१७। वह विसर्ग की बुद्धि को प्राप्त नहीं हुए थे अर्थात् उस ब्रह्मा में विशेष रूप से सर्ग करने की बुद्धि बिल्कुल नहीं थी और न वे अपने आपके स्वरूप का ही कुछ ज्ञान रखते थे । मैं कौन हूँ और कहाँ से समुत्पन्न होकर यहाँ प्राप्त हुआ हूँ-ऐसा ध्यान करते हुए उन्होंने कजाश्रय को ही देख पाया था।१८। उस भगवान् नारायण के नाभि प्रदेश से समुत्पन्न पद्म नाल में ब्रह्मा ने अधोभाग में प्रवेश किया था और नाम के मूलकी खोज करने की इच्छा की थी किन्तु इसी खोज में एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे किन्तु फिर भी वे उसका अन्त प्राप्त न कर सके थे।१९। वह ब्रह्मा फिर उसी पद्म के ऊपर आ गये थे और परम श्रान्त होकर उसी पर बैठ गये । उसी समय अत्यन्त थके और घबड़ाये हुए ब्रह्माजी से अदृश्य मूर्त्ति वाले प्रभु की यह आवाज हुई थी कि तपश्चर्या करो ।२०। ब्रह्माजी ने 'तप-तप' यह ध्वनि तो सुनी थी किन्तु इसके कहने वाला कौन है यह सभी ओर देखते हुए भी न देख पाये थे। फिर उन ब्रह्माजी ने गुरु के उपदेश को ही मानकर एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तप किया था।२१।

पद्मे तपस्यते तस्मै तपः शुद्धात्मने ततः ।
समाधौ दर्शयामासधामवैकुण्ठमच्युतः ।।२२
प्राधानिकागुणा यत्र त्रयोपि रजआदयः ।
न भवन्त्यल्पमपियत्कालमायाभयैन च ।।२३
सहोदिताकार्यायुवद्भास्वरेतत्र तेजसि ।
वासुदेवंददर्शाऽसो रम्यदिव्यासिताकृतिम् ।।२४
चतुर्भुजं गदापद्मशंखचक्रधरं विभुम् ।
पीताम्बरं महारत्नकिरीटादिविभूषम् ।।२५
नन्दताक्ष्यादिजुष्टं पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ।
सिद्धिभिश्चाष्टभि षड्भिर्वद्धञ्जलिपुटैर्भगैः ।।२६

सिंहासने श्रिया साकमुपविष्टं तमीश्वरम् ।
प्रणम्यञ्जलिस्तस्थौविरिञ्चो हृष्टमानसः ॥२७
तं प्राहि भगवान्ब्रह्मस्तुष्टोऽहंतपसा तव ।
वर वरयमत्तस्त्वस्वाभीष्टं यात्प्रियोऽसि मे ॥२८

उस पद्म में स्थित होकर तपश्चर्या करने वाले शुद्धात्मा ब्रह्माजी का समाधि में ही भगवान् अच्युत ने अपना वैकुण्ठ धाम दिखलाया था ।२२। वहाँ पर सत्वादि तीनों प्रधान के गुण थे यहाँ पर अल्प भी काल माया के भय नहींथे । यहाँ ऐसा तेज विद्यमान था जैसा दश सहस्र सूर्य एक साथ उदित हो रहे हों उस तेजनें परम रम्य दिव्य असित आकृति वाले भगवान बासुदेव का ब्रह्मा ने दर्शन प्राप्त किया था ।२३।२४। भगवान का चार भुजाओं से युक्त, गदा, शंख, पद्म और चक्र इन आयुधों को धारण करने वाला पीताम्वर धारी और महारत्नों से समन्वित किरीठ आदि भूषणों से भूषित स्वरूप था ।२५। चार भुजाओं वाले नन्द और तार्क्ष्य आदि पार्षदों के द्वारा वे वहाँ पर सेवित थे । आठों अणिमादि सिद्धियों और छहभाग हाथ जोड़े हुए उनकी सेवा में उपस्थित थे ।२६। एक दिव्य सिंहासन पर भगवान श्री देवी के साथ विराजमान थे । ऐसे ईश्वर का दर्शन प्राप्त करके ब्रह्माजी ने उनको अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया और इनके आगे परम प्रसन्न मन वाले होकर स्थिर हो गये थे ।२७। उस समय में भगवान ने उन ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मन् ! मैं आपके इस अत्युग्र तपसे परम प्रसन्न हो गया हूँ । अब आप मुझसे जो भी आपको अभीष्ट हो वह वरदान प्राप्त कर लो । मैं आपके प्रिय वरदान को देना चाहता हूँ ।२८।

इत्युक्तस्तेन तां जानंस्तपसि प्रेरकं प्रभुम् ।
स्वञ्चविश्वसृजं ब्रह्मायमाचेऽभिमतवरम् ॥२९
प्रजाविसर्गशक्ति मे देहि तुभ्यं नमः प्रभो ! ।
तत्रापिचन वद्ध्येयं यथा कुरुतथाकृपाम् ॥३०

ततस्त भगवानूचे सेत्स्यते मनोरथ
वैराजेन मयात्मैक्यभावयित्वा समाधिना ।
प्रजा मृताऽथ स्वसाध्ये जार्ये स्मयोऽहमिष्ठद: ।३१
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्माप्येकसमाधिना ।
वैराजेनाऽथ लोकेन्प्राग्लीनासर्वान्स्व ऐक्षत ।३२
विसर्गशक्ति सम्प्राप्य स सर्गाय मनोदधे ।
ब्रह्मज्योतिर्मयस्तावदादित्य: प्रासुसास ह ।३३
स्थापयित्वाऽण्डमध्ये तां तत: स मनसाऽसृजत् ।
तपोभक्तिविशुद्ध न मुनीनाद्याश्चतु: सनान् ।३४

उन प्रभु द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उग्र को ही अपनी तपस्या का प्रेरक प्रभु समझ कर ब्रह्माजी ने अपने आपको इस विश्व की सृष्टि करने वाला अभिमत वरदान उनसे मांग लिया था ब्रह्माजी ने कहा--हे प्रभो ! मुझे आप प्रजा के विसर्ग करने की महान् शक्ति प्रदान कीजिए । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । उसमें भी मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है सो आप ऐसी कृपा करिये कि मैं विसर्ग का ठीक-२ ज्ञान भी प्राप्त कर सकूँ ।२९-३०। इसके अनन्तर भगवान् ने कहा--तुमको प्रजा की सृष्टि करने का ज्ञान प्राप्न हो जायेगा और तुम्हारा मनोरथ सफल होगा । वैराज मेरे साथ आत्मा की एकता को समाधि द्वारा भावना करके प्रजा का सृजन करो । अपने लिए जब भी यह कार्य असाध्य समझो तभी अभीष्ट प्रदाता मेरा तुमको स्मरण कर लेना चाहिए ।३१। इतना कहकर भगवान् वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे और ब्रह्माने भी एक समाधि के द्वारा वैराजसे प्राक्लीन सब लोकों को स्वत: ही देख लिया था ।३२। ब्रह्मा ने विसर्ग शक्ति को प्राप्त करके फिर विश्व की रचना की ओर अपना मन लगाया था । तब तक ब्रह्मज्योति से परिपूर्ण आदित्य प्रादुर्भूत हुए थे ।३३। उसको अंड के मध्य में स्थापित करके इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने मन से ही सृजन का कार्य आरम्भ

किया था। तप से और भक्ति से परम विशुद्ध मन के द्वारा ब्रह्माजी ने आदि में होने वाले सनकादि चार मुनियों का सृजन किया था।३४।

प्रजाः सृजतचेत्यूतांस्तदातेतुहृद्वच।
न जग्रहुर्न्नैष्ठिकेन्द्रास्तेभ्यश्चुक्रोध विश्वसृट्।३५
क्रुद्धस्य तस्य भालाच्च रुद्र आसीत्तमोमयः।
मन्युं नियम्य मनसा प्रजेशान्सोऽसृजत्ततः।३६
मरीचिमत्रि पुलहं पुलस्त्यञ्च भृगुं क्रतुम्।
बसिष्ठं कर्दमञ्चैव दक्षमङ्गिरसं तथा।३७
धर्मं ततः सहृदयादधर्मंपृष्ठतस्तथा।
मनसः काममास्याच्चणींकोधं भ्रुवोऽसृजन्।३८
शौचं तपो दया सत्यमित धर्मंपदानि च।
चतुर्भ्यो वदनेभ्यश्च चत्वारि ससृजेततः।३९
ऋग्वेद वदनात्पूर्वाद्यजुर्वेदं दक्षिणात्।
ससर्ज पश्चिमात्साम सौम्याच्चाथर्वसंज्ञितम्।४०

उन सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार उन चारों के मन की सृष्टि करके उनसे ब्रह्माजी ने कहा था प्रजाओं का मेरे ही समान तुम लोग सृष्टि करो। उस समय में उन्होंने ब्रह्माजी के वचन को ग्रहण नहीं किया था क्योंकि वे नैष्ठिकों के परम शिरोमणि थे। उन पर विश्व के सृष्टा ब्रह्मा ने बहुत क्रोध किया था।३५। अत्यन्त क्रोधित हुए उनके भाल से तमोमय रुद्र हुए थे। उस समय मन में क्रोध को नियमित करके उन्होंने यजेशों का सृजन किया था।३६। उन प्रजापतियों के नाम ये हैं-मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, भृगु, क्रतु, वसिष्ठ, कर्दम, दक्ष और अङ्गिरा, ये दक्ष प्रजापतियों का सृजन किया था।३७। इसके अनन्तर उन्होंने हृदय से धर्म का और पृष्ठ भाग से अधर्म का सृजन किया था। मन से काम, मुख से वाणी और भृकुटियों से क्रोध की थी। धर्म के चार पद हैं-शौच, तप, दया, और सत्य ये चार चरण हैं। ब्रह्माजी ने

अपने चार मुखों से इन शौचादिक चारों की रचना की थी ।३८। इसके अनन्तर चारों वेदों की सृष्टि की थी । ब्रह्माजी अपने पूर्व मुख से ऋग्वेद का उच्चारण कर उसे आविर्भूत किया था । दक्षिण दिशा की ओर जो मुख था उससे यजुर्वेद का सृजन किया था । पश्चिमाभिमुख से सामवेद को प्रकट किया और उत्तर की ओर वाले मुख से अथर्ववेद को प्रकट किया था ।३९-४०।

इतिहासपुराणानियज्ञान्विप्रशतं तथा ।
तस्वात्यिततुद्विश्वान्साध्यांश्च मुखतोऽसृजत् ।४१
बाहुभ्यः क्षत्रियशतमरुभ्यां च विशांशयम्र ।
पद्भ्यांशूद्रशतचैमान्ससजहवृत्तिभिः ।४२
ब्रह्मचर्यं च ह्रदयादावंस्थ्यं जघनस्थलात् ।
वनाश्रमं तथोरस्तः संन्यासशिरसाऽसृजत् ।४३
वक्षः स्थलात्पितृगणनसुराञ्जघनस्थलात् ।
ससर्ज च गुदान्मृत्युं निऋति निरयांश्चसः ।४४
गन्धर्वांश्चारणान्सिन्यिक्षां राक्षसान् ।
नगान्मेघाविन्वद्युतश्च समुद्रान्सरितस्तथा ।४५
वृक्षान्पशू पक्षिश्च सर्वान्स्थावरजङ्गमान् ।
स्वाङ्गेभ्य एव सोस्राक्षीन् ब्रह्मनरायणात्मकः ।४६
सृष्टिमेतां विलोऽयाऽपि नापि प्रीतो तदा ।
हरिं ध्यात्वास जमृजे तपोविद्यासमाधिभिः ।
ऋषोन्स्वायम्भुवादींश्च मनूश्चमनुजानपि ।४७

इतिहास पुराणों का सृजन, यज्ञों का तथा विप्र शत का और वसु, आदित्य, मरुद्गण और साध्यों की रचना ब्रह्माजी ने अपने मुख से ही की थी ।४१। बाहुओं से शत क्षत्रियों को तथा उरुओं से वैश्यशत का एवं चरणों से शत शूद्रों को उनकी वृत्तियों के सहित ही निर्मित

किया था ।४२। अपने हृदय से ब्रह्मचर्य की, जघनस्थल से गार्हस्थ्य की सरत्स्थल से वनाश्रम अर्थात् वाण प्रस्थ की ओर से संन्यास की सृष्टि की थी ।४३। ब्रह्माजी ने अपने वक्षः स्थल से पितृवाणी का सृजन किया था । जघन स्थलसे असुरों की सृष्टि की थी जो सुरोंके शत्रु थें और उनसे गुदा से मृत्यु, निऋ ति और नरकों की सृष्टि की थी।४४ नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने अपने अङ्गों से गन्धर्व चारण, सिद्धि, सर्प यक्ष, राक्षस, पर्वत, मेघ, विद्युत, समुद्र, सरितायें वृक्ष, पशुवध, पक्षी, सभी जङ्गम और स्थावरों का सृजन किया था ।४५-४६। इतनी सृष्टि की रचना करके जिस समय ब्रह्माजी ने इनका अवलोकन किया था उस समय उनको अपनी इतनी विशाल रचना से भी कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई थी । उस समय श्रीहरि भगवान का ध्यान करके ब्रह्माजी ने तप विद्या और समाधि से युक्त अथवा तप आदि से ऋषियों की, स्वायम्भुव मनु आदि की, और मनुष्यों की भी सृष्टि की थी ।४७।

ततः प्रीतः स सर्वेषांनिवासाययथोचितम् ।
स्वर्लोकं च भुवर्लोकं भूलोकं समकल्पयत् ।४८

येषां तु यादृशं कर्म प्रक्वलीनं हि तान्विधिः ।
संस्थाप्य तादृशे स्थाने वृतोस्तेषामकल्पयत् ।४९

देवानाममृत नृणामृषीणां चान्नमौषधीः ।
यक्षरक्षोसुरव्याघ्रासर्पादीनां सुराभिषाम् ।
चक्लृपे गोमृगादीनां धृत्ति स यवसादि च ।५०

स देवानां तु विश्वेषां हव्य वृत्तिमकल्पयत् ।
अमूर्तानां च मूर्तानांपितृणांकव्यमेव च ।५१

दुर्गोद्भवानां शक्तीनां तदुपासनतत्परैः ।
दैत्यरक्षः पिशाचाद्यं दंत्तं मंत्रामिषादि च ।५२

तथासावित्रियुद्भवानां शक्तीनां तदुपासकैः ।
दत्तमृष्यादिभिर्यज्ञे मुन्यन्नंचान्नमोषधीः ।५३
श्रीजातां च शक्तीनां तदुपास्तिपरायणः ।
दत्तं देवासुरनरैः पायजास्यसितादिव ।५४

उस समय हमको परम प्रसन्नता हुई थी और इन सबके निवास करने के लिए समुचित स्थानों की इच्छा से स्वर्लोक भुवर्लोक और भूलोक की सृष्टि की थी ।४८। पहले जन्मों में जिसका भी जैसा कर्म था विधाता ने उसी के अनुसार उसी प्रकार के स्थान में उन सबको संस्थापित कर दिया था और उनकी वृत्ति की भी रचना कर दी थी ।४९। देवों के आहार के लिए अमृत का सृजन कर दिया था, मनुष्यों और ऋषियों के लिए अन्न तथा औषधियों की रचना कर दी थी। यक्ष राक्षस, असुर, व्याघ्र और सुषत्ति के लिए सुरा (मदिरा) तथा मास की सृष्टि कर दी थी तथा गौ और मृग आदि और पशुओं के आहार के लिए यवस आदि का सृजन दिया था ।५०। ब्रह्माजी ने विश्व देवताओं के लिए हव्य की वृत्ति निर्मित कर दी थी और अमूर्त तथा मूर्त पितृगण के लिए कव्य का सृजन किया था ।५१। दुर्गा देवी से उद्भूत होने वाली शक्तियों के और उसकी उपासना करने में परायण दैत्य, राक्षस, पिशाच आदि के द्वारा दिया हुआ मद्य और मास आदि का सृजन किया था ।५२। सावित्री से अद्भुत होने वाली शक्तियों के उपासकों के द्वारा दिया हुआ यज्ञ में ऋषि आदि के द्वारा मुन्यन्न और औषधियों की रचना की थी ।५३। श्री से समुत्पन्न शक्तियों की उपासना में परायणों के द्वारा दिया हुआ जो कि देवासुर नर थे, पायस, आज्य और सिता आदि की रचना की थी ।५४।

प्रजापतीनांसपतिस्ततः प्राहाऽखिलाः प्रजाः ।
इज्यावेवाश्चपितरोहव्यकव्दात्मकैर्मखैः ।५५

इष्टा: सम्पूरयिष्यन्ति ह्य तैयुष्यमन्मनोरथान् ।
एतान्येनाऽर्चंयिष्यन्तितेवैनिरयगामिन: ।५६
इत्थं कृता हि मर्यादा तेन नारायणात्मना ।
दैव पित्र्यतोनित्य जनै: कार्यं यथाविधि ।५७
ततो ब्रह्मा सर्वेषांधर्मसेत्ववनायच ।
तत्तज्जातिषुयेमुख्यास्तान्मनूंश्चाप्यतिष्ठिपत् ।५८
वासुदेवेच्छयैवेत्थं वैराजाद्ब्रह्मरूपिण: ।
कल्पेकल्पे भवत्यैव सृष्टिर्बहुविधा मुने ! ।५९
प्राक्कल्पे यादृशी संज्ञा वेदा शास्त्राणि च क्रिया: ।
कल्पेऽन्ये तादृशा: सर्वे धर्मा स्युश्चाधिकारिण: ।६०
विष्णुर्य: कथित: सोऽपि वैराजपुरुषात्मक: ।
पोषयत्यखिलाल्लोकान्मर्यादा: परिपालयन् ।६१
मन्वादिभि: पाल्यमाना: सेतवन्त्वसुरै यदा ।
कामरूपैर्विभिद्यन्ते वासुदेवस्तदा स्तयम् ।
ब्रह्मादिभि: प्रार्थ्यमान: प्रादुर्भवति भूतले ।६२

प्रजापतियों के स्वामी उन ब्रह्माजी ने समस्त प्रजाओं से कहा था कि यजन किए हुए देव और भव्य कव्यात्मक मखों के द्वारा इष्ट पितर ये सब आप लोगों के मनोरथों को पूर्ण करेंगे । जो लोग इनकी अर्चना नहीं करेंगे वे नरक के गमन करने वाले होंगे ।५५-५६। इस प्रकार से नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने मर्यादा की रचना कर दी थी । इसलिए मनुष्यों के द्वारा यथाविधि नित्य ही दैव कार्य और पित्र्य कार्य करने चाहिए ।५७। इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने धर्म सेतु की रक्षा के लिए उन-उन जातियों में जो मुख्य थे उन मनुओं की प्रतिष्ठा की थी । हे मुनिवर ! भगवान वासुदेव की इच्छा ही से ब्रह्मरूपी वैराज से इस प्रकार से बहुत प्रकार की सृष्टि प्रत्येक कल्प में हुआ करती है । ।५७-५८। प्रथम कल्प में जैसी भी संज्ञा होती है तथा वेद, शास्त्र और

जो भी क्रियायें होती हैं अन्य में भी सभी धर्म उसी तरह के होते हैं और अधिकारी भी वैसे ही हुआ करते हैं ।५९। जिसको विष्णु कहा गया है वह भी वैराज पुरुष स्वरूप है क्योंकि वह मर्यादाओं का पूर्ण रूप से पालन करता हुआ समस्त लोकों का पोषण किया करता है ।६० मनु आदि महापुरुषों के द्वारा पालन करने के योग्य सेतुओं का जिस समय में कामरूप असुरों ने विभेदन किया तो उस समय स्वयं भगवान वासुदेव ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा प्रार्थना की जाने पर भूतल में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं ।६१-६२।

अवतारा भगवतो भूनाभाव्याश्च सन्ति ये ।
कर्त्तुं न शक्यते तेषां सख्यां संख्याविशारदैः ।६३
सद्धर्मदेवसाधूनां गुप्त्यै तद्द्रोहिमृत्यवे ।
श्रेयसेसर्वभूतानामाविर्भावोऽस्तिसत्पतेः ।६४
स वासुदेवः प्रकृतो पुंसि कार्येषु चैतयोः ।
अन्वितश्च पृथक् चाऽऽस्ते सर्वाधीशः स्वधामानिः ।६५
व्याप्य स्वांशैरिमाँल्लोकान्यथाग्निवरुणादयः ।
स्वस्त्यासते स्वस्वलोके तथैष भगवान्मुने ! ।६६
सर्गात्प्राक्सच्चिदानन्दः शुद्ध एकश्च निर्गुणाः ।
यथाऽऽसीत्ताहगेवासावन्धितोऽप्यस्ति निर्मलः ।६७
वायुतेजोजलक्ष्मासु तत्तत्कार्येषु खं यथा ।
अन्वायाऽप्यस्तिनिर्लेपस्तथा पूर्वतथैषहि ।६८
सर्वोपास्यो नियन्ता च व्यापकश्चैषकीर्तितः ।
आत्यन्तिकेलयेथैषाभवत्येवयथापुरा ।६९

भगवान् के जो अवतार हो चुके हैं या भविष्य में होंगे अथवा गणना में हैं वे सब बड़े-२ संख्या के करने वाले मनीषियों के द्वारा भी गणना में नहीं लाये जा सकते हैं ।६३। साधु पुरुषों के स्वामी भग-

वान् के आविर्भाव सद्धर्म और साधु पुरुषों की सुरक्षा करने के लिए और इनसे द्रोह करने वाले दुष्टों के संहार करने के लिए एवं समस्त भूतों के कल्याण का सम्पादन करने के लिए ही हुआ करता है।६४। यह प्रभु अपने धाम में सबका अधीश प्रकृति के पुरुष में और इन दोनों के कार्यों से अन्वित हैं और इन दोनों से पृथक् भी हैं ।६५। हे मुने ! अपने अंशों से इन समस्त लोकों में व्याप्त होकर जैसे अग्नि और वरुण प्रभृति देवगण अपने-अपने लोक में कल्याण पूर्वक हैं वैसे ही यह भगवान् भी हैं।६६। इस विश्व की रचना के पूर्व सच्चिदानन्द शुद्ध, एक और निर्गुण जिस प्रकार से ये वैसे ही अन्वित होने पर भी निर्मल ही उनका स्वरूप है।६७। जिस तरह से वायु और तेज के चिह्न वालों में और उनके उन-उन कार्यों में आकाश है। वह अन्वित भी है तथा पूर्व की ही भाँति निर्लेप भी होता है।६८। यह भगवान् सबकी उपासना करने योग्य हैं,सबके नियन्ता हैं और सबमें व्यापक भी कहे गये हैं और जब आत्यन्तिक प्रलय होता है उस समय में भी यह जैसे पहले थे वैसे ही रहा करते हैं।६९।

वैराजः पुरुषो योऽत्र प्रोक्तोऽसावीश्वराभिवः।
ज्ञेयः स्वतन्त्र सर्वज्ञोवयमाश्चनारद ।७०
एतस्यैन स्वपाणिब्रह्माविष्णुशिवस्त्रयः।
रजआदिगुणोपेताः स्वगुणानुगुक्रियाः ।७१
ब्रह्मणो ये समुत्पन्नादेवासुरनरादयः।
ते जीवसंज्ञा ह्यल्पज्ञाः परतन्त्रा भवन्ति च ।७२
जीवानामीश्वराणां च तनवः क्षेत्रसंज्ञकाः।
महदादितत्वमध्यः क्षेत्रज्ञाख्यास्तुतद्विदः ।७३
क्षेत्राणां च क्षेत्रविदां प्रधानपुरुषस्य च।
मायवाः कालशक्तेश्चाऽक्षरस्य च परात्मनः।
पृथक्पृथग्लक्षणैर्यज्ज्ञानं तज्ज्ञानमुच्यते ।७४

यहाँ पर जो वैराज ईश्वर नाम वाला पुरुष कहा गया है, हे नारद ! वह जानने के योग्य, स्वतन्त्र सर्वज्ञ और बहुयमाय है ।७०। उस एक ही के ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन स्वरूप हुआ करते हैं। इनके सत्व, रज और तम ये गुण हैं जिनसे वे युक्त होते हैं और उन गुणों के अनुसार उनकी क्रियायें भी हुआ करती हैं ।७१। ब्रह्मा से जो देव, असुर और मनुष्य आदि उत्पन्न हुए थे वे सब जीव संज्ञा वाले प्राणी हैं--ये अल्पज्ञ हैं, पराधीन हैं ।७२। जीवों और ईश्वरों के जो शरीर हैं वे क्षेत्र संज्ञा वाले हैं ये महत् आदि तत्वों से परिपूर्ण हैं और उनके ज्ञाता लोग क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं क्षेत्रों का ।७३। क्षेत्रों के ज्ञाताओं का, प्रधान का और पुरुष का, माया का काल की शक्ति का अक्षर परमात्मा का पृथक्-पृथक् लक्षणों के द्वारा जो ज्ञान है उसी को ज्ञान कहा जाता है ।७४।

३३—वैराग्य भक्ति निरूपण

वैराग्यस्याऽणतेवच्चिलणभुनिसत्तम ! ।
क्षयिष्णवस्तुष्वरुचिः सर्वथेतितदीरितम् ।१
आरभ्य मायापुरुषात्सर्वा ह्याकृतयस्तु याः ।
कालशक्त्याभगवतोनाश्यन्तेताक्ततद्वशाः ।२
प्रत्येक्षेणाऽनुमानेनशाब्देन च विवेकिभिः ।
असत्यताकृतीनांचनिश्चितासत्यतात्मनाम् ।३
नित्येन प्रलयेनैव कालो नैमित्तिकेन च ।
प्राकृतिकेन रूपेण चरत्यात्यन्तिकेन च ।४
देहिदेहा इमे नित्यं क्षीयन्ते परिणामिनाः ।
क्रमेण दृश्यते यत्र बाल्यतारुण्यवार्द्धकम् ।५
सूक्ष्मत्वान्नेक्ष्यते तत्तु गतिर्दीपार्चिषो यथा ।
फलवृद्धिर्वाऽनुपदं जायमाना द्रुमेयथा ।६

तस्यांतस्यामवस्थायां दुःखं च महदीक्ष्यते ।
जाग्रदादिष्ववस्थासुदुःखं चैव पुनः पुनः ।७

भगवान् नारायण ने कहा--हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं आपको वैराग्य का लक्षण बतलाता हूँ जो क्षय होने के स्वभाव वाली वस्तुयें हैं, उन सब में रुचि का न होना ही वैराग्य कहा गया है । माया पुरुष से आरम्भ के जो भी समस्त आकृतियाँ हैं वे सब भगवान की कालशक्ति के द्वारा विनाश कर दी जाया करती है क्योंकि वे सब उनके वश गत होती हैं ।१-२। प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द प्रमाण से विवेकियों द्वारा असत्य स्वरूप वाली आकृतियों की असत्यता निश्चित कर ली गई है । यह काल नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक रूप से और आत्यन्तिक के द्वारा चरण किया करता है ।३-४। देहधारियों के ये देह परिणामी हैं । और नित्य ही क्षीण हुआ करते हैं जिनमें क्रम से बाल्य (शैशवावस्था), तरुणता और वार्धक्य दिखलाई दिया करता है । दीप की अर्चि (लौ) की गति के समान वह सूक्ष्म होनेके कारण दिखाई नहीं देता है । अथवा जिस प्रकार से वृक्ष में फलों की उत्पन्न होने वाली अनुपद वृद्धि होती है । उस-उस अवस्था में महान् दुःख दिखलाई दिया करता है । जाग्रत आदि जो तीन अवस्थायें हैं उहें भी बारम्बार दुःख ही होता है ।५-७।

दुःखमाध्यात्मिकं भूरि दृश्यते चाऽऽधिभौतिकम् ।
आधिदैविकमप्यत्र दुःखमेवाऽस्ति देहिनाम् ।८
हाहा ममार मत्पुत्रो हा पत्नी म्रियते मम ।
तातं मेऽभक्षयद्व्याघ्रो गष्टा सर्पेणमेवधूः ।९
महासौधोऽग्निना दग्धो हाहा सोकस्कराऽद्य मे ।
स्वकुटुम्बं कथं पोक्ष्ये नाऽवर्षत्पाकशासनः ।१०
सस्यः समृद्धं मत्क्षेत्रं हाहा दग्धंहिमाग्निना ।
ह्निनयन्तेतस्कर्यगावः सर्वस्तममलुण्ठतम् ।११

नृपेण दण्डितोऽत्यर्थं शत्रुणा ह्यऽतिताडितः ।
किं करोमि च कं ब्रूयां माता अव्यभिचारिणी ।१२
विषं पास्यामि हाहाऽद्य मत्पत्नीं शत्रुराकृषत् ।
हा स्वसामे हृता म्लेच्छैर्हाहाऽरिः प्राप मर्मभित् ।१३
म्रिये ज्वरातिव्यथया यमदूता इमे हहा ।
इत्थं रोरूयमाणा हि दृश्यन्ते सर्वतो जनाः ।१४

देहधारियों को अत्यधिक आध्यात्मिक दुःख दिखाई देता है-- आधिभौतिक दुःख भी होता है और आधिदैविक दुःख है । यहाँ पर इन शरीर के धारण करने की दशा में दुःख ही दुःख है ।८। हाय-हाय मेरा पुत्र मर गया है, मेरी पत्नी मर रही है, मेरे पिता को व्याघ्र से खा लिया है और मेरी वधू को सर्प ने काट लिया है ।९। मेरा भवन आज अग्नि से दग्ध हो गया है जो सभी उपभोग की वस्तुओं से भरा पूरा था । अब मैं अपने कुटुम्ब का कैसे पोषण करूँगा । इन्द्र देव ने भी वर्षा नहीं की है ।१०। पाले से मेरा अच्छी फसल से भरा पूरा क्षेत्र भी हाय हाय ! नष्ट हो गया है अर्थात् मेरी खड़ी फसल को पाला मार गया है । लुटेरों के द्वारा मेरी गायें भी चुरा लीं गई हैं । मेरा सभी कुछ लुट गया है, राजा ने भी मुझे बहुत अधिक दण्डित किया है और मेरे शत्रु ने भी अधिक ताड़ित कर डाला है । मैं अब क्या करूँ, जिससे अपनी व्यथा को सुनाऊँ । हाय ! मेरी माता भी व्यभिचारिणी हो गई है ।११-१२। हाय-हाय ! मैं आज विष का पान कर लूँगा, शत्रु ने मेरी पत्नी को बलात् कर्षण करके छीन लिया है । म्लेच्छों ने मेरी बहिन को भी अपहृत कर लिया है, हाय ! मर्म से भेदन करने वाले शत्रु मेरे प्राप्त हो गये हैं ।१३। मैं ज्वर की व्यथा से मर रहा हूँ और यहाँ पर ये यम के दूत आ गये हैं-इस भाँति से सभी ओर सांसारिक

मनुष्य अपनी-अपनी विभिन्न प्रकार की व्याधाओं से प्रपीड़ित होकरे रुदन करते हुए दिखलाई दिया करते हैं ।१४।

अवस्थानां शरीरस्यजन्ममृत्यु प्रतिक्षणम् ।
कालेनप्राप्नुवाद्भिः स्वप्रारब्ध दुःखमश्यते ।१५
प्रारब्धान्ते मृत्युदुःख भवत्यप्रतिमं हि तत् ।
मृत्वाऽपि च महद्दुःखं प्राप्यतेयमयातना ।१६
ततो जरायुजोद्भिज्जस्वेदजाण्डजयोनिषु ।
भूत्वाभूत्वा यथामंध्रियदुःखितैः पुनः ।१७
नित्यः प्रलय एवं ते कीर्त्तितः सूक्ष्मया दृशा ।
स ज्ञयोऽथ मुने ! वच्मि लय नैमित्तिकाभिधम् ।१८
निमित्तोकृत्य रजनी भवेदिपूर्वं सृजस्तु यः ।
नैमित्तिकः स कथितोलयोदैन दिनक्तसः ।१९
चतुर्युगाणां सहस्रं दिनंविश्वसृजा मुने !
निशा च तावतीतस्यतद्द्वय कल्पउच्यते ।२१
एकैकस्मिन्दिने तस्य चतुर्दश चतुर्दश ।
भवन्ति मनवो ब्रह्मन्धर्मसेत्वभिरक्षका ।।२१

शरीर की अवस्थाओं के जन्म और मृत्यु प्रतिक्षण काल के द्वारा प्राप्त करने वाले लोग उस तरह से अपने प्रारब्ध दुःख का भोग किया करते हैं ।१५। प्रारब्ध कर्म के भोग करने के अन्त में इस संसार से मृत्यु का भी अनुपम दुःख होता है । मर कर भी दुःख से छुटकारा नहीं होता है फिर भी यमलोक में यम की नारकीय यातनाओं के भोगने का महान् दुःख होता है ।१६। इसके भी पश्चात् फिर जरायुज, उद्भिज, स्वेदज और अण्डज इस चार प्रकार की योनियों में अपने कर्मों के अनुसार जन्म ग्रहण कर-करके बारम्बार दुःखित होते हुए मृत्यु प्राप्त की जाया करती है ।१७। इस प्रकार से यह सूक्ष्म दृष्टि से नित्य प्रलय कहा गया है । हे मुने ! इस प्रलय का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए । अब मैं उस

नैमित्तिक प्रलय के विषय हैं तुमको बतलाता हूँ ।१८। विश्व के सृजन करने वाले की रजनी को निमित्त बनाकर जो होता है वही नैमित्तिक लय कहा गया हैं जो दिनों दिन हुआ करता है ।१९। हे मुने ! चारों सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग युगों की जब एक सहस्र संख्या पूर्ण हो जाती है तभी विश्व के स्रष्टा ब्रह्माका एक दिन होता है। उसकी निशा भी उतनी ही होती है। उन दो का एक कल्प होता है। ऐसा कहा जाता है ।२०। उसके एक-एक दिन में हे ब्रह्मद ! धर्म हेतुके अभि-रक्षक चौदह-चौदह मगनुण हुआ करते हैं ।२१।'

आद्यः स्वायम्भुवस्तत्रमनुः स्वारोचिषस्मतः ।
उत्तमस्नामसश्चाऽथरवतश्चाक्षुषस्ततः ।२२
श्राद्धदेवश्च सावर्णिभौत्यो रोच्यस्ततः परम् ।
ब्रह्ममावर्णिनामांच रुद्रसावर्णिरेव च ।२३
मेरुमावर्णिसंज्ञोऽथदक्षसावर्णिरन्तिमः ।
चतुर्दशैते मनवः प्रोक्ता ब्रह्मैकवासरे ।२४
एकैकस्य मनोः कालो युगानांचैकसप्ततिः ।
विच्यैद्वादशसाहस्त्रैयुगकाश्चवत्सरैः ।२५
चतुर्दशस्यैव मनोरन्तरेऽन्तमुतेयुवि ।
सन्ध्या विश्वसृजो जायते मुनिसत्तम् ! ।२६
दिनावसाने वैराजः शक्तीराकर्षति स्थितेः ।
वैराजान्मा तदा रुद्रस्त्रिलोकोहतु मोहते ।२७
आदौभरत्यनावृष्टिरत्युग्राशतवार्षिकी ।
तदाऽल्पसारसत्वानि क्षीयन्ते सर्वशोभुवि ।२८

उन मनुओं में सबसे आदि काल में होने वाला मनु स्वायम्भव मनु था। इसके पश्चात् स्वारोचिष मनु हुएथे। उसके बाद में उत्तम नामक मनु हुए, फिर तामस, रैवत, चाक्षुष, श्राद्धदेव, सावर्णि, भौत्य, रोच्य, ब्रह्म सावर्णि, रुद्रक्त वर्णि, मेरु सावर्णि और अन्तिम दक्ष सावर्णि

हुए थे। ये चौदह मनु ब्रह्माजी के एक दिन के समय में होकर अपना काल पूरा कर दिया करते हैं।२२-२४। एक-एक मनु का उपयोग काल चारों युगों की इकहत्तर चोकड़ी का होता है और दिव्य बारह हजार वर्ष एक युग का होता है। मुनिश्रेष्ठ ! चौदह मनुओं के आहार से अन्त को प्राप्त होने पर विश्व के स्रष्टा की साय-सन्ध्या हुआ करती है। दिवस के अवसान (आखोर) होने पर वैराज स्थिति की शक्तियों का आकर्पण किया करते हैं। उसी समय में वैराजात्मा भगवान् रुद्र इस त्रिलोकी का हरण करने की इच्छा किया करते हैं। सबके आदि में अनावृष्टि हुआ करती हैं अर्थात् सृष्टि के संहार काल का समय जब उपस्थित होता है तो सर्वप्रथम वृष्टि का अभाव होता है। वह अनावृष्टि भी ऐसी अत्यन्त उग्र होतीहै जो सौ वर्ष तक बराबर रहा करती है। उस समय में इस भूमण्डल में अल्प सार वाले सत्य है वे क्षीण हो जाया करते हैं।२२-२८।

सास्वर्त्तकस्य चाऽर्कस्य रश्मयोऽप्यु वण रसम् ।
आपातालात्पिवन्याशु धरण्यां सर्वमेव हि ।२९
सारस चैव नादेयं सामुद्रं चाऽम्बु सर्वशः ।
शोषयित्वाऽखिलाल्लोकान्साऽर्कों नयति सङ्क्षयम् ।३०
ततो भवितिनिः स्नेहा नष्टस्थावरजङ्गमा ।
कूर्मपृष्ठोपमा भूमिः शुष्कास कुमिताभृशम् ।३१
कालाग्निरुद्र शेषस्य मुखाद्दत्पद्यते ततः ।
अथोलोकान्सप्तभुवः स्विश्वदहत्यसौ ।३२
निर्दग्धलोकदशको ज्वालावर्त्त भयंकरः ।
उद्भासितमहर्लोकः कालाग्निः परिवर्त्तते ।३३
गताधिकारस्त्रिदशाभुवः स्वर्गनिवासिनः ।
महर्लोकाज्जनंयान्तिवह्निज्वालाभृशादिताः ।३४

निवृत्तिधर्मा ऋषयः प्राप्थाः सिटदशां तु ये ।
भूतलात्तै पितह्य् वऋषिलोकंप्रयान्तिव ।
उत्तिष्ठन्ति ततो घोरोव्योम्नि साम्वर्त्तका घनाः ।३५

फिर साम्वर्त्तक सूर्य की किरणें जो कि अत्यन्त उल्वण (तीक्ष्ण) होती हैं ये शीघ्र ही पाताल तक के सब रस का धरणी में पान कर जाया करती है ।२९। सूर्य देव ऐसे प्रखर हो जाते हैं कि समस्त नदियों की सरसता और समुद्र के सम्पूर्ण जल को शोषित करके समस्त लोकों का संक्षय कर दिया करते हैं ।३०। इसके अनन्तर यह भूमि स्नेह रहित हो जाया करती है जिसके कारण सभी स्थावरों और जङ्गलों का पूर्णतया विनाश हो जाता है। फिर यह पृथिवी कछुए की पीठ के सदल शुष्क मैदान जैसी दिखलाई दिया करती है । यह एकदम शुष्क और अत्यन्त सकुचित हो जाया करती है । उस समय में जङ्गलों की तो बात ही क्या है पहाड़, वृक्ष और नदियाँ यहाँ पर कुछ भी दिखाई नहीं देता है ।३१। तब शेष के मुख से कालाग्नि रुद्र उत्पन्न होते हैं । यह नीचे के लोकों को जो सात भूमि वाले हैं और भूः-भुवः तथा स्वः सबको दग्ध कर देते हैं ।३२। दश लोकों को निर्दग्ध करके ज्वालाओं के आवर्त से अत्यन्त भयानक कालाग्नि महर्लोक को उद्भासित कर देने वाला चारों ओर वर्तमान होता है । अधिकार छिप जाने वाले देवगण भुव और स्वर्ग के निवास करने वाले वह्नि की ज्वाला से अत्यधिक अर्दित होते हुए महर्लोक मे जग को जाते हैं ।३३-३४। निवृत्ति धर्म वाले ऋषिगण जो सिद्ध दशा को प्राप्त हो गये हैं वे भी उस समय में इस भूतल से ऋषिलोक को चले जाते हैं । इसके पश्चात् फिर व्योम में परम घोर साम्वर्त्तक मेघ उठते हैं ।३५

महागजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तोनादिनः ।३६
धूम्रवर्णाः पीतवर्णा केचित्कुमुदसन्निभाः ।
लाक्षारसनिभाः केचिञ्चाषपत्रमिभास्तथा ।३७

शमयित्वा महावह्निशतंवर्षाण्यहर्निशम् ।
वर्षमाणाः स्थूलधारः स्तनन्तस्ते घनाघनाः ।
ब्रह्मांडस्यान्तराल च पूरयंति ध्रुवावधि ।३८
एकार्णवजले तस्मिन्वैराजपुषः स तु ।
अनिरुद्धात्मकः शेते नागेन्द्रशयने प्रभुः ।३९
तदा देवाश्च ऋषयो रजः सत्वतमोवशाः ।
ये ते सह विरिचेनस्वकीयगुणकषिताः ।
प्रविश्य तस्य जठरे शेरत दीर्घनिद्रया ।४०
ये तु ब्रह्मात्मैक्पभावा वशीकृतगुणत्रयाः ।
निवृत्तेनैव धर्मेण वासुदेवमुपासत ।४१
महरादिषु लोकेषु ते चतुर्थं कृतालयाः ।
तं वैराजं संस्तुवन्तोनिवसन्तियथारुखम् ।४२
नारायणः स भगवान्स्वरूपं परमात्मनः ।
चिन्तयन्वासुदेवाख्यं शेते योगनिद्रया ।४३

वे मेघ महान गजी के कुल के समान दिखाई देने वाले, बिजली से युक्त और अत्यन्त घोर गर्जन करने वाले होते हैं ।३६। उन मेघों में कुछ तो धूम्र वर्ण वाले हैं, कुछ पीत वर्ण से युक्त हैं, कुछ कुमुद के सदृश है--कुछ लाख के रस के तुल्य हैं और कुछ धाम्रपत्र के सदृश हैं ।३७। अहर्निश परम घोर गर्जन करके महान उग्र जो वह्निथी उसका शमन करके वे निरन्तर घने होते हुए गर्जना करके स्थूल जल की धाराओं से वर्षमाण होते हैं और ब्रह्माण्ड के अन्तराल को ध्रुव की अवधि पर्यन्त पूरित कर दिया करते हैं ।३८। उस समय में सर्वत्र जलमय हो जाता हैं । उस एकार्णव जल में वह वैराज पुरुष आदि शुद्धात्मक होकर प्रभु शेष की शय्या पर शयन किया करते हैं ।३९। उस समय में देवता और ऋषिवृन्द रजा सत्व और तप के चक्रवर्ती होकर जो भी हैं वे सब अपने गुणों से कषित विरिञ्चि के साथ

उसके उदर में प्रवेश कर दीर्घ निद्रा से किया करते हैं ।४०। जो ब्रह्म के साथ आत्मैक्य भाव वाले हैं और जिन्होंने तीनों गुणों को वश में कर लिया है वे निवृति धर्म से ही भगवान् वासुदेव की उपासना किया करते हैं ।४१। यह महादि चारों लोकों में से वे अपना आलय बनाकर उसी वैराज प्रभु का स्तवन करते हुए सुख पूर्वक वहाँ पर निवास किया करते हैं ।४२। वह भगवान् नारायण परमात्मा के वासुदेव न वाले स्वरूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा से शयन किया करते हैं ।४३।

निशन्ते ब्रह्मणा साकं सर्वे ते तस्य जाठरा: ।
उत्पद्यन्तेयथापूर्वंयथाकर्मांधिकारिण: ।४४
एवं नैमित्तिको नाम त्रिलोकीक्षयलक्षण: ।
प्रलय: कथितस्तुभ्यं प्राकृतकीर्त्तयाम्यहम् ।४५
य एष कल्प: कथितस्ताद्दशानांशतत्रयम् ।
षष्ट्याधिकञ्चय: कालोवेधस सतुवत्सर: ।४६
पञ्चाशता तै परार्द्धा ब्रह्मायुस्तद्द्वयं मतम् ।
पराख्यकाले सम्पूर्णे महान्भवतिसङ्क्षय: ।४७
संहाररुद्रश्चरूपेण संहृत्य स्वं विराट् वपु: ।
स्वपरं निर्गुरूपवंराजोयातुमिच्छति ।४८
तदा भगत्यनावृष्टि: पूर्वंच्छतवार्षिका ।
सांकर्षणश्च कालाग्निर्द हत्यण्डसशेषत: ।४६

उस दिव्य निशा का जिस समय में अन्त हो जाता है तो उस समय में वे सब जो उसके जठर में प्रविष्ट थे ब्रह्मा के ही साथ पूर्व की भाँति उत्पन्न हो जाते हैं और जैसे भी उसके पूर्व सञ्चित कर्म होते हैं उसी के अनुसार वे अधिकार प्राप्त करने वाले हुआ करते हैं। ।४४। इस प्रकार से इस त्रिलोकी क्षय को करने वाला नैमित्तकलय होता है । मैंने तुमको यह प्रलय का वर्णन करके बतला दिया

है अब प्राकृत प्रलय बतलाता हूँ ।४५। जो यह कल्प बताया गया है उसी प्रकार के तीन सौ साठ का जो काल होता है वह ब्रह्मा का एक वर्ष हुआ करता है इसको दिव्य वर्ष कहा जाता है। उनसे पञ्चाशत् परार्द्ध जो वर्ष होते हैं वह ही ब्रह्मा की आयु होती है। यह दो माने गये हैं ।जो पर नामक काल सम्पर्ण हो जाता है तो उस समय में महान् संशय हुआ करता है। इसी को महा प्रलय कहा जाता है। संहार रुद्र रूप से अपने विराट् वपु का संहारण कर वैराज अपने दूसरे निर्गुण स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा किया करते हैं ।४६-४८। उस समय में पूर्वकी भाँति ही सौवर्ष तक रहने वाली अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होती है। और साङ्कर्षण कालाग्नि सम्पूर्ण अण्ड को दग्ध कर दिया करता है ।४९।

साम्वर्त्तकास्ततो मेघा वर्षन्त्यतिभयानकः ।
शतवर्षाणिधारभिमुंसलाकृतिभिर्मुने ।५०
महरीदंविकारस्य विशेषान्तस्य सङ्क्षयः ।
सर्वस्यापि भवत्येव वासुदेवेच्छयायतः ।५१
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मक गुणम् ।
आत्तगन्धाततोभूमिः प्रलयत्वाय प्रकल्पते ।५२
ग्रसतेऽम्बु गुण तेजो रसतल्लीयते ततः ।
रूप तेजा गुण वायुग्रंसतेलीयतेऽथ तत् ।५३
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो ग्रंसते ततः ।
प्रशाम्यतितदावायुः खन्तुतिष्ठत्यनावृतम् ।५४
भूतादिस्तद्गुण शब्वंग्रसनेलीयतेचखम् ।
इन्द्रियाणिविलीयंतेतेद्यसाहङ्कृतोततः ।५५
अहंकारे विलीयन्तेसात्विके देवता मनः ।
यद्यद्यस्मात्समुत्पन्नतत्तत्तस्मिन्हिलीयते ।५६

अहंकारो महत्तावे त्रिविधोऽपि प्रलीयते ।
तत्प्रधानेच्च तत्पुंसि मूलप्रकृतौ ततः ।५७

इसके अनन्तर अत्यन्त भयानक साम्वर्त्तक मेघ घोर वर्षा किया करते हैं। मुनिबर ! ये मेघ सौ वर्ष तक निरन्तर मुशल जैसी मोटी जल की धाराओं से बर्षा किया करते हैं।५०। इसके उपरान्त महन्त आदि जो विकार होते हैं वहाँ से लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त सम्पूर्ण भगवान् वासुदेव की इच्छा से संक्षय हो जाता है।५१। सर्वप्रथम जल भूमि के गन्ध स्वरूप वाले गूढ का ग्रसन किया करते हैं। फिर वह गन्ध रहित पृथ्वी प्रलय के लिए ही हो जाया करती है।५२। फिर तेज जल का गुण जो रस है उसे ग्रस लेता है और रस विहीन जलहीन हो जाता है। वायु तेज के गुण रूप को ग्रस लेता है और वह वायु भी गुण हीन होकर लय को प्राप्त हो जाया करता है। वायु का गुण स्पर्श है उसको आकाश ग्रस लेता है। उसी समय में वायु प्रशांत हो जाया करता है और आकाश अनावृत होकर स्थित रहता है।५३-५४। उस आकाश के गुण शब्द को भूतादि ग्रस लेते हैं और आकाश फिर लय को प्राप्त हो जाता है। इन्द्रियगण तेज के द्वारा अहङ्काकृति में विलीन हो जाया करती हैं।५५।सात्विक अहङ्कार में देवता मनमें विलीन हो जाया करते हैं। जो-जो जिस-जिस से समुत्पन्न हुआ है वह-वह उसी-उसी में विलीन हो जाया करता है।५६। तीन प्रकार का अहङ्कार महत्तत्व में प्रलीन हो जाता है। वह महत्तत्व प्रधान में और प्रधान मूल प्रकृति पुरुष में लीन हो जाता है।५७।

एष प्राकृतिको नाम प्रलयः परिगीयते ।
तिरोभवंति जोवेशायत्राव्यक्तेहरीच्छया ।५८
यदा च मायापुरुषौ कालोऽप्यक्षरतेजसि ।
तदिच्छाया तिरोयात्ति स त्वेको वर्तते प्रभुः ।
तदा स प्रलयोज्ञेयो नारदात्यन्तिकाभिधः ।५६

इत्थंवभोः कालशक्त्यालयैरेतैश्चतुर्विधैः ।
असद्वत्ध्वाऽखिलंतत्राऽरुवैराग्यमुच्यते ।६०
वासुदेवेतरान्देवान्कालमायावशीकृतान् ।
विदित्वा तेषु च प्रीतिं हित्वा सस्यैव नित्यदा ।
गाढस्नेहेन या सेवा सा भक्तिरिति गीयते ।६१
श्रवणं कीर्तनं तस्यस्मृतिश्चरणसेवनम् ।
पूजाप्रणामोदास्यञ्च सख्यं चात्मनियेदनम् ।६२
इत्येतैर्न्नवभिर्भार्वैयः सेवेत तमादरात् ।
अनन्यया विषणया स हि भक्त इतीर्यंतै ।६३

यही प्राकृतिक के नाम से गाया जाया करता है। जिसमें अव्यक्त में हरि की इच्छा से ये जीवेश तिरोभूत होते हैं।५८। जिस समय में माया और पुरुष ये दोनों और काल अक्षर तेज में उसकी इच्छा से तिरोभूत हो जाया करते हैं तो उस समय में केवल एक प्रभु ही वर्तमान रहा करते हैं। हे नारद ! उस समय आत्यन्तिक नाम वाला यह प्रलय जान लेना चाहिए अर्थात् यही महा प्रलय कहा जाता है जिसमें कहीं भी कुछ शेष नहीं रहा करता है एकमात्र प्रभु ही वर्त्तमान रहा करते हैं।५९। इस प्रकार से प्रभु को काल शक्ति के द्वारा इन चारों प्रकार के लयों से इस सब सृष्टि को असत् समझ कर उसमें जो अरुचि होती है वही वैराग्य कहा जाया करता है।६०। वासुदेव भगवान के इधर जो भी समस्त देवगण हैं वे सभी काल की माया के वशीकृत है--यह भली-भाँति समझकर और उन देवताओं में प्रीतिका परित्याग करके सब भगवान् वासुदेव की जो नित्य प्रति अत्यन्त गाढ़ स्नेह से सेवा की जाया करती हैं वही भक्ति कही जाया करती है।६१। भगवान् के गुण, नाम आदि का श्रवण करना, भगवान के गुणों और चरित्रों का कीर्त्तन करना, भगवान के ही नाम और गुणों का स्मरण करना, भगवान् के नित्य नियम से चरणों की सेवा करना, भगवान्

की प्रतिमा को पूजा अथवा ध्यानवस्थित होकर मानसिक अर्चना करना, भगवान् को प्रणाम करना, भगवान् का दास अपने आपको समझना, भगवान की तेज एवं ज्योति का ही अपने आपकी एक छोटा अंश समझ कर उनके साथ सखाभाव की अवबोधन करना, भगवान के श्री चरणों की सेवा में अपने आपको सर्वतोभाव से समर्पित कर देना, ये नौ प्रकार की भक्ति का रूप रेखा या स्वरूप हैं जो भी जिससे बन पड़े या सभी प्रकारों की भक्ति करने के लिए अनन्य भाव से युक्त रहने वाला पुरुष ही भगवान् का भक्त कहा जाया करता है। ।६२--६३।

त्रभिः स्वधर्मप्रमुखैर्युक्ताभक्तिरियं मुने ! ।
धर्म एकांतिक इति प्रोक्तोभागवतश्चसः ।६४
साक्षात्भगवतः सङ्गात्तद्भक्तानाञ्च वेद्दशाम् ।
धर्मो ह्यं कातिकः पुम्भिः प्राप्यतेनाऽयथा क्वचित् ।६५
नेतादृश परं किंचित्साधनं हि मुमुक्षताम् ।
निःश्रेयसकरं पुंसाँ सर्याभद्रविनाशनम् ।६६
एकांतधर्मसिध्यर्थक्रिययोगपरोभवेत् ।
पुमान्स्याद्येननैष्कर्म्यकर्मणांमुधिसत्तम ! ।६७
ऐतन्मया वेदपुराणगुह्यं
तत्वं परं प्रोक्तामघौघनाशम् ।
एकाग्रया शुद्धधियावधार्यं
सच्छ्रद्धया चेतसि ते महर्षे ! ।६८
न वासुदेवात्परमस्ति पावनं
न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलम् ।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं ।
न वासुदेवात्परमस्ति वाँछितम् ।६९

यन्नामधेयं सकृदश्रुत्या
देहावसानेऽपि तृणाति योऽत्र ।
स पुष्कसोऽप्याशु भवप्रवाहा-
द्विमुच्यते तं भज वासुदेवम् ।७०

हे मुनिवर ! तीन प्रकार के अपने प्रमुख धर्मों से युक्त जो भगवान की यह भक्ति है वही एकान्तिक भागवत धर्म कहा गया है ।६४। भगवान् के साक्षात् होने वाले परम सौभाग्य के सङ्ग से अथवा उपर्युक्त सर्व लक्षण सम्पन्न परम भक्तों के संग या सम्पर्क के ही पुरुषों के द्वारा इस प्रकार का एकान्तिक भागवत धर्म प्राप्त किया जाया करता है अन्यथा किसी भी प्रकार से कहीं भी यह नहीं मिला करता है ।६५।जो मुक्ति पाने के इच्छुक हैं उनको इस प्रकार का कोई अन्य साधन है ही नहीं जो परम निःश्रेयस के करने वाला और मानवों के सम्पूर्ण अभद्रों का विनाश करने वाला है ।६६। इस एकान्तिक धर्म की सिद्धि के लिए क्रिया योग में परायण होना चाहिए । हे मुनियों में परम श्रेष्ठ! जिसकी भक्ति के लिए जो क्रिया योग की परायणता है वही निष्काम कर्म की सिद्धि है ।६७। हे महर्षिवर ! यह जो मैंने आपके समक्ष वर्णन किया है यह तत्व की बात है और वेदों तथा पुराणों में भी यह तत्व परम गोपनीय होता है । यह परम तत्व पापों के समुदाय का विनाश करने वाला होताहै अर्थात् इस तत्वके ज्ञान प्राप्त करने पर सम्पूर्ण पाप मनुष्य के विनष्ट हो जाया करते हैं । इस तत्व को एकाग्र शुद्ध बुद्धि से और अपने अपने चित्त में सद् श्रद्धा से धारण करिये ।६८। भगवान् वासुदेव से अधिक परम पावन (पवित्र बना देने वाला) अन्य कुछ भी नहीं है और भगवान् वासुदेव से अधिक मंगल भी कुछ अन्य नहीं होता है । भगवान वासुदेव सर्वोपरि विराजमान देव हैं इनसे अन्य कोई श्रेष्ठ देव नहीं है । भगवान वासुदेव ही सर्वतोभाव से अभीष्ट हुआ

करते हैं इनसे अन्य कुछ भी वांछित नहीं होता है ।६९। यहाँ संसार में अपने देह के त्याग करने के अवसर पर जो कोई भी एक बार भी जिन भगवान के परम शुभ नाम की अब बुद्धि से भी ग्रहण या स्मरण कर लेता है वह चाहे कितना भी पापी और निकृष्ट क्यों न हो शीघ्रही इस संसार के बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है अर्थात् बारम्बार जन्म-मरण ग्रहण करते हुए अनेक क्लेशों से छुटकारा पा जाता है। अतएव उन्हीं श्री वासुदेव प्रभु का भजन करो ।७०।

३—क्रियायोगाधिकारादिवर्णन

एकांतधर्मविवृतिं श्रुत्वा भगवतोदिताम् ।
प्रहृष्टमानसो भूयस्तं पप्रच्छ स नारदः ।१
धर्म एकान्तिकः स्वामिस्त्वया सम्यगुदीरितः ।
तमाश्रुत्व माहन्हर्षो जातोऽस्ति मानसे ।२
सिद्ध्येतस्य भवताक्रियायोगोय उच्यते ।
तमहंबोद्धुमिच्छामि भगवस्तवसम्मतम् ।३
पूजाविधिः क्रियायोगोवासुदेवस्यकीर्त्यते ।
स तु वेदेषुतन्त्रेषुवास्तिवर्णितः ।४
भक्तानां रुचिवैचिव्यात्तथा वहुविधत्वतः ।
वासुदेवस्य मूर्त्तीनां बहुधां सोऽस्ति विस्तृतः ।५
साकाल्येनोच्यमानस्य पारो नायाऽऽति तस्य वै
अतः वङ्क्षेपतस्तुभ्यं वच्मि भक्तिविवर्द्धनम् ।६
प्राप्तायेवैष्णवीदीक्षांवणांश्चत्वारआश्रमाः ।
चातुर्वर्ण्यस्त्रियश्चतेप्रोक्ताअत्राधिकारिणः ।७

श्री स्कन्द ने कहा--भगवान द्वारा वर्णित एकान्त धर्म की विवृति का श्रवण करके परम प्रसन्न मन वाले देवर्षि श्री नारदजी ने पुनः उनसे पूछा ।१। हे स्वामिन् ! आपने

जो एकान्तिक धर्म्म का भली-भांति वर्णन किया है उसको सुनकर मुझे मन में अत्यधिक प्रसन्नता हुई है।२। आपने उसकी सिद्धि के लिए जो क्रिया योग कहे हैं हे भगवान् ! उस आपके सम्मत क्रिया योग को मैं जानने की इच्छा रखता हूँ।३। श्री नारायण भगवान ने कहा--भगवान वासुदेव का जो पूजन करने की विधि है वह ही क्रिया योग कीर्तित किया जाता है। वह अर्चन का विधान वेदों में तथा ग्रन्थों में जो कि तन्त्र शास्त्र के हैं बहुत से प्रकारों वाला बतलाया गया है।४। भक्तों की रुचियों की विचित्रता होने से तथा वासुदेव भगवान् की प्रतिमाओं के बहुत से प्रकार होने से वह क्रिया योग अर्थात् अर्चन विधान भी अनेक प्रकार वाला विस्तृत बताया गया है।५। सम्पूर्ण रूप से कहे जाने का तो उसका कोई पार हो ही नहीं सकता है अर्थात् पूर्णतया उसका बतला देना तो सम्भव ही नहीं हो सकता है अतएव मैं संक्षेप से ही उसके विषय में आपको यहाँ पर उसे बतला देता हूँ जिसके करने से भक्ति का विशेष वर्धन होता है।६। चारों तरह के वर्णों वाले पुरुष जो कि चारों आश्रमों का पालन किया करते हैं वह चातुर्वर्ण्य और स्त्रियां भी उसके करने के अधिकारी हुआ करते हैं जो कि वैष्णवी दीक्षा को प्राप्त कर लेते हैं।७।

वेदतन्त्रेपुराणोक्तैर्मन्त्रै च द्विजाः।
तूजेयुर्दीक्षियायोषाः सच्छूद्रा मूलमंत्रतः।
मूलमंत्रस्तु विज्ञयः श्रीकृष्णास्यं षडक्षरः।८
स्वस्वधर्मं पाययद्‌भिः सर्वैरेतैर्यथाविधि।
पूजनीयोवासुदेवोभक्त्यानिष्कपटान्तरैः।९
आदौ तु वैष्णवीं दीक्षां गृह्णीयात्सद्‌गुरोः पुमान्।
सदकांतिकधर्मं ब्रह्मजातिर्दयानिधेः।१०
तम्पंनोज्ञानभक्तिभ्यांस्वधर्मरहितस्तु वः।
सगुरुर्नैवकर्तव्यः स्त्रीहृतात्माचर्हिचित्।११

प्राप्ता स्त्रैणाद् गुरोर्दीक्षा ज्ञानं भक्तिश्च कर्हिचित् ।
फलेनैव यथाऽपत्यं युवतिः षण्ढसङ्गिनी ।१२
प्राप्याऽतः सद्गुरोर्दीक्षां तुलसीमालिकां गये: ।
ललाटादौ चोर्द्ध्वपुण्ड्र गोपीचन्दनतो धरेत ।१३
विष्णुपूसारुचिर्भक्तो गुरोरेवागमोदिताम् ।
पूजाविधि सुविज्ञाय ततः पूजिनमारभेत् ।१४

वेद और तन्त्र तथा पुराणों में कहे गये मन्त्रों के द्वारा एवं मूल मन्त्र से दीक्षित द्विज और स्त्रियों को सबकी पूजा करनी चाहिए। जो सत् शूद्र हैं वे भी केवल मूल मन्त्र से पूजा करें। मूल मन्त्र तो श्रीकृष्ण भगवान का छै अक्षरों वाला ही होता है।८। अपने-२ धर्मों का पालन करने वाले इन सबके द्वारा विधि विधान के साथ निष्कपट हृदय वालों को भगवान बासुदेव का पूजन करना चाहिए।९। जो पुरुष वासु-भगवान के अर्चन करने का इच्छुक हो उसे आदि में तो किसी योग्य गुरु से वैष्णवी दीक्षा का ग्रहण करना चाहिए जो गुरु सदा एकान्तिक धर्म में स्थित हो, ब्राह्मण जाति का हो और दया का निधि होना चाहिए ऐसे ही गुरु से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।१०। गुरु ज्ञान और भक्ति दोनों से सम्पन्न होना चाहिए। जो गुरु अपने धर्म्म से रहित हो और स्त्रियों के द्वारा जिसका हृदय अपहृत हो उसे कभी भी अपना गुरु नहीं बनाना चाहिए अर्थात् स्त्रीरत और अपने धर्म का पालन न करने वाले से दीक्षा ग्रहण करे।११। जो गुरु स्त्रैण हो अर्थात् स्त्रियों के साथ विलास क्रीड़ा करने वाला हो उससे प्राप्त की हुई दीक्षा ज्ञान और भक्तिका फल देने वाली कभी भी नहीं हुआ करती है जिस तरह से नपुंसक पुरुष के साथ सङ्ग करने वाली युवती सन्तान रूपी फल से शून्य होती है।१२। अतएव किसी अच्छे सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त करके गले में तुलसी की कण्ठी धारण करे और गोपी चन्दन से ललाट में आदि द्वादश शरीर अङ्गों ऊर्ध्व, पुण्ड्र (तिलक) धारण करे।१३।भगवान विष्णु की पूजा में रुचि रखने वाले भक्त वैष्णव को अपने

गुरुदेव से ही आगम में वर्णित पूजा के विधान को अच्छी रीति से जान कर इसके अनन्तर भगवान् के पूजन का आरम्भ करना चाहिए ।१४।

राज्यन्तयाम उत्थातक्तोब्राह्मेक्षणेऽथवा ।
महूर्त्तार्द्धं हृदि ध्यातेत्केशवक्लेशनाशनम् ।१५
कीर्तयित्वाऽभिधानस्य तदीयानाञ्च नाडिकाम् ।
ततः शौचविधि कृत्वा दंतधावनमाचरेत् ।१६
अङ्गशुद्धि तन्नमादौ कृत्वा स्नायात्समंत्रकम् ।
गृहीत्वाशुचिमृत्स्नादोन्कुर्यात्स्नानाङ्गतर्पणम् ।१७
परिधाचांऽशुकेधौते उपविश्यासनेशुची ।
कृत्वोद्ध्वंपुण्ड्रकुर्वीतसन्ध्यांहोमजपादिन ।१८
वस्त्रचंदयुप्पादीनुपहारास्ततोऽघिलान् ।
अहरेन्मांसमदिराकृशुचिस्पर्शवर्जितान् ।१९
देवेभ्यो वा पितृभ्यश्चाद्धऽप्येभ्यो न निवेदितान् ।
अनाघ्रातांश्च मनुजैः केशकीटादिवर्जितान् ।२०
संस्थाप्यतान्दक्षपार्श्वे पूजोपकरणानिच ।
उद्धर्त्षं दपमाज्येनकुर्यात्तैलेन वा तयः ।२१
कौशेयौर्णे च वस्त्रादौ विकार्षेशुद्ध आंसने ।
उपाविवेद्वासुदेवप्रतिमासन्निधौ ततः ।२२

वैष्णव भक्त को रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर ही अथवा ब्रह्म मुहूर्त में शयन से उठकर सर्व प्रथम आधे मुहूर्त्त तक (दो घड़ी के समय को मुहूर्त्त कहा गया है) क्लेशों के नाश करने वाले भगवान केशव का ध्यान करना चाहिए ।१५। भगवान् के नामों का कीर्त्तन करके और तदीय अर्थात् विष्णु भक्तों की नाड़ी का कीर्त्तन करके फिर शोच विधि करके दन्त धावन करे। १६। आदि में अङ्ग की शुद्धि के लिए स्नान करें और मन्त्रों के सहित ही स्नान करना चाहिए।

फिर शुचि मृत्स्नादि का ग्रहण का स्नानके अङ्ग स्वरूप तर्पण भी करना चाहिए ।१७। इसके उपरान्त धौत वस्त्रों को धारण करके शुचि आसन पर उपविष्ट होवे । ऊर्ध्वंण्ड्र करके सन्ध्या की वन्दना, होम और जप आदि जो परमावश्यक नित्य कर्म है उसे सर्व प्रथम सम्वाहित करना चाहिए ।१८। इसके पश्चात् मांस, मदिरा आदि अशुचि पदार्थों के स्पर्श से रहित वस्त्र, चन्दन और पुष्प आदि पूजन के सम्पूर्ण उपचारों का आहार करे ।१९। वे पूजन के उपचार ऐसे ही होने चाहिए जो अन्य देवताओं, पितृगणों को समर्पित न किये हों ये उपचार ऐसे ही हो कि मनुष्यों के द्वारा भी आघ्रात न होवे तथा केश और कीट आदिसे रहित होने चाहिए ।२०। इन समस्त पूजा के उपचारों अर्थात् सामग्रियों को अपने आसन के दाहिनी ओर ही रखना चाहिए । फिर सर्वप्रथम घृत से अथवा घृताभाव में तेल से दीपक को भरकर जला देवे । बैठने का जो आसन हो वह भी परम शुद्ध होना चाहिए चाहे वह कौशेय (रेशमी) हों, उन का हो, वस्त्र आदि का हो अथवा विकाष्ठ हो उसी पर भगवान् वासुदेव की प्रतिमा के समीप में उपविष्ट होना चाहिए ।२१-२२।

शैलौ धातुमयी दार्वी लेख्या मणिमयी च वा ।
प्रतिमा स्यात्सिता रक्ता पीता कृष्णाऽथ वा मुने ! ।२३
कृष्णस्य सा तु कर्तव्या द्विभुजावाचतुर्भुजा ।
मुरली धारयेतत्र द्विभुजायाः करद्वये ।२४
अथवा दक्षहस्तेऽस्याश्चक्रं शङ्खं तथेतरे ।
पद्मं वा धारयेद्दक्षे पाणावभयमुत्तरे ।२५
द्वितीयायास्तु हस्तेषु दक्षिणाधः करक्रमात् ।
गदाब्जरथचक्राणिधारयेन्मुनिसत्तम ।२६
द्विविधायां अपि हरेर्मूर्तेर्वामेश्रियं न्यसेत् ।
मुरलोधरवामे तु राधारासेश्वरीन्यसेतरे ।२७

अप्येषा द्विविधा मूर्त्तिरखण्डा शुभलक्षणा।
सर्वावयवसम्पन्ना भवेदर्च्चकसिद्धिदा ।२८
लक्ष्मीस्तु द्विभुजाकार्यावासुदेवस्यसन्निधौ।
दधतोपङ्कजहस्ते वस्त्रालङ्कारशोभना ।२९
लक्ष्मीवद्रधिकाऽपि स्याद् द्विभुजा चारुहासिनी।
पंकजं पुष्पमालां यादधती पाणिपंकजे ।३०

हे मुनिवर ! भगवान् की प्रतिमा पाषाण की हो, धातुमयी हो, काष्ठ की हो लिखी हुई अर्थात् चित्रमयी हो, मणि (रत्न निर्मिता) मयी हो, इन पाँच-छह प्रकार की मूर्तियों में से किसी भी एक प्रकार की मूर्त्ति होनी चाहिए। उस प्रतिमा का वर्णन सफेद, रक्त, पीत अथवा कृष्ण किसी प्रकार का होवे ऐसी ही एक प्रकार की भगवन्मूर्त्ति होनी चाहिए जिसका अर्चन करता है ।२३-२४। भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिमा या तो दो भुजाओं वाली बनवाये अथवा चार भुजाओं से युक्त बनवानी चाहिए। जो दो भुजाओं वाली प्रतिमा हो उसके दोनों हाथों में वंशी धारण करानी चाहिए। अथवा जो चार भुजाओं वाली प्रतिमा हो उस प्रतिमा को उसके दाहिने हाथ में चक्र और इतर (बाँय) हाथ शंख और उत्तर दोनों हाथों में पद्म एवं अभय धारण करना चाहिए ।२५। दूसरों जो चतुर्भुजी मूर्ति है इसके हाथों में दक्षिण और अधः कर क्रम से गदा कमल और चक्र हे मुनिश्रेष्ठ ! धारण कराने चाहिए ।२६। दोनों ही प्रकार की श्री हरि की मूर्त्ति के वाम में लक्ष्मी देवी को विराजमान करे। जो मुरलीधर भगवान वासुदेव की मूर्त्ति के वाम भाग में रामेश्वरी श्री राधादेवी की मूर्त्ति का न्यास करना चाहिए। ।२७। ये दोनों की प्रकार की मूर्त्तियाँ अखण्ड और शुभ लक्षण वाली होनी चाहिए। वे मूर्तियां समस्त अवयवों से सम्पन्न और पूजा करने वाले व्यक्ति की सिद्धि प्रदान करने वाली होनी चाहिए। भगवान् वासुदेव के समीप लक्ष्मी देवी की जो प्रतिमा विराजमान की जावे वह

दो भुजाओं वाली होनी चाहिए । लक्ष्मी की प्रतिष्ठा के हाथ में कमल होवे और यह परम दिव्य वस्त्र तथा अलङ्कारों से शोभित होनी चाहिए । लक्ष्मी देवी के ही सदृश श्री राधा देवी की मूर्त्ति भी दो भुआओं वाली और सुन्दर हास से युक्त होवे जो कि कमल और पुष्पों की माला हस्त कमल करने वाली होवे ।२८-३०।

अचलाचचलाचेति द्विविधाप्रतिमाहरेः ।
तत्राऽऽक्रायां न कर्तव्यमावाहनविसर्जनम् ।३१
तदङ्गदेवतानाञ्चकार्यंनावाहनाद्यपि ।
न च दिङ् नियमोऽर्चायांतस्याः स्थेयन्तु सम्मुखे ।३२
शालाग्रामेऽप्येव कार्यं नावाहनादि च ।
अन्यत्र चलमूलौ तु कर्तव्यः तत्तदर्चकैः ।३३
तत्रापि दार्व्यां लेख्यायांजलस्पर्शोऽनुशेपनम् ।
नैव कार्यम्पूजकेनकर्तव्यंपरिमार्जनम् ।३४
उदङ् मुखः प्राङ्मुखोवाचलायासम्मुखाऽथवा ।
यथाशक्ति यथालब्धैरुपहारैर्यजेद्धरिम् ।३५
श्रद्धानिश्छद्मभक्तिभ्यामर्पितेनाऽम्दुनाऽपि सः ।
प्रीतस्तुष्यति विश्वात्मा किमुताऽखिलपूजया ।३६
पुंसां श्रद्धाविहीनेन रत्नहेमाकुलदृक्रिया ।
चतुर्विधं चाप्यन्नाद्यं दत्तं गृह्णातिनोमुदा ।३७
तस्माद्भक्तिमता कार्यं पुंसा स्वश्रेयसे भुवे ।
श्रीकृष्णस्यार्च्चनं नित्यं सर्वाभीष्टासुदायिनः ।३८

भगवान् श्रीहरि की मूर्त्तियाँ दो प्रकार की हुआ करती हैं । कुछ चला और कुछ अचला होती हैं । जो चला प्रतिभा हैं उनमें आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिए । उनके जो अङ्ग देवता हैं उन सबका आवाहन, विसर्जन आदि करें । इस अर्चना में कोई भी दिशा विशेष में

स्थित होने का नियम नहीं, केवल उस मूर्त्ति के सम्मुख ही स्थित होना चाहिए। शालग्राम की पूजा के विषय में भी आवाहन और विसर्जन आदि नहीं करना चाहिए। अन्यत्र चल मूलवाली प्रतिमाओं में अर्चना करने वालों को आवाहनादि करना चाहिए।३१-३३। उनमें भी जो प्रतिमायें काष्ठमयी हो, लेख्या अर्थात् चित्रमयी हों उनमें जल का स्पर्श और चन्दनादि का अनुलेपन ही करना चाहिए। जो पूजन करने वाला व्यक्ति है उसे उनका केवल परिमार्जन करना चाहिए। उदङ्मुख अथवा प्राङ्मुख अथवा चल मूर्त्ति के सम्मुख में स्थित यथाशक्ति और जो भी समय पर उपलब्ध उन उपकरणों से श्रीहरि का यजन करे। ।३४-३५। श्रद्धा, कपट का अभाव और भक्ति से अर्पित केवल जल से भी वह विश्वात्मा प्रसन्न होकर तुष्ट हो जाते हैं पूर्ण पूजा की तो बात ही क्या है।३६। जो श्रद्धाहीन ही ब्रह्म के रत्नादि के अलंकरण को और चारों प्रकार के अर्पित जन्मादि को वह ग्रहण नहीं करते हैं। इसके भक्तिमान् होकर अपने श्रेय के लिए श्रीकृष्ण को अर्चन करना चाहिए सब अभीष्टों के प्रदान करने वाले हैं।३७-३८।

॥ वैष्णव खण्ड समाप्त ॥

स्कन्द पुराण

ब्रह्म खण्ड

सेतु माहात्म्य वर्णन

शुक्लाम्बरधरं विष्णं शशिवर्णञ्चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ।१
नैमिषारण्यनिलये ऋषयः शौनकादयः ।
वष्टङ्गयोगनिरताब्रह्मज्ञानैकतपराः ।२
मुमुक्षवोमहात्मानो निर्ममाब्रह्मवादिनः ।
धर्मज्ञाअनसूयाश्च सत्यव्रतपरायणाः ।३
जितेन्द्रियाजितक्रोधाः सर्वभूतदयालवः ।
भक्त्यापरमयाविष्णुमर्चयन्तः सनातनम् ।४
तपस्तेपुर्महापुण्ये नैमिषे मुक्तिदायिनि ।
एकदातेमहात्मानः समाजञ्चक्रुरुत्तमम् ।५
कथमन्तोमप्रापुण्याः कथाः पापप्रणाशिनीः ।
मुक्तिमुक्तेरुपायञ्चजिज्ञासन्तः परस्परम् ।६
षड्विंशतिसहस्राणामृषीणाम्भावितात्मनाम् ।
तेषां शिष्यप्रसिष्याणां संख्यां कर्तुं न शक्यते ।७

मङ्गला चरण श्लोक--समस्त विघ्नों की शान्ति के लिए अत्यन्त शुक्ल वस्त्रों के धारण करने वाले चन्द्र के समान वर्ण से संयुत चार भुजाओं से सम्पन्न, परम प्रसन्न मुख वाले भगवान विष्णु का ध्यान करना चाहिए नैमिषारण्य के स्थान में शौनक आदि ऋषिगण जो अष्टांग योग से युक्त एवं आठ जिसके यम, नियम, ध्यान धारणा आदि अङ्ग होते हैं ऐसे योग के अभ्यास में सर्वदा निरत रहने वाले, ब्रह्म के ज्ञान में ही एकमात्र परायण जो मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा

वाले हैं, ममता से रहित, महान आत्माओं वाले ब्रह्मवादी धर्मोंके ज्ञाता असूया से रहित सत्य व्रत में परायण इन्द्रियों को जीत लेने वाले, क्रोध पर विजय प्राप्त किए हुए समस्त प्राणियों पर दया करने वाले थे। वे परषोत्तम भक्ति से सनातन प्रभु विष्णु का अर्चन करते हुए उस महान पुण्यमय नैमिष क्षेत्र में जो मुक्ति का प्रदान करने वाला था तपश्चर्या किया करते थे। एक बार उन सब महात्माओं ने उत्तम समाज किया था।१-४। उस समाज में वे महान पुण्य से परिपुर्ण कथाओं को कह रहे थे जो कि महान पापों का विनाश कर देने वाली और वे परस्पर में मुक्ति तथा मुक्ति के उपायों को भी जानने की इच्छाएँ कर रहे थे। वे भक्ति आत्माओं वाले ऋषिगण छब्बीस सहस्त्र थे। उनके कितने शिष्य एवं प्रशिष्य (शिष्यों के भी शिष्य) थे यह संख्या तो की ही नहीं जा सकती।५-७।

अत्रान्तरेमहाविद्वान्व्यासशिष्योमहामुनिः ।
अगमन्नैमिषारण्य सूतः पौराणिकोत्तमः ।८
तमागतंमुनिर्दृष्ट्वा ज्वलन्तमिवपावकम् ।
अर्घ्याद्यैः पूजयामासुर्मुनयः शौनकादयः ।९
सुखापविष्टं तं सूतमासने परमेशुभे ।
पप्रच्छः परमं गुह्यं लोकानुग्रहकाङ्क्षया ।१०
सूतधर्मार्थतत्वज्ञसवागातमुनिपुङ्गव ।
श्रुतवांस्त्वपुराणानिव्यासात्सत्यवती सुतात् ।११
अतः सर्वपुराणानांममर्थज्ञोसिमहामुने ।
कानिक्षेत्राणिपुण्यानिकानिवीर्थानिभूतले ।१२
कथंवालप्स्यतेमुक्तिजीवानाम्भवसागरात् ।
कथं हरेहरौवापि नृणाभक्तिः प्रजायते ।१३
केनसिद्धयेतचभल कर्मस्त्रिविधात्मनः ।
एतच्चयच्चतत्सर्वं कृपया वद सूतज ! ।१४

इस अन्तर में पुराणों के ज्ञाताओं में परम उत्तम-महान् मनीषी व्यासदेवजी के शिष्य--महामुनीन्द्र श्री सूतजी वहाँ पर नैमिषारण्य में समागत हो गये थे।८। पावक (अग्नि) की भाँति जाज्वल्यमान उनको वहाँ पर समागत देखकर समस्त शौनक प्रभृति ऋषियों ने विधि पूर्वक अर्घ्य आदि के द्वारा उनका पूजन किया था।९। परम शुभ सुन्दर आसन पर सुख पूर्वक उनके समुपविष्ट हो जाने पर उन सबने लोकों पर अनुग्रह करने की इच्छा से परम गुह्य प्रश्न श्रीसूतजी से पूछा था।।१०। हे मुनियों में परम वरिष्ठ सूतजी ! आपका हार्दिक स्वागत हम करते हैं। आप तो धर्मार्थ के तत्वों के पूर्ण ज्ञान रखने वाले हैं। आपने समस्त पुराणों को सत्यवती के पुत्र श्री व्यासदेव जी के मुखारविन्द से ही श्रवण किया है। अतएव हे महामुनिवर ! आप तो सभी पुराणों के अर्थों पूर्णतया जानने वाले हैं। आप अब कृपा करके हम लोगों को यह बतलाइये कि कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र हैं और इस भूतल पर कौन-कौन से तीर्थ स्थल हैं ? यह भी बतलाने का आप हम सब पर अनुग्रह कीजिएगा कि इस भव सागर से जीवों को मुक्ति कैसे प्राप्त की जाया करती है ? ऐसा कौन साधन है जिससे इन मायामुग्ध मानवों की श्री हरि में अथवा श्री हरि में अथवा श्रीहर में भक्ति समुत्पन्न हो जावे ? इस तीन प्रकार के कर्म्म का फल किसके द्वारा सिद्ध होता है-यह सब तथा अन्य भी जो हम नहीं पूछ सके हैं सभी कुछ हे सूतजी ! आप कृपा करके हमको बतलाइए।११।१४।

ब्रूयुप्रियायणित्याय गुरवोगुह्यप्युत।
इतिपृष्टस्तदा सूतो नैमिषारण्यवासिभिः।१५
वक्तुं प्रचक्रमे नत्वा व्यास स्वगुरुमादितः।
सम्यक्त्पृष्टमिदं विप्रा ! युष्माभिजगतं हितम्।१६
रहस्यमेतद्युष्माकं वक्ष्यामिश्रृणुध्वभक्ति पूर्वकम्।
मयानोक्तमिदपूर्वं कस्याऽपि मुनिपुङ्गवाः !।१७

मनोनियम्यविप्रेन्द्राः श्रृणुध्वंभक्तिपूर्वकम् ।
अस्तिरामेश्वरं यामरामसेतुपवित्रितम् ।१८
क्षेत्राणामपिसर्वेषां तीर्थानामपिचोतमम् ।
दृष्टमात्रेणतत्सेतु मुक्तिः संसारसागरात् ।१६
हरे हरौ च भक्तिः स्यात्तथा पुण्यसद्दृद्धिता ।
कर्मणस्त्रिविधस्यापि सिद्धिः स्यान्नऽत्र संशयः ।२०
यो नरोजन्ममध्येतु सेतु भक्त्याऽवलोकयेत् ।
तस्यपुण्यफलंवक्ष्येश्रृणुध्वमुनिपुङ्गवाः ।२१

श्री गुरुवृन्द जो स्नेह का परम पात्र शिष्य होता है उसको गोपनीय से भी गोपनीय बात बतला दिया करते हैं । इस तरह से जब सूतजी से पूछा गया तो उन नैमिषारण्य वासियों से आदि में अपने गुरुदेव व्यासजी को प्रणाम करके उन्होंने वर्णन करने का समारम्भ किया था ।१५। श्री सूतजी ने कहा हे विप्रगण ? आपने इस जगत् की भलाई को दृष्टिमें रखकर अब बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । यह हम लोगों का रहस्य है । मैं आप लोगों को इसे बतलाता हूँ । आप समादर पूर्वक इसका श्रवण कीजिए । हे मुनियों में परम श्रेष्ठो ! इसके पूर्व में अभी तक मैंने इस रहस्य को किसीको भी नहीं बतलाया था । इसलिए आप लोग अपने मन को नियम निमन्त्रित करके-हे विप्रेन्द्र वृन्द ! इसका भक्तिभाव से परिपूर्ण होते हुए श्रवण कहिए । एक श्री रामेश्वर नाम वाला परम पवित्र श्रीराम का सेतु है । यह समस्त क्षेत्रों में और सम्पुर्ण तीर्थों में परमोत्तम स्थल हैं । इस सेतु की ऐसी अद्भुत महिमा है कि इसके केवल दर्शन मात्र से ही इस संसार रूपी सागर से मुक्ति हो जाया करती है जथा श्री हरि और श्री हर दोनों में पुण्योंसे समृद्धि वाली सुदृढ़ भक्ति हो जाया करती है । तीनों प्रकार से कर्मों की सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है-इस विषयमें कुछ भी संशय नही हैं । हे मुनियों से परम श्रेष्ठो ! जो मनुष्य अपने मानव जीवन के मध्य में इस सेतु

का भक्ति भाव पूर्वक अवलोकन कप लेता है उसका जो महान् पुण्य-फल होता है उसे मैं आपको बतलाता हूँ आप श्रवण करिए ! ।१६-२१।

मातृतः पितृतश्चैव द्विकोटिकुलसंयुतः ।
निविश्यशम्भुनाकल्पं ततोमोक्षत्वमश्नुते ।२२
गण्यन्ते पांसवोभूमेर्गण्यन्तेदिवितारकाः ।
सेतुदर्शनजं पुण्यशेषेणाऽपि न मन्यते ।२३
समस्तदेवतारूपः सेतुबन्धः प्रकीर्तितः ।
तद्दर्शनवतः पुंसः कः पुण्यंगणितुं क्षमः ।२४
सेतुं दृष्ट्वाररोदिप्राः सर्वयोगकरः स्मृतः ।
स्नानश्चे सर्वतीर्थेषु तपोतऽप्यतचाखिलम् ।२५
सेतुं गच्छेतियोब्रूयाद्यंकम्बापिनरद्विजाः ।
सोऽपितत्फलमाप्नोतिकिमन्यैर्बहुभाषणैः ।२६
सेतुस्नानकरोमर्त्यः सप्तकोटिकुलान्वितः ।
सम्प्राप्तविष्णुभवनं तत्रैव परिमुच्यते ।२७
सेतुं रामेश्वरं लिङ्गं गन्धमादनपर्वतम् ।
चिन्तयन्मनुजः सत्यसर्वपापैः प्रमुच्यते ।२८

मातृकुल और पितृकुल दोनों दो कुलों में ही करोड़ से संयुत होकर शम्भु के द्वारा कल्प में निदिष्ट हो जाता है और फिर वह मोक्ष को प्राप्त कर लिया करताहै । इस भूमि के धूलिके कण भी गिने जा सकते है और आकाश में स्थित असीम तारों की गणना की जा सकती है अर्थात् ये दोनों ही अपिरिमितहैं तो भी ऐसी सम्भावना हो सकती है कि इनकी गणना हो जावे किन्तु सेतुके दर्शन से समुत्पन्न पुण्य भगवान् शेष के भी द्वारा नहीं गिना या वर्णित किया जा सकता है–यह इतनी असीमित होता है । यह सेतुबन्ध सम्पूर्ण देवता के स्वरूप वाला होता है–ऐसा कीर्त्तित किया गया है । उसके दर्शन करने वाले पुरुष के पुण्य

को कौन गिनने में समर्थ हो सकता हैं ? जिस मनुष्य ने इस सेतु का दर्शन कर लिया हैं हे विप्रो ! वह तो समस्त यज्ञों के करने वाला कहा गया है। उसका तो फिर यही समझ लेना चाहिए कि सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और सम्पूर्ण तप का तपन भी वह कर चुका है। तात्पर्य यह है कि उसको शेष करने का कुछ भी रह ही नहीं जाता है। हे द्विजगण ! जो जिस किसी भी मनुष्य से यह कह दे कि सेतुबन्ध के दर्शन प्राप्त करने के लिए जाइये। वह भी उसी फल को प्राप्त कर लिया करता फिर इससे अधिक अन्य भाषणों के करने.से क्या प्रयोजन है। सेतु में स्नान करने वाला मनुष्य सात करोड़ कुलों से मुक्त होकर भी विष्णु भगवान् के भवन को प्राप्त कर लेता है और यहीं पर वह मुक्त हो जाया करता है। सेतु श्री रामेश्वर लिङ्ग–गन्धमादन पर्वत–इनका चिन्तन करने वाला भी पुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है।२२-२८।

मातृतः पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः ।
कल्पत्रयंशम्भुपदे स्थित्वातत्रैवमुच्यते ।२९
मूषावस्थांवसाकूपं तथावैतरणी नदीम् ।
श्वभक्षंमूत्रपानञ्च सेतुस्नायीनपश्यति ।३०
तप्तशूलन्तप्तशिलां पुरीषह्रदमेवचं ।
तथाशोणितकूपञ्च सेतुस्नायी न पश्यति ।३१
शल्मल्यारोहणंरक्तभोजनंकृमिभोजनम् ।
स्वमांसभोजनंचैव वह्निज्वाला प्रवेशमम् ।३२
शिलावृष्टिवह्निवृष्टि नरकं कालसूत्रकम् ।
क्षारोदकंचोष्णतोयं नेयात्सेत्ववलोककः ।३३
सेतुस्नायीनरोविप्राः पञ्चपातकंवागपि ।
मातृतः पितृश्चैव शतकोटकलाकुलान्वित. ।३४
कल्पात्रयंविष्णुपदे स्थित्वा तत्रैववमुच्यते ।

अधःशिरःशोषणं च नरकंक्षारसेवनम् ।३५

मातृ कुल तथा पितृ कुल इन दोनों के एक लक्ष कोटि कुलों से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त भगवान श्री शम्भु के पद में स्थित रह कर वहीं पर मुक्त हो जाया करता है। मूषावस्था--वसा कूप-वैतरणी नदी--श्वभक्ष मूत्रवान इन महान् घोर यातनायें देने वाले नरकों को सेतुबन्ध क्षेत्र में स्नान करने वाला प्राणी कभी देख ही नहीं सकता है। तप्त शूल--तप्त शिला--पुरीष ह्लद-शोणित कूप-इन नरकों को भी सेतु में स्नान करने वाला नहीं देखा करता है ।२९।३०।३१। शल्मल्यारोहण--रक्त भोजन--कृमि भोजन--स्वमांस भोजन--वह्नि ज्वाला प्रवेशन--शिला वृष्टि--वह्नि वृष्टि-काल सूत्रक नरक--क्षारोदक--उष्णतोय--इन नरकों में सेतुवन्ध के अवलोकन करने वाला पुरुष कभी भी गमन नहीं किया करता है। हे विप्रगण ! सेतुबन्ध क्षेत्र में स्नान करने वाला पुरुष पाँच पातकों वाला हो तो भी मातृ एवं पितृ दोनों के शतकोटि कुलों से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त श्री विष्णु के पद में समवस्ति रहकर वहाँ पर ही मुक्त हो जाया करता है। अधशिर-शोषण:क्षार सेवन नरक से सेतु में स्थान करने वाला कभी नहीं जाता है ।३२।३५।

पाषाणयन्त्रीपीडञ्च मरुत्प्रपतनं तथा ।
पुरीषलेपनञ्चैव तथा क्रकचदारणम् ।३६
पुरीषभोजनरेतः पानंमन्धिपुदाहनम् ।
अङ्गारशय्याभ्रमणं तथामुसलमर्द्दनम् ।३७
एतानि नरकाण्यद्धा सेतुस्नायो न पश्याति ।
सेतुस्नानं करिष्येऽहमिति बुद्ध्या विचिन्तनम् ।३८
गच्छेच्छतपदंयस्तु समहापातकोऽपिसन् ।
बहूनांकाष्ठायन्त्रणाकर्षणं शस्त्रभेदनम् ।३९
पतनोत्पतनं चैव गदादण्डनिपीडनम् ।

गजदन्तैश्च हननं नानाभुजंगदर्शनम् ।४०
धूम्रपानपाशबन्धं नानाशूलनिपीडनम् ।
मुखे च नासिकायांचक्षारोदकनिसृचनन् ।४१
क्षाराम्बुपाननरकं तप्ताथः सूचिभक्षणम् ।
एतानि नरकान्यद्धा नयासि गतपातकः ।४२

पाषाण यन्त्र पीड़ा--मरुत्प्रयतन--पुरीषलेपन--क्रकच दारुण--पुरीषभोजन-रेतःपान-सन्धिदाहन-अङ्गार शय्या-भ्रमण मुसलदर्द्दन-इस महायन्त्रणा प्रद नरकों में सेतुबन्ध में स्नान करने वाला कभी नहीं जाता है तथा इनको कभी भी नहीं देखता है । मैं सेतुबन्ध में स्नान करूँगा--यह इतना भर अपनी बुद्धि से चिन्तन ही परम पुण्य प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है ।३६-३७-३८। जो एक दो कदम गमन करता है वह चाहे महापातकों वाला भी क्यों न हो, मुक्त हो जाता है । बहुत से काष्ठ यन्त्रों का कर्षण- शस्त्र भेदन-पतनोत्पतन-गदादण्ड निपीड़न-गजदन्तों से हनन अनेक भुजङ्गों के द्वारा दर्शन-धूम्रपान-पाशबन्ध-नाना शूलों से निपीड़न-मुख में और नासिका में क्षारोदक का निषेचन-क्षाराम्बुपान नरक सतप्ताप:-सूची भक्षण-इन उपर्युक्त नरकों को वह सेतुबन्ध में स्नान करने वाला प्राणी समस्त पातकों से शुद्ध हो जाने के कारण कभी भी गमन नहीं किया करता है ।३९।४०।४१।४२।

सेतुस्नानंमोक्षदं च मनः शुद्धिप्रदं तथा ।
जपाद्धोमात्तथादामाद्याच्च तपसोऽपि च ।४३
सेतुस्नानंविशिष्टं हि पुराणेपरिपठ्यते ।
अकमनाकृतंस्नानं सेतौ पापविनाशने ।४४
अपुनर्भवदं प्रोक्तं सत्यमुक्तं द्विजोत्तमाः ।
यः सम्पदं समुद्दिश्य स्नतिसेतौ नरोमुदा ।४५
स सम्पदमवाप्नोति विपुलां द्विजपुङ्गवाः ।

शुद्ध्यर्थं स्नाति चेत्सेतौ तथा शुद्धिमवाऽप्नुयात् ।४६
रत्यर्थंयदि च स्नायादप्सरोभिर्नरादिवि ।
तदारतिमवाप्नोति स्वर्गलोकेपरिजनैः ।४७
मुक्त्यर्थंयदिचस्नायात्ससेतौमुक्तिप्रदायिनि ।
तदामुक्तिमवाप्नोतिपुनरावृत्तिवर्जिताम् ।४८
सेतुस्नानेधर्मः स्यात्सेतुस्नानादघसंक्षयः ।
सेतुस्नानं द्विजश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदम् ।४९

यह सेतुबन्ध क्षेत्र का स्नान मन को शुद्धि करने वाला और मोक्ष प्रदान करने वाला है । जप होम-दान-योग और तपस्या—इन सबसे भी विशिष्ट सेतुबन्ध का स्नान होता है जिसका कि पुराणों में परिपठन किया जाता है । इन पापों के विनाश करने वाले सेतु में विना किसी कामना के भी किया हुआ स्नान अच्युत भवका अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाला कहा गया है । हे द्विजोत्तमो ! यह सर्वथा सत्य ही कहा गया है। जो कोई मनुष्य इस सेतु में प्रसन्नता के साथ सम्पदा की वृद्धि का उद्देश्य लेकर स्नान किया करता है वह सम्पदा को प्राप्त करता है और बहुत बड़ी सम्पत्ति उसे मिलती है । हे द्विजपुङ्गवो ! जो केवल अपनी शुद्धि का उद्देश्य लेकर ही सेतु में स्नान करता है वह शुद्धि को प्राप्त कर लेता है ।४३-४६। यदि कोई रति की कामना लेकर ही स्नान करता है तो वह देवलोकमें अप्सराओं के साथ पुनरावृत्ति से रहित उस समय में रति की प्राप्ति किया करता है और स्वर्गलोक में परिजनों के साथ रहता है । यदि कोई मुक्ति के लिए ही वहाँ पर स्नान करता है जो कि सेतु मुक्ति के प्रदान करने वाला है तो फिर जन्म ग्रहण करने वाली मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।४७-४८। इस सेतुबन्ध महान् क्षेत्र में स्नान से धर्म्म होता है और सेतु-स्नान से पापों का भी क्षय होता है। हे द्विजश्रेष्ठो ! यह सेतुबन्ध का स्नान समस्त कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला है ।४९।

सर्वंव्रताधिकं सर्वंयज्ञोत्तरंस्मृतम् ।
सर्वयोगाधिकंप्रोक्तं सर्वतीर्थाधिकंस्मृतम् ।५०
इन्द्रादिलोकभोगेषु रागोयेषां प्रवर्त्तते ।
स्नातव्यंतद्विजश्रेष्ठाः सेतौ रामकृते सकृत् ।५१
ब्रह्मलोकेचवैकुण्ठे कैलासेऽपिसिवालये ।
रन्तुमिच्छाभवेद्येषांतेसेतौस्नान्तुसादरम् ।५२
आयुरारोग्यसम्पत्तिमतिरूपगुणाढ्यताम् ।
चतुर्णामपिवेदानांसाङ्गानाम्पारगामिनाम् ।५३
सर्वंशास्त्राणिगन्तत्वं सर्वंमन्त्रेष्वभिज्ञताम् ।
समुद्दिश्य तु यः स्नायात्सेतौ सर्वार्थंसिद्धिदे ।५४
तत्तस्सिद्धिमवाप्नोति सत्यं स्यान्नाऽत्र संशयः ।
दारिद्र्यान्नरकाद्य च विश्यन्ति मनुजा भुवि ।५५

यह सेतुबन्ध समस्त व्रतों से अधिक पुण्य वाला है और सभी यज्ञों से अधिक कहा गया है । उसको समस्त योगों से अधिक ही बतलाया गया है तथा यह अन्य सभी तीर्थों से भी अधिक है-ऐसा ही माना गया है ।५०। इन्द्र आदि के लोकों के उपयोगों में जिन मानवों का राग प्रवृत्त होता है हे द्विजों में श्रेष्ठो ! उनको श्री राम द्वारा किये गये इस सेतुबन्ध में एक बार स्नान करना चाहिए ।५१। ब्रह्मलोक में तथा वैकुण्ठलोक में कैलाश में और शिव के निवास स्थान में भी जिनको रमण करने की इच्छा रहती है वे बड़े ही समादर के साथ इस सेतुबन्ध में स्नान अवश्य करें । आयु-आरोग्य-सम्पत्ति-मति-रूपलावण्य-गुणगण की सम्पन्नता--चारों साङ्गवेदों की पारगमिता--समस्त शास्त्रों का अधिगमन सभी मन्त्रों का अभिज्ञान -इन सबका अथवा इनमें से किन्हीं वस्तुओं का जो उद्देश्य ग्रहण करके सब अर्थों की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सेतु में स्नान करता है वह उन्हीं सिद्धियों को प्राप्त कर लिया करता है--यह सोलह आने सत्य है-इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं

हैं। इस भूमण्डल में मनुष्य दरिद्रता से और नरक आदि से भयभीत करते हैं।५२-५५।

३६—ब्रह्मकुण्ड प्रशंसा

स्नात्वा त्वमृतवाप्यां वै सेवित्वैकान्तराघवम्।
जितेन्द्रियो नरः स्नातुः ब्रह्मकुण्डं यतो व्रजेत्।१
सेतुमध्ये महातीर्थं गन्धमादनपर्वते।
ब्रह्मकुण्डमितिख्यातं सर्वदारिद्र्यभेषजम्।२
विद्यत ब्रह्महत्यानामयुतायुतनाशनम्।
दर्शनं ब्रह्मकुण्डस्य सर्वपापौघनाशनम्।३
किन्तुस्य बहुभिस्मीर्थैः किन्तुपोभिः किमध्वरैः।
महादानैश्च किन्तुस्य ब्रह्मकुण्डविलोकिनः।४
ब्रह्मकुण्डे सकृत्स्नानं वैकुण्ठप्राप्तिकारणम्।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूते भस्मयेनधृतं द्विजाः।५
तस्यानुगास्त्रयो देवा ब्रह्माविष्णु महेश्वराः।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनास्त्रिपुण्ड्रकम्।६
करोतितस्य कैवल्यंकरस्थंनाऽत्र संशयः।
तद्भस्मपरमाणुर्वायोललाटे धृतोऽभवद्।७

महर्षि श्रीसूतजी ने कहा--अमृत वाणी में स्नान करके और एकांत श्री राघव का सेवन करके इन्द्रियों को जीत लेने वाले मनुष्य को स्नान करने के लिए फिर ब्रह्मकुण्ड पर गमन करना चाहिए।१। सेतु के मध्य में गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्मकुण्ड इस नाम से विख्यात स्थल है जो सभी प्रकार की दरिद्रताओं का (औषध) है। अयुतायुत ब्रह्म हत्याओं के नाश करने वाला श्री ब्रह्मकुण्ड का दर्शन होता है और यह समस्त

पापों के समूह का भी विनाश कर देने वाला है। फिर अन्य बहुत से तीर्थों के अटन करने से तथा तपश्चर्या करने से और यज्ञ करने से उन मनुष्यों को कोई भी आवश्यकता ही नहीं रहती है जिसने ब्रह्मकुण्ड का अवलोकन कर लिया है उसको महादानों के करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है ।२-४। ब्रह्म कुण्ड में एक ही बार स्नान करने का पुण्य बैकुण्ठ लोक की प्राप्ति का कारण होता हैं। हे द्विजो ! इस ब्रह्मकुण्ड से अद्‌भुत भस्म जिस मानव ने धारण कर ली है उसके अनुगामी तीनों देव हो जाया करते हैं जो कि ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर नाम धारी हैं। ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म से जिनसे त्रिपुण्ड्र किया है उसके हाथ मे ही कैवल्य विद्यमान रहा करता है--इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उसकी भस्म का परमाणु वायु के ललाट में धारण किया गया था उतने ही से इसकी ही मुक्ति हो गई थी। अतएव इसमें कोई भी विचार नहीं करना चाहिए । उस कुण्ड की भस्म से जो मनुष्य उद्‌धूलंग करता है उसका महान् पुन्य फल होता है ।५-७।

तावतैवाऽस्य मुक्तिः स्थानन्नाऽत्र कार्या विचारणा ।
तत्कुण्डभस्मना मर्त्यः कुर्यादुद्‌धूनन्तु यः ।८
तस्य पुण्यफलवक्तु शङ्करो वेत्ति वा न वा ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्‌भूतंभस्मयोनवधारयेत् ।९
रौरवे नरके सौम्यं पतेदाचन्द्रतारकम् ।
उद्‌धूलनं त्रिपुण्ड्रं वा ब्रह्मकुण्डस्थभस्मना ।१०
नरोधमो न कुर्याद्यः सुखवास्य कदाचन ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्‌भूतभस्मनिन्दारतस्तुभ्यः ।११
उत्पश्नोतरय साङ्कर्यमनुमेयं विपश्चिता ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्‌भूतं भस्मौस्तलोकपावनम् ।१२
अन्यभस्मसमं यस्तु नूनं वा वक्ति मानवः ।

उत्पत्तौंतस्यसाङ्कर्यमनुमेय विपश्चिता ।१३
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतेऽत्यस्मिन्भस्मनि जाग्रति ।
भस्मान्तरेण मनुजो धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्रकम् ।१४

जो मनुष्य ब्रह्मकुण्ड की भस्म से उद्धूलन करता है उसके पुन्य-फल को जानना और उसका वर्णन करना साधारण मानव की तो चर्चा ही क्या की जावे प्रत्युत ऐसा सन्देह होता है कि भगवान शङ्कर भी उसे कथन करना जानते हैं अथवा नहीं जानते हैं। जो पुरुष ब्रह्मकुण्ड समुत्पन्न भस्म को कभी भी धारण नहीं करता है वह रौरव नरक में जाकर जब तक चन्द्र और तारे रहते हैं नारकीय यातनायें भोगता है। ब्रह्मकुण्ड में स्थित भस्म से उद्धूलन था त्रिपुण्ड जो वरों से धारण नहीं करता है उसको कभी सुख नहीं मिलता है। जो ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म की बुराई करने में रत रहता है उसकी उत्पत्ति में सङ्करता दोष होने का विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए। ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म इस लोक को पावन करने वाली है। अन्य भस्म के समान ही उसको जो मानव बतलाता है या उससे भी कम कहता हैं उसकी भी उत्पत्ति में साङ्कर्य दोष के होने का विद्वान् पुरुष को अवश्य ही अनुमान कर लेना चाहिए। जब ब्रह्मकुन्ड से उत्पन्न हुई भस्म वहाँ पर विद्यमान हो और उसके रहते हुए जो मनुष्य अन्य भस्म से त्रिपुण्ड्र को धारण किया करता है उसके भी उत्पन्न होने में विभिन्न माता-पिता के होने वाला वर्ण शङ्कर दोष समझ लेना चाहिए।८-१४।

उत्पत्तो तस्य साङ्कर्यमनुमेयं विपश्चिता।
कदाचिदपियोमर्त्यो भस्मैतत्तन धारयेत् ।१५
उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यमनुमेयं विपश्चिता ।
ब्रह्मकुंडसमुद्भूतभस्म दद्यात् द्विजाय यः ।१६
चतुरर्णवपर्यन्ता तेनदत्ता बसुन्धरा।

सन्देहो नाऽत्र कर्तव्यस्त्रिर्वा शपथयाम्यहम् ।१७
सत्यं सत्यं पुनःसत्यम् द्धृत्यभुजम् च्यते ।
ब्रह्मकुंडोद्भव भस्मधारध्वं द्विजोत्तमाः ।१८
एतद्धि पावनं भस्म ब्रह्मयज्ञसम् द्भवम् ।
पुरा हि भगवान्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।१९
सन्निधौ सर्वदेवानां पर्वते गन्धमादने ।
ईशशापनिवृत्यर्थं क्रतुन्सर्वान्समातनोत् ।२०
विधायविधिवत्सर्वानध्वरान्बहुदक्षिणान् ।
मुमुचेसहाब्रह्माशम्भुशापाद्विजोत्तमाः ।२१
तदेतत्तीर्थमामाद्म स्नानं कुर्वन्तिये नराः ।
ते महादेवसायुज्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ।२२

ब्रह्मकुन्ड में उत्पन्न भस्म को जो कभी भी धारण नहीं करता है वह मनुष्य भी अपनी उत्पत्ति से वर्णशंकर दोष वाला ही होता है-- ऐसा विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए। जो ब्रह्मकुन्ड से समुत्पन्न भस्म द्विज को देता है। उसको समझना चाहिए कि उसने चारों सागरों पर्यन्त समय बसुन्धरा का ही दान दे दिया है। इस विषय में लेश मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए। मैं तीन बार इसके लिए शपथ लेकर कहता हूं। यह सत्य है-यह पुनः सत्य है और मैं अपनी भुजा उठाकर कहता हुँ कि यह सर्वथा सत्य है। हे द्विजोत्तमो! आप सभी लोग इस बृह्मकुण्ड से समुद्भूत भस्मको धारण करिए। यह भस्म परम पावन है क्योंकि यह बृह्मयज्ञ से समुत्पन्न हुई हैं। पहले बृह्माजी ने जो इन समस्त लोकों के पितामह है गन्धमादन पर्वत पर सब देवगणों की सन्निधि में ईश से प्राप्त आप की निवृत्ति के लिए सब यज्ञों को किया था। उस समस्त अध्वरों को विधि-विधान के साथ बहुत सी दक्षिणाओं से युक्त साङ्ग समाप्त करके हे द्विजोत्तमो! वे ब्रह्माजी सहसा शम्भू के शाप से मुक्त हो गये थे। इसीलिए इस तीर्थ

पर पहुँचकर जो नर स्नान किया करते हैं वे श्री महादेवजी के सायुज्य को प्राप्त होते हैं--इसमें संशय नहीं है ।१५-२२।

३७--लक्ष्मीतीर्थ प्रशंसा वर्णन

जटातीर्थाभिधेतीर्थे सर्वपातकनाशने ।
स्नानंकृत्वाविशुद्धात्मालक्ष्मीतीर्थंतोव्रजेत् ।१
यं यं कामंसमुद्दिश्यलक्ष्मीतीर्थेद्विजोत्तमाः ।
स्नानंसमाचरेन्मर्त्यंशततकामसमश्नुते ।२
महादारिद्र्यशमनं महाधान्यसमृद्धिदम् ।
महादु खप्रशमनं महासम्पद्विवर्धनम् ।३
अत्र स्नात्वा धर्मपुत्रो महार्देवस्वर्यमाप्तवान् ।
इन्द्रप्रस्थे वसन्तपूर्वं श्रीकृष्णेन प्रचोदितः ।४
यथंश्यां धर्मपुत्रो लक्ष्मीतीर्थे निमज्जनात् ।
आप्तवान्कृष्णवचनात्तत्रो ब्रूहिमहामुने ।५
इन्द्रप्रस्थे पुरा विप्रा धृतराष्ट्रेण चोदिताः ।
न्यवसन्पाण्डवाः पश्चमहाबलपराक्रमाः ।६
इन्द्रप्रस्थं ययौ कृष्णः कमाचित्तान्निरीक्षतुम् ।
तमागममभिप्रेक्ष्य पाण्डवास्ते समुत्सुकाः ।७

महमहर्षि श्री सूतजी ने कहा-समस्त पातकों के विनाश करने वाले जटातीर्थं नाम वाले तीर्थ में स्नान करके फिर लक्ष्मीतीर्थ में गमन करना चाहिए । हे द्विजोत्तमो ! उस लक्ष्मी तीर्थ में जिस-जिस कामना का उद्देश्य ग्रहण करके मनुष्य वहाँ पर स्नान किया करता है उसी-उसी कामना को प्राप्त कर लिया करता है ।१-२। यह महान् तीर्थ

महान् दरिद्रता का गमन करने वाला है--महान् धान्य और समृद्धि का प्रदान करने वाला है--महान् दुःखों के प्रशमन करने वाला है और महती सम्पदा के वर्धन करने वाला है।३। इसमें धर्मपुत्र स्नान करके महान् ऐश्वर्य के प्राप्त करने वाला हो गया था। भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके यह इन्द्रप्रस्थ में पहिले निवास करता था।४। ऋषिवृन्द ने कहा-हे महामुने ! जिन प्रकार से श्रीकृष्ण के वचन से प्रेरित होकर धर्म्म पुत्र ने लक्ष्मीतीर्थं में निमज्जन करने से ऐश्वर्य का प्राप्त किया था वह सम्पूर्ण आख्यान आप हम लोगों को बतलाये।५। श्री सूतजी ने कहा-हे विप्रो ! पुरातन समय में धृतराष्ट्र के द्वारा प्रेरित हुए पाँच महाबल पराक्रम वाले पांडव इन्द्रप्रस्थ में निवास करते थे। किसी समय में उन पांडवों को देखने व मिलने के लिए श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में गयेथे। उनको वहाँ पर समागत हुए देखकर पांडव अत्यन्त हो उत्सुक हुए थे।६-७।

स्वगृहं प्राप्यामासुर्मुदापपमयायुताः।
कञ्चित्कालमसोकृष्णस्तत्रावात्सत्पुरोत्तमे।८
कदाचित्कृष्णमाहूयपूजयित्वा युधिष्ठिरः।
पप्रच्छ पुण्डरीकाक्षं वासुदेवजगत्पतिम्।९
कृष्ण ! कृष्ण ! महाप्राज्ञ ! येन धर्मेण मानवः।
लभन्ते महदैश्वर्यं तन्नो ब्रूहि महानते।१०
इत्युक्तो धर्मपुत्रेण कृष्णः प्राह युधिष्ठिरम्।
धर्मपुत्र ! महाभाग ! गन्धमादनपर्वते।११
लक्ष्मीतीर्थंमितिख्यातमत्स्यैश्वर्यैककारणम्।
तत्र स्नानं कुरुष्वत्वमैश्वर्यंते भविष्यति।१२
तत्र स्नानेन वर्धन्ते धनधान्यसमृद्धयः।
सर्वे सपत्ना नश्यन्ति क्षेत्रमेषांविवर्द्धते।१३
तीर्थे सस्नुः पुरादेवा लक्ष्मीर्नाम्नि पुन्यदे।

अलभन्मर्वमैश्वर्यं तेन पुन्येनधर्मज्ञ ।१४

वे सब पाँडव परम प्रसन्नतासे युक्त होते हुए तन भगवान श्रीकृष्ण को अपने घर में अन्दर ले गये थे । यद्व श्रीकृष्ण भी पहिले इस उत्तम स्थल में कुछ समय पर्यन्त वहाँ पर रहे थे । किसी समय धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का समाह्वान कर उनका अर्जन किया था और जगत् के स्वामी पुन्डरीक के तुल्य नेत्रों वाले वासुदेव भगवान से युधिष्ठिर ने पूछा था ।८-९। युधिष्ठिर ने कहा--हे श्री कृष्ण ! हे श्रीकृष्ण ! आप तो महती प्रज्ञा के सम्पन्न हैं और आपकी मति भी परम महती है । आप हमको यह बतलाइये कि वह कौन-सा धर्म है जिसके द्वारा मानव महान ऐश्वर्य का लाभ किया करते हैं ? इस रीति से धर्मपुत्र के द्वारा पूछे गये भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से बोले--श्रीकृष्ण ने कहा--हे धर्मपुत्र ! हे महान् भाग वाले ! इस गन्धमादन पर्वत पर लक्ष्मी तीर्थ-इस नाम से विख्यात एक तीर्थ है, जो ऐश्वर्य की प्राप्ति का एक ही कारण है । वहाँ पर आप स्नान कीजिए ! आपको भी महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जायगी ।१०-१२। वहाँ पर स्नान करने से धान्य-धान्य और समृद्धियाँ बढ़ जाया करती हैं । स्नान करने वाले पुरुष के सभी शत्रु स्वत: ही विनिष्ट हो जाया करते हैं और फिर इनका क्षेत्र वर्धित हो जाता है ।१३। हे धर्म्मज्ञ ! इस लक्ष्मी नाम वाले तीर्थ में जो परम पुण्य के प्रदान करने वाला है पहिले देवगणों ने स्थान किया था और उन्होंने पुण्य से ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ।१४।

असुरांश्चमहावीर्यान्समरेघ्णञ्जसा ।
महालक्ष्मीश्च धर्मश्चतत्तीर्थस्नातिनांनृणाम् ।१५
भविष्यत्प्यचिरादेव संशयं मा कृता इह ।
तपोभिः क्रतुभिर्दानैराशीर्बाश्चपांडव ।१६
ऐश्वर्यप्राप्यते यद्वल्लक्ष्मीतीर्ण निमज्जनात् ।

सर्वपापानिनश्यन्ति विघ्नायान्तिलयंसदा ।१७
व्याधयश्च विनश्यन्ति लक्ष्मीतीर्थनिषेवणात् ।
यय: सुविपुलं लोके लभ्यते नात्रसंशय: ।१८
स्नानमात्रेणवैलक्ष्म्यास्तीर्थेस्मिन्धनन्दन ! ।
रम्भामप्सरसांश्रेष्ठांलब्धवान्नल कूवर: ।१९
स्नात्वाऽत्रतीर्थेपुन्ये तु कुबेरोनरवाहन: ।
समहापद्ममुख्यानान्निधीनान्नायकोऽभवत् ।२०
तस्मात्वमपि राजेन्द्र लक्ष्मीतीर्थेशुभप्रदे ।
स्नात्वा वृकोदरमुखैरनुजैरपि संवृत: ।२१
लप्स्यसे महतीं लक्ष्मीं जेष्यसे च रिपूनापि ।
सन्देहोनात्रकर्तव्य: पैपृस्वस्त्रेयधर्मज्ञ ! ।२२

देवों ने रण में महान् वीर्य वाले असुरों को यों ही बड़ी आसानी से मार डाला था। उस तीर्थ में स्नान करने वाले मनुष्यों को महालक्ष्मी और धर्म्म दोनों ही प्राप्त होते हैं। वे दोनों शीघ्र ही प्राप्त हो जायेंगे–इसमें कुछ भी संशय मत करो। हे पांडव! बड़ी-बड़ी तपश्चर्याओं से--क्रतुओं से--दानों से--और आशीर्वादो से जो ऐश्वर्य प्राप्त किया जाता है वह लक्ष्मी तीर्थ के निमज्जन करने से ही प्राप्त हो जाया करता है। समस्त पाप विनष्ट हो जाया करते हैं और सभी विघ्न सदा लय को प्राप्त हो जाते है। सभी व्याधियाँ नष्ट होती है। इस लक्ष्मी तीर्थ के सेवन करने के लोक में अत्यधिक श्रेय प्राप्त किया जाता है--इसमें कुछ भी संशय नहीं है।१५-१८। हे धर्मनन्दन! लक्ष्मी के तीर्थ में स्नान मात्र से ही नल कूबरने अप्सराओं में परम श्रेष्ठ रम्भा को प्राप्त कर लिया था। इस पवित्र पुण्य तीर्थ में नर वाहन कुबेर स्नान करके वह महापद्म मुख्य निधियों का कायक हो गया था। इसलिए हे राजेन्द्र! इस शुभ प्रद लक्ष्मीतीर्थ में स्नान करके महती लक्ष्मी को तुम भी वृकोदर प्रमुख भाइयोंसे युक्त प्राप्त कर लोगे

और अपने शत्रुओं को भी जीत लोगे। हे पत्रस्वस्तेय धर्मंश ! इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए।१५-२२।

इत्युक्तो धर्मपुत्रोऽयं कृष्णेनाद्भुतदर्शनः।
सानुजः प्रययौ शीघ्रं गन्धमादनपर्वतम् ।२३
लक्ष्मीतीर्थं ततो गत्वा महदैश्वर्यंकारणम्।
सस्नौ युधिष्ठिरस्तत्र सानुजो नियमान्वितः ।२४
लक्ष्मीतीर्थस्यतोये ससर्वपातकनाशने।
सानुजोमासमेकन्तुसस्नौनियमपूर्वकम् ।२५
गोभूतिहरण्यादीनब्राह्मणेभ्योददोवहून्।
सानुजोधर्मपुत्रोऽसाविन्द्रप्रस्थव्रयौततः ।२६
राजसूयक्रतु कर्तुं ततऐच्छक्युधिष्ठिरः।
कृष्णं समाह्वयामास यियभृधर्मनन्दनः ।२७
कृष्णोधर्मजदूतेनं समाहूतः ससम्भ्रमः।
चतुर्भिरश्वैः संयुक्तं रथमारुह्य वेगिनम् ।२८

इस प्रकार से भगवान श्रीकृष्णके द्वारा कहे गये इस अद्भुत दर्शन वाले धर्म पुत्र ने अपने छोटे भाइयों के सहित शीघ्र ही गन्धमादन पर्वत पर प्रस्थान कर दिया था। इसके अनन्तर महान ऐश्वर्य के कारण स्वरूप लक्ष्मी पर गये थे। वहाँ पर अपने छोटे भाइयोंके सहित नियमों से अन्वित होकर युधिष्ठिर ने स्नान किया था।२३-२४। उस लक्ष्मी-तीर्थ के जल में जो समस्त पातकों के नाश करने वाला है अपने छोटे भाइयों के साथ नियम पूर्वक धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने एक मास तक स्नान किया था और ब्राह्मणों के लिए अत्यधिक मात्रा में जो—भूमि—तिल और सुवर्ण आदि का दान दिया था। इसके पश्चात् वह धर्म का पुत्र युधिष्ठिर अपने अनुजों के सहित इन्द्रप्रस्थ को चले गये थे। इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने की मन में इच्छा की

थी। यज्ञ करने की इच्छा वाले धर्मनन्दन ने भगवान् श्री कृष्ण का आह्वान किया था। धर्मपुत्र के दूत के द्वारा समाहूत हुए भगवान् श्री कृष्ण सम्भ्रम से युक्त हो गये थे और चार अश्वों से युक्त वेग गमन करने वाले रथ पर समारूढ़ हो गये थे।२५-२८।

सत्यभामासहचर इन्द्रप्रस्थं समाययौ।
तमारतं समालोक्य प्रमोदाद्धर्मनन्दनः।२९
न्यवेदयत्जद्यष्णाय राजसूयोद्यमन्तदा।
अन्यमन्यत कृष्णोपि तथैव क्रियतामिति।३०
वाक्यं च युक्तिसयुक्तं धर्मपुत्रमभाषत।
पैतृस्वस्रेय धर्मात्मञ्छृणु पथ्यंवचोमम।३१
दुष्करो राजसूयोऽयं सर्वैरपि महीश्वरैः।
अनेकशतपादातिरथकुञ्जरवाजिमन्।३२
महामतिरिम यज्ञं कर्तुमर्हति नेतरः।
दिशो दश विजेयव्याः प्रथम वलिना त्वया।३३
पराजितेभ्यः शत्रुभ्यो गृहीत्वा करमुत्तमम्।
तेन काञ्चनजातेन कर्तव्योऽयं क्रतूत्तमः।३४
रोचषेमुक्तिसदनं न हित्वां भीषयामि भो.।
अतः क्रतुसमारम्भात्पूर्वंदिग्विजयं कुरु।३५

अपनी परम प्रिय सत्यभामा को साथ में लेकर श्रीकृष्ण इन्द्र प्रस्थ में समागत हो गये थे। उनको वहाँ पर आये हुए देखकर धर्मनन्दन को बड़ा भारी हर्ष हुआ था। फिर युधिष्ठि अपने किये जाने वाले राजसूयं यज्ञ का उद्यम श्रीकृष्ण की सेवा में निवेदित किया था। उस समय में श्रीकृष्ण ने भी उसकी अनुमती दे दी थी कि ऐसा ही करिये। श्रीकृष्ण भगवान् ने युक्ति से सुसङ्गत वाक्य धर्मपुत्र से कहा था—हे पैतृस्वस्रय ! आप तो धर्मात्मा हैं, मेरे पथ्य वचन का श्रवण करिये। यह राजसूय यज्ञ परम दुष्कर हुआ करता है और सभी महीपतियों के लिये

इसकी दुष्करता होती है। अनेक शत पैदल-रथ-हाथी और अश्वों वाला महान् मति से युक्त ही इसको करने के योग्य हुआ करता है अन्य कोई भी नहीं होता है। सर्व प्रथम तो दशों दिशायें बलशाली आपको जीत लेनी होगी। जो शत्रु पराजित हो जावें उनसे उत्तम कर ग्रहण करना होगा उस सब सुवर्ण से यह उत्तम क्रतु करना चाहिए। मैं स्वयं मुक्ति के सदन को पसन्द करता हूँ और मैं आपको विभीषिका उत्पन्न नहीं कर रहा हूँ। अतएव अपने इस यज्ञ के आरम्भ करने के पूर्व में आप दिग्विजय करिये।२६-३५।

ततोधर्मात्मिजः श्रुत्वा कृष्णस्य वचनहितम्।
प्रशसन्देवकीपुत्रमाजुहावनिजानुजान्।३६
आहूय चतुरो भ्रातृन् धर्मजः प्राहहर्षयन्।
अयि भीम ! महावाहो बहुवीर्यधनञ्जय।३७
यमौ च सुकुमाराङ्गौ शत्रुसंहारदीक्षितो।
चिकोर्षामि महायज्ञं राजसूयमनुत्तसम्।३८
स च सर्वान् रणे जित्वा कर्तव्यः पृथिवीपतीन्।
अतो विजेतुं भूपालां श्चत्वारोपि ससैनिकाः।३९
दिशश्चमस्तोगच्छन्तु भवन्तीवीर्यवत्तराः।
युष्ताभिराहृतैर्द्रव्यं करिष्यामिमह क्रतुम।४०
इत्युक्ता सादरं सर्व वृकोदरमुखास्तदा।
प्रसन्नवदना भूत्वा धर्मस्यनुजाः पुरात्।४१
राज्ञोजयायसर्वासु निर्ययौ दिक्षुपाण्डवाः।
तेसर्वे नृपतीञ्जित्वाचतुदिक्षुस्थितान्बहून्।४२

इसके अनन्तर धर्म पुत्र ने श्रीकृष्ण के हितप्रद वचन का श्रवण किया था। देवकी पुत्र की अतीव प्रशंसा करते हुए फिर युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाइयोंको अपने पास बुलवाया था। अपने छोटे चारों भाइयों को बुलाकर प्रसन्न होते हुए भाइयों से यह कहा था—आर्य भीम !

हे महान् बाहुओं वाले ! हे बहुत अधिक वीर्य वाले ! हे धनञ्जय ! हे शत्रुओं के संहार करने में परम कुशल तथा सुकुमार अङ्गों वाले दोनों नकुल और सहदेव ! मैं सर्वोत्तम राजसूय यज्ञके करने की इच्छा करता हूं जो एक महान् यज्ञ होता है। यह राजसूय यज्ञ रथक्षेत्र में समस्त राजाओं को जीतकर ही करने के योग्य हुआ करता है। इसलिए समस्त राजाओं को जीतने के लिये आप चारों भाई अपने सैनिकों के सहित चारों दिशाओं में गमन करो। आप सब लोग महान् बलवीर्य शाली हैं। आप लोगों के द्वारा लाये हुए द्रव्यों से ही इस महान् ऋतु को करूँगा ।३६-४०। इस प्रकार से आदरके सहित जब वृकोदर प्रमुख सब भाइयों से कहा गया था तव उस समय में वे धर्मपुत्रके छोटे भाई परम प्रसन्न मुख होते हुए पुर से राजा के विषय के लिये सब दिशाओ में पांडव निकल कर चले गये थे। वे सब चारों दिशाओं में राजाओं को जीत लिया था जो कि बहुत से स्थित थे ।४१-४२।

स्ववशेस्थापयित्वातान्नृपतीन्पाण्डुनन्दना: ।
तैर्दत्तम्बहुधा द्रव्यमसंख्यातमनुत्तमम् ।४३
आदाय स्वपुरं पूर्णमाययु: कृष्णसंश्चया: ।
भीम: समाययौ तत्र महाबलपराक्रम: ।४४
शतभारसुवर्णानि समादाय पुरोत्तमम् ।
सहस्रं भारमादाय सुवर्णानां ततोऽर्जुन: ।४५
शक्रप्रस्थं समायातो महाबलपराक्रम: ।
शतभारं सुवर्णानां प्रगृह्य नकुलस्तथा ।४६
समागतो महातेजा: शक्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ।
दत्तान्विभीषणेनाथ स्वर्णतालांश्चतुर्दश ।४७
दक्षिणात्यमसीपानां गृहीत्वा धनसञ्चयम् ।
सहदेवोऽपि सहसा समादय निजाम्पुरीम् ।४८

उन पांडु नन्दनों ने उन समस्त नृपों को अपने वश में स्थापित

करके उन्हें छोड़ा था। उन्होंने असंख्य एवं उत्तम बहुत सा द्रव्य दिया था। उन सबको लेकर वे भगवान श्रीकृष्ण का समाश्रय ग्रहण करने वाले शीघ्र ही अपने पुर में वापिस लौटकर समागत हो गये थे। वहाँ पर महान् बल विक्रमशाली भीम आये थे जो कि शतभार सुवर्ण लेकर उस उत्तमपुर में प्रवेश करने वाले थे। इसके पश्चात् एक सहस्रभार सुवर्ण लेकर अर्जुन समागत हुए। महाबल पराक्रम से समन्वित नकुल एक सौ भार सुवर्ण ग्रहण करके इन्द्रप्रस्थ में प्रविष्ट हुए। महा तेजस्वी सहदेव भी उस उत्तम पुर इन्द्रप्रस्थ मे विभीषण के द्वारा दिये हुए चौदह स्वर्ण तालों को तथा दक्षिणात्य महीपतियो के धन से सञ्चय को ग्रहण करके सहसा अपनी पुरी मे समागत हुए थे।४३-४८।

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतान्यपि।
सवर्णानि ददौ कृष्णोधर्मपत्रायपयादवः।४९
स्वानुजैराहृत्तैरेवमसङ्खयाततहाधढैः।
कृष्णदत्तैरसङ्खयातैर्धनैरपि युधिष्ठिर।५०
कृष्णाश्रयोऽयजद्विप्रा राजसूयेनपाण्डवः।
तस्मिन्यागेददौद्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो यथेष्टतः।५१
अन्नानिप्रददौतत्र ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिरः।
वस्त्राणिगाश्च भूमिश्च भूषणानिददो तथा।५२
अर्थिनः परितुष्यन्तियावताकाञ्चनादिना।
ततोऽपि द्विगुणन्तेभ्योदापयामासधर्मजः।५३
इयन्तिदत्तान्यर्थिभ्यो धनानिविविधान्यपि।
इतीयत्ताम्परिक्षेप्तु नशक्तान्नह्यकोमयः।५४
अर्थिभिर्दीयमानानि दृष्ट्वा तत्र धनानि वै।
सर्वस्वमप्यहो राज्ञादत्तमित्यब्रवीज्जनः।५५
दृष्ट्वा कोशांस्तथानन्ताननन्तमणिकाञ्चनान्।५६

स्वल्तं हि दत्तमर्थिभ्य इत्यबोचणुजनास्तदा ।
दृष्ट्वैं राजसूयेनधर्मपुत्रः सहानुजः ।५७

भगवान श्रीकृष्ण ने एक सहस्र लाख करोड़ तथा एक सौ लाख करोड़ धर्म पुत्र के लिए दिया था। इस प्रकार से अनुजों के द्वारा समाहृत असंख्यात महान् धर्मों से तथा श्रीकृष्ण भगवान के द्वारा पदत्त असंख्यात धर्मों से श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करने वाले राजा युधिष्ठिर ने हे विप्रगण ! उस राजसूय यज्ञ के द्वारा यजन किया था। उस यज्ञ में ब्राह्मण के लिए यथेष्ट द्रव्य दिया था ।४६—५१। उसमें युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों के लिए अन्नों का भी दान किया था। उसी भांति वस्त्र-गौयें—भूमि और भूषणों का भी दान दिया गया था। याचक गण जितने भी सुवर्ण आदि से परितुष्ट होते ये धर्मपुत्र ने उतने से भी दुगुना उनको दिलवा दिया था। अथितियों के लिए विविध भाँति के इतने धनों का प्रदान किया गया था कि उसकी इयत्ता (इतनी हैं—इसको) की करोड़ों ब्रह्मा भी कहने में समर्थ नहीं हुए थे। वहाँ पर अर्थियोंके द्वारा दीयमान धनों को देखकर जनगण यहीं कह रहे थे कि राजा ने अपना सर्वस्व ही दान कर दिया है। जिस समय में लोग उन अनन्त कोशों को तथा अनन्त मणियों और चाञ्चलों को देखते थे तो उस समय यही कहते थे कि अर्थियों के लिए तो बहुत ही दिया गया है क्योंकि वहाँ तो अभी भी अनन्त राशि विद्यमान थी। इस प्रकार से धर्मपुत्र ने अपने छोटे भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ का यजन किया था ।५२-५७।

बहुवित्त समृद्धः सन् रेमे तत्र पुरोत्तमे ।
लक्ष्मीतीर्थस्य माहात्म्यंद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।५८
लेभे सर्वमिदं विप्रा अहोतीर्थस्य वैभवम् ।
इदं तीर्थं महापुण्यं महादारिद्रयनाशनम् ।५६
धनधान्तप्रदं पुंसां महापातकनाशनम् ।
महानरकसंहृत महादुःखनिवर्तकम् ।६०

मोक्षदं स्वर्गदन्नित्यं महाऋणविमोचनम् ।
सकलत्रप्रदं पुंसांसुपुत्रप्रदमेव च ।६१
एतत्तीर्थंसमं तीर्थं न भूतन्न भविष्यति ।
एतद्वः कथित विप्रा लक्ष्मीयीर्थस्म वैभवम् ।६२
दुस्स्वप्ताशनं पुण्यं सर्वाभींष्टप्रसाधकम् ।
यः पठेदिममध्यायश्शृणुतेवासभक्तिकम् ।६३
धनधान्यसमृद्धस्स्यात्स नरो नास्ति संशयः ।
भुक्तवेह सकलान्भोगान्देहान्ते भुक्तिमाप्नुयात् ।६४

बहुन वित्त से युक्त होता हुआ समृद्ध होकर वहाँ पर उस उत्तम पुर इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर रमण किया करते थे। वह सब उसी लक्ष्मी तीर्थ का ही महा माहात्म्य था ।५८। हे विप्रगण ! यही उस तीर्थ का वैभव है कि धर्मपुत्र ने यह सब प्राप्त किया था। यह तीर्थं महान् पुण्य वाला है और महान् दारिद्रय के विनाश को कर देने वाला है। पुरुषों को धन-धान्य के प्रदान कर देने वाला तथा महापातकों को नष्ट कर देने वाला है। वह बड़े से भी बड़े नरकों का हनन करने वाला तथा महान् दुःखों से निवृत कर देने वाला है। मोक्ष को देने वाला-स्वर्ग प्रदान करने वाला और नित्य ही महान् ऋणोंसे मोचन करा देने वाला है। सुन्दर स्त्री और परम सुपुत्र का दाता है। वह ऐसा महा महिमा मय तीर्थ है कि इसके समान अन्य तीर्थ अब तक न तो कोई हुआ और न भविष्य में ही कोई होगा। हे विप्रो ! यह आप लोगों को मैंने लक्ष्मीतीर्थ का वैभव कहकर बतला दिया है जो कि दुःस्वप्नों का नाश करने वाला—परम पुण्य मय और समस्त अभीष्टों का साधक होता है। जो कोई भी इस अध्याय का पठन करता है अथवा इसका श्रवण ही भक्तिभाव के सहित कर लेता है वह धन-धान्य से समृद्ध मनुष्य होजाया करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस लोक में समस्त भोगों

का उपभोग करके देह के अन्त में वह मुक्ति को प्राप्त कर लिया करता है ।५६-६४।

—x—

३८—गायत्री सरस्वती तीर्थ प्रशंसा

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मुनयो लोकपावनम् ।
गायत्र्या स सरस्वत्या माहात्म्यं मुक्तिदं नृणाम् ।१
शृण्वतां पठतां चैव महापातकनाशनम् ।
महापुण्यप्रदं पुंसां नरकक्लेशनाशनम् ।२
गायत्र्यां च सरस्वत्यां ये स्नान्ति मनुजा मुदा ।
न तेषां गर्भवासः स्यात्किन्तु मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।३
सरस्वत्याश्च गायत्र्या गन्धमादनपर्वते ।४
ब्रह्मपत्न्योः सन्निधानत्तन्नाम्ना कथिते इमे ।५
गायत्र्याश्च सरस्वत्या गन्धमादनपर्वते ।
किमर्थं सन्निधान्नं वै सूताभूत्तद्वदस्व नः ।६

सूतजी ने कहा—हे मुनिगण ! अब मैं लोकों को पावन कर देने वाला तथा मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने वाला गायत्री और सरस्वती तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ ।१। जो इस माहात्म्य को पढ़ते हैं अथवा इसका श्रवण किया करते हैं उनके महापातकों का यह नाशकर देने वाला है । महापुरुषों को महान् पुण्य को प्रदान किया करता है तथा नरकों के क्लेशों का विनाश कर देने वाला है । गायत्री तीर्थ में और सरस्वती तीर्थ में जो मनुष्य आनन्द के साथ स्नान किया करते हैं उसको फिर गर्भ का वास कभी भी नहीं होता है, किन्तु निश्चित रूप से उनकी मुक्ति हो जाया करती है ।२-३। गन्धमादन पर्वत पर गायत्री और सरस्वती इन दोनों ब्रह्मा की पत्नियों के सन्निधान से

उन्हीं के नाम से ये प्रसिद्ध हुए हैं। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! गन्धमादन पर्वत गायत्री और सरस्वती इन दोनों का सन्निधान किस लिये हुआ था ? यह आप हमको बतला दीजिये ।४-५-६।

प्रजापतिः पुराविप्राः स्वावैदुहितरंमुदा ।
वाङ्नाम्नींकामुकोभूत्वास्पृहयामासमोहनः ।७
इतिनिन्दन्ति तं विप्राः स्रष्टारं जगतां पतिम् ।
निषिद्धकृत्यनिरतं दृष्ट्वापरमेष्ठिनम् ।८
हरः पिनाकमादाय व्याधरूपधरं प्रभुः ।
आकर्णपूर्णकृष्टेन पिनाकधनुषा परम् ।९
संवोज्य वेधसन्तेन निर्व्याध निशितेन सः ।
त्रिपुरान्तभवाणेन विद्धोऽसौन्यपतद्भुवि ।१०
तस्य देहादथोत्थाय महज्ज्योतिर्महाप्रभुम् ।
आकाशेमृगशीर्षाख्यंनक्षत्रमभवत्तदं ।११
आर्द्रानक्षत्ररूपी संहरोऽप्नुजगायतम् ।
पीड्यन्मृगशीर्षाख्य् नक्षत्रं ब्रह्मरूपिणम् ।१२
अधुनोऽपि मृगव्याधरूपेणत्रिपुरान्तकः ।
अम्बरे दृश्यते स्पष्टं मृगशीर्षान्तिकेद्विजाः ।१३
एवं विनिहितेतस्मिशम्भुनां परमेष्ठिनि ।
अनन्तरन्तुगायत्रीसरस्वत्योशुचर्दिते ।१४

सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! पुरातन समयमें प्रजापति अपनी पुत्री जिसका नाम वाक्त है उसी पर कामुक होकर मोहित हो गया था और उसके प्राप्त करने की इच्छा की थी ।७। विप्रगण जगत के पति-सृजन करने वाले—निषिद्ध कृत्य को करने वाले उन ब्रह्माजी को देखकर परमेष्ठी की सब निन्दा करते थे। भगवान् हरि ने व्याघ्र का स्वरूप धारण करके प्रभु ने पिनाक ग्रहण किया था और कानों तक पूरा

खींचकर पिनाक धनुष से शर को संयोजित करके उस तीक्ष्ण वाण से उन्होंने ब्रह्माजी को बेध दिया था। त्रिपुरान्तक के उस वाण से विद्ध होकर यह ब्रह्माजी भूमि पर गिर गए थे। उस समय उनके देह से महती प्रभा वाली एक महान् ज्योति उठकर आकाश में मृगशीर्ष नाम वाला नक्षत्र हो गया था।८-९-१०-११। आर्द्रा नक्षत्र के रूप वाले होकर भगवान् हर भी उसके पीछे चले गये थे। वहाँ पर आकाश में भी उस ब्रह्मरूपी मृगशीर्ष नामक नक्षत्र को पीड़ा दे रहे थे।१२। इस समय भी मृग और व्याधरूप से त्रिपुरान्तक भगवान् अम्बार में हे द्विजो ! मृगशीर्ष के हीं समीप ही स्पष्ट दिखलाई दिया करते हैं। इस प्रकार से शम्भु के द्वारा परमेष्ठी के विननिहित होने पर इसके उपरान्त में गायत्री और सरस्वती दोनों ही चिन्ता से अत्यन्त पीड़ित हो गयी थी।१३-१४।

सर्वाभीष्टप्रदं पुंसां तपः कर्तुमुद्यते।
जग्मतुर्नियमोपेतं तपः कर्तुं शिवं प्रति।१५

स्नानार्थमांतमनोविप्रा गायत्री च सरस्वती।
तीर्थंद्वयस्वनाम्नावैचक्रतु पापनाशनम्।१६

तत्र त्रिषवणस्नानं प्रत्यहं चक्रतुमुदा।
वहुकालमनाहारे कामक्रोधादिवर्जिते।१७
अत्युग्रानियमोपेत शिवध्यानपरायणे।
पञ्चाक्षरमहामन्त्रं जपैकनियते वुभे।१८
तयोरथ तपस्तुष्टो महादेवी महेश्वरः।
सन्निधत्ते महामूर्तिस्तपसां फलदित्सया।१९
ततः सन्निहितशम्भुं पार्वतीरमणशिवम्।
गणेशकार्त्तिकेयांभ्वांताश्वंयोऽपरिसेवतम्।२०
दृष्ट्वासन्तु चित्ते तेगायत्रीचसरस्वती।
स्तोत्रैस्तुष्टवतुश्शम्भुं महादेवघृणानिधिम्।२१

ये दोनों पुरुष के समस्त अभीष्टों के प्रदान करने वाले तप को करने के लिए समुद्यत हो गई थीं और शिव के प्रति नियमों से उपेत तपश्चर्या करने के लिए चली गयीं ।१५। हे विप्रो ! इन दोनों महादेवियों ने अपने स्नान करने के लिए गायत्री और सरस्वती इनको अपने ही नामों से पापों का नाश करने के तीर्थ बनाये थे ।१६। वहाँ पर तीनों समय में प्रतिदिन परम प्रसन्नता से ये स्नान करती थी। बहुत समय पर्यन्त बिना आहार के और काम-क्रोध आदि से रहित होकर अत्यन्त उग्र नियमों में ये दोनों समवस्ति रही थी। निरन्तर भगवान् शिव के ध्यान में परायण होकर परम शुभ इन्होंने पञ्चाक्षर महामन्त्र का जाप का नियत होकर किया था। इसके अनन्तर उन दोनों के तप से महेश्वर महादेव परम सन्तुष्ट हो गए थे। उन्होंने इन दोनों की तपस्या का फल देने की इच्छा से उन दोनों के समीप में अपनी महामूर्ति का सन्मिधान किया था।१७-१८-१९। इसके अनन्तर पार्वती रमण शिव शम्भु को अपने सन्निहित उन दोनों ने देखा था। इसके दोनों और स्वामि कार्त्तिकेय और गणेश परिसेवन करने वाले विद्यमान थे। वहाँ पर भगवान् शम्भु का दर्शन करके वे गायत्री और सरस्वती दोनों परम सन्तुष्ट चित्त वाली हो गई थी। उन दोनों ने करुणा की निधि महादेव शम्भु का स्तोत्रों के द्वारा स्तवन किया था।२०-२१।

नमोदुर्वारसंसारध्वान्तध्वंसैकहेतवे ।
ज्वलज्वालावलीभीम कालकूटविषादिने ।२२
जग्रन्मोहनपञ्चास्त्रदेहनाशैकहेतवे ।
जगदन्तकरक्रूर ! यमान्तक ! नमोऽस्तु ते ।२३
गङ्गातरङ्गसम्पुक्तजटामण्डलधारिणे ।
नमस्तेऽस्तु विरूपाक्ष ! बालशीतांशुधारिणे ! ।२४
पिनाकभीमटङ्कारत्रासिमत्रितत्रितपुरौकसे ।
नमस्तेविधाकार ! जगत्स्रष्टशिरश्छिदे ।२५

शान्तामलकृपादृष्टिसंरुभिमृकण्डुज ! ।
नमस्ते गिरिजानाथ ! रक्षाऽऽवाँ शरणागते ।२६
महादेव ! जगन्नाथ ! त्रिपुरान्तक ! शङ्कर ! ।
वामदेवमहादेव ! रक्षाऽऽवाँ शरणागते ।२७
सहानेनब्रह्मलोक यातं माद्भूद्विलम्बता ।
उयि ताभ्यां स्तुतः शम्भुर्देवदेवोमहेश्वरः ।
अब्रवीत्प्रीतिसंयुक्तोगायत्रीचरस्तीम् ।२८

गायत्री और सरस्वती दोनों ने कहा—इस परम दुःख से निवारण किये जाने वाले संसार के अन्धकार के ध्वंस करने के एक मात्र कारण स्वरूप आपके लिए हम दोनों की नमस्कार समर्पित है। जलती हुई ज्वालाओं को पंक्तियों वाला महान् भयानक काटकूट विष का भक्षण करने वाले आपके लिए हमारा प्रणाम है ।२२। समस्त जगत् को मोहने वाले आपके कामदेव के देह को भस्मीभूत करने के एकमात्र हेतु आपके के लिए नमस्कार हैं। हे जगत् के अन्त कर देने वाले परम क्रूर ! हे यम के भी अन्त कर देने वाले देव ! आपकी सेवा में हम दोनों का नमस्कार अर्पित है ।२३। भागीरथी देवी गङ्गा की तरङ्गों से सम्पृक्त जटाओं के मण्डल को धारण करने वाले। हे विरूपाक्ष ! आप बालचन्द्र की धारण करने वाले हैं आपको हम दोनों का नमस्कार है। पिनाक धनुष की टंकार से त्रिपुरालय को त्रासित करने वाले—विविध आकार धारी और जगत के सृष्टा ब्रह्मा के भी शिर का छेदन करने वाले आपको हमारा नमस्कार है ।२४-२५। परम शान्त एवं अमल कृपा दृष्टि से मृकण्डुज का जरक्षण करने वाले गिरिजा के साथ आपके लिये हमारा प्रणाम है। हम दोनों ही आपकी शरण में समागत हुई है। आप हम दोनों की रक्षा कीजिए। हे महादेव ! हे जगन्नाथ ! हे त्रिपुर के अन्त कर देने वाले। हे शंकर ! हे वामदेव महादेव ! शरण में शरणागत हम दोनों की आप रक्षा कीजिये ।२६-२७। इस भाँति उन

दोनों के द्वारा स्तवन किए जाने पर देवों के भी महेश्वर शम्भू प्रीति से संयुक्त होकर गायत्री और सरस्वती से बोले-।२८।

भोः सरस्वति ! गायत्रि ! प्रीतोऽस्मियुवयोरहम् ।
वरं वरयतं मत्तोयद्वांमनसि वर्तते ।२९
इत्युक्ते ते तु गायत्रीसरस्वती हरेण वै ।
अब्रतां पार्वतीकान्तं महादेवंणानिधिम् ।३०
त्वमावयोः पितादेव ! तवाप्यावां सुते उभे ।
रक्षाबाँपतिदानेतस्मात्वत्रिपुरान्तक ।३१
स एवं प्रार्थितः शम्भुस्ताभ्यां ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
एवमस्त्विति संप्रोच्य गायत्रीं च सरस्वतीम् ।३२
सहानेनब्रह्मलोकं यातं मा भूद्विलम्वता ।
युवयोः सन्निधानेन सदाकुण्डद्वत्रेऽत्र वै ।३३
भविष्यति नृणां मुक्ति स्नानात्सायुज्यरूपिणी ।
युष्मान्नाम्ना च गायत्रीसरस्वत्याविति द्वयम् ।३४
इदंतीर्थं सर्वलोके ख्यातिं यास्यतिशाश्वतीम् ।
सर्वेषामपितीर्थानामि दंतीद्वयसदा ।३५
शुद्धिप्रदन्तया भूयान्महापातकनाशनम् ।३६
ममप्रसादजननं विष्णुप्रीतिकरन्तथा ।
एततीर्थद्वयसमं न भूतं न भविष्यति ।३७
जत्रस्नानाद्धि सर्वेषां सर्वाभीष्टं भविष्यति ।
हृदकुण्डद्वयंलोके भवतीभ्यां कृतमहत् ।३८

श्रीमहादेवजी ने कहा—हे सरस्वती ! हे गायत्री ! मैं आप दोनों से अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । जो भी आपके मन में हो आप दोनों मुझसे वरदान की याचना कर लो। इस तरह से जब वे दोनों गायत्री और सरस्वती भगवान हर के द्वारा कही गईं तो वे दोनों करुणा के सागर पार्वती के स्वामी महादेवजी से बोलीं—गायत्री और सरस्वती ने

कहा—हे भगवान् ! हे देव ! आप तो सबके ईश हैं और करुणा के आकर हैं। अब आप कृपा करके हमारे भर्त्ता चतुरानन को प्राणों से युक्त कर देवे। हे देव ! आप तो हमारे पिता हैं हम दोनों भी आपकी ही पुत्रियाँ हैं। पति के प्रदान के द्वारा हम दोनोंकी आप रक्षा कीजिये। आप तो त्रिपुर के अन्त करने वाले हैं।२६-३१। इस प्रकार से उन दोनों के द्वारा प्रार्थना किए गये भगवान् शम्भू-हे ब्राह्मणों ! ऐसा ही होगा'—यह गायत्री और सरस्वती से कहकर भगवान् शम्भू ने कहा—अब इसके साथ ही आप दोनों ब्रह्मलोक को चली जाओ और यहाँ पर विलम्ब मत करो। आप दोनों के सन्निधान से ये सदा ही दोनों कुन्ड मनुष्यों को स्नान करने से मुक्ति एवं सायुज्य प्रदान करने वाले होंगे। ये दोनों ही कुन्ड आप दोनों ही नाम गायत्री कुण्ड और सरस्वती कुन्ड विख्यात होंगे।३२-३४। यह तीर्थ समस्त लोक में शावती प्रसिद्धि को प्राप्त होंगे और अन्य सब तीर्थों से भी अधिक महत्वशाली सदा वे दोनों तीर्थ होंगे।३५। ये शुद्धिके प्रदान करने वाले और महान् पातकों के नाश करने वाले होंगे। मनुष्यों के लिये ये अत्यधिक शान्ति प्रदान करने वाले तथा सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं के देने वाले होंगे। ये तीर्थ मेरी प्रसन्नता के करने वाले और भगवान् श्री विष्णु को परम प्रीति उत्पन्न करने वाले होंगे। इन दोनों तीर्थों के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो अब तक इस भू-मन्डल में हुआ और न भविष्य में भी होगा। यहाँ पर स्नान करने से सबको समस्त अभीष्टों को प्राप्त होगी। ये दोनों कुन्ड आप दोनों ने एक महान् वस्तु बना दी।३६-३८।

३९–धर्मारण्य माहात्म्यम्

पृथ्वीपुरन्ध्रयास्तिलकं ललाटे लक्ष्मीलतायाः स्फुटमालवालम्
वाग्देवताया जलकेलिरम्य धर्माटवीं संप्रति वर्णयामि ।१
साधु पृष्टं त्वया राजन्वाराणस्यधिकाधिकम् ।
धर्मारण्यं नृपश्रेष्ठ ! शृणुष्वाऽवहितो भृशम् ।२
सर्वतीर्थानि तत्रैव ऊषरं ते कथ्यते ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरिन्द्राद्यैः परिसेवितम् ।३
लोकपालैश्च दिक्पालैर्मातृभिः शिवशक्तिभिः ।
गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं यज्ञकर्मभिः ।४
शाकिनीभूतवेतालग्रहदेवाधिदेवतैः ।
ऋतुभिर्लासपक्षैश्च सेव्यमानं सुरासुरैः ।५
तदाद्य च नृप ! स्थानं सर्वसौख्यप्रद तथा ।
यज्ञैश्चवह्नभिश्चैवह्नभिश्चैव सेवितं मुनिसत्तमैः ।६
सिंहव्याघ्रै र्द्विपैश्च पक्षिभिर्विविधैस्तथा ।
गोमहिष्यादिभिश्चैव सारसैर्मृगशूकरैः ।७

महर्षि प्रवर श्री व्यासदेव ने कहा अब हम धर्माटवी का वर्णन करते हैं जो पृथ्वी पुरानी के ललाट में तिलक के समान हैं तथा लक्ष्मी रूपिणी लता का (प्रांवला) हैं और वाग्देवता देवी सरस्वती की रम्य जल केलि है ।१। हे राजन् ! आपने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। यह वाराणसी से भी अधिक से अधिक हैं। हे नृप श्रेष्ठ ! अब आप इस धर्मारण्य के विषय में अत्यन्त सावधान होकर श्रवण कीजिए ।२। वहीं पर समस्य तीर्थं विद्यमान रहते हैं इसके ऊपर कहा जाता है। यह ब्रह्मा-विष्णु और महेश आदि के द्वारा परिसंवित होता है। नव लोकपाल—दिग्पाल—मातृगण—शिव शक्ति वर्ग—गन्धर्व—यज्ञ कर्म और अप्सराओं के द्वारा भी सेवित रहता है अर्थात्

सभीं वहाँ पर रहा करते हैं ।३-४। मालिनी—भूत—वैताल—यक्ष—देवर्षि—दैवत—ऋतु—लासिपक्ष और सुराशुरों के द्वारा यह धर्मारण्य सेव्यमान होता है ।५। हे नृप ! वह आद्य स्थान हैं तथा सब प्रकार के सौख्यों वे प्रदान करने वाला है। बहुत से यज्ञों और श्रेष्ठ मुनिः वृन्दों द्वारा भी यह सेवित होता हैं। सिंह—व्याघ्र—हाथी तथा अनेक प्रकार के पक्षिग्रण और गौ—महर्षि आदि एवं सारस मृग शूकरों से भी यह सेवित होता है ।६-७।

सेवितं नृशार्दूल श्वापदैर्विविधैरपि ।
तत्र ये निधनं प्राप्वाः पक्षिणः कीटकादयः ।८
पशवः श्चापदाश्चैवजलस्थलचराश्च ये ।
खेचरा भूचराश्चैवडाकिन्यो रक्षसास्तथा ।९
एकोत्तरशतः सार्द्धंमुक्तिस्तेषांहिशाश्वती ।
तेसर्वेविष्णुलोकांश्चप्रयान्त्ये नसंशयः ।१०
सन्तारयति पूर्वंजान्दश पूर्वान्दशापरान् ।
यवब्रीहितिलैः सर्पिबिल्वपत्रैश्चदूर्वया ।११
गुडैश्चवोदकैनाथ तत्र पिन्डं करोति यः ।
उद्धरेत्सप्यगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ।१२
वृक्षैः नेकधा युक्तं लतागुल्मैः सुशोभितम् ।
सदा पुन्यप्रदं तच्च सदा फलसमन्वितम् ।१३
निर्देरं निर्भयं चैव धर्मारण्यं च भूपते ।
गोव्याघ्रो वीड्यते तथा मार्जारमूषकः ।१४

हे नृपशार्दूल ! विविध जाति के श्वापदों के द्वारा वह सेवित होता है। वहाँ पर जो भी पक्षी और कीटक प्रभृति निधन को प्राप्त हुए हैं। पशुगण और श्वापद आदि—जलकर स्थलचर—खेचर—भूचर—डाकिनी राक्षस जो भी निधन को प्राप्त होते हैं उनकी एकोत्तर शत सार्द्ध मुक्ति शाश्वती हुआ करती है। वे सभी विष्णुलोकको प्रयाण किया

किया करते हैं-इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं हैं।८-१०। वह अपने दश पहिले पुरखाओं को और दश आगे होने वाली पीड़ियों को भली भाँति तार दिया करता है। जो कोई जौ—व्रीहि—तिल—घृत—विल्पपत्र - दूर्वा—गुड़ और उदक से वहाँ पर पिंड प्रदान किया करता है वह एको-त्तरंशत कुश कुल को और सात गोत्रों का उद्धार कर दिया करता है। यह धर्मारण्य अनेक प्रकार के वृक्षों और लता गुल्मों से सुशोभित है। यह सदा पुन्य प्रदान करने वाला और फलों से समन्वित रहा करता है। हे भूपते ! वैर रहित—भयहीन धर्मारण्य है वहाँ पर गौ और व्याघ्र तथा मूषक और मार्जार मिलकर क्रीड़ा करते हैं।११-१४।

भेकोऽहिना क्रीडते च मानुषा राक्षसैः सह।
निर्भयं वसते तत्र धर्म्मारण्यं चभूतले।१५

महानन्दमयं दिव्यं पावनात्पावनं परम्।
कलकण्टः कलोत्कण्ठमनुगुञ्जति कुंजगः।१६
घ्यानस्थःश्रोष्यनि तदा परावत्येति वार्य्यते।
कोकः कोकीं परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्भयात्।१७
चकोरच्चंद्रिकाभोक्तानकत वृतमिवस्थितः।
पठन्ति सारिकाः सारंशुकंसम्वोधयन्त्यहो।१८
अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना।
अपासवारसंसारसिन्धुपारप्रदः शिवः।
आलस्येनापि यो यायाद्गृहाद्धर्मवनं प्रति।१९
अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्याच्चपदेपदे।
शापानुग्रहसंयुक्ता ब्राह्मणास्तत्र यन्ति वैः।२०

उस धर्मारण्य में भेक (मेंढ़क) सर्प के साथ मिलकर क्रीड़ा मैत्री के भाव से किया करता है और मनुष्य गण राक्षसों के साथ मिलजुल कर आनन्द किया करते हैं। इस भूतल में वह ऐसा धर्मारण्य स्थल है कि वहाँ पर भय का नाम तक नहीं है। सभी निर्भय होकर निवास करते

हैं। यह महान् आनन्द से परिपूर्ण एवं परम दिव्य है तथा पावन से भी परम पावन है। कुंज में गमन करने वाला कल कंठ (कोयल) अपने परम मधुरं कंठ से सदा अवगुंजन किया करता है ।१४-१५। ध्यान में स्थित होकर सुभगे उस समय में पारावती के द्वारा धारण किया जाता है। उसके भय से कोक अपनी प्रिया कोकी का परित्याग करके मौन होकर समास्थित रहा करता है ।१७। चन्द्र की किरणों का भोग करने वाला चकोर नव (रात्रि व्रत करने के समान परम शान्त होकर समास्थित रहा करता है। सारिकायें सार वचनों का पाठ किया करती हैं और शुक (तोता) को सम्बोधित किया करती है ।१८। बिना पारावार वाला यह संसार रूपी सागर है इसमें सिन्धु के पारा का प्रदान करने वाला भगवान् शिव ही हैं। जो कोई आलस्य करके भी अपने घर से इस धर्मारण्य की ओर चला जाया करता है उसका पद-पद में अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक धर्म होता है। क्योंकि वहाँ पर शाप देने की तथा परम अनुग्रह करने की सामर्थ्य रखने वाले ब्राह्मण निवास किया करते हैं ।१९-२०।

अष्ठादशसहस्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिताः।
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि भत्यास्ते वणिजो भुवि ।२१

द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते त्वयोनिजाः।
पुराणज्ञाः तदाचारा धार्मिका शुद्धबुद्धयः।
स्वर्गे देवाँ प्रशंसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ।२२

धर्मारण्येति त्रिदशै कदा नामप्रतिष्ठितम्।
पावनंभूतलेजातं कस्माद्येन विनिर्मितम् ।२३

तीर्थभूतहिकस्माच्चाकारणांत्तद्वदस्वमे।
ब्राह्मणाःकतिसङ्ख्याका केनवैस्थापिताःपुरा ।२४

अष्टादशसहस्राणि किमर्थंस्थाहितानिवै।

कस्मिन्वशेसमुत्पन्नः ब्राह्मणाब्रह्मसत्तमाः ।२५
सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
ऋग्वेदषु च निष्णता यजुर्वेदकृतश्रमाः ।२६
सामवेदाङ्गपारज्ञास्त्रैविद्या धर्मवित्तमाः ।
तपोनिष्ठाः शुभाचाराः सत्यव्रतपरायणाः ।२७
मासोपवासैः कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ।
सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविनः ।
तत्सर्वंमादितः कृत्स्नं ब्रूहि ने वदताम्बर ।२८
दानयास्तत्र दैतेया भूयवेयालसंभवाः ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथं न तान् ।२९

पुन्य कार्यों में अठारह संहस्र निर्मित किये हैं। छत्तीस हजार भू-मण्डल में भृत्य वाणिग्यों को बनाया है। वे द्विजों की भक्ति से युक्त ब्राह्मण्य और अयोनिज है। पुराणों के ज्ञाता—सत् आचार वाले—परम धार्मिक और शुद्धि बुद्धि वाले हैं। स्वर्ग में देवगण भी इन धर्मारण्य के निवासियों की प्रशंसा किया करते हैं ।२१-२२। युधिष्ठिर ने कहा—देवगणों ने 'धर्मारण्य'—यह नाम किस समय में प्रतिष्ठित किया है जो परम पावन भूतल में हुआ था—यह उसने किस कारण से निर्मित किया है ? हे भगवन् ! यह तीर्थ का-स्वरूप धारण करने वाला किस हेतुसे होगया है—यह आप मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये ! ब्राह्मण कितनी संख्या वाले हैं और पहले किसके द्वारा ये स्थापित किये गये हैं ? ।२३-२४। अष्टादश सहस्र किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए स्थापित किये गए ? किस वंश में ये ब्रह्मश्रेष्ठ समुत्पन्न हुए थे ? ।२५। समस्त विद्याओं में परम कुशल—वेदों और वेदांगों के अत्यन्त ज्ञाता जो कि पूर्णतया पारगामी हैं—ऋग्वेदों के निष्णात—यजुर्वेद में पूर्ण श्रम करने वाले सामवेद के पारगामी इस तरह से त्रैविद्या वाल-धर्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ-तपश्चर्या में परमनिष्ठ शुभ आचार वाले—सत्य में व्रत में परायण—मास पर्यन्त उपवास करके कृश शरीर वाले जो व्रत चान्द्रायण

आदि मास व्यापी करते हैं। सद आचार से सुसम्पन्न ब्रह्मन्य से किससे नित्य उपजीवी हुआ करते हैं—यह सभी आप आरम्भ से ही हे बोलने वालों में परम वसिष्ठ ! मुझे बतलाइये ! वहाँ पर दानव-दैतेय—भूत—बेताल सम्भव—राक्षस और पिशाच ये सभी उनको उद्विग्न क्यों नहीं किया करते हैं ? ।२६-२९।

४०—सदाचार वर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ।
यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठता ।१

धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवंशजाः ।
अष्टादशसहस्रकाजेशैश्च विनिर्मिताः ।२

सदाचाराः पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ।
तेषां दर्शनमात्रेण महापापैर्विमुच्यते ।३

पाराशर्य ! समाख्यांहिसदाचारं च वप्रभो !
आचाराच्छ्रियमाप्नोति सदाचारं वदस्वमे ।४

स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पाश्वो वराः ।
क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ।५

सहस्रभागात्प्रथमे द्विनीयानुक्रमास्तथा ।
सर्वं एतेमहाभागाः पापान्मुक्तिसमाश्रयाः ।६

चतुर्णामपि भूतानां प्राणिनोऽतोव चोत्तमाः ।
प्राणिभ्योऽपि मुनि (नृप) श्रेष्ठाः सर्वेबुद्ध्युपजीवनः ।७

में संस्थित पुरुष को यहाँ पर जो कुछ करना चाहिए। इस धर्मारण्य में जो शुद्ध वंश में समुत्पन्न ब्राह्मण हुए हैं वे अठारह सहस्र हैं और काजेशों के द्वारा निर्मित हुए। ये सत् आचार वाले ब्रह्म के पूर्ण एवं श्रेष्ठ ज्ञाता पवित्र ब्राह्मण है। उनके केवल दर्शन से ही मनुष्य महापापों से छुटकारा पा जाया करते हैं। युधिष्ठिर ने कहा—हे पारा-शर्य देव ! हे प्रभो ! अब आप सदाचार का वर्णन कीजिये क्योंकि आचार एक महान् वस्तु हैं। इस आचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्ति किया करता है और आचार में फल पाता है। आचार से श्री का लाभ होता है इसलिये आप उस आचार को मुझे बतलाइए।१-४। श्री व्यास जी ने कहा—स्थावर—कृमि—अब्ज—पक्षी—पशु और मानव—ये क्रम से धार्मिक होते हैं और इनसे विशेष धार्मिक सुर हुआ करते हैं।५। प्रथम सहस्र भाग से द्वितीयानुक्रम वाले हैं। ये सब महाभाग हैं जो पापसे मुक्ति के समाश्रय वाले होते हैं। चारों प्रकार के भूतों में प्राणी होते हैं वे अतीव उत्तम हुआ करते हैं। इन प्राणियों से भी श्रेष्ठ मुनिगण होते हैं ये सभी बुद्धि के उपजीवी हुआ करते हैं।६-७।

मतिमद्मयो नराःश्रेष्ठास्तत्र श्रेष्ठास्तु वाडवाः।
विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्य कृतबुद्धयः।८

कृयधीभ्योऽपि मर्तारः कर्तृभ्यो ब्रह्मतत्पराः।
न तेभ्योऽभ्यधिकः कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत !।६
अन्योन्य पूजकास्ते वै तपोविद्याविशेषतः !
ब्राह्मणो ब्रह्मणा सृष्टः सर्वभूतेश्वरोयतः।१०
अतो जगत्स्थितंसर्वंब्राह्मणोऽर्हतिनापरः।
सदाचारोहिसर्वानाचारोद्विच्युतः पुनः।११
तस्माद्विप्रेण सततं भाव्यमाचारशीलिना।
विद्वेषरागरहितां अनुतिष्ठन्ति ये मुने !।१२
सिद्धबस्तं सदाचार धर्ममूलं विदुर्बुधाः।

लक्षणैः परिहीनोऽपि सम्यगाचारतत्परः ।१३
श्रद्धालुरनरूयुश्च नरो जीवेत्समाः शतम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यमुदितस्वेषु स्वेषु चकर्मसु ।१४

मतिमानों से परम श्रेष्ठ नर होते हैं। उनसे भी श्रेष्ठ बाड़व हुआ करते हैं। विप्रों से अधिक श्रेष्ठ कृतबुद्धि हुआ करते हैं और विद्वानों से भी अधिक श्रेष्ठ कृतबुद्धि हुआ करते हैं ।८। उन बुद्धि वालों से भी श्रेष्ठ कर्त्ता और कर्त्ताओं से अधिक ब्रह्म तत्पर श्रेष्ठ होते हैं। हे भरत! इनसे अधिक श्रेष्ठ कोई भी इन तीर्थों लोकों में नहीं हुआ करता है।६। तप और विद्या की विशेषता से ये एक दूसरों के पूजक हुआ करते हैं। ब्रह्मा के द्वारा ही ब्राह्मण सृष्ट हुआ है क्योंकि यह तो सब भूतों का ईश्वर होता है। अतएव यह सब स्थित जगत् है और ब्राह्मण ही इसकी अर्हता रखती है अन्य दूसरा कोई भी नहीं है। सदाचार ही सब अर्हताओं से पूर्ण होता है जो आचार से विच्युत होता है वह कुछ भी नहीं है। इसलिए विप्रको सर्वदा आचार शील (स्वभाव) वाला होना चाहिए। हे मुने ! विद्वेष और राग से रहित होते हुए जिसको अनुष्ठित किया करते हैं बुधगण उसको ही धर्मका मूल सदाचार होता है सिद्धियाँ कहते हैं। लक्षणों से परिहीन भी पुरुष भली-भाँति आचार में तत्पर रहने वाला होता है और श्रद्धा वाला तथा किसी भी असूया न करने वाला हो वह सौ वर्षों तक जीवित रहा करता है। अपने-२ कार्यों में श्रुति और स्मृति इन दोनों के द्वारा जो कहलाया है उसी आचार का सेवन करना चाहिए ।१०-१४।

सदाचारं निषेवेत धर्मसूलमतन्द्रितः ।
दुराचारतो लोके गर्हणीयः पुमान्भवेत् ।१५
व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदाल्पायुः सुदुःखभाक् ।
त्याज्यं कर्म पराधीनं काय मात्मवशं सदा ।१६

दुःखी यतः पराधीना सदैवांत्मवशः सुखी ।
यस्मिन्कर्मण्तरात्माक्रियामणेप्रसीदति ।१७
तदेप कर्म कर्तव्यं विपरीतं न च क्वचित् ।
प्रथमंत्रर्मतर्वस्यं प्रोक्तं यन्नियमाः ।१८
अतस्तेष्वेव वै यत्वः कर्तव्योधर्ममिच्छता ।
सत्यसमाज र्वेध्यातमानमानशंस्यमहिसंनम् ।१६
दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश ।
शौन स्नानंतपोदानं मोनेज्याध्ययनं व्रतम् ।२०
उपोषणोपस्थदण्डा दशैतेनियमाः स्मृताः ।
कामं क्रोधं दमं मोहंमात्सर्यलोभमेवच ।२१
अमून्गड्वैरिणोजित्वासर्वत्रविजयी भवेत् ।
शनैः संचिनुयाद्धर्मंवल्मीकश्रृङ्गवान्यथा ।२२

तन्द्रा से रहित होकर धर्म के परम भूल सदाचार का सेवन अवश्य ही करे। जो दुराचार में रति रखने वाला पुरुष होता है। वह लोकमें महान् निन्दा का पात्र हो जाया करता है ।१५। दुराचारी पुरुष होता है वह व्याधियोंसे अभिभूत हो जाया करता है अर्थात् उसे बहुत-से रोग घेर लिया करते हैं—वह सदा ही अल्प आयु वाला होता है और हमेशा दुःखों के भोगने वाला रहा करता है। जो पराये अधीन कार्य हो उसको परित्यक्त कर देवे और सदा जो आत्मवश हो उसे ही करना चाहिए ।१६। क्योंकि जो पराधीन होता है वह दुःखी रहा करता है और जो आत्मवश होता है वह सुखी हुआ करता है। द्विज कर्म के करने पर या किये जानेपर अन्तरात्मा प्रसन्नत होता है उसी कर्म को सदा करना चाहिए। इससे विपरीत कर्म को कभी भी न करे। सबसे प्रथम तो धर्म का सर्वस्थ नियमों और यमों को बतलाया गया है। इसलिए जो भी कोई धर्म की इच्जा रखता है उसकी उन्हीं से पूर्ण यत्न करना चाहिए अर्थात् यम और नियमों का पूर्ण पालन करे। यम दश संख्या वाले होते

हैं—सत्य—क्षमा—आर्जव (सीधापन)—ध्यान—आनृशस्य (क्रूरता का आभाव)—अहिंसा—दम—प्रसाद—माधुर्य—मृदुता ये दश यम होते हैं। शौच-स्नान-तप-दान-मौन-ईज्या-अध्ययन-व्रत-उपोषण दन्ड—ये दश नियम कहे गये हैं। काम—क्रोध-दम-मोह-मात्सर्य और लोभ इन छः शत्रुओं को जीतकर मनुष्य सर्वत्र विजयी हो जाया करता है। धर्म का शनैः-शनैः संचयन करना चाहिए जिस तरह से शृङ्गवान् बाल्मीकि को किया करता है।१७-२२।

परपीडामकुर्वाणः परयोकसहायिनम्।
धर्म एव सहाया स्यादमुत्र परिरक्षितः।२३
पितृमात्रसुतभ्रातृयोषिद्वन्धुजनाधिकः।
जायते चैकलः प्राणी म्रियते च तथैकलः।२४
एकलः सुकृतंभुङ्क्ते भुङ्क्ते दुत्कृतमेकलः।
देहे पञ्चत्वमान्नेत्यवत्वैकंकाष्ठलोष्ठवत्।२५
वान्धवाविमुखायान्तिधर्मोयान्तमनुब्रजेत्।
अतः सञ्चिनुयाद्धर्म्ममत्राऽमुत्रसहायिनम्।२६
धर्मसहायितंलब्ध्वा सन्तरेद्दुस्तरं तमः।
सम्बन्धानाचरन्नित्यमुत्तमैरुत्तमै रुत्तमेऽबुधीः।२७
अधमानधमास्त्यक्त्वा कुलमुत्कर्षतां नयेत्।
उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धार्माश्चवर्जयेत्।
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्।२८

परलोक में सहायता करने वाला एक मात्र धर्म ही हुआ करता है। दूसरों की पीड़ा को न करता हुआ रहे और न इस लोक में जिसकी भलीभाँति सुरक्षा न की गई है वह धर्म ही परलोक में सहायक होता है क्योंकि सुरक्षित धर्म ही रक्षक होता है। पिता-माता-पुत्र-भ्राता-स्त्री और बन्धुजन से अधिक केवल यह प्राणी एक ही समुत्पन्न

होता है और अकेला ही मरता है। उपर्युक्त लोगों में कोई भी साथी नहीं रहा करता है। किये हुए सुकृत को भी अकेला ही भोगता है तथा दुष्कृत का फल भी अकेले ही भोगना पड़ता है उन दोनों का पर इस अकेले को कष्ट तथा ढेले के समान त्याग कर सभी प्रियतम वान्धव गण भी विमुख होकर चले जाया करते हैं। उस परलोक यात्रा में गमन करने वाले प्राणी के साथ एक धर्म ही जाया करता है। इस लिए धर्म का संचय करना चाहिए जो इस लोक परलोक में सहायता करने वाला हुआ करता है। सहायक धर्म को प्राप्त करके प्राणी इस परम दुस्तर तम को तर जाया करता है। सुदी पुरुष का कर्तव्य है कि उत्तम उत्तमों से सम्बन्धी का समाचरण करे। जो अधमाअधम हों उन का परित्याग करके कुल को उत्कर्षता को प्राप्त करे। धीमान पुरुष को चाहिए कि उत्तम जो पुरुष हों उनकी सङ्गतिकरे और सबको वर्जित कर देना चाहिए। ब्राह्मण तभीं परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ करता है तथा प्रत्यवाय से वही शूद्रता को भी प्राप्त हो जाया करता है।२३-२८।

अनध्ययनशीलं च सदाचारविलङ्घिनम्।
सालसं च दुरन्नादं ब्राह्मणं बाधतेन्तकः।२६
अतोऽध्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचारं सदा द्विजः।
तीर्थान्यप्यभिलस्यन्ति सदाचारसमागमम्।३०
रजनीप्रान्तयामार्द्धं ब्राह्मः समयउच्यते।
स्वहितंचिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिश्चोत्थायसर्वदा।३१
गजास्यं संस्मरेदादौ तत ईशं सहःम्वया।
श्रीरङ्गं श्रीसमेतं तु बह्माणं कमलोद्भवम्।३२
इन्द्रादीन्सकलान्देवान्यसिष्ठादीन्मुनीनपि।
गङ्गाद्या- सरितः सर्वः श्रीशैलाद्यखिलान्निगिरीन्।३३

क्षीरोदादीन्समुद्रांश्च मानसादिसरांसि च ।
वनानि नन्दनादीनिधेनूः कामदुधादयः ।
कल्पवृक्षांश्चवृक्षान् धातून्काञ्चनमुख्यतः ।
दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याः प्रह्लादाकान्हरेः प्रियान् ।३५

जो ब्राह्मण अध्ययनशील नहीं होता है —जो सदाचार का उलंघन करने वाला होता है—जो आलसी होता है और दुष्ट अन्न का खाने वाला होता है ऐसे ब्राह्मण को यमराज बाधा दिया करता है । इसलिए प्रयत्न पूर्वक द्विज को सदा ही सदाचार का अभ्यास करना चाहिए । जो सदाचारी होता है उसके समागम प्राप्त करने के लिये तीर्थ की अभिलापा किया करते हैं । रात्रि का प्रान्तयामार्द्ध ब्राह्म समय कहा जाया करता है । उसी समय में शय्या से उठकर प्राज्ञ पुरुष को अपने हित के विषय में सर्वदा चिन्तन करना चाहिए । सबसे प्रथम उठकर गजानन (श्रीगणेश) का ध्यान करे फिर इसके उपरान्त भगवती अम्बा के सहित विराजमान श्री शम्भू का चिन्तन करना चाहिए । श्री के सहित श्रीरङ्ग प्रभु और कमलोद्भव ब्रह्माजी का प्रदान करे ।२६। ३०-३२। इसके अनन्तर इन्द्र प्रभृति समस्त देवगण तथा वसिष्ठ प्रभृति मुनिगण-भागीरथी गङ्गा आदि सरितायें—श्री शैल आदि समस्त शैल-क्षीरोदधि प्रभृति समुद्र-मानस आ।द सरोवर नन्दन आदि वन-कामदुधा आदि धेनु-कल्प वृक्ष-कांचन आदि मुख्य धातु उर्वशी प्रमुख दिव्य स्त्री और प्रह्लाद आदि श्रीहरि के परम प्रिय भक्तों का क्रमश ध्यान करना चाहिए ।३३-३५।

सननीचरणौस्मृत्वासर्वतीर्णोत्तमोत्तमौ ।
पितरंचगुरूंचापहृदिध्यात्वा प्रसन्नधीः ।३६
ततश्चावश्यकं कर्त्तुंनैर्ऋतीं दिशमाव्रजेत् ।
ग्रामद्धनुःशतं गच्छेन्नगराच्चचतुर्गुणम् ।३७
तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वाससा ।

कर्णोपवीत उदग्वक्त्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ।३८
विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशायां दक्षिणामुखः ।
न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगागह्निनल सम्मुखः ।३९
न फालकृष्टे भू भागे न रथ्यासेव्यभूतले ।
नाऽऽलोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभोमलम् ।४०
वामेन पाणिना शिश्नं धृत्वोत्तिष्ठेप्रयत्नवान् ।
अथो मृदं समादद्याज्जन्तुकक्करवर्जिताम् ।४१

समस्त तीर्थों से भी परमोत्तम अपनी माता के चरणों का स्मरण करके फिर पिता तथा श्रीगुरुदेव का हृदय में ध्यान करके प्रसन्न बुद्धि वाला होवे । इसके अनन्तर आवश्यक शारीरिक कृत्य करने के लिए नैऋत्य दिशा में गमन करना चाहिए । ग्राम से सौ धनुष दूर जाना चाहिए और यदि नगर हो तो इससे चौगुने फासले तक गमन करे । भूमि को तृणों से समाच्छादित करके तथा वस्त्र से अपने शिर को ढांप करके कानों पर उपवीत को चढ़ाकर उत्तर की ओर मुख करके दिन में तथा दोनों सन्ध्याकालों में पुरीष और मूत्र का विसर्जन करना चाहिए । मल त्याग के समय में मौन रखना चाहिए । यदि निशाकाल में मल-मूत्र का विसर्जन करना हो तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे । कभी खड़े होकर मल-मूत्र का त्याग न करें । प्रिय-गौ-अग्नि—वायु—इनके सामने मल-मूत्र का त्याग कभी नहीं करना चाहिये ।३८। ३९। जो भूमि का भाग का भाग हल से जुता हुआ हो उसमें—रथ्या (गली का मार्ग) में तथा सेव्य भूतल में कहीं भी मल-मूत्र को त्याग नहीं करना चाहिए । मल विसर्जन करने के समय में दिशाओं की ओर नहीं देखना चाहिये । ज्योति क्र और नथोमल को भी नहीं देखे । वाम पाणि (हाथ) से शिश्न (मूतेन्द्रिय) को पकड़ कर प्रयत्न वाला होता हुआ उठना चाहिए । इसके पश्चात् जीव-जन्तु और कंकरसे रहित मिट्टी ग्रहण करे ।४०-४१।

विहायमूषकोत्खातांचोच्छिष्टांकेशसंकुलाम् ।
गुह्यो दद्यान्मृदंचैकांप्रक्षाल्लचाबुनातत: ।४२
पुनर्वामकरेणेति पंचधा क्षालयेद्गुदम् ।
एकैकपादयोदद्यात्त्रिः पाण्यामृंदस्तथा ।४३
इत्थं शौचं गृहो कार्वाद्गन्धकुपक्षयावधि ।
क्रमाद्वैगण्ततः कुर्यद्ब्रह्मचर्यादिषु त्रिषु ।४४
दिवाविहितशौच्चाच्च रात्रावर्द्धं समाचरेत् ।
परग्रामे तदर्धं च पथि तस्याधैमेव च ।४५
तदर्धंरोगिणां चापिसुस्थेन्यूनं नकारयेत् ।
अपि सर्वंनदीतोयैमृंत्कूटेण्चष्यगापमैः ।४६
आपातमाचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ।
आर्द्रैधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ।४७
सर्वाश्चाहुतयोऽप्येवं ग्रासाश्चान्द्रायणेपिच ।
प्रागास्य उदगास्यो वा सुपविष्ट मुचौ भुवि ।४८
उपस्पृशेहीनाभिस्तुषांगारास्थिभस्मभिः ।
अतिस्वच्छाभिरद्भिश्च तावद्धृद्गाभिरत्वरः ।४९

जो मृत्तिका मूषकों से उखाड़ीं या खोदी हुई हो या जो उच्छिष्ट हो एवं केशों से संकुल हो उसका परित्याग कर देवे। एक बार जल से प्रक्षालन करके गुह्य भाग से मिट्टी लगावे और जल से प्रक्षालन करे। फिर वाम हस्त से गुदा को पाँच बार प्रक्षालन करना चाहिए। एक-एक बार पैरों में मिट्टी लगावे और तीन बार दोनों हाथों में मृत्तिका लगानी चाहिए। इस तरह से गृहस्थी को अपनी शुद्धि करनी चाहिए। जब तक गन्धलेप का क्षय न हो तब तक मटियाना आवश्यक है। ब्रह्मचारी आदि अन्य तीन आश्रमों वालों को क्रम से वैगुन्य भाव से अपनी शुद्धि करनी चाहिए। अर्थात् क्रम से एक-एक गुना बढ़ा करके करे।४२-४४। पिन में जो शौच किया जाता है उससे रात्रि

के समय में आधा ही करना चाहिए ।४५। जो रोग ग्रस्त हों उनको भी इससे आधा ही शौच करना पर्याप्त होता है किन्तु जब स्वस्थता हो तो आलस्य या प्रमाद से न्यून नहीं करे । समस्त नदियों से जल और आप्यगोपम कुक्कूटोंसे भी आपात शोच करे । जो भाव दुष्ट होता है वह कभी भी शुद्धि वाला नहीं होता है । शौच कर्म में आर्द्र आत्री के फल (कच्चे आँवला) के समान मिट्टी बतलायी गई हैं ।४६-४७। इसी प्रकार से सभी आहुतियाँ तथा चान्द्रायण व्रत में ग्रास भी होने चाहिए । पूर्व की ओर मुखे वाला होकर या उत्तर दिशा की ओर मुख वाला होकर किसी शुचि भू-भाग से बैठकर विहीन तुषाङ्गरस्थि भस्म से उपस्पर्श न करना चाहिए । अत्यन्त जल से जब तक पूर्ण शुद्धि हो तब तक शांति पूर्वक करना चाहिये ।४८-४९-

ब्राह्मणोब्रह्मतीर्थेणदृष्टिपूताभिराचमेत् ।
कंठगाभिर्नृपः शुध्येत्ताधुगाभिस्तथोरुजः ।५०
स्त्रीशूद्रावथ संस्पर्शपात्रेणापि विशुध्यतः ।
शिरः शब्दः सकण्ठं वा जले मुक्ताशिखाऽपि वा ।५१
अक्षालितपदद्वन्द्वआचान्तोऽप्शुचिर्मतः ।
त्रिः पीत्वाऽम्बु विशुद्धयर्थं ततः खानि विशोधयेत् ।५२
एङ्गुष्ठमूलदेशे ह्यधरोष्ठौ परिमृजेत् ।
स्पृष्टवाजलेन हृदयं समस्ताभिः शिरःस्पृशेत् ।५३
अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ सांबु सर्वत्र संस्पृशेत् ।
आचान्तः पुनराचामेत्कृत्वा रथ्योपसर्पणम् ।५४
स्नात्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ।
सुप्त्वा वासः परीधाय दृष्ट्वा तथाप्यमङ्गलम् ।५५
प्रमादादशुचिः स्मृत्वाद्भिराचान्तःशुचिर्भवेत् ।
दन्तधावनं प्रकुर्वीतयथोक्तंधर्मशास्त्रतः
आचान्तोऽप्यशर्मियंस्मकृत्वा दन्तधावनम् ।५६

ब्राह्मण को ब्रह्मतीर्थ दृष्टि पूत जल के आचमन करना चाहिए। नृप कण्ठगामी जल से शुद्ध होता है। वैश्व तालु पर्यन्त जल से और शूद्र तथा स्त्री जल के संस्पर्श मात्र से ही शुद्ध हो जाया करते हैं। शिर शब्द सकन्ठ अथवा जल में मुक्त शिखा वाला भी बिना दोनों पैर धोये हुए आचमन होने पर भी अशुचि माना गया है। विशुद्धि के लिए तीन वार जल का पान करके इसके पश्चात् इन्द्रियों का विशोधन करे ।५०-५२। अँगूठे के मूल से अधरोष्ठों का परिमार्जन करे। जल से हृदय का स्पर्श करके फिर शेष समस्त से शिर का स्पर्श करना चाहिए। अँगुलियों के अग्रभागों से तथा दोनों स्कन्धों को सर्वत्र जल से सहित संस्पर्श करे। यदि रथ्या का उपसर्पण किया हो तो भी आचमन करना चाहिए ।५३-५४। स्नान करके-पयःपान करके—शुभ कर्मों के आरम्भ काल में सोकर उठने पर—वस्त्रों का परिधान करके। किसी अमंगल को देखकर—प्रसाद से अशुचि होने पर या किसी अशुचि का स्मरण करके दो वार आचमन करके ही शुचि होती है। धर्म शास्त्र में जिस विधि-विधान से बतलाया गया है उसी भाँति दन्तधावन (दतून) करनी चाहिए। क्योंकि आचान्त होने वाला पुरुष भी जब तक दन्तधावन नहीं किया करता है अशुचि ही रहा करता हैं। दाँतून करना भी शुचिता का एक प्रधान अङ्ग माना गया है ।५५-५६।

प्रतिपद्दर्शषष्टीषु नवम्यां रविवासरे।
दन्तानां काष्ठसंयोगी दहेदासप्तमं कुलम् ।५७
अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धे वाथ वासरे।
गण्डूषा द्वादश ग्राह्यां मुखस्य तरिशुद्धये ।५८
कनिष्ठग्रवरीमाणसत्वचं निर्वणारुजम्।
द्वादशाङ्गुलमानं च सार्द्धं स्याद्दूर्दंतधावनम् ।५९
एकेकांगुलमानंतच्चर्दयेद्दन्तधावनम्।
प्रातः स्नानं चरित्वांचशुद्धयैतीथी विशेषतः ।६०

प्रातः स्नानाद्यतः शुद्धयेत्कायोऽयं मलिनः सदा ।
तन्मल नवभिश्चद्रैः स्रवत्येव दिवानिशम् ।६१
उत्साहमेधसौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम् ।
प्राजापत्यसमंप्राहुस्तन्महागविनाशकृत ।६२
प्रातः स्नानहरेत्पापमलक्ष्मींग्लानिमेव च ।
नशुचित्वंचदुःस्वप्नतुष्टिपुष्टिप्रयच्छति ।६३

प्रतिपदा—दर्श—षष्ठी—नवमी तिथियों में और रविवार में यांतों से काष्ठ का संयोग करना सातकुलों को दहन कर दिया करता है। दँत काष्ठों के लाभ न होने पर अथवा इन उपर्युक्त निषेध किये हुए दिनों में बारह कुल्ले की मुख की शुद्धि के लिए ग्रहण करना चाहिए। अपनी कनिष्टिका अंगुलीके बराबर प्रमाण वाली—छिलके के सहित—विना व्रण वाली और रुजरहित बारह अँगुल मान से युक्त—आर्द्ध (गीली) दन्तधावन (दँतून) ग्रहण करनी चाहिए। एरु-एक अँगुल प्रमाण तक उसका चर्वण करे। प्रातःकाल में शुद्धि के लिए विशेष रूप से तीर्थ में स्नान करे। क्योंकि गह मलिन शरीर सदा प्रातःकाल के स्नान से ही शुद्ध हुआ करता है। रात दिन जो मल शरीर में रहने वाले इन नौ छिद्रों से स्रवित होता रहा करता है। इस प्रातःकाल के स्नानको उत्साह—मेधा—सौभाग्य—रूपलावण्य और सम्पत्ति का प्रवर्धक प्राजापत्य के समान ही महान् अघों का विनाश करने वाला कहा गया है। प्रातःकाल किया हुआ स्नान पाप-अलक्ष्मी और ग्लानि का हरण करने वाला होता है तथा अशुचिता और दुःस्वप्नका भी विनायक होता है एवं महातुति और पुष्टि को प्रदान किया करता है।५७-६३।

नोपसर्पन्ति वै दुष्टाः प्रातः स्नायिजनं क्वचित् ।
दृष्टादृष्टफलं यस्मात्प्रातःस्नान समाचरेत् ।६४
प्रसङ्गतः स्नानविधिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम !
विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ।६५

विशुद्धां मृदमादाय बर्हिपस्तिलगोमयम् ।
शुचौ देशे परित्थाप्य ह्याचम्य स्नानमाचरेत् ।६६
उपग्रहीबद्धशिखोजलमध्येसमाविशेत् ।
स्वशाखोक्तविधानेस्नानं कुर्याद्यथाविधि ।६७
स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्धौयवाससी ।
ताचम्य च ततः कुर्यात्प्रातः सन्ध्यां कुशान्वितः ।६८
प्राणांयामश्चिरन्विप्रो नियम्यमावसहृढम् ।
अहौरात्रकृतैपापैर्मुक्तौ भवतितक्षणात् ।६९
दश द्वादशसंख्या वा प्राणायामाः कृता यदिः ।
नियम्य मानसं तेन तदा तप्तमहंत्तपः ।७०

प्रातःकाल स्नान करने वाले मनुष्य को कभी दृष्ट जन उपसर्पण नहीं किया करते हैं क्योंकि इस प्रातःकाल में समय में स्नान का दृष्टा-दुष्ट फल हुआ करता है अतएव सर्वदा प्रातःकाल में ही स्नान का समाचरण करना चाहिए ।६४। हे नृपोत्तम ! अब स्नान का प्रसङ्ग प्राप्त हो गया है इसलिए मैं अब इस स्नान की विधि आपको बतलाता हूँ क्योंकि स्नानसे शत---गुण उत्तर विधि स्नानको कहते हैं ।६५। परम विशुद्ध मृत्तिका---र्वहि---तिल और गोमय लेकर किसी शुचि स्थल में प्रतिष्ठापित करके आचमन करे और फिर स्नान करना चाहिए ।६६। उपग्रही---शिखा को बद्ध करने वाला जल के मध्य में प्रवेश करे। अपनी वेद की शाखा के अनुसार ही विधि के अनुसार शास्त्रोक्त विधान से स्नान करे। इस तरह स्नान करके वस्त्र को समापीड़ित करके धुले हुए अर्थात् शुद्ध वस्त्रों को ग्रहण करना चाहिए। फिर आचमन करके कुशाओं को लेकर प्रातःकाल को सन्ध्योपासना करे।६७-६८। अपने मन को दृढ़ता के साथ नियमित करके विप्र को प्राणायाम करने चाहिए । दिन रात में किये हुए पापों से प्राणायामों के करने पर मनुष्य उसी क्षण मुक्त हो जाया करता है ।६९। जब

अथवा बारह संख्या वाले यदि प्राणायाम किये गये हैं और मन को भली भाँति में नियमन में कर लिया है तो उस समय में महान् तपस्या करती है ।७०।

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामस्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ।७१
यथा पार्थिवधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ।
तथेन्द्रियैः कृता दोषा ज्वाल्यन्ते प्राणसयमात् ।७२
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परः तपः ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपोत्तमः ।७३
कर्मणा मनसावाचायद्रात्रौकुरुते त्वघम् ।
उत्तिष्ठन्पूवसंध्यायांप्राणांयामैर्मिशोधयेत् ।७४
यदह्ना कुरुतेपापंमनोवाक्कायकर्मभिः ।
आसीनाः पश्चिमासध्यांप्राणायानैर्व्यपोहति ।
पश्चिमा तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ।७५
नोपतिष्ठेत्तु यः पूर्व्वा नोपास्ते पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ।७६
अपां समींपमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत् ।
तत आचमनं कुर्याद्यथाविध्यनुपूर्वशः ।७७
आपोहिष्ठेतितिसृभिर्मार्जन तु ततश्चरेत् ।
भूमौ शिरसिचाकाश काकाशेभुवि मस्तके ।७८

व्याहृतियों के महित तथा प्रणव से युक्त षोडश (सोलह) प्राणायाम भ्रूण का हनन करने वाले पुरुष की भी प्रतिदिन करने पर एक मास में पवित्र कर दिया करते हैं ।७१। किस प्रकार से पार्थिव धातुओं के मास धमन करने से दग्ध हो जाया करते हैं उसी भाँति इन इन्द्रियों के द्वारा किये गये दोष प्राणों के संयम से जला दिये जाया करते हैं ।७२। एकाक्षर प्रणव परम ब्रह्म होता है और प्राणायाम परम तप

हुआ करता है। हे नृपोत्तम! इस गायत्री मन्त्र से अधिक परम पावन अन्य कोई भी मन्त्र नहीं होता है।७३। कर्म्म तथा वचनों के द्वारा जो भी कुछ रात्रि में अब (पाप) किया करता है जो उन सबको उठकर पूर्व सन्ध्या की उपासना के समय में किये गये प्राणायामों के द्वारा विशोधित कर डालना चाहिये।७४। जो दिन ये मन वाणी और शरीर के कर्मों के द्वारा पाप मानव किया करता है उस सबको पश्चिम अर्थात् सायंकाल में की गयी सन्ध्योपासना में समासीन होकर किये गये प्राणायामों के द्वारा व्यपोहित कर दिया करता है।७५। पश्चिम, संध्या में समासीन पुरुष दिन में किये हुए मन का हनन कर दिया करता है, जो मनुष्य एवं की उपासना नहीं करता है और जो पश्चिम संध्या की उपासना नहीं किया करता है यह विप्र एक शूद्र की भाँनि बहिष्कृत कर देना चाहिये क्योंकि उसमें एक द्विज का कोई कर्म विद्यमान ही नहीं हुआ करता है अतएव एक द्विज कर्मों में उसको कभी नहीं लेना चाहिये।७६। जल के समीपता को प्राप्त करके नित्य कर्म का समाचरण करना चाहिए। इसके पश्चात् यथाविधि आनुपूर्वंश: आचमन करना चाहिए। इसके अनन्तर पश्चात् यथा विधि आनुपूर्वंश: आचमन करना चाहिए। इसके अनन्तर 'आपोहिष्ठा मयोभुव:" इन तीनों मन्त्रों के द्वारा शरीर का मार्जन करना चाहिए। ! भूमि में-शिर में और आकाश में तथा आकाश में-भूमि में और मस्तक में मार्जन करे।७७-७८।

मस्तकेच तथाकाशेभूमौ च नवधाक्षिपेत्।
भूमिशब्देन चरणावाकाशं हृदयस्मृतम्।
शिरस्येव गिर: शब्दो मार्धनं तैरुदाहृतम्।७९
वारुणादपि चाग्नेयाद्वायव्यदपि चेन्द्रत:।
मन्त्रस्नानननादपिपरं ब्राह्मं स्नानमिदं परम्।८०
ब्राह्मस्नानेन य: स्नात: स बाह्याभ्याशर: शुचि:।
सर्वत्र चार्रंतामेति देवपूजादिकर्मणि।
नक्तं दिनंनिमज्ज्याप्सु कैवर्ता किमुपावना:।८१

शतशोऽपितथास्नातानशुद्धाभावदूषिताः ।
अन्तःकरणशुद्धांश्चतान्विभूतिः पविञयेत् ।८२
किम्पावनाः प्रकीर्यन्ते रासभा भस्मधूसराः ।
सस्नातः सर्वतीर्थेषुमलैः सर्वेविवर्जितः ।८३
येनं क्रतुशतैरिष्ट चेतो यस्येह निर्मलम् ।
तदेव निर्मलं चेतो यथप्स्यात्तन्युने ! शृणु ।८४

इसी रीति से मस्तक–आकाश और भूमि में नौ बार जल को क्षिप्त करना चाहिए। भूमि शब्द से यहाँ पर चरणों का ग्रहण है और आकाश से हृदय को कहा गया है। इस तरह से उनके द्वारा मार्जन कहा गया है ।७९। वरुण—आग्नेय–वायव्य–इन्द्र–इन दिशाओं से भी और मन्त्र स्नान भी परम ब्राह्म स्नान कहा गया है। ब्राह्म स्नान जो स्नान किया हुआ पुरुष है वह ब्राह्म और आभ्यन्तर दोनों के शुचि हो जाया करता है ।८०। देव–पूजा आदि कर्मों में वह ब्रह्म स्नान पुरुष अर्हता को प्राप्त हो जाता है। रात दिन जल में निमज्जन करने वाले कैवर्त्त जाति वाले लोग क्या पावन हो जाया करते हैं ? अर्थात् जल में ही स्नान मात्र से कभी पावनता नहीं हुआ करती है। सैंकड़ों बार भी स्नान करते हुए पुरुष यदि भाव दूषित होते हैं तो वे शुद्ध नहीं होते हैं। जो अन्तःकरण में शुद्ध नहीं होते हैं उन्हीं की विभूति पवित्र किया करती हैं। अहर्निश भस्म से धूमर रहने वाले रासभ (गधे) क्या पावन कहे जाया करते हैं ? अर्थात् नहीं कहे जाते हैं। वही पुरुष समस्त तीर्थों में स्नान हैं जो सब तरह के मलों से रहित होता है। यहाँ संसार में जिसका चित्त निर्मल हैं उसने मानों सौ क्रतुओं का यजन कर लिया है। हे मुनिवर ! जिस तरह से चित्त निर्मल होता है या जो मन रहित चित्त कहा गया है उसके विषय में आप श्रवण करो ।८१-८४।

विश्वेशश्चेत्मुसन्नः स्यात्तदा स्यांन्नाम्यतां क्वचित् ।

तस्माच्चेतोविशुद्धयर्थं काशींनाथ समाश्रयेत् ।८५
इदं शरींरमृत्सृज्यपरं ब्रह्माधिगच्छति ।
द्रुपदान्तं ततो जात्वा जलमादाय पाणिना ।८६
कुर्याद्दतैचमन्त्रेण विधिज्ञस्त्तवघर्षणम् ।
निमज्यात्सुचयोविद्वान्जपेत्रिरधमर्षणम् ।८७
जले वापिस्थले वापि यः कुर्यादघर्षणम् ।
यस्याघोघो विनस्येत तथासूर्योदये तमः ।८८
गायत्री शिरसा हीनाँ महाव्याहृतिपूर्व्विकाम् ।
प्रणवाद्यां जपंस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोन्जलित्रयम् ।८९
पेन लञ्जोदकेनाशु मन्देहानाम् राक्षसाः ।
सूर्यंतेजः प्रलोयन्ते शैला इव विवस्वतः ।९०
सहायार्थंञ्चसूर्यस्ययोद्विजोनान्जलित्रयम् ।
क्षिपेन्मन्देहनाशायसोऽपिमन्देहतांव्रजेत् ।९१

यह मानव का चित्त तभी निर्मल होता है जब भगवान् विश्व के स्वामी इन पर पूर्ण प्रसन्नता किया करते हैं अन्यथा यह कभी भी निर्मल नहीं होता है। इसीलिये अपने चित्त की विशुद्धि के लिये भगवान् काशीनाथ का समाश्रय ग्रहण करना चाहिये ।८५। इनका परिमाश्रित मनुष्य इस शरीर का त्याग परम ब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है। हांथ में जल ग्रहण करके द्रुपदान्त का जाप करे और विधि के ज्ञाता पुरुष को "ऋतव" इत्यादि मन्त्र से अघमर्षण करना चाहिये। जो विद्वान् पुरुष जल में डुबकी लगाकर तीन बार इस उक्त अघमर्षण मन्त्र का जाप करता है। जल में या स्थल में जो अघमर्षण किया करता है उस पुरुष के अघों का समुदाय विनष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय के होने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है। शिर से हीन महा व्याहृतियों को पूर्व ने लगाकर जिसके आदि में प्रणत हो ऐसी गायत्री का जाप करते हुए स्थित होकर तीन अंजलियाँ जल को प्रक्षिप्त करे ।८६।

।८७-८६। उस वज्रोदक से बहुत ही शीघ्र मन्देहा नाम वाले राक्षस सूर्य के तेज को प्रस्तुत किया करते हैं जिस तरह से पर्वत विवस्वान् को छिपा लेते हैं ।६०। सूर्यदेव की सहायता के लिए जो द्विज तीन अज-लियाँ जल को प्रक्षिप्त नहीं किया करता है जो कि सन्देह राक्षस के नाश के लिए ही क्षिप्त की जाया करती है तो वह द्विज श्री मन्देहाता के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।६१।

प्रातस्तवाज्जपस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्यदर्शनम् ।
उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविलाकनात् ।६२
काललोपोनकर्त्तव्यो द्विजेनस्वहितेप्सुना ।
अर्द्धोदयास्तसमये तस्माद्वज्रोदकंक्षिपेत् ।६३
विधिनाऽपि कृत्ता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ।
अयमेव हि दृष्टान्तो बन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ।६४
जलेवामकरं कृत्वा यासन्ध्याऽऽचरिता द्विजैः ।
वषलीसापरिज्ञेया रक्षोगणमुदावहा ।६५
उपस्थानंततः कुर्याच्छाखात्तविधिनाततः ।
सहस्रकृत्वोगासत्र्याः शतकृत्वाऽथवापुन ।६६
शतकृत्वोऽथदेव्यचकुर्यात्सौरीमुपस्थातम् ।
सहस्रपरमां देवींशतमध्यांदशावराम् ।६७
गायत्रीं यो जपेद्विप्रा न स पापैः प्रलिप्यते ।
रक्तचन्दनमिश्रभिरद्भिश्च कुशैः ।६८
वेद्रौक्तैरागमौक्तेर्वा मन्त्रैरघे प्रदापयेत् ।
अर्चितः सविता येन तेन त्रैलोक्यमर्च्चितम् ।६६

प्रातःकाल की बेला में जब तप जाप करता हुआ स्थित रहना चाहिए जब तक भगवान् भास्कर का दर्शन प्राप्त होवे। सायंकाल में उपविष्ट होकर ही नक्षत्रों के देखने के पूर्व तक जाप करना चाहिये। अपने हित की चाह रखने वाले द्विज को काल का लोप नहीं करना

चाहिए। अर्द्ध उदय और अस्त के समय में इसीलिये उस वज्रोदक का क्षेपण करना चाहिये विधिपूर्वक कभी की गई सन्ध्योपासना यदि कालातीत हो तो वह फल शून्य ही हुआ करता है—इसमें वही दृष्टान्त परम उपयुक्त होता है जैसे किसी बन्ध्या स्त्री के साथ किया हुआ मैथुन निष्फल हुआ करता है।९२-९४। जल में अपना वाया हाथ करके जो सन्ध्या द्विजों के द्वारा समाचरित होती है वह राक्षसों के समुदाय को प्रसन्नता प्रदान करने वाली वृषली सन्ध्या समझी जाती है।९५। इसके अनन्तर शास्त्र में कहीं हुई विधि से उपस्थान करना चाहिए। एक सहस्र अथवा एक सौ या दश बार ही देवी के लिए सौरी उपस्थिति करे। एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप परम श्रेष्ठ होता है। एक सौ बार जाप मध्यम श्रेणी का होता है। केवल दश ही बार जाप करना निम्न कोटि का जाप। इस प्रकार इन तीनों प्रकार के जापों मे किसी भी एक प्रकार का जाप जो विप्र किया करता है वह कभी भी पापों से प्रलिप्त नहीं हुआ करता है। रक्त चन्दन से मिश्रित जल से—कुश और कुसुमों से विमिश्रत जल से वेदोक्त तथा आगमों में क. हुए मन्त्रों से जो अर्थ सूर्यदेव को देता है और जिसने भगवान् सविता का अर्चन कर लिया है उसने सम्पूर्ण त्रैलोक्य का ही समर्चन कर लिया है—ऐसा ही समझ लेना चाहिए।९६-९९।

अर्चितः सविता दत्ते सुतान्पशु वसूनि च।
व्यधान्हरेददात्यायुः पूपयेद्वाञ्छितान्यपि।१००
अयं हि रुद्र आदित्यो हरिरेष दिवाकरः।
रविर्हिरण्यरूपोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्यमा।१०१
ततस्तु तर्पणं कुर्यास्स्वशाखोक्तविधानतः।
ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मरीच्यादीस्तथा मुनीन्।१०२
चन्दनागरुकर्प्पूरगन्धवत्कुसुमैरपि।
पर्वतेच्छुर्विभक्तोयैः [illegible] समुच्चरेत्।१०३

सनकादीन्मनुष्यांश्च निवीती तर्पंथेद्यवैः ।
अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानजून्द्विजः ।१०४
कव्यवाचनलावींश्च पितॄन्दिव्यान्प्रतर्प्पयेत् ।
प्राचीनवीतिको दर्भैद्विगुणस्तिलैर्मिश्रितैः ।१०५

भली भाँति समर्चित सविता देव सुत–पशु और धनों का प्रदान किया करते हैं । वह व्याधियों का हरण करते हैं—आयु देते हैं और मनोवाञ्छितों को भी पूर्ण कर देते हैं। यह रुद्र—आदित्य-हरि-दिवाकर रवि-हिरण्यरूप–त्रयीरूप–अर्यमा हैं । इसके अनन्तर अपनी वैदिक शाखा में समादिष्ट विधान के अनुसार तर्पण करना चाहिये । ब्रह्मादि समस्त देवों का तर्पण करे तथा मरीचि आदि सब मुनियों का तर्पण करना चाहिये । चन्दन अगुरु—कर्पूर–सुगन्धित आदि से मिश्रित परम शुद्ध जल 'तृप्यन्न"—इसका समुच्चारण करते हुए तर्पण करें । यवों के द्वारा नवीनी होकर सनकादियों का—मनुष्यों का तर्पण करना चाहिए । द्विज को चाहिये कि दोनों अगुष्ठों के मध्य में सीधी कुशों को रखें । कव्य वाडनल आदि । दिव्य पितृगण को तर्पण करे । प्राचीन बीती होकर तिल मिश्रित दुगुने कुशाओं से तर्पण करे ।१००-१०५।

रवौ शुक्ले त्रयोदश्यां सप्तम्यां निशि संध्ययोः ।
श्रेयोर्थो ब्राह्मणो सातु न कुर्यात्तिलतर्पणम् ।१०६
यदि कुर्यात्तयः कुर्याच्छुक्लैरेय तिलैः कृती ।
चतुर्दश यमान्पश्चत्तर्पवेन्नतउच्चरन् ।१०७
ततः स्वगोत्रमुच्चार्य पर्पपेत्स्वान्पितृन्मदा ।
सव्यांजानुतिपातेन पितृतीर्थेन वाग्यताः ।१०८
एकैकमञ्जलिवेवा द्वौद्वौतुसनकादिदाः ।
पितररस्त्रीन्प्रवाञ्छन्तिस्त्रियएकैकमञ्जलिम् ।१०९
अंगुल्यग्रेण वै दैवमार्षमङ्ग लिगमूलम् ।
ब्राह्म मङ्गुष्ठमूले तु पापिमत्र्ये प्रजापतेः ।११०

मध्येङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौः पित्र्यं तीर्थं प्रचक्षते: ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवः । १११
तृप्यतुसर्वे पितरोमातृगातामहादयः ।
अन्येवमन्त्रणाः प्रोक्तायेवेदोक्ताः पुराणसम्भवाः ।११२

मास के शुक्लपक्ष में रविवार त्रयोदशी तिथि है—सप्तमी तिथि में—निशा में और दोनों सन्ध्या कालों में श्रेय के सम्पादन करने की इच्छा वाला पुरुष (ब्राह्मण) किसी दशा में तिलयों के द्वारा तर्पण नहीं करे ।१०६। यदि तिलों से तर्पण भी करे तो शुक्ल तिलों से ही कृती ब्राह्मण को तर्पण करना चाहिए । चौदह यमों के नामों का समुच्चारण करते हुये पीछे तर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् अपने गोत्र का उच्चारण करते हुए अपने पितृगणों को तृप्त करना चाहिये । सव्याजानु निपात से पितृतीर्थ से मौनी होकर देवी को एक-एक अंजलि देवे और सनकादिकों को दो-दो अंजलियाँ देनी चाहिए । पितृगण तीन-तीन अंजलियों की इच्छा रखते हैं । स्त्रियों को एक-एक ही अंजलि देवे । अंगुलि के अग्रभाग से दैव को-आर्य ऋषिगण को अंगुलि के मूल से—ब्राह्म को अंगुष्ठ के मूल से और प्रजापति को पाणि के मध्य में देना चाहिए। अर्थात् ये ही स्थान इनके उपयुक्त होते हैं। अंगुष्ठ और प्रादेशिनी के मध्य भाग दिव्य तीर्थ कहा जाता है । अन्त में ब्रह्म से स्तम्ब पर्यन्त जो भी देव—ऋषि—पितृ एवं मानव हों वे सभी पितृमातृ और माता ब्रह्मदिक मेरे समर्पित इस जलाञ्जलि से सन्तृप्त हो जावें—यह उच्चारण करके ही जलाञ्जलि देनी चाहिए । इस तर्पण के लिये अन्य मात्र वेदोक्त कहे गये हैं और पुराणों में उक्त भी कहे गये हैं ।१०७-११२।

साँगन्चतस्यं कुर्यात्पितृणाँवस्त्रप्रदम् ।
अग्निकार्यंयतः कृत्वावेदाभ्यासं ताश्चरेत् ।११३
श्रुत्यभ्यास [illegible] ।

अध्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ।११४
लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्यच लब्धये ।
प्रातः कृत्यमिप्रोक्तं द्विजातीनांनपोत्तमः ।११५
अथवा प्रातरुत्थाय कृत्वावश्यकमेव च ।
शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ।११६
विशोध्य सर्वंगात्राणि प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ।
वेदार्थानधिगच्छेद्वै शास्त्राणि विविधान्यपि ।११७
अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधामन्यितान् ।
उपेयाश्वरं चापि योगक्षेमादिसिद्धये ।११८
ततो मध्याह्नसिद्धयर्थं पर्वोक्तं स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वा माध्यह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ।११९

इस प्रकार पितृगण के लिये साङ्ग एवं सुखप्रद तर्पण करना चाहिए। इसके अनन्तर अग्नि कार्य अर्थात् होम करे और उनके पश्चात् वेदों का अभ्यास करना चाहिये। श्रुति का अभ्यास पाँच प्रकार का होता है—स्वीकार करना—अर्थ का विचार करना—केवल अभ्यास करना—तपश्चर्या करना और अपने शिष्यों के लिये प्रतिपादन करना।११३। ।११४। जो लब्ध है उसके प्रतिपालन करने के लिये तथा जो अलब्ध है उसकी लब्धि के लिए यह प्रातः काल का कृत्य का कहा गया है जो हे नृपोत्तम! द्विजातियों के लिये ही होता है। अथवा प्रातःकाल में शय्या से उठकर आवश्यक शारीरिक कृत्य का सम्पादन करके शोभामान लेकर दन्त धावन का भक्षण करे।११५-११६। अपने समस्त अङ्गों का विशोधन करके प्रातः कालीन कां समाचरण करे। फिर वेदार्थों का ज्ञान प्राप्त करे और अनेक शास्त्रों का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।११७। जो परम पवित्र एवं हित तथा मेधा में संयुत शिष्य हो उनका अध्यापन करे। और ईश्वर की भी योग होम आदि की सिद्धि सम्प्राप्त करने के लिये उपासना करनी चाहिए।११८। इसके

उपरान्त मध्याह्न की सिद्धि के लिए पूर्वोक्त स्नान करे। विलक्षण पुरुष को स्नान करके मध्याह्न की सन्ध्या की उपासना करनी चाहिये ।११९।

देवतां परिपूज्याथ विधिनैमित्तिकं चरेत् ।
पवनाग्नि समुज्ज्वाल्यवैश्चदेवंसमाचरेत् ।१२०
निष्पावान्कोप्रवान्माषान्यलपांश्चगणगांस्त्यजेत् ।
तैलपक्वमक्वान्न सर्वं लक्षणयुक्त्यजेत् ।१२१
आढक्यन्नं मसुरान्नं बर्तुलधान्यसभवम् ।
सुक्तशेर्षपर्युषित वैश्वदेवे विवर्जयेत् ।१२२
दर्भपाणिः समाचम्य प्राणायामंविधायच ।
पृणोदिवीति मन्त्रेण पर्य्युक्षणमथाचरेत् ।१२३
प्रदक्षिणंचपर्य्युक्ष्य द्विःपरिस्तीर्यनैकुशान् ।
पापोर्द्धं देवमन्त्रेण कुर्याह्निंस्वसम्मुखे ।१२४
वैश्वानरं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतैस्ततः ।
स्वशाखोक्त प्रकारेण होमंकुर्याद्विचक्षणः ।१२५
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषक ।
यतिश्च व्रह्मचारी च षडेतेधर्मभिक्षुकाः ।१२६

देवता का अर्चन नैमित्तिक विधि को करे। पवनाग्नि को प्रज्वलित करके वैश्वदेव करे। निष्पापा-को द्रव्य-माप-अन्यलाप और चमक इनका परित्याग कर देवे। तैल से परिपक्व-अपक्वान्न और सब लवंण से युक्त त्याग देवे ।१२०-१२१। आपक्वान्न—मसूरान्न बर्तुल धान्य समुत्पन्न—मुक्त शेष—पर्युति शेष—(वासी) इन सबकी वैश्वदेव में वर्जित कर देना चाहिये। हाथ में कुश ग्रहण करके भली भाँति आचमन करे और प्राणायाम करके "पृवोदिवि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा पार्युक्षण करे। प्रदक्षिण और पर्युक्षण करके दो कुशाओं का परि-स्तरण करके 'रापोर्द्ध देव'—इत्यादि मन्त्र से वह्नि को अपने सामने

करे। गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा वैश्वानर की समर्चना करके विलक्षण पुरुष की अपनी वैदिक शाखा के प्रकार से होम करना चाहिए। अध्वा में गमन करने वाला—क्षीण वृत्ति वाला—विद्यार्थी–गुरु का पोषण करने वाला–यति और ब्रह्मचारी–ये छह धर्म भिक्षुक होते हैं।१२२-१२६।

अतिथिः पान्थिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः।
मान्यावेतौ गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम्।१२७
अपिश्यापाकेशुनिवा नैवान्नं निष्फलंभवेत्।
अत्रार्थिनि समायातेषात्रापात्रंनचिन्तयेत्।१२८
शुनांच पतितानाञ्चश्वपचां मापरोगिणाम्।
काकानांचक्रमीणांचवहिरन्नं किरेद्भुवि।१२९
ऐन्द्रवारुणवायव्याः सौम्यावैर्नैर्ऋताश्चये।
प्रतिगृह्णंत्विमंपिडंकाकाभूमौमयार्पितम्।१३०
इत्थं भूतवर्लिकृत्वाकालंगोदोहमात्रकम्।
प्रतीक्ष्यातिथिमायातं विशेद्भोज्यगृहंततः।१३१
अदत्वा बाथसबलिं नित्यश्राद्धं समाचरेत्।
नित्यश्राद्धे स्वसामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकथमापि।१३२
भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्याथुद्धृत्य वारि च।
नित्यश्राद्धं दैवहीनियमादिविवर्जितम्।१३३

जो गृहस्थ ब्रह्मलोक की चाह रखने वाले हैं उनके लिये अतिथि-पान्थिक–अनूचान–और श्रुति पारगामी ये गाम्य हुआ करते हैं।१२७। श्वपाक और श्वान में अन्न निष्फल नहीं हुआ करता है। यहाँ पर अर्थी के समायात होने पर पात्र है या अपात्र है—उसका चिन्तन नहीं करना चाहिये। कुत्तों को–पतितों को–श्वपचों को–पाप रोगियों को–काकों की तथा कृमियों को भी भूमि में वाहर अन्न का विकिरण कर देना चाहिये। भूत बलि करने के लिये ऐन्द्र-वारुण–वायव्य—सौम्य–

और जो नैर्ऋत हों वे सभी और काक भूमि में मेरे द्वारा समर्पित इस पिण्ड का प्रतिग्रहण करें—यह कहते हुए भूत बलि गोदोहन मात्र काल पर्यन्त इस प्रकार से भूत बलि करके किसी भी आये हुए अतिथि की प्रतीक्षा करे फिर भोज्य गृह में प्रवेश करना चाहिए। वापस बलि को न देकर नित्य श्राद्ध का समाचरण करना चाहिए। नित्य श्राद्ध से अपनी सामर्थ्य से तीन-दो अथवा एक को ही भोजन करावे। यह पितृ यज्ञ के लिए ही भोजन देवे और जल को उद्धृत करके देना चाहिये। नित्य श्राद्ध देवहीन और नियम आदि से निर्वर्जित होता है।१२७-१३३।

दक्षिणारहित त्वेतद्दनभोक्तुसुतृप्तिकृत् ।
पितृयज्ञं विधायैत्थं स्वस्थबुद्धिरनातुरः ।१३४
अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ।
सगन्धिः समनाः स्राग्वी शुचिबासोद्वयान्दिता ।१३५
प्रागास्य उदगात्यो वाभुञ्जीतपितृसेवितम ।
विधायान्नमन नतदुपरिष्टादथस्तथा ।१३६
आपोशानविधानेन कृत्वाऽश्नीयात्सुधीर्द्विजः ।
भूमौ बलित्रयं कुर्यादपोदद्यात्तदोपरि ।१३७
सकृच्चाप-उपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ।
दद्याज्जठरकुन्डाग्नोमभपाणिः प्रसन्नधीः ।१३८
दर्भपाणिस्तुयो भुङ्क्तेतस्यदोषो नविद्यते ।
केशकीटादिसभूतस्तदश्नीयात्सदर्भकः ।१३९
ततौ मौनेन भुञ्जीत न कुर्याद्दन्तघर्षणम् ।
प्रक्षालितव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ।१४०

यह दक्षिणा से रहित यह दाता और भोक्ता की तृप्ति का करने वाला है। इस प्रकार से पितृयज्ञ को करके अनातुर होते हुए स्वस्थ बुद्धि वाला है। दोष रहित आसन पर अधिष्ठित होकर शिशुओं के

साथ स्वयं भोजन करे। सुन्दर गन्ध वाला—सुन्दर मन के युक्त—माला धारण किए हुए और दो शुद्ध वस्त्र धारण करके भोजन करना चाहिए।१३४-१३५। पितृ सेवित पदार्थ को पूर्व को ओर मुख वाला होकर अथवा उत्तर की ओर मुख करके जाना चाहिए। अन्न को ऊपर और वीच्र अनग्न करके आग्रोशान विधान से खुली द्विज को भोजन करना चाहिए। भूमि में तीन बलि करे और उसके ऊपर जल देवे।।१३६-१३७। एक बार जल से उपस्पर्शन करके "प्रणाम स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों के पाँच आहुतियाँ देवें फिर प्रसन्न बुद्धि होकर हाथ में कुशा ग्रहण कर जठर रूपी कुण्ड में देना चाहिए। हाथ में डाभ लेकर जो भजन किया करता है उसका कोई भी दोष नहीं होता है। केश कीटादि से सम्भूत दर्भ के सहित अशन करें। इसके अनन्तर मौन रहकर भोजन करे और दाँतों का घर्षण नहीं करना चाहिये और प्रक्षालन करने के योग्य हाथ के दक्षिणागुष्ठ मूल से न करे।१३८-१४०।

रौरवेऽपुण्यनिलये अघोलोकनिवासिनाम् ।
उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।१४१
पुनराचम्य मेधावी शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ।
मुखशुद्धि ततः कृत्वा पुराणश्रवणादिभिः ।१४२
अतिवाह्य दिवाशेषं ततः सन्ध्यांसमाचरेत् ।
गृहेषुप्राकृतासन्ध्यागोष्ठेदशगुणास्मृता ।१४३
नद्यामयुतसंख्या स्यादनन्ता शिवसन्निधौ ।
अनृतं मद्यगन्ध च दिवामैथुनमेव च ।
पुनाति वृषलस्थानं सन्ध्या बहिरुपासिता ।१४४
उद्देशतः यमाख्यातएष नित्यनवोविधि. ।
इत्थं ममाचरन्विप्रोनावसीदतिकर्हिचित् ।१४५

अपुण्यों का निलय रौरव नरक में अधोलोकों के निवासी और

उच्छिष्ट जल की इच्छा रखने वालों का अक्षम्य उपस्थित होवे।१४१। फिर मेधावी को आचमन करके शुचि होकर प्रसन्न पूर्वक मुख की शुद्धि करे और इसके उपरान्त दिन के शेष भागों को पुराणों के श्रवण आदि के द्वारा व्यतीत करे और इसके अनन्तर फिर सायं संध्या की उपासना करनी चाहिये। गृहों में की हुई संख्या की उपासना प्राकृत होती हैं यही उपासना यदि गोष्ठ में की जावे तो दस गुने फल वाली हो जाती है। नदी पर की हुई संध्योपासना दश सहस्र गुनी होती है तथा भगवान् की सन्निधि में की गई संध्या की उपासना अनन्त गुनी कही गयी है। मिथ्या भाषण—मदिरा की गन्ध—दिवा मैथुन और वृषभ स्थान इन सबको बाहिर की गई संध्योपासना पवित्र कर देती है।१४२-१४३। ।१४४। यह नित्य ही की जाने वाली विधि उद्देश्य से समाख्यात की गई। इस प्रकार से समाचरण करने वाला विप्र किसी भी समय में दुःखित नहीं हुआ करता है।१४५।

—×—

४१—हयग्रीवाख्यानवर्णनम्

नपश्यन्तियदाशीर्षंब्रह्मन्द्यास्तुसुरास्तदा।
किमर्मंइतिहेत्युक्तवाज्ञानिनस्तेव्यचिन्तयन्।
उवाच विश्वकर्माणं तदा ब्रह्मा सुरान्वितः।१
विश्वकर्मस्त्वमेवासि कार्यं कर्तासदाविभो।
शीघ्रमेवकुरु त्ववक्त्रं सान्द्रंचधन्विनः।२
नमस्कृत्यतदातस्मै स्तुतोऽसौदेववर्द्धकिः।
उवाचपरयाभक्त्या ब्रह्माणंकमलोद्भवम्।३
यज्ञकार्यं (अश्वकार्यं) निवृत्याशु।
(निकृन्ताऽऽशु) वदन्ति विविधाः सुराः।४

यज्ञभाग्यविहीन मां किं पुनर्वंच्मि तेऽग्रतः ।
यज्ञ भागमह देव लभेयैवंससरैः सह ।५
दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभागं सुरवर्द्ध के !
सोमे त्वं प्रथम वीर पूज्येश्रुतिकोविदैः ।६
तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सन्धत्स्वाऽमरर्द्ध के ! ।
विश्वकर्माऽब्रवीद्देवानानयध्वं शिरस्त्विति ।७

महर्षि श्री व्यासदेव ने कहा जिस समय में ब्रह्मादि सुरगणों ने शीर्ष नहीं देखा था तो उस समय में हम इस समय में क्या करें— यह कहकर सब ज्ञानी गण विशेष रूप से चिन्तन करने लगे थे। उस समय में समस्न सुरगणों से अन्वित ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा से कहा था ? ।१-२। ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! विश्वकर्मा सदा आप ही कार्यों के करने वाले हैं। अतएव अब आप बहुत ही शीघ्र धन्वी के वस्त्र को सान्द्र वना दो। उस समय में वह देववर्द्ध कि नमस्कार करके स्तुति के द्वारा प्रस्तुत किया गया था। तब परम भक्ति से वह कमलोद्भव ब्रह्माजी से बोला था। यज्ञ कार्य को शीघ्र ही निवृत्त कर के अनेक सुरगण मुझको यज के भाग से विहीन कहा करते हैं। फिर मैं इस समय में आपके आगे क्या कहूँ। हे देव ! इस प्रकार से मैं भी सुरों के साथ यज्ञ के भाग को प्राप्त किया करूँ ।३-५। ब्रह्माजी ने कहा हे सुर वर्द्धक ! मैं आपको समस्त यज्ञों में विभाग दूँगा। हे वीर ! श्रुति के कोविदों (विद्वान्) के द्वारा आप सोम में सबसे प्रथम पूजे जाओगे। हे अमर वर्द्धक ! सो अब आप तब तक भगवान् विष्णु के शिर का अनुसन्धान करो। विश्वकर्मा ने देवों से कहा—शिर ले आओ ।६-७।

तन्नस्तीति सुराः सर्वेवदन्तिनृपसत्तम् ।
मध्याह्ने तुसमृदभूते रथस्थोदिविचांशुमान् ।८
दृष्टं तदासुरः सर्वे रथादश्वमथानयन् ।

छित्वा शीर्षं महीपाल कबन्धाद्वाजिनोहरे ।९
कबन्धे योजयामास विश्वकर्मातिऽचतुरः ।
दृष्ट्वा तं देवदेवेश सुरा स्तुतिमकुर्वन ।१०
नमस्तेऽस्तु जगद्बीज नमःस्तेकमलापते ।
नमस्तेऽस्तुसुरेशान । नमस्तेकमलेक्षण ।११
त्वं स्थितिः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं सताम् ।
त्वं हन्ता सर्वदुष्टानां हयग्रीव । नमोऽस्तुते ।१२
त्वमोङ्कारोवषट्कारस्वाहः स्वधा चतुर्विधा ।
आद्यस्त्व चतुरेशानन्वयेवशरण सदा ।१३
यज्ञो यज्ञपतिर्यंज्वा द्रव्यं होता हुतस्तथा ।
त्ववर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ।१४

हे नृप सत्तम ! समस्त सुरों ने कहा—यह नहीं है। मध्याह्न के समुद्भुत होने पर दिवलोक में अंशुमान् रथ में संस्थित थे। उस समय सुरगणों ने सबने देखा था और उस रथ से अश्व को ले आये थे। हे महीपाल ! हरि के घोड़े को अवन्ध से शिर काट करके अत्यन्त चतुर विश्वकर्मा ने उसे कबन्ध में योजित कर दिया था। उस देवदेवेश्वर को देखकर समस्त सुरों ने उसका स्तवन किया था। देवों ने कहा ! हे इस जगत् के बीच ! कमल, के स्वामिन् ! आपको हमारा नमस्कार है। हे सुरों के ईशान ! आपकी सेवा में हमारा नमस्कार समर्पित है। हे कमल के समान नेत्रों वाले ! आपको हमारा प्रणाम है। आप तो समस्त भूतों की स्थिति है और आप ही सबके शरण (रक्षक) हैं। सब दुष्टों के आप ही हनन करने वाले हैं। हे हयग्रीव ! आपकी सन्निधि में हम सबका प्रणाम अर्पित है ।८-१२। आपके चार प्रकार के स्वरूप हैं—आप ही ओंकार हैं—आप ही वषट्कार हैं—आप ही स्वाहा हैं और आप ही स्वधा हैं। आप सबके 'खाद्य हैं। हे सुरेशान ! आप ही सदा सबके शरण हैं ।१३। आप ही यज्ञ-यज्ञों के पति—

यज्वा—द्रव्य—होता तथा आप ही हुत भी हैं। हे देव ! आपके ही लिए आहुतियाँ दी जाया करती है और आप ही सखा एवं सबके शरण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं।१४।

काल: करालरूपस्त्वं वार्क: शीतदीधिति: ।
त्वमग्निर्वपुणश्चैव त्वंचकालक्षयंकर ।१५
गुणत्रयं त्वमेवेह गुणहीदस्त्वमेव हि ।
गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषु ।१६
स्त्रीपुंसोश्चाद्विधात्व चपशुपक्ष्यादिमानवै: ।
चतुर्विध कुलं त्वंहिचपुरशोतिलक्षण: ।१७
दिनान्तश्चैव पक्षन्तो मासान्तो हायनं युगम् ।
कल्पांतश्च महान्तश्च कालान्तस्त्वं च वै हरे ! ।१८
एवंविधैमहादिव्यै: स्तुयमान: सुरै नृप ।
सन्तुष्ट: प्राह सर्वेषां देवानां पूरत प्रभु: ।१९
किमर्थमिह सम्प्राप्ता: सर्वे देवगणाभुवि ।
किमेतत्कारण देवा: किनु दैत्यप्रपीडिता: ।२०

हे भगवन् ! आप विकराल स्वरूप वाले काल हैं। आप ही सूर्य तथा शीत किरणों वाले चंद्र है आप ही अग्नि हैं—वरुण और आप ही काल के क्षय करने वाले हैं।१५। सत्व-रज और तम ये तीनों गुण भी आपका ही स्वरूप है और आप स्वयं गुणों से हीन भी हैं। आप इन गुणों के आलय हैं और समस्त जन्तुओं में आप ही रक्षा करने वाले हैं।१६। आप स्त्री और पुरुष दो प्रकार के रूप वाले हैं। पशु-पक्षी आदि मानवों के द्वारा चार प्रकार के कुल आप ही हैं और चौरासी लक्षणों वाले हैं। दिनांत—पक्षांत—मासांत—अयनयुग कल्पांत—महांत और हे हरे ! कालान्त भी आप ही हैं। हे नृप ! इस तरह से महादिव्य सुरों के द्वारा स्तवन्न किये गये प्रभु परम सन्तुष्ट होकर उन समस्त देवों के आगे वाले।१७-१९। श्रीभगवान् ने कहा—आप समस्त देवगण इस भूमण्डल में किस लिये सम्प्राप्त हुए। हे देवगणो ! इस आपके यहाँ पर समायात करने

का क्या कारण है ? क्या आप लोग दैत्यों के द्वारा प्रपीड़ित हुये हैं ? ।१७-२०।

न दैत्य भयं सातं यज्ञकर्मोत्सुकावयम् ।
त्वद्दर्शनपरा: सर्वे पश्यामोवैदिशेदिश ।२१
त्वन्मायामोहिता: सर्वे व्यग्रचिता भयातुरा: ।
योगारूडस्वरूपं च दृष्टं तेऽस्माभिरूत्ततम् ।२२
वम्रो च नोर्दितास्माभिर्जागराय वेश्यर ।
ततश्चापूर्वंभभवच्छिरश्छिन्न वभूव ते ।२३
सूर्याश्वशीर्यमानीयविश्वकर्मातिचातुर: ।
समधत्तशिरोविष्णोर्ह्यग्रीवोऽस्यत: प्रभो ।२४
तुष्टोऽहनाकिन: सर्वेददामिवरसीप्सितम् ।
हयग्रीवोऽस्म्यहं ज्ञातोदेवदेवोजगत्पति: ।२५
न रौद्रं न विरूपं च सुरैरपि च सेवितम् ।
जातोऽहं वरदो देवा हयाननेति तोषित: ।२६
कृते सत्रे ततो वेधा धीमान्सतुष्टचेतसा ।
यज्ञभागं ततो दत्वा वम्रीभ्यो विश्वकर्मणे ।२७
यज्ञान्ते च सुरश्रेष्ठ नमस्कृत्य दिवं ययौ ।
एतच्च कारणं विद्धि हयननो यतो हरिया: ।२८

देवों ने कहा—हमको इस समय दैत्यों का कोई भी भय नहीं हुआ है । हम सब लोग यज्ञ कर्म करने के लिये समुत्सुक हैं । हम सब आपके दर्शन करने के लिए परायण हैं और दर्शों को देखते हैं । आपकी माया से जब मोहित हो जाते हैं तो उसी समय हम सब व्यग्र चित्त वाले तथा भय से आतुर हो जाया करते हैं ।२१। हमने आपका अतीव उत्तम योगारूढ़ स्वरूप देखा है ।२२। हे ईश्वर आपके जागरण कराने के लिए वम्री से हमने वही कहा था । इससे यह अपूर्व घटना हुई कि आप का शिरश्छिन्न हो गया था । फिर अत्यन्त कुशल विश्वकर्मा ने सूर्यदेव के

अश्व का मस्तक लाकर विष्णु के कवन्ध पर धर दिया था। इसीलिए हे प्रभो ! आप इस समय में हयग्रीव हो गये हैं।२३-२४। भगवान विष्णु ने कहा—हे स्वर्ग वासियों ! मैं आप सबसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ। मैं आपको अभीष्ट वरदान दूँगा। अब मैं देवों का देव हयग्रीव हैं। न तो यह रौद्र है और न विरूप ही है और सुरों के द्वारा सेवित भी है। देवो ! मैं इस हय के आनन से तोषित गया हूँ और अब वरद हो गया हूँ।२५-२६। श्री व्यासजो ने कहा—इसके अनन्तर धीमान् वेधा ने कृत युग सत्र में सन्तुष्ट चित्त से वम्रीयों से विश्वकर्मा के लिए यज्ञ का भाग दिलाता था। यज्ञ के अन्त में वह सुरश्रेष्ठ को नमस्कार करके दिवलोक को चले गये थे। जिस कारण से श्रीहरि हयानन हुए—उसका यही कारण जान लेना चाहिए।२७-२८।

येनाक्रान्ता मही सर्वा क्रमेणैकेन तत्वतः।
विवरे विवरे रोम्णांवतन्तेचपृथक्पृथक्।२९
ब्रह्माण्डनिसहस्राणि दृश्यन्तेमहाद्युते।
नवेत्तिवेदोयत्पारं शीर्षवानोहिवैकथम्।३०
शृणु त्वं पांडवश्रेष्ठ कथां पौराणिको शुभाम्।
ईश्वरस्यचरित्रं हिनैववेत्तिचराचरे।३१
एकदा ब्रह्मसभायां गता देवाः सवासवाः।
भूर्लोकाद्याश्च सर्वे हि स्थावराणि च।३२
देवाब्रह्मर्षयः सर्वे नमस्कर्त्तुं पितामहम्।
विष्णुप्यागतस्तत्र सभायामन्त्रकारणात्।३३
ब्रह्माचापि विगर्विष्ठ उवाचेदंस्तदा।
भोभोदेवाः शृणुध्व कस्दयाणांकारणंमहत्।३४
सत्यं ब्रूवन्तुशं देवा ब्रह्मेशविष्णुमध्यतः।
तावाचं चसमाकर्ण्यदेवा विस्मयमागताः।३५

ऊचुश्चैव ततो देवा न जानींभोवयं सुराः ।
ब्रह्मपत्नी तदोबाच विष्णुं प्रतिसुरेश्वरम् ।
त्रयाणामपि देवानां महान्त च वदस्व मे ।३६

महाराज युधिष्ठिर ने कहा--जिससे तात्विक रूप से एक ही चरण से क्रम से सम्पूर्ण मही को आक्रान्त कर लिया था और विवर-रोमों में विवर में सहस्रों ब्रह्मांड दिखलाई दिया करते हैं और जिसके पार को वेद भी नहीं जानते हैं उनके शीर्ष का घात कैसे हो गया था ? श्री व्यासदेव ने कहा--हे पाण्डव श्रेष्ठ ! परम शुभा एक पौराणिकों कथा को इस समय में आप श्रवण कीजिए ! इस ईश्वर के चरित्र को कोई भी नहीं जानता है। एक समय की बात है कि ब्रह्म सभा में इन्द्र देव के सहित समस्त देवगण गये। भूलोक आदि सब स्थावर तथा चर सभी थे। देवर्षि और महर्षि सब पितामह को नमस्कार करने के लिये ही वहाँ पर पहुँचे थे। वहाँ पर सभा में मन्त्र के कारण से भगवान् विष्णु की समागत हो गये ।२९-३२। उस समय ब्रह्माजी भी विशेष रूप से पवित्र होते हुये यह वचन बोले थे--हे देवगण ! आप सब सुनिये तीन कारणों में महत् कारण कौन हैं ? हे देववृन्द ! आप इस समय में ब्रह्मा--विष्णु और महेश इनके मध्य में वड़ा कौन है ? यह बिल्कुल सत्य-२ आप वतलाइये ! इस ब्रह्माजी की वाणी को सुनकर देवगण परम विस्मित हो गये ? इसके पश्चात् समस्त सुरगणों ने कहा हम नहीं जानते हैं। उस समय में ब्रह्माजी की पत्नी ने सुरों के ईश्वर श्री विष्णु से बोली--आप ही यह बतलाइये कि इन देवों में सबसे बड़ा कौन है ? ।३३-३६।

विष्णुमायाबलेनैव मोहितं भुवनत्रयम् ।
ततो ब्रह्मोवाचं न चेद त्वं जानामि भो विभोः ।३७
नैव मुह्यन्ति ते मायावलेन नैवमेव च ।
गर्वहिंसापरो जगद्भर्ता जगत्प्रभुः ।३८

ज्येष्ठं त्वां न विदुः सर्वे विष्णुमायावृताः खिलाः ।
ततो ब्रह्मा स रोषेण क्रुद्धः प्रस्फुरितानलः ।३९
उवाच वचनं कोपाद्धि विष्णो श्रृणुमेवच ।
येन वक्त्रेण सभायां वचनंसमुदीरितभू ।४०
तच्छीर्षंपतताादाशु चाल्पकालेन वै पुनः ।
तता हाहाकृतं सर्व सेन्द्राः सर्षिपुरोगमाः ।४१
ब्रह्मणं क्षमयामासुर्विष्णु प्रति सुरोत्तमाः ।
विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्यं सत्यं भविष्यति ।४२

भगवान् श्री विष्णु ने कहा---विष्णु की माया के बल से ही यह त्रिभुवन मोहित हो रहा है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने कहा–हे विप्रो ! क्या इसको आप नहीं जानते हैं ? इस प्रकार से वे इस माया के बल से भी कभी मोहित नहीं हुआ करते हैं । आप भगत् के भर्त्ता और इस जगत के प्रभु है अतएव यह गर्व और हिंसा में परायण है ये समस्त विष्णु की यात्रा से समावृत आपको ज्येष्ठ नहीं समझा करते हैं । इसके अनन्तर वह ब्रह्माजी रोष में प्रस्फुरित मुख वाले अत्यन्त क्रुद्ध होकर कोप से यह वचन बोले—हे विष्णो ! आप मेरा वचन श्रवण करिये । जिस मुख से सभा में वचन कहा था वह शीर्ष बहुत ही शीघ्र अल्पकाल ही मैं गिर जावेगा । इसके पश्चात् सबने इन्द्र के सहित ऋषिवृन्द थे उस समय वे हाहाकार किया था । सुरोत्तमों ने भगवान् विष्णु की ओर ब्रह्माजी ने क्षमा प्रार्थना की थी और विष्णु से कहा था कि यह सत्य होगा ।३७-४२।

ततो विष्णुर्महातेजांस्तीर्थस्योत्पादयेन च ।
तपस्तेपेतु त्रैं तत्र धर्माण्ये सुरेश्वरः ।
अश्वशीर्यम्मुखं दृष्टवा हयग्रीवो जनार्द्दनः ।४३
तपस्तेपे महाभाग ! विधिनासह भारतः ।
न शक्यं केनचित्नत्तु सात्मनात्मैवतुष्टवान् ।४४

ब्रह्मापि तपसा युक्तस्तेपे वर्षंशतत्रयम् ।
तिष्ठन्नेवपुरोविष्णोविष्णुमायाविमोहितः ।४५
ग्रज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवोजगत्पतिः ।
ब्रह्मस्ते मुक्तताद्यांस्ति ममकमायाप्यदुःसहा ।४६
ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्तो जनाद्र्दनः ।
उवाचमधुरां वाछ सर्वेषा हितकारणात् ।४७
अत्राभवन्महाक्षेत्रं पुण्यंपापप्रणाशनम् ।
विधिविष्णुमय चैतद्भवत्वेतन्न संशयः ।४८
तीर्थस्य महिमाराजन्हयशीर्यस्तदा हरिः ।
शुभाननो हि सञ्जातः पूर्वेणवाननेन तु ।४९

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने जो कि स्वयं ही महान् तेजस्वी थे तीर्थ के उत्पादन से वहाँ धर्मारण्य में सुरेश्वर तप करने लगे थे। अश्वशीर्ष मुख को देखकर जनार्दन हयग्रीव हो गये।४३। हे महान् भाग वाले भारत! विधि के साथ तपश्चर्या का तपन किया था। किसी के द्वारा भी अपनी आत्मा से ही आत्मा को तुष्टवान नहीं किया जा सकता है। ब्रह्माजी ने भी तपस्या से युक्त तीन सौ वर्ष तक तप किया था? विष्णु की माया से विमोहित होकर विष्णु के आगे स्थित होते हुए तपस्या की थी। देवों के भी देव इस जगत् के स्वामी परम तुष्ट होकर बोले—हे ब्रह्मन्! आज तुम्हारी मुक्तता है। यह मेरी माया भी अदुःसहा है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी वर प्राप्त करने वाले हुए थे और भगवान जनार्दन भी प्रसन्न चित्त वाले हो गये थे। सबके हित करने के कारण परम मधुर वाणी बोले—यहाँ पर परम पुण्यमय पापों के विनाश करने वाला महाक्षेत्र हो गया है। यह विधाता और विष्णुमय हो गया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे राजन्! उस समय में श्री हरि ने स्वयं हयशीर्ष ने की थी। पहिले ही इससे वह परम शुभ आनन वाले हो गये थे।४४-४६।

कन्दर्पकोटिलावण्यो जातः कृष्णस्तदा नृपः ।
ब्रह्मापि तपसा युक्तो दिव्यवर्षं शतत्रयम् ।५०
सावित्र्या च कृत यत्र विष्णुमाया न बाधते ।
मायया तु कृत शीर्षं पञ्चम शार्दुलस्य वा ।५१
धर्मारण्ये कृतं रम्य हरेण च्छादित पुरा ।
तस्मै दत्वा वरं विष्णुर्जगामादर्शन ततः ।५२
स्थापयित्वा विधिस्तत्र तीर्थञ्चैवत्रिलोचनम् ।
मुक्तेशनामदेवस्यमोक्षतीर्थंमरिन्दम ।५३
गतः सोऽपि सुरश्रेष्ठः स्वस्थानं सुरवितम् ।
तत्रप्रेतादिवं यान्तितर्पणेनप्रतर्पिताः ।५४
अश्वमेधफलस्नाने पानेयोदानजं फलम् ।
पुष्कराद्यानितीर्थानिगङ्गाद्याः सरितस्तथा ।५५
स्नानार्थमत्रागच्छन्ति देवता पितरस्तथा ।
कार्त्तिक्याकृत्तिकायोगेमुक्तेशपूजयेत्तु यः ।५६
स्नात्वा देवसरे रम्ये नत्वा देवं जनार्द्दनम् ।
यः करोति नरो भक्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।५७

हे नृप ! उस समय में भगवान श्रीकृष्ण करोड़ों कामदेवों के तुल्य रूप लावण्य वाले हो गए थे । ब्रह्माजी भी तपस्या से युक्त हुए जो कि दिव्य तीन सौ वर्ष पर्यन्त की थी ।५०। जहाँ पर सावित्री देवी ने तप किया था वहाँ विष्णु की माया बाधा नहीं देती है । माया से किया हुआ शीर्ष था अथवा शार्दूल का था ।५१। पहिले हर के द्वारा छेदित धर्मारण्य में सुरम्य किया था । उनको वरदान प्रदान करके भगवान् विष्णु वहाँ से अदर्शन को प्राप्त होगये थे ।५२। हे अरिन्दिम ! विधि ने वहाँ पर त्रिलोचन तीर्थ की स्थापना करके जो नामदेव का मुक्तेश मोक्ष तीर्थ है ।५३। वह भी सुरश्रेष्ठ सुरों से सेवित स्थान को चले गये थे । वहाँ पर तर्पण के द्वारा तर्पित हुए प्रेत भी दिवलोक को प्रयाण

किया करते हैं ।५४। यहाँ पर स्नान करने से एक अश्वमेध यज्ञ के करने का पुण्य फल प्राप्त होता है यहाँ के जल का पान करने से गोदान से समुत्पन्न फल मिला करता है। पुष्कर आदि तीर्थ तथा भागीरथी गङ्गा आदि सरितायें स्वयं स्नान करने के लिए य.ाँ पर आया करती है और सब देवता तथा पितर भी समागत होते हैं। कार्त्तिक मास में कृत्तिका नक्षत्र के योग में कोई मुक्तदा भगवान् की पूजा किया करता है और सुरम्य देखकर में स्नान करके जनार्दन देव को नमस्कार करता है। ऐसा जो नर भक्ति की भावना से करता है वह सब प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाता है ।५५-५७।

भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं स गच्छति ।
अपुत्रा काकबन्ध्या च सृतवत्समृतप्रजा ।५८
एकाम्बरेण सुस्नातौ पतिपत्न्यौ यथाविधि ।
तद्दोषंनाशयेन्नूनप्रजाप्तिप्रतिबन्धकम् ।५९
मोक्षेश्वरप्रसादेन पुत्रपौत्रादि वर्द्धयेत् ।
दद्याद्विकेन चित्तेन फलानि सत्यसंयुता ।६०
निधाय वंशपात्रेऽपि नारीदोषात्प्रमुच्यते ।
प्राप्नुवन्ति च देवाश्च अग्निष्ठोमफलं नृप ।६१
वेधाहरिर्हरश्चैव मप्यन्ते परमः तपः ।
धर्मारण्ये त्रिसन्ध्यं च स्नात्वादेवसरस्यथ ।६२
तत्र मोक्षेश्वरः शम्भुः स्थापितो वै ततः सुरैः ।
तत्र साङ्गं जप कृत्वा न भूयः स्तनपौ भवेत् ।६३

वह प्राणी स्वर्गीय सर्वोत्तम मुख के उपभोगों का भोग करके यथा काम विष्णु लोक को चला जाता है। जो पुत्रहीना हो-काकवंध्या हो—मृतवत्सा हो और मृत प्रजा स्त्री हो तो वहाँ पर यथा-विधि दोनों पति-पत्नी एकाम्बर ने सम्यक् रीति से स्नान करें तो वह तो उनमें

सन्तान की प्राप्ति का प्रतिवन्धक दोष उनमें है वह निश्चय ही नष्ट हो जाया करता है। मोक्षेश्वर के प्रसाद से उसके पुत्र पौत्रादि की वृद्धि हो जाती है। अथवा एकत्रित होकर सत्य से सयुता—होकर फलों का दान करे और उन्हें पात्र में रखकर देवे तो वह नारी दोष से विमुक्त हो जाती है। हे नृप ! वहाँ अग्निष्टोम योग का फल प्राप्त किया करते हैं।५८-६१। वेधा (ब्रह्मा)–श्री हरि–भगवान् शम्भु भी परम तप किया करते हैं। तीनों सन्ध्याओं में देवसरोवर में धर्मारण्य में स्नान करके सुरों ने मोक्षेश्वर भगवान् शम्भु की स्थापना की है। वहाँ अङ्ग सहित जाप करके फिर यह प्राणी जन्म ग्रहण करके स्तन का पान नहीं किया करता है।६२-६३।

एवं क्षेत्रं महाराजं प्रसिद्धं भुवनत्रये ।
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पितृणां श्रद्धयान्वितः।६४
उद्धरेः सप्तगौत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ।
देवसरो महारम्यं नानापुष्पैः समन्वितम् ।
श्यामं स ः लकल्हारैर्विविधैर्जलजन्तुभिः।६५
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः सेवितं सुरमानुपैः ।
सिद्धैयक्षैश्च मुनिभिः सेवित सर्वतः शुभम् ।६६
कीदृशं तत्सरः ख्यातं तस्मिन्सथाने द्विजोत्तम ।
तस्य रूपं प्रकारश्च कथयस्व यथातथम्।६७
साधुसाधु महाप्राज्ञ ! धर्मपुत्र ! युधिष्ठिर ! ।
यस्यमङ्कीर्तनान्नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।६८
अतिस्वच्छरं शीयं सङ्गोदकसमप्रभम् ।
पवित्रं मधुरं स्वादु जलं तस्य नृपोत्तम ।६९
महाविशालं गम्भीरं वेवखातैं मनोरमम् ।
लहर्यादिभिर्गंगम्भीरैः फेनावर्तसमाकुलम् ।७०
झषमण्डूककमठैर्मकरैश्च समाकुलम् ।

शंखशुक्त्यादिभियुक्तं राजहंसैः सुशोभितम् ।७१

हे महाराज ! इस तरह से यह तीर्थ तीनों भुवनों में प्रसिद्ध हैं। जो कोई वहाँ पर श्राद्ध किया करता है और पितृगण को श्रद्धा से युक्त तृप्त करता है वह अपने सात गोत्रों का उद्धार कर दिया करता है और एकोत्तर शत अर्थात् एक सौ एक कुल का उद्धार कर देता है। यह देवसर महान् सुरम्य है और अनेक प्रकार के पुष्पों से समन्वित है। सब तरह के कल्हारों से श्याम तथा जल से जन्तुओं से युक्त है ।६४। ।६५। ब्रह्मा-विष्णु और महेश आदि के द्वारा तथा सुरों एवं मनुष्यों के द्वारा यश सेवित हैं। सभी और यह परम शुभ सुर, सिद्ध— यज्ञ और मुनिवृन्दों के द्वारा सेवित है ।६६। युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! उस स्थान में वह सर किस प्रकार का विख्यात हैं ? उसका स्वरूप कैसा है और किस प्रकार का है ? आप कृपया ठीक-ठीक यह बतलाइए ।६७। श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे धर्मपुत्र ! आप तो अत्यधिक प्रज्ञा वाले हैं। हे युधिष्ठिर ! यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है–यह अत्युतम है। इसके तो संकीर्त्तत मात्र से ही मनुष्य निश्चित रूप से समस्त पापों में, विमुक्त हो जाया करता है ।६८। हे नृपोत्तम ! क्या वर्णन किया जावे उसका जल अत्यन्त ही स्वच्छ हैं—अधिक ठण्डा है—और गङ्गा के जल के समान प्रभायुक्त है—परम पवित्र—महामधुर तथा स्वाद युक्त है ।६९। यह देवस्रोत (सरोवर महान् विशाल है—अत्यन्त गम्भीर हैं और परम मनोरम है। गम्भीर महरियी के आने के कारण फेनो के आवर्त्तों से समाकुल रहता है। उनमें झष केण्ड्रया कर्मठ और मकर निवास किया करते हैं और उनसे समाकुल है। यह सरोवर शंख और शुक्ति आदि ने भी संयुक्त रहता है तथा राजहंस इसके समीप में निवास किया करते हैं उनसे इसकी विशेष शोभा रहा करती है ।७०-७१।

तटप्लक्षैः समायुक्तमश्वत्थाम्रं श्च वेष्टितम् ।
चक्रवाकसमोपेतंतबत्तसारसटिटि भैः ।७२

कमनीयप्रगन्धाच्चत्रपत्रैः सुलोभितम् ।
सेव्यमानं द्विवै सर्वैः सारसाद्यैः सुशोभितम् ।७३
सदेवैर्मुनिभिश्चैव विप्रैर्मर्त्यैश्च भूमिप ।
सेवितं दुःखहं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ।७४
अनादिनिधनीपेतं सेवितं सिद्धमण्डलैः ।
स्नानादिभिः सर्वदैवतत्सरोनृपसत्तम ! ।७५
विधिना कुरुते यस्तु नीलोत्सगंश्च तत्तटे ।
प्रेता नैव कुले तस्य यावद्रिन्द्राश्चतुर्दश ! ।७६
कन्यादानं च ये कुर्युर्विधिया तत्रभूपसे ! ।
ते तिष्ठन्ति ब्रह्मलाकेयावदाभूतसम्पप्लवम् ।७७
महिर्षी गृहदासीं च सुरभीं सुतसंयुताम् ।
हेमविद्यां यथा भूमि रणांश्चगजवाससी ।७८
ददाति श्रद्धया सोऽक्षय स्वर्गमश्नुते ।
देवखातस्यमाहात्म्यंः पठेच्छिवसन्निधौ ।
दीर्घमायुस्तथा सौख्यं लभते नात्र संशयः ।७९
यः श्रृणोति नरो भक्त्या नारी वा विदमद्व्रतम् ।
कुले तस्य भवेच्छ्रेयः कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर ।८०
एतत्सर्वं मयाख्यांतं यहग्रीवस्य कारणम् ।
प्रभावस्तस्यतीर्थस्यसवपापनुत्तये ।८१

इसके चारों ओर वट वृक्ष-प्लक्ष (पाखर) अश्वता और आम्र के वृक्ष लगे हुए हैं इनसे वेष्ठित-सा रहा करता है। चक्रवा वक्र— सारस और टिटभि आदि अनेक पक्षीगण से यह सर समोपेत है ।७२। परम रम्य प्रकृष्ठ ग्रन्थ अतीव स्वच्छ शतपत्रों से सुन्दर शोभा वाला है। सारस आदि पक्षियों के द्वारा यह निरन्तर सेव्यमानं रहा करता है ।७३। हे राजन् ! देवगण-मुनिवृन्द विप्र वर्ग और मानवों

के द्वारा सेवित है। यह परम दुःखों के हनन करने वाला और सभी तरह के पापों का नाशक है ।७४। अनादि निधन से उपेत तथा सिद्धों के मण्डलों के द्वारा सेवित है। हे नृपश्रेष्ठ ! सर्वदा ही वहाँ पर स्नानादि करने वाले बने ही रहा करते हैं ऐसा वह देवसर है। जो कोई उनके तट पर विधि के सहित नोलोत्सर्ग किया करता है उसके कुल में जब तक चौदह इन्द्र होते हैं। प्रेत कभी भी नहीं रहते हैं। हे राजन् ! वहाँ पर जो विधि विधान के साथ कन्या का दान किया करता है वे मनुष्य जब भूत संप्लव होता है तब तक ब्रह्मलोक में निवास प्राप्त करते हैं। जो कोई वह महर्षि-गृहदासी-सुरभी जो सुत से समन्वित सो—हेमविद्या—भूमि–रत्न—गज—वस्त्र—आदि का श्रद्धा से दान दिया करता है वह अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त किया करता है। इन देव खात (सरोवर) का माहात्म्य भगवान् शम्भु के समीप बैठकर पढ़ा करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।७५-७६। जो नर या नारी भक्तिभाव से इस अद्भुत माहात्म्य का स्रवण किया करता है। उसके कुल में परम श्रेय कल्पान्त तक हे युधिष्ठिर होता है। यह इसमें सम्पूर्ण भगवान हयग्रीव का कारण वर्णित कर दिया है। इस तीर्थ का ऐसा ही प्रभाव होता है कि उससे समस्त पापों का अपनोदन होजाया करता हैं ।-७७८१।

४२—कलि धर्म वर्णन

अतः परं किमभवत्तंन्मये कथय सुव्रत !
पूर्णं च तदशेषेण शस मे वदताम्बर ! ।१
स्थिरोभूत च तत्स्थानं कियत्कालं वदस्वपमे ।
केन वै रक्ष्यमाणं च कस्याऽऽज्ञा वर्तते प्रभो ! ।२

त्रेतान्ते द्वापरांतं च यावत्कलिसमागमः ।
तावत्संरक्षाद्यचैको हनुमान्पवनात्मजः ।३
समर्थो नान्यथा कोपि विनाहनुमतासुत ! ।
लङ्कादिध्वंसिनायेनराक्षसाः प्रविलपिताः ।४
स एव रक्षतेतत्र रामादेशेन पुत्रक ।
द्विजस्याज्ञा प्रावर्तत श्रीमातायास्तथैव च ।५
दिनेदिनेप्रहर्षोऽभूज्जनानांतत्रवासिनः ।
पठन्तिस्मद्विजा तत्रऋग्यजुः सामलक्षणान् ।६
अथर्वरञ्चपि तत्र पठन्ति स्म दिवानिशम् ।
वेदनिर्घोषजः शब्दस्त्रैलोक्तेसचराचरे ।७
उत्सवास्तत्र जायन्तेग्रामे ग्रामे पुरेपुरे ।
नाना यश्चाः प्रवर्त्तन्तेनानाधर्मं समाश्रिताः ।८

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा — हे सुव्रत ! इससे आगे क्या हुआ था उसे अब आप मेरे सामने वर्णन कीजिए। हे बोलने वालों में परम स्रेष्ठ और इसके पूर्व में क्या हुआ वह उसे कृपा कर बतलाइये। यह स्थान कितने समय तक स्थिरीभूत रहा यह मुझे बतलाइय। हे प्रभो। उसकी रक्षा किसके द्वारा की गयी थी और वहाँ पर किसकी आज्ञा है ? ।१-२। स्री ब्रह्माजी ने कहा—त्रेता से द्वापर युग के अन्त पर्यन्त जब तक कलियुग का समागम हुआ था उतने काल तक उसके संरक्षण करने में केवल एक पावन के पुत्र स्री हनुमान रहे थे। हे सुत हनुमान के बिना अन्य कोई दूसरा इस संरक्षण के कार्य को करने में समर्थ भी नहीं था। जिसने लङ्कापुर का विध्वंस कर दिया और बड़े-बड़े बलवान् राक्षसों का हनन कर दिया था, हे पुत्र। भगवान् स्रीराम के आदेश से वही वहाँ पर इसका संरक्षण किया करते हैं। द्विज का आज्ञा प्रवृत्त रहा करती थी और स्री माता की भी आज्ञा रहती थी। वहाँ पर जनों को बढ़ा ही हर्ष होता था और वहाँ के निवासी द्विजगण ऋक्-यजुः और साम लक्षणों

वाले वेदों का पाठ किया करते थे। अथर्ववेद का भी रात्रि दिन पाठ किया करते थे। वेदों के उच्चारण की ध्वनि चराचर त्रैलोक्य में फैलती रहा करती थी। वहाँ पर ग्राम-ग्राम में और नगर-२ में अनेक उत्सव हुआ करते थे। अनेक यज्ञ भी नाना प्रकार के धर्मों के समान्वित होते ही रहा करते हैं।३-८।

कदापि तस्यत्थानस्यभङ्गोजातोथवावानेवा।
दैत्यैजितंकदास्थानमथवादुष्टर:क्षसैः।६
साधुपृष्टं त्वया राजन्धर्मज्ञस्त्वं शुचिः।
आदौ कलियुगे प्राप्ते यद्वृत्तं तच्छृणुष्व भोः।१०
लोकानां च हितार्थाय कामाय च सुखाय च।
थदहं कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणुभूपते !।११
इदानीं चकलौप्राप्तौआमोनाम्ना वभ्रवह।
कान्यकुब्जाधिपः श्रीमान्धर्मज्ञानीतितत्परः।१२
शान्तो दान्तः सुशीलश्च सत्यधर्मपरायणः।
द्वापरान्तेपनश्रेष्ठ अनागते कलौ युगे।१३
भयात्कलिविशेषेण अधर्मस्य भयादिभिः।
सर्वेदेवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिताः।१४
रामोऽपि सेतुबन्ध हि ससहायो गता नृप।१५

महाराज युधिष्ठिर ने कहा--किसी भी समय उस स्थान का भक्त भी हुआ था अथवा नहीं हुआ था ? उस स्थान को दैत्यों ने अथवा दुष्ट राक्षसों ने कब जीत लिया था ? स्री व्यासदेवजी ने कहा—हे राजन् ! आपने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न पूछा है। आप तो परम धर्म के ज्ञाता हैं और सदा ही शुचि रहा करते हैं। हे राजन् ! आदि में कलियुग के प्राप्त होने पर जो भी कुछ हुआ था उसका आप अब श्रवण करिये। ।६-१०। समस्त लोकों के हित के लिए कामनायें पूर्ण होने के लिए और सुख के लिए जो भी में कुछ कहूँगा हे भूपते ! उन सबको आप सुनिए

।११। इस समय में कलियुग की प्राप्ति होने पर आम-इस नाम वाला कान्यकुब्ज देश का स्वामी हुआ था। वह परम श्रीमान् धर्म का ज्ञाता और नीति में परायण था।१२। अत्यन्त शान्त स्वभाव वाला दमनशील सुशील और सत्व तथा धम में परायण था। नृप द्वापर युग के अन्त में और कलियुग के न आगत होने पर इस कलियुग के विशेष भय से और अधर्म के भय आदि में सर्वदेवता इसे क्षिति का परित्याग करके नैमिषारण्य में समाश्रित हो गए थे। हे नृप। श्रीराम भी सब सहायकों के सहित सेतुबन्ध में चले गए थे।१३-१५।

कीदृशं हि कालौ प्राप्ते भयंल्लोकेसदुस्तरम् ।
यस्मिन्सुरैः परित्यक्तारत्नगर्भावसुन्धरा ।१६
शृणुष्व कलिधर्मास्त्व भविष्यन्ति यथा नृप ।
असत्यवादिनो लोकाः साधुनिन्दापरायणाः ।१७
दस्युकर्म रताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः ।
स्वगोत्र दाराभिरता लौल्यध्यानपरायणाः ।१८
ब्रह्मविद्वेषिणः सर्वे परस्परविरोधिनः ।
शरशागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ।१९
वैश्याचारत्ता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ।
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोपकरा द्विजाः ।२०
शान्ता शूद्रा श्राद्धतर्पणवर्जिताः ।
असुराचारनिरता विष्णुभक्तिविवर्जिताः ।२१

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन्। इस कलियुग के प्राप्त हो जाने पर किस प्रकार का सुदुस्तर भय लोके में व्याप्त हो गया था जिसमें सुरगणों ने यह रत्नों की गर्भ धारण करने वाली बसुन्धरा का भी परित्याग कर दिया था ? स्री व्यासदेवजी ने कहा—हे नृप ! अब आप इस कलियुग के धर्मों का स्रवण कीजिए जिस प्रकार से ये भविष्य में होंगे।

सभी लोक असत्य बोलने वाले और साधुओं की निन्दा में परायण रहा करेंगे ।१६-१७। सब लोग दस्युओं (दूसरों के धन का हरण करने वाले) के कर्म्म में रति रखने वाले और माता पिता की भक्ति में निरत न रहने वाले तथा अपने ही गोत्र के द्वारा (स्त्रियों) में रति रखने वाले और लोल्य (चंचलता) के ध्यान में परायणा ब्राह्मणों से विद्वेष रखने वाले—परस्पर मैं विद्वेष रखने वाले और शरण में समागत लोगों का हवन करने वाले कलियुग में होंगे ।१८-१६। इस कलियुग में विप्र लोग वेश्यों के आचार वाले हो जायेंगे। वेदों से भ्रष्ट मानी और संध्योपासना के विलोप करने वाले विप्र कलियुग में होंगे ।२०। शान्ति के समय में शूरता दिलाने वाले-भय प्राप्त होने पर दीन हो जाने वाले तथा स्रद्धा और तर्पण से रहित असुरों के समान आचार में निरत एवं भगवान विष्णु को भक्ति से रहित हुआ करेंगे ।२१।

परावित्तांभिलाषाश्च गत्कोचग्रहणेता ।
अस्नातभोजिनोविप्राः क्षत्रियारणवर्जिताः ।२२
भविष्यन्तिकलौं प्राप्ते मलिनादुष्टवृतयः ।
मद्यपानरताः सर्वेऽप्यमाज्यानां हियाजका ।२३
भर्तृंद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकराः सुनाः ।
भ्रातृद्वेषकदा क्षुद्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ।२४
गव्यविक्रयिणस्ते व ब्राह्मणावित्तत्पराः ।
धावा दुग्ध न दुह्यन्ते सम्प्राप्ते हि कलो युगे ।२५
फलन्तें नैव वृक्षस्य कदाचिदपि भारत ! ।
कन्यःविक्रयकर्त्तारोधाजाविक्रयकारकाः ।२६
विंषविक्रयकर्त्तारो रसविक्रयकारकाः ।
वेदविक्रयर्त्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ।२७
नारीगर्भं समाधत्ते हायनैंकादशेन हि ।
एकादश्युपवासस्म विरता सर्वतो जनाः ।२८

सब लोग इस कलियुग में पराये धन के पाने की अभिलाषा रखने वाले होंगे। सभी उत्कोच (रिश्वत) के ग्रहण करने में संलग्न—बिना ही स्नान किये हुए भोजन करने वाले विप्र होंगे। जो क्षत्रिय इस युग में होंगे वे युद्ध करने से रहित हुआ करेंगे ।२२। इस कलियुग के प्राप्त होने पर सभी महामलिन और दुष्ट वृत्ति वाले हो जायेंगे। सब लोग मदिरा के पान करने में रति रखने वाले और जो याचन करने के योग्य नहीं हैं उनको यजन कराने वाले होंगे। स्त्रियाँ अपने स्वामी से द्वेष करने वाली हो जायेंगी तथा सुत अपने माता-पिता से विद्वेष रखने वाले होंगे। इस कलियुग में क्षुद्र मनुष्य अपने ही सगे भाइयोंसे द्वेष रखने वाले होंगे ।२३। ब्राह्मण लोग दूध-घृत आदि बेचने वाले केवल धन प्राप्त करने ही में तत्पर हुआ करेंगे। कलियुगके प्राप्त होने पर गौऐं दूध नहीं दिया करेंगी ।२४। हे भारत ! वृक्ष भी अच्छी तरहसे फल नहीं देंगे। कन्याओं का विक्रय करने वाले अर्थात् कन्याओं पर धन लेने वाले तथा गौ और बकरियों के बेचने वाले हो जायेंगे। विषों को वेचने वाले—रसों का विक्रय करने वाले—वेदों की पुस्तक तथा वेदों के ज्ञान का विक्रय करने वाले लोग इस कलियुग में हो जायेंगे। एकादश वर्ष की अवस्था ही में नारियाँ गर्भ धारण कर लिया करेंगी। सभी मनुष्य इस युग में एकादशी तिथि के उपवास से विरत हो जाया करेंगे अर्थात् कोई भी एकादशीका व्रत नहीं किया करेंगे ।२६। ।२७।२८

न तीर्थसेवनरता भविष्यन्ति च वाडवाः ।
बह्वहाराभविष्यन्ति बहुनिद्रासमाकुलाः ।२९
जिमवृत्तिपराः सर्ववेदनिन्दापरायणाः ।
यतिनिन्दापराश्चैव च्छद्मकाराः परस्परम् ।३०
स्पर्शदोषभयं नैव भविष्यतिकलौयुगे ।
क्षत्रियाराज्यहीनाश्चम्लेच्छोराजाभविष्यति ।३१
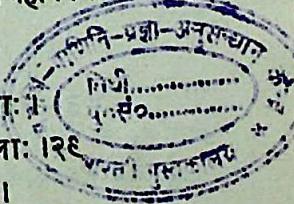
विश्वासघातिनः सर्वे गुरुद्रोहरतास्तथा ।
मित्रद्रोहरता राजाच्छिश्नोदरपरायणः ।३२
एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णश्चत्वार एव च ।
कलौ प्राप्ते महाराज ! नान्यथा वचन मन ।३३

प्रायः लोग तीर्थों के सेवन करने में रत नहीं रहेंगे अधिक आहार करने वाले- अत्यधिक निद्रा में समाकुल रहने वाले लोग कुटिल वृति में परायण तथा वेदों की निन्दा करनेमें तत्पर एवं यतियों की बुराइयां करने वाले—छल छिद्र से भरे हुए परस्पर में रहने वाले होंगे । इस कलियुग में स्पर्श करने के दोष का भय बिल्कुल ही न होगा जो क्षत्रिय होंगे वे राज्यों से हीन हो जायेंगे तथा कलियुग में मलेच्छ लोगही शासन करने वाले होंगे ।२९-३०-३१। प्रायः सभी लोग विश्वास के घात करने वाले होंगे तथा अपने गुरु से ही द्रोह करने में रति रखने वाले होंगे । मित्रों से द्रोह करने वाले और हे राजन् ! सब शिश्न (जननेन्द्रिय) के द्वारा आस्वाद पाने तथा अपना ही उदर भरने में परायण रहने वाले हो जायेंगे । कलियुग में चारों वर्णों का एकदम विलोर होकर सभी एक ही वर्ण वाले हो जायेंगे । हे महाराज । इस कलियुग में ये ही सब बातें होंगी इसमें मेरा कहा हुआ वचन बिल्कुल भी अन्यथा नहीं है अर्थात् जो कहा है वह अक्षरशः सत्य ही है । ।३२-३३।

४३—चातुर्मास्य स्नान महत्व वर्णनम्

देवदेव महाभाग व्रतानि सुवहून्यपि ।
श्रुतानि त्वन्मुखाद् ब्रह्मन्नतृप्तिमधिगच्छति ।१
अधुना श्रोतुमिच्छामि चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ।२
शृणु देवमुने ! मत्तश्चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ।

यच्छ्रुत्वाभारते खण्ड नृणांमुक्तिर्नदुर्लभा ।३
मुक्तिप्रदोऽयं भगवान् संसारोत्तारकारणम् ।
यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।४
मानुष्यं दुर्लभ लोके तत्राऽपिच कुलीनता ।
तत्रापि सदयत्वञ्च तत्र सत्संगमः शुभः ।५
सत्संगमो न यत्राऽस्ति विष्णुभक्तिर्व्रतानि च ।
चातुर्मास्ये विशेषेण विष्णुव्रतकरः शुभः ।६
चातुर्मास्येऽव्रती यस्तु यस्य पुण्यं निरर्थकम् ।
सर्वतीर्थानि दानानि पुण्यान्यायतनानि च ।
विष्णुमाश्रित्यतिष्ठन्तिचातुर्मास्येसमागते ।
सुपुष्टेनापिदेहेन जीवितन्तस्यशोभनम् ।८
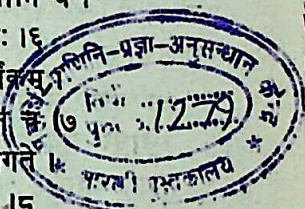
देवर्षि नारद ने कहा—हे देवों के भी देव ! हे महाभाग ! आपके मुखारबिन्द से बहुत से व्रतोंके विषय में श्रवण करने का सौभाग्य सम्प्राप्त हुआ है किन्तु हे ब्रह्मन् । मुझे अभी तक तृप्ति नहीं हुई है । अब मैं चातुर्मास्य के परम शुभ व्रत के विषय में सुनने की इच्छा करता हूँ ।१-२। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुने । अब आप मुझसे अतीव शुभ चातुर्मास्य को श्रवण कीजिए जिसका श्रवण मात्र करने ही से इस भरत खण्डमें मनुष्यों की मुक्ति दुर्लभ नहीं रहा करती है । इस संसार से उद्धार करने का कारण स्वरूप भगवान् ही तो इस मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं । जिस भगवान् के स्मरण मात्र से ही मनुष्य सब पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है । इस लोक में मनुष्य का जीवन में कुलीनता लेना ही परम दुर्लभ होता है फिर उस मनुष्य जीवन में कुलीनता अर्थात् किसी अच्छे कुल में जन्म ग्रहण कर लेना और भी अधिक दुर्लभ होता है । उसमें भी दया से युक्त होना और उसमें भी परम शुभ सत्पुरुषों का सङ्गम प्राप्त कर लेना अत्यन्त दुर्लभ होता है ।३-४-५। जहाँ इस मनुष्य जीवन में सत्पुरुषों का सङ्गम नहीं है—श्री भगवान्

विष्णु की भक्ति नहीं है और शुभ व्रत नहीं है। वह मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ होता है चातुर्मास्य में विशेष रूप में भगवान् विष्णु का व्रत करना परम शुभ होता है।६। जो चातुर्मास्य व्रत नहीं करने वाला उसका पुण्य सब निष्फल होता है। सभी तीर्थ—दान—पुण्य और आयतन इस चातुर्मास्य के समागत होने पर भगवान् विष्णु का समाश्रय करने में ही स्थित रहा करते हैं। इस सुपुष्ट देह से उनका ही जीवित शोभन भी हुआ करता है।७-८।

चातुर्मास्ये समायातेहरियः प्रणमेद् बुधः।
कृतार्थास्तस्यविबुधायावज्जीवम्बरप्रदाः।६
सम्प्राप्यमानुषे जन्म चातुर्मास्यपराङ्मुखः।
तस्य पापशतान्याहुर्देहस्थानिनसंशयः।१०
मानुष्यं दुर्लभं लोके हरिभक्तिश्च दुर्लभा।
चातुर्मास्ये विशेषण सुप्ते देवे जनार्दने।११
चातुर्मास्ये नरः स्नान प्रातरेव समाचरेत्।
सर्वक्रतुफलम्प्राप्य देववद्दिवि मोदते।१२
चातुर्मास्ये नदीस्नानं कुर्यात्सिद्धिमवाप्नुयात्।
तथा निर्झरणे स्नाति तडागे कूपिकासु च।१३
तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात्।
पुष्करेचप्रागेवायत्रक्वापिमहाजले।
चातुर्मास्येषु यः स्नाति पुण्यसंङ्ख्या न विद्यते।१४

इस चातुर्मास्य के समायात होने पर जो बुध मनुष्य श्री हरि को प्रणाम किया करता है उसके देवगण कृतार्थ हो जाया करते हैं और जब तक वह जीवित रहा करता है उसको वरदान देने वाले होते हैं। इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करके जो अतीव दुर्लभ है यदि मनुष्य चातुर्मास्य व्रतोंसे पराङ्मुख रहता है तो उसके देह में रहने वाले सैकड़ों ही पाप हुआ करते हैं—इसमें लेश मात्र संशय करने का कोई अवसर नहीं

है इस लोक में यह मनुष्य का जीवन प्राप्त करना अत्यन्त ही दुर्लभ होता है और उसमें भी श्री हरि का भक्ति का प्राप्त कर लेना तो परम दुर्लभ है। चातुर्मास्य में जब कि विशेष रूप से देव जनार्दन प्रभु शयन किया करते हैं उस समय में श्रीहरि की भक्ति अवश्य ही करनी चाहिए चातुर्मास्य में मनुष्य को प्रातःकाल स्नान करना चाहिए ऐसा प्रातः स्नान करने वाला मनुष्य समस्त ऋतुओं के करने का पुण्य-फल प्राप्त करके दिवलोक में देवों की तरह आनन्द का लाभ लिया करता है। चातुर्मास्य में नदी में स्नान करना चाहिए। इस स्नान से वह सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। नदी का अभाव हो तो किसी निर्झर में तड़ाग में अथवा कूपिका में जो स्नान किया करता है उसके सहस्रों पाप तो उसी क्षण में विलीन हो जाया करते हैं। पुष्कर में-प्रयाग में-अथवा किसी भी अन्य महाजल में जो चातुर्मास्यों में स्नान किया करता है उसके उतने अधिक पुण्य होते हैं कि उनकी कोई संख्या ही नहीं होती है।९—१४।

रेवायां भास्करक्षेत्रेप्राच्यांसागसङ्गमे।
एकाहमपि य स्नातश्चातुर्मास्येनदोषभाक् ।१५
दिनत्रयञ्च यः स्नाति नर्मदायांसमाहितः।
सुप्ते देवे जगन्नाथे पापं याति सहस्रध ।१६
पक्षमेकं तु यः स्नाति गोदावर्या दिनोदये।
स भित्वा कर्मजं देहं यामि विष्णोः सलोकताम् ।१७
तिलोदकेनयः स्नाति तथा चैवामलोदकैः।
बिल्वपत्रोदकैश्चैवचातुर्मास्येनदोषभाक् ।१८
गङ्गां स्मरन्ति यो नित्यमुदपानसमीपतः।
तद्गांगेयंजलंजातं तेन स्नान समाचरेत् ।१९
गङ्गाऽपिदेवस्यचरणाङ्गुष्ठवाहिनी।
पापघ्नीसासदा प्रोक्ता चातुर्मास्येविशेषतः ।२०

यतः पाप सहस्राणि विष्णुर्दहति संस्मृतः ।
तस्मात्पादोदकं शीर्षे चातुर्मास्ये घृत शिवम् ।२१

रेवा नदी में भास्कर क्षेत्र में—प्राची में सागर संगम में जो चातुर्मास्य में एक भी दिन स्नान कर लेता है उसमें फिर कोई भी दोष शेष ही नहीं रहा करता है। तीन दिन तक जो नर्मदा नदी में परम समाहित होकर स्नान कर लेता है जब कि जगत् के नाथ भगवान् शयन किया करते हैं उसके समस्त पाप सहस्रों टुकड़े हो-होकर क्षीण हो जाया करते हैं। दिन के उदय होने के समय में जो कोई एक पक्ष तक अर्थात् पन्द्रह दिन गोदावरी नदी में स्नान कर लेता है वह दस कर्मोंसे समुत्पन्न देह का भेदन करके सीधा भगवान् विष्णु की सलोकता चला जाया करता है।१५-१६-१७। चातुर्मास्य में जो तिल मिश्रित जल से तथा आँवलों से मिश्रित जल से या बिल्व पत्र मिस्रित जल से स्नान किया करता है उसमें कुछ भी दोष शेष नहीं रहा करते हैं। जो किसी उदकाशय के समीप में पहूँच कर भागीरथी का स्मरण मात्र ही नित्य कर लेता है वह जल भी गंगा का ही जल हो जाया करता है। उससे ही फिर स्नान करना चाहिए। यह गंगा भी देवों के देव भगवान् के चरण के अंगुष्ठ से ही वहन होने वाली है। वह सदा ही पापों का विनाश करने वाली बतलाई गई है। क्योंकि भगवान् श्री विष्णु याद किये जाने से सहस्रों पापों को दग्ध कर दिया करते हैं। इसीलिए तो इस चरणोदक को भगवान् शम्भु ने चातुर्मास्य में अपने मस्तक में धारण किया था।१८-२१।

चातुर्मास्ये जलगतो देवो नारायणो भवेत् ।
सर्वतीर्थाधिकं स्नानं विष्णुतेजोशसङ्गतम् ।२२
स्नानं दशविधंकार्यं विष्णुनाममहाफलम् ।
सुप्ते देवे विशेषेण नरो देवत्वमाप्नुयात् ।२३

बिनास्नानंतुयत्कर्मपुण्यकार्यंमयंशुभम् ।
क्रियतेनिष्फलं व्रण स्तत्प्रगृह्णाप्मराक्षसाः ।२४
स्नानेन सांह्मान्नोति स्नानं धर्मः सनातनः ।
धर्मान्मोक्षफलम्प्राप्य पुनर्नवाऽवसीदति ।२५
ये चाध्यात्मविदः पुण्या ये च वेदाङ्गपारगाः ।
सर्वदानप्रदायेच च तेषां स्नानेहिशुद्धता ।२६
कृतस्नानस्य चं हरिर्देहमाश्रित्यतिष्टति ।
सर्वक्रियाकलापेषु सम्पूर्णफलदो भवेत् ।२७
सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च ।
चातुर्मास्ये जलस्नानं सर्वपापक्षयावहम् ।२८

चातुर्मास्य में भगवान् नारायण देव जल में ही निवास किया करते हैं। इसीलिए भगवान् विष्णु के तेजके अंशसे सगत स्नान समस्त तीर्थों से भी अधिक हुआ करता है ।२२। इश प्रकार का स्नान करना चाहिए । भगवान् विष्णु का महान् फल होता है। देव के गुप्त होने पर विशेष रूप से मनुष्य देवत्य को प्राप्त हो जाता है स्नान के बिना कोई भी शुभ एवं पुण्यमय कर्म किया जाता है तो वह हे ब्रह्मन् ! बिल्कुल ही निष्फल हो जाया करता है और उसकी राक्षसगण ग्रहणकर लिया करते हैं। स्नान से ही महत्व को प्राप्त किया करता है। यह स्नान सनातन (सर्वदा से चले आने वाला) धर्म से मोक्ष के फल को प्राप्त करके फिर यह प्राणी कभी भी अवसन्न अर्थात् दुःखित नहीं हुआ करता है ।२३-२४-२५। जो अध्यात्म ज्ञान के ज्ञाता पुण्यात्मा हैं और जो वेद-वेदाङ्गों के पारगामी विद्वान् हैं तथा जो सब प्रकार के दानों के प्रदान करने वाले हैं उन सबकी स्नान करने से शुद्धता हुआ करती है जो स्नान किये हुए मनुष्य होता है उसके देह को समाश्रय ग्रहण करके साक्षात् भगवान् श्री हरि स्थित रहा करते हैं और समस्त क्रिया कलापों में वे सम्पूर्ण फलों के प्रदान करने वाले होते हैं। सभी प्रकार के

पापों के विनाश के लिए और देवों तोषण करने के लिए चातुर्मास्य में सब पापों के क्षय को करने वाला जल का स्नान करना चाहिए ।२६-२७-२८।

निशायाञ्चैव न स्नायात्सन्ध्यां ग्रहणम्बिना ।
उष्णोदकेन न स्नानं रात्रौ शुद्धिर्न जायते ।२६

भानुसन्दर्णनाच्छुद्धिविहिता सर्वकर्मसु ।
चातुर्मास्यें विशेषेणजलशुद्धिस्तुभाविनी ।३०

अशक्त्या तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुध्यति ।
मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र ! विष्णुपादोदकेन वा ।३१

नारायणाग्रतः स्नानं क्षेत्रतीर्थनदीषुच ।
यः करोतिविशुद्धात्माचातुर्मास्य विशेषतः ।३२

निशाकाल और सन्ध्या के समय कभी ग्रहण के अवसर को छोड़कर स्नान नहीं करना चाहिए उष्ण जल से रात्रि में स्नान नहीं करे । इससे कभी शुद्धि नहीं हुआ करती है ।२६। समस्त कर्मों में भानुदेव के दर्शन मात्र से ही शुद्धि कही गयी है । चातुर्मास्य में विशेष रूप से जल के द्वारा होने वाली होती है । यदि जल से शुद्धि करने की शरीर में शक्ति ही न हो तो भस्म द्वारा स्नान करने से भी हो जाती है । हे विनेन्द्र ! के द्वारा स्नान से शुद्ध होता है और केवल भगवान् के चरणामृत से भी शुद्धि होती है । जो विशुद्ध आत्मा वाला विशेष करके चातुर्मास्य में नारायण के आगे क्षेत्र-तीर्थ और नदियों में स्नान करता है वह परम शुद्ध हो जाता है ।३०-३२।

॥ स्कन्द पुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ॥

पुराणों का बृहद् प्रकाश…

(सरल हिन्दी अनुवाद सहित)

१—शिव पुराण २ खण्ड (भा.टी.)
२—विष्णु पुराण २ खण्ड (भा.टी.)
३—मार्कण्डेय पुराण २ खण्ड (भा.टी.)
४—गरुड़ पुराण १ खण्ड (भा.टी.)
५—हरिवंश पुराण २ खण्ड (भा.टी.)
६—देवी भागवत पुराण २ खण्ड (भा.टी.)
७—भविष्य पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ...
८—लिंग पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
९—पद्म पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
१०—कूर्म पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
११—ब्रह्मवैवर्त पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
१२—स्कन्द पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
१३—ब्रह्म पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
१४—नारद पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
१५—कालिका पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
१६—वामन पुराण २ खण्ड (भा.टी.) ... ३२)
१७—कल्कि पुराण (भा.टी.) ... १७)
१८—सूर्य पुराण (भा.टी.) ... १६)
१९—आत्म पुराण (भाषा) ... १६)
२०—गणेश पुराण (भाषा) ... १७)
२१—महाभारत (भाषा) ... [illegible]५)
२२—श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा (भाषा) ... २६)

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब वेदनगर,
बरेली—२४३००३ (उ० प्र०)